मुखबन्ध

गत १९११ ई०के सेप्टेम्बर मासमें विश्वकोषको बाईस खण्डोंमें समाप्त करते हुए उसकी भूमिकामें लिखा था—

"अब हिन्दी संस्करणका समय आ गया है, सब ओर हिन्दी भाषाका समादर और हिन्दी-साहित्यको परिपुष्ट बनानेके लिये यथेष्ट चेष्टा दिखाई पड़ती है। इसलिये इस शुभ अवसर पर संशोधित और परिवर्द्धित आकारमें विश्वकोषके एक हिन्दी संस्करण प्रकाशित करनेकी आवश्यकता अनुभव करता हूं।.. विश्वकोष केवल बङ्गवासियोंका ही नहीं है, सारे भारतवासियोंका है। जिससे विश्वकोष समस्त भारतवासियोंको अधिगम्य हो सके, इस हेतु भारतवर्षका समग्र विद्वत्समाज हमारी सहायता करे, यही हमारी अन्तिम प्रार्थना है।"

बीस वर्ष पूर्व यह संकल्प करने पर भी उस समय नाना कारणोंसे हिन्दी विश्वकोषके सम्बन्धमें कुछ भी न कर सका। हमारे उद्योगमें आलस्य देख कर उस समय सुदूर पंजाब, काश्मीर, गुजरात और मध्यप्रदेशसे हिन्दी विश्वकोषको प्रकाशित करनेके लिये अनेकों महानुभावोंने उत्साहजनक पत्र लिखे थे। यहां तक कि, जयपुरसे एक महाशयने विश्वकोषका हिन्दी संस्करण प्रकाशित करनेके लिए हमारी अनुमति चाही थी। उस समय कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपति तथा नागरी लिपि-विस्तारके प्रधान उद्योगकर्त्ता माननीय शारदाचरण मित्र महोदयने जयपुरका पत्र पढ़ कर हमें हिन्दी-विश्वकोष प्रकाशित करनेका उपदेश दिया था।

सन् १९१३ ई०को दोल पूर्णिमाके पूर्व दिन हमारे 'विश्वकोष-कुटीर'में 'विश्वकोषकी समाप्ति और हिन्दी विश्वकोषके उद्बोधनके उपलक्षमें एक सांध्य-सम्मेलनमें बंगालके अधिकांश ख्यातनामा साहित्यिकोंने एवं उनके साथ साथ हिन्दीके कतिपय साहित्यिकोंने योग दान दिया था। इसके थोड़े ही दिन बाद बिहार-प्रान्तके भागलपुर नगरमें चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ। उस हिन्दी-साहित्य सम्मेलनमें मैं प्रतिनिधि रूपसे सम्मिलित हो कर हिन्दी विश्वकोषका अनुष्ठानपत्र प्रकाशित किया था। वहां साहित्यानुरागी देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त महोदयने सम्मेलनकी विषय-निर्वाचनी समितिमें हमारे पक्षका समर्थन करके हिन्दी विश्वकोषकी आवश्यता बतलाई थी। इस सम्मेलनके सभापति महात्मा मुंशीराम (बादमें स्वामी श्रद्धानन्दजी,) तथा तत्कालीन मन्त्री सुप्रसिद्ध देशभक्त बाबू पुरुषोत्तम दास टंडनने हमारे हिन्दी विश्वकोषका उल्लेख करके हमें उत्साहित किया और कृतज्ञताके पाशमें बांध लिया।

सन् १९१४ ई०में प्रयागके कायस्थ-पाठशाला कालेजके अधिकारियोंकी चेष्टासे 'निखिल भारतीय कायस्थ-सम्मेलन' बुलाया गया। इस सम्मेलनमें सम्मिलित होनेके लिए, सम्मेलनके सभापति दीनाजपुर-नरेशके साथ मैं भी पुण्यधाम प्रयागमें उपस्थित हुआ। इस सम्मेलनमें भारतवर्षके नाना स्थानोसे बहुतसे मान्यगण्य कायस्थ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इसके अतिरिक्त कतिपय श्रेष्ठ ब्राह्मणप्रवर भी उपस्थित थे। उनमें दरभंगाके अधिपति स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह बहादुर और भारतप्रसिद्ध श्रीयुक्त पंडित मदनमोहन मालवीयका नाम विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य है। उसी महा सम्मेलनमें माननीय शारदाचरण मित्र महाशयने हिन्दी विश्वकोषके प्रकाशित होनेके संवादकी घोषणा की तथा वहीं पर विश्वकोषकी प्रथम संख्या प्रदर्शित की गई।

उसके दूसरे वर्ष दरभंगाके महाराजाधिराजने भी बिहार और उड़ीसाकी सरकारसे उपयुक्त भावसे हिन्दी विश्वकोषका प्रकाशन अनुकूल बनानेके लिए अनुरोध किया। इसके फलस्वरूप बिहार और उड़ीसाकी सरकारने विश्वकोषके बारह सेटोंका ग्राहक बन कर हमें अनुगृहीत किया।

इसी समय कलकत्ता यूनीवर्सिटीके भूतपूर्व वायस चांसलर तथा हाईकोर्टके विचारपति माननीय सर आशुतोष मुखोपाध्याय, विचारपति माननीय सर गुरुदास बन्द्योपाध्याय, विचारपति माननीय सर आशुतोष चौधरी आदि बंगालके श्रेष्ठ मनीषी विद्वानों तथा संयुक्त प्रदेशके पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रमुख सम्पादकोंने हिन्दी विश्वकोषकी आवश्यकता की घोषणा करके सर्व साधारणकी दृष्टि इस ओर आकर्षित की।

हिन्दी-विश्वकोषमें विशेषता—ब्रिटेनिकामें संसारके सभी ज्ञातव्य विषय लिपिबद्ध होने पर भी भारतसम्बन्धी बहुतसे विषय,—वैदिक युगसे आधुनिक युग तकके विषय—उसमें विशेषतासे नहीं लिखे हैं। इसलिये यह भारत के लिये उतना उपयोगी नहीं हो सकता जितना कि विलायतके लिये है। परन्तु इस हिन्दी विश्वकोषमें भारत वर्षके सभी जाननेयोग्य विषयोंका विशदरीतिसे वर्णन किया गया है। प्रत्येक विषय अनुसन्धानपूर्वक प्रमाण सहित लिखा गया है।

बंगला विश्वकोषमें जो सब अभाव रह गये थे, उन सब अंशोंको पूर्ण करके एक सर्वांगसुन्दर जातीय महाकोष प्रकाशित करनेकी आशासे ही हमने हिन्दी-विश्वकोषरूपी महाकोष प्रकाशित करनेका व्रत लिया था। परन्तु इस गुरुतर दायित्वपूर्ण कार्यभार ग्रहण करनेके तीन वर्षके भीतर ही मैं स्नायविक दुर्बलता, हृद्रोग, और श्वासकृच्छ्र रोगसे पीड़ित हो कर बीमार पड़ गया और क्या कहूं, उस समयसे आज पर्यन्त मैं एक प्रकारसे घरके भीतर ही बन्द हूं। शय्या ही मेरा प्रधान आश्रय है। घरसे बाहर निकलनेकी शक्ति जाती रही।

शायद यह यहां पर कह देना अनुचित न होगा, कि कुछ महाशयोंने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियां की हैं। मुझे इस विषयमें सिर्फ इतना ही कहना है, कि हमारा उद्देश्य किसी जातिको ऊंची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता है। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमें भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असम्भव बात नहीं है। उसी प्रकार जीवनीके सम्बन्धमें मत भेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसीका हृदय दुखा हो, या किसी प्रकारका क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुःखी हैं और क्षमाके प्रार्थी हैं। दूसरे संस्करणमें ये त्रुटियां दूर की जायंगा।

फलतः जिन समस्त उच्चाकांक्षाओंको लेकर मैं हिन्दी-साहित्यक्षेत्रमें उतरा था उन सबको उपयुक्त भावसे पूर्ण करनेका सुयोग मुझे प्राप्त नहीं हुआ। विशेषतः हिन्दी विश्वकोषके प्रकाशित होनेके साथ ही साथ यूरोपमें महासमर छिड़ गया, जिसके फलस्वरूप कागजका मूल्य दुगुना-तिगुना बढ़ गया। कुछ दिन बाद हिन्दी विश्वकोषकी १२ संख्याओंका मूल्य ५)के स्थानमें ६) कर देनेके लिए हमें बाध्य होना पड़ा। जिस हिसाबसे कागजका मूल्य बढ़ा था उसी अनुपातमें मूल्यमें वृद्धि न करने पर भी दुःखकी बात है कि अनेकों ग्राहकोंने पुस्तक लेना बन्द कर दिया। इससे हमें बड़ी असुविधा उठानी पड़ी थी। आरम्भमें हिन्दी प्रेमी जनताके निकट जिस प्रकारकी सहायता पानेकी आशा की थी, बादमें वह त्यागनी पड़ी। एक तो निदारुण रोग, दूसरे हिन्दी विश्वकोषके लिये नाना प्रकारके व्ययभारने मुझे निपीड़ित कर डाला। यदि मेरा शरीर स्वस्थ होता तो मैं व्ययकी आशंका न करता, सहजमें ही अनेकों कार्य सुसाध्य हो जाते। किन्तु मेरी शय्यागत अवस्थामें, नाना प्रकारकी असुविधाओंके मध्य, किस प्रकारसे जीवन-संग्रामका सामना करना पड़ा, उसे लिख कर कैसे प्रकट करूं? किसी किसी समय रोगकी यन्त्रणासे अस्थिर हो कर मैं सोचने लगता था कि मालूम होता है अपनी बड़ी साधके हिन्दी विश्वकोषको अब प्रकाशित न कर सकूंगा, जान पड़ता है कि मेरी साधना सफल न होगी। मेरे आत्मीय बन्धुओंमें जिस-जिसको मेरी तरह हृद्रोग था उनमेंसे किसीको भी ४।५ वर्षसे अधिक काल तक जीवित रहते नहीं देखा था। ऐसी दशामें जब कभी मेरा हृद्रोग बढ़ता था, तब मनकी अवस्था कैसी होती थी इस बातका सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है। मैंने डाक्टरी, कविराजी, एलोपैथी, होमियोपैथी सब प्रकारकी चिकित्साओंकी परीक्षा करके देख ली, किन्तु किसीसे भी उपयुक्त फल प्राप्त न हुआ। चिकित्साके फलस्वरूप अनेक स्थलोंमें उपकार होनेके स्थानमें अपकार ही दिखाई पड़ा।

६।७ वर्ष तक नाना प्रकारकी चिकित्सा करने पर भी जब कोई फल न हुआ तो मैंने सब प्रकारकी औषधियोंकी आशा त्याग कर एक मात्र दैवी शक्ति पर निर्भर करना प्रारम्भ किया। मैंने मनमें निश्चय कर लिया कि जब कभी पीड़ाके घात-प्रतिघातकी विषम यन्त्रणासे अस्थिर हूंगा तभी एक मात्र औषधिके रूपमें उसी भगवती महाशक्तिके मन्त्रका जप करूंगा। आपसे क्या बताऊं कि यही उपाय करके मैं इतनी बार मृत्यु-यन्त्रणासे प्रकृतिस्थ हुआ हूं।

यद्यपि मुझमें चलने फिरने योग्य शक्ति नहीं है, यद्यपि हृद्रोग और श्वासकृच्छ्र रोग बीच-बीचमें मुझे पीडित करके अस्थिर कर डालते हैं, किन्तु फिर भी मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस समय भी मैं उसी महाशक्ति आद्याशक्तिकी कृपासे जीवित हूं। उन्ही की अपार करुणासे आज मैं हिन्दी विश्वकोषरूपी महाव्रतका उद्यापन करनेमें समर्थ हो सका हूं। और क्या कहूं, यह उसी महाशक्तिकी साधना और निर्भरताका फल है कि मैं आज सर्व्व साधारणका स्नेहपात्र हुआ हूं। यहा तक कि मैं जगत्-वरेण्य भारतवासियोंके प्राण महात्मा गान्धीजी तथा पण्डितप्रवर भारतगौरव मदन मोहन मालवीयजीके प्रेमको भी आकर्षित करनेमें समर्थ हो सका*। आज हिन्दी विश्वकोषकी समाप्तिके उपलक्ष्यमें मैं इन दोनों महापुरुषोंके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं।

अनेकों अपने मनमें सोचते होंगे कि हिन्दी-विश्वकोष बंगला विश्वकोषका अनुवाद है। अनेक स्थलोंमें हिन्दी विश्वकोष बंगला विश्वकोषका अनुवाद होने पर भी, इसे हम सम्पूर्ण अनुवाद कह कर ग्रहण नहीं कर सकते। ऐसे बहुतसे शब्दों और मौलिक गवेषणाओंको हिन्दी-विश्वकोषमें स्थान दिया गया है जो बंगला विश्वकोषमें नहीं हैं। बंगला विश्वकोषके प्रकाशित होनेके बाद इतिहास, प्रत्नतत्त्व, विज्ञान और कलाविद्या आदिमें जो सब आविष्कार तथा सम्यक् परिवर्तन हुए हैं, एवं जो परवर्त्ती घटनायें और विवरण सम्मिलित करना आवश्यक हुआ है, वह सब हिन्दी-विश्वकोषमें संयुक्त किया गया है। बंगला विश्वकोषमें हिन्दीके शब्द नहीं हैं, परन्तु हिन्दी-विश्वकोषमें प्रायः ३० हजार हिन्दीके शब्द सन्निविष्ट किये गये हैं। फिर मैं यह भी बतला देनेके लिए बाध्य हूं कि हिन्दी-विश्वकोषके ग्राहकोंने मुझे उसके कलेवरको परिपुष्ट करनेके लिए दो तीन वर्षका सुयोग

---

* गत पूर्व वर्ष कलकत्तेमें भारतकी जातीय महासभाका विराट अधिवेशन हुआ था। इस महासभाके अन्तमें महात्मा गान्धीजी तथा उसके दूसरे दिन पण्डितप्रवर मदनमोहन मालवीयजी इस रुग्ण व्यक्तिको देखनेके लिए पधारे थे। उस समयके समाचार पत्रोंमें दोनों ही महानुभावोंके आगमनका संवाद विस्तार पूर्वक प्रकाशित हुआ था। उसके बाद महात्मा गान्धीने अपने Young India (dated 10th January 1929) में जो विस्तृत आलोचना की थी, उसका कुछ अंश नीचे प्रकाशित किया जाता है— महात्माजीकी उक्तिसे मेरे प्रति उनका अनुराग तथा मेरी वर्त्तमान अवस्थाको थोड़ा बहुत सभी समझ सकेंगे।

'Reference has already been made to Srijut Vasu's Hindi Cyclopædia in my notice of Hindi Prachar Conference I knew of this great work two years ago I knew too that the author was ailing and bed-ridden, I was so struck with Srijut Vasu's labours that I had a mind to see the author personally and know all about his work I had therefore, promised myself this pilgrimage during my visit to Calcutta for the Congress It was only on my way to the Khadi Pratishthan at Sodepur that I was able to carry out my promise I was amply rewarded, I took the author by surprise for I had made no appointment * * * * *

This is a summary description he gave me of his enterprise "I was 19 when I began my Bengali Cyclopædia I finished the last volume when I was 45. It was a great success There was a demand for a Hindi edition The late Justice Sarada Charan Mitra suggested that I should myself publish it I began my labours when I was 47, and am now 63 It will take three years more to finish this work. If I do not get more subscribers or other help, I stand to lose Rs 25,000 at the present moment But I do not mind I have faith that when I come to the end of my resources God will send me help These labours of mine are my Sādhanā. I worship God through them I live for my work" There was no despondency about Srijut Vasu. but a robust faith in his mission I was thankful for this pilgrimage, which I should never have missed As I was talking to him I could not but recall Doctor Murray's labours on his great work I am not sure who is the greater of the two I do not know enough of either But why any comparison between gaints? Enough for us to know that nations are made from such gaints".

M K GANDHI.

और सुविधा मिली थी, उसीके बाद हृद्रोग और श्वासकृच्छ्ररोगसे आक्रान्त होने पर मेरे उद्योग और अध्यवसायमें व्याघात आ उपस्थित हुआ था। परन्तु रोगशय्या पर पड़े रहनेकी अवस्थामें भी विश्वकोषके प्रति मैं अपने लक्ष्यसे विरत न हुआ। रोगकी अत्यधिक कातरावस्थामें जब मैं लेखनी चलानेमें बिलकुल अक्षम हो जाता था, केवल उस समयको छोड़ कर इस रुग्न भग्न अवस्थामें भी मैं पाण्डुलिपि ठीक करने तथा मुद्रण कार्यके परिचालनमें कभी भी विमुख नहीं हुआ। हां, यह बात अवश्य ही स्वीकार करता हूं कि पीड़ाके प्रभावसे मैं सब समय आशानुरूप कार्य परिचालनमें समर्थ नहीं हो सका। मेरी वर्तमान शोचनीय अवस्थामें इस गुरुतर दायित्वपूर्ण महाग्रन्थके संकलनमें यथेष्ट त्रुटियां और छूटें हुई होंगी। उनके लिए मैं सर्वसाधारण हिन्दी प्रेमियोंके निकट क्षमा प्रार्थना करता हूं। रोगवृद्धिके साथ हिन्दी-विश्वकोषके प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें हिन्दी प्रेमी ग्राहकों और अनुग्राहकोंसे उपयुक्त उत्साह न मिलनेके कारण मेरे अर्थाभाव आ उपस्थित हुआ। उसके फलस्वरूप इस सुदीर्घ कालमें हिन्दी विश्वकोषके मुद्रणके लिए मैं विशेषरूपसे ऋणग्रस्त हो गया हूं। महात्माजीने मेरे ऋणका उल्लेख किया है।

हिन्दी विश्वकोषकी समाप्तिके साथ-साथ परिशिष्ट प्रकाशित करनेकी मेरी एकान्त इच्छा थी, किन्तु ऋणजालमें फंसे होनेके कारण इस कार्यमें हाथ डालनेका साहस नहीं हुआ। जब पुस्तक सम्पूर्ण हो गई है तब महात्माजीकी शुभेच्छाका अनुसरण करके यह कह सकता हूं कि हिन्दी प्रेमियोंके उत्साह और यत्नसे तथा भगवदिच्छासे मैं शीघ्र ही ऋणजालसे मुक्त हूंगा एवं परिशिष्ट प्रकाशित करके अपनी अन्तिम इच्छाको पूर्ण करनेमें समर्थ हूंगा। साथ ही जो सब अभाव और त्रुटियां रह गई हैं, उनका संशोधन करके इस महाग्रन्थका सर्वांग सुन्दर संस्करण प्रकाशित करनेमें अग्रसर हूंगा। इन अष्टादश वर्षोंमें इस महाग्रन्थके प्रकाशनके सम्बन्धमें जिन सब विद्वानों और पण्डितोंने अवैतनिकरूपसे अथवा वेतन ले कर मेरी सहायता की है मैं उनमेंसे प्रत्येकके निकट अपनी आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं। सम्प्रति 'हिन्दी साहित्य' शब्दके संकलन कालमें मुझे जिन्होंने उपदेश दे कर कृतार्थ किया है, उनमें मैं काशीवासी प्रवीण साहित्यरथी राय साहब बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० के नामका विशेष रूपसे उल्लेख करता हूं। थोड़े ही दिन हुए राय साहब श्यामसुन्दर दासजीने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामसे हिन्दी साहित्यके एक सुन्दर इतिहासकी रचना की है। उन्हें ही उपयुक्त व्यक्ति समझ कर मैंने उनसे यह शब्द लिखनेका अनुरोध किया। उन्होंने अपनी पुस्तकके सहारे इस शब्दको लिखनेका भार प्रयागनिवासी पंडित नन्द दुलारे वाजपेयीको अर्पण किया। उन्हींके उपदेशके अनुसार वाजपेयीजीने प्राचीन कालके अंशका संकलन करके भेजा था। दुःखकी बात है, कि बीमार पड़ जानेके कारण वे आधुनिक अंश न भेज सके। आधुनिक कालके प्रथमांश तक राय साहेब श्यामसुन्दर दासजीकी रचना है, तथा आधुनिक कालका अधिकांश 'विशाल-भारत'के सहकारी सम्पादक श्री व्रजमोहन वर्माका लिखा हुआ है।

बीस वर्ष पूर्व जो संकल्प किया था, परमात्माकी कृपासे आज उस संकल्परूपी महाव्रतको उद्यापित होता देख कर मैं अपनेको धन्य और कृतार्थ समझता हूं। मेरी वर्तमान शोचनीय अवस्थाका स्मरण करके, आशा करता हूं कि सहृदय साहित्यानुरागी मात्र मेरे प्रति सदय हो कर मेरी सहायता करेंगे, जिससे मैं शीघ्र ही ऋणमुक्त हो सकूं। यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है।

नगेन्द्रनाथ वसु
राखी पूर्णिमा, सम्वत् १९८८

विश्वकोष कार्यालय
८ और ९ विश्वकोष लेन, बागबाजार; कलकत्ता

संकेताक्षरोंका विवरण

अं०—अंगरेजी भाषा
अ०—अरबी भाषा
अक०—अकर्मक
अथर्व—अथर्ववेदसंहिता
अथर्वप्रा०—अथर्वप्रातिशाख्य
अदा०—अदादिगणीय
अनु०—अनुकरण शब्द
अप०—अपभ्रंश
अमर—अमरकोष
अर्द्धमा०—अर्द्धमागधी
अव्य०—अव्यय
अश्वचि०—अश्वचिकित्सा
आत्म०—आत्मनेपदी
आश्व०—आश्वलायन गृह्यसूत्र
आश्व०श्रौ०—आश्वलायनश्रौतसूत्र
इब०—इबरानी भाषा
ई०—ईस्वी
उ०—उत्तरस्थान
उण्—उणादिसूत्र
उप०—उपसर्ग
उभ०—उभयलिङ्ग
ऋक्—ऋग्वेदसंहिता
ऐत०ब्रा०—ऐतरेयब्राह्मण
कथास०—कथासरित्सागर
कर्मधा०—कर्मधारय समास
कात्या०—कात्यायन
कुमार—कुमारसम्भव
क्रि०—क्रिया
क्रि० अ०—क्रिया अकर्मक
क्रि० वि०—क्रियाविशेषण
गुज०—गुजराती-भाषा
गौ० वृ०—गौतमीय वृत्ति
चुरा०—चुरादिगणीय
जटाधर—जटाधरकृत संस्कृत अभिधान
ज्यो०—ज्योतिष
डिं०—डिंगल भाषा
त०—तत्त्व
तत्—तत्पुरुष समास
तु०—तुरकी भाषा
त्रि०—त्रिलिङ्ग
दिवा०—दिवादिगणीय
देवीमा०—मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत चण्डी वा देवीमाहात्म्य
देश०—देशज
नि०—निदानस्थान
प०—पर्व
पं०—पंजाबी भाषा
पर०—परस्मैपदी
पर्या०—पर्याय
पा०—पाणिनीय अष्टाध्यायी
पु०—पुराण
पु०—पुंलिङ्ग
पु० हिं०—पुरानी हिंदी
पू० हि०—पूर्वी हिंदी
प्रत्य०—प्रत्यय
प्रा०—प्रातिशाख्य
प्राति०—प्रातिशाख्य
फ०—फरासीसी भाषा
फ़ा०—पारसी भाषा
बहु०—बहुवचन
बहुव्री०—बहुव्रीहि समास
बुं० खं०—बुंदेलखंडी बोली
बृहत्स०—वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता
ब्रह्माण्ड०—ब्रह्माण्ड
ब्रह्मवै०—ब्रह्मवैवर्त्तपुराण
भट्टोजि—भट्टोजिदीक्षित
भ० म०—भरत मल्लिक
भारत—महाभारत
भाव०—भाववाचक
भावप्र०—भावप्रकाश
मातापरि०—मातापरिच्छेद
भैषज्यरत्ना०भैषज्यरत्नावली
भ्वादि०—भ्वादिगणीय
मनु०—मनुसंहिता
मला०—मलयालम भाषा
महीधर०—महीधरकृत वाजसनेय वा शुक्लयजुर्वेदसंहिताभाष्य
माघ०—माघकृतशिशुपालवध
माधवनि—माधवकरकानिदान
यू०—यूनानी भाषा
रति०—रतिमञ्जरी
राजत०—कह्लणकी राजतरङ्गिणी
राजनिघ०—राजनिघण्टु
रामा० कि०—रामायण किष्किन्धाकाण्ड
रुधा०—रुधादिगणीय
रघु०—कालिदास-कृत रघुवंश
ललितवि०—ललितविस्तर
लश०—लशकरी भाषा (हिन्दुस्तानी जहाजियों की बोली)।
लै०—लैटिन भाषा
वाचस्पत्य—पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पतिका वाचस्पत्य अभिधान
वाज० सं०—वाजसनेयसंहिता
वार्तिक—कात्यायनकृत वार्तिक
वि०—विशेषण
विश्व०—महेश्वर रचित विश्वप्रकाश
व्या—व्याकरण
शकु०—अभिज्ञान शकुन्तला
श० च०—शब्दचन्द्रिका
शत०ब्रा०—शतपथब्राह्मण
शब्दक०—राजा राधाकान्तदेवका शब्दकल्पद्रुम
सं० क्रि०—संयोजक क्रिया;
सं० पु०—संस्कृत पुलिङ्ग
संयो०—संयोजक अव्यय
स०—समास
सं०—संस्कृत
संगीतद०—संगीतदर्पण
सम्पा०—सम्पादक
सर्व०—सर्वनाम
स०द०सं०—सर्वदर्शनसंग्रह
साम०—सामवेदसंहिता
सायण—सायणाचार्य्यकृत वेदभाष्य
साहित्यद०—साहित्यदर्पण
सू०—सूत्र
सूर०—सूरदास
स्त्रि०—स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री०—स्त्रीलिङ्ग
हलायुध—हलायुधकृत संस्कृत अभिधान
हिं—हिन्दी भाषा
हेम—हेमचन्द्र-कृत अभिधान चिन्तामणि

हिन्दी
विश्वकोष

पञ्चविंश भाग

हि (सं० अव्य०) १ हेतु, कारण। २ अवधारण, निश्चय। ३ पादपूरण। श्लोकके पादपूरणस्थलमें च, वा, तु, हि इन चार शब्दोंका प्रयोग होता है। ४ सम्भ्रम। ५ असूया। ६ शोक।

हि—हिन्दीकी एक पुरानी विभक्ति। इसका प्रयोग पहले तो सब कारकोंमें होता था, पर पीछे कर्म और संप्रदानमें ही (को के अर्थमें) रह गया।

पालीमें तृतीया और पंचमीकी विभक्तिके रूपमें 'हि' का व्यवहार मिलता है। पीछे प्राकृतोंमें सम्बंधके लिये भी विकल्पसे अपादानकी विभक्ति आने लगी और सब कारकोंका काम कभी कभी सम्बंधकी विभक्तिसे ही चलाया जाने लगा। 'रासो' आदिकी प्राचीन हिन्दीमें 'ह' रूपमें भी यह विभक्ति मिलती है। अपभ्रंशमें 'हो' और 'हे' रूप सम्बंध विभक्तिके मिलते हैं। यह 'हि' या 'ह' विभक्ति मालूम होता है, कि संस्कृतके 'भिस्' या 'स्यस्'से निकली है।

हिंकरना (हिं० क्रि०) घोड़ोंका बोलना, हिनहिनाना।

हिंगनबेर (हि० पु०) इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोट।

हिंगली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका तम्बाकू।

हिंच (अं० पु०) आघात, चोट।

हिंडोरा (हिं० पु०) हिंडोला देखो।

हिंडोरी (हिं० स्त्री०) छोटा हिंडोला।

हिंडोल (हिं० पु०) १ हिंडोला। २ एक राग जो गान्धार स्वरको सन्तान कहा गया है।

विशेष विवरण हिन्दोल शब्दमे देखो।

हिंडोला (हिं० पु०) १ नीचे ऊपर घूमनेवाला एक चक्कर, इसमें लोगोंके बैठनेके लिये छोटे छोटे मञ्च बने रहते हैं। २ पालना। ३ झूला।

हिंद (फा० पु०) भारतवर्ष, हिन्दुस्तान। हिन्द देखो।

हिंदवाना (फा० पु०) तरबूज, कलींदा।

हिंदवी (फा० स्त्री०) हिन्द या भारतवर्षकी भाषा।

हिंदी (फा० वि०) १ भारतीय, हिन्दुस्तानका। (स्त्री०) २ भारतवर्षकी बोली, हिन्दुस्तानकी भाषा। ३ हिन्दुस्तानके उत्तरी या प्रधान भागकी भाषा।

विशेष विवरण हिन्दी भाषा शब्दमें देखो।

हिंदोरेवंद (फा० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह हिमालयमें ११००० से १२००० फुटकी ऊंचाई तक उगता है। यह काश्मीर, लदाख, नेपाल, सिकिम और भूटानमें पाया

आता है। इसका मूल औषधके काममें आता है। उसे चीनी रेंवद या रेवंदचीनी कहते हैं। इसका रंग भी मैला होता है और सुगन्ध भी कम होती है। परन्तु चीनी रेवंदकी जगह बाजारोंमें इसकी बराबर बिक्री होती है। चीनी जातिका पौधा तिब्बतके दक्षिणपूर्व भागमें तथा चीनके पश्चिमोत्तर भागमें होता है। उसका मूल क्राइसोफेनिक एसिडके अंशके कारण पीसने पर खूब पीला निकलता है। रेवंदका मूल औषधके काम आता है और पुष्ट, उदरशूलनाशक तथा कुछ रेचक होता है। यह आमातिसारमें उपकारी होता है, पर ग्रहणीमें नहीं।

हिंदुस्तान (फा० पु०) भारतवर्ष। भारतवर्ष देखो।

हिंदुस्तानी (फा० वि०) १ भारतवर्षका, हिन्दुस्तानसम्बन्धी। (पु०) २ भारतवासी। (स्त्री०) ३ हिन्दुस्तानकी भाषा।

हिंदुस्थान (फा० पु०) भारतवर्ष। भारतवर्ष देखो।

हिंदू (फा० पु०) हिन्दू देखो।

हिंदूपन (फा० पु०) हिन्दूका भाव या गुण।

हिंदोरना (हिं० क्रि०) पानीके समान पतली चीजमें हाथ या कोई चीज डाल कर इधर उधर घुमाना, फेंकना।

हिंदोस्तान—हिंदुस्तान देखो।

हिंवार (हिं० पु०) हिम, बर्फ।

हिंस (हिं० स्त्री०) घोड़ोंके बोलनेका शब्द, हिनहिनाहट।

हिंसक (सं० त्रि०) हिंस-ण्वुल्। १ हिंसाकर्त्ता, हत्यारा, घातक। भोक्ता, अनुमन्ता, संस्कर्त्ता, क्रेता, विक्रेता, वधकर्त्ता, उपहर्त्ता और घातयिता, यही आठ प्रकारके हिंसक हैं। ये अधम होते हैं। (काशीखण्ड) २ बुराई करनेवाला, हानि पहुंचानेवाला। (पु०) ३ हिंस्र पशु, खूंखार जानवर। ४ शत्रु, दुश्मन। ५ अथर्ववेदविद् ब्राह्मण, तान्त्रिक ब्राह्मण।

हिंसन (सं० पु०) १ जीवोंका वध करना, जान मारना। २ जीवोंको पीड़ा पहुंचाना, कष्ट देना। ३ बुराई करना, अनिष्ट करना। ४ द्वेष, ईर्षा।

हिंसनीय (सं० त्रि०) १ हिंसा करने योग्य। २ जिसकी हिंसा की जानेवाली हो।

हिंसा (सं० स्त्री०) हिंस-अ टाप्। १ हत्या, वध। यजुर्वेदने कहा है, कि "मा हिंसी" हिंसा मत करो। दर्शन और स्मृतिशास्त्रमें हिंसा पापजनक है या नहीं, इस विषयकी विशद आलोचना की गई है, पर यहां संक्षेपमें लिखा जाता है। जो व्यक्ति आत्मतृप्तिके लिये अर्थात् शरीरको मजबूत बनानेके लिये निरीह जीवोंका वध करते हैं वे इस लोकमें या परलोकमें कभी भी सुख नहीं पा सकते। प्राणिवध स्वर्गजनक नहीं है, इसलिये उनका वध नहीं करना चाहिये। क्या वैध, क्या अवैध सभी प्रकारकी हिंसा निन्दनीय है। मनुने कहा है, कि यज्ञार्थ मांसभोजनको दैवविधान और शरीरकी पुष्टि आदिके लिये जो मांस भोजन किया जाता है उसे राक्षसोचित अनुष्ठान कहना होगा। (मनु ५।३१)

किसी किसीका कहना है, कि हिंसा मत करो, यह सामान्य विधि है। यज्ञमें पशुहिंसा करे, फिरसे विशेष कर कहनेके कारण यह विशेष विधि है। अतएव सामान्यतः हिंसा निषिद्ध होने पर भी विशेष विधिके अनुसार यज्ञमें हिंसा निषिद्ध नहीं है। दर्शनशास्त्रकारका कहना है, कि किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, यह सामान्य विधि सत्य है और अग्निषोम यज्ञमें पशुहिंसा करे, यह विशेष विधि है। शास्त्रीय नियमानुसार विशेष विधि सामान्य विधिकी बाधक होने पर भी यहां वैसा नहीं होगा, क्योंकि विरोधस्थलमें ही पूर्वोक्त प्रकारका बाध्यबाधक भाव हुआ करता है। परस्पर विरोध नहीं होनेसे बाध्यबाधक भाव नहीं होता। यहां पूर्वोक्त दोनों श्रुतिमें कुछ भी विरोध नहीं है, इसलिये विशेष विधि द्वारा सामान्य विधि निषिद्ध हो नहीं सकती।

सांख्याचार्यने मानित कर दिखलाया है, कि वैध हिंसामें भी पाप नहीं होगा। पर हां, वे यह भी कहते हैं, कि वैदिक यज्ञ करनेसे जिस प्रकार प्रभूत पुण्य सञ्चय होता है, उसी प्रकार वह यज्ञानुष्ठान हिंसा साध्य होनेके कारण प्रभूत पुण्यके साथ साथ यत्किञ्चित् पापका भी सञ्चय होता है। अतएव यज्ञानुष्ठानकर्त्ता जब स्वोपार्जित पुण्यराशिके फलस्वरूप स्वर्गसुखका उपभोग करेंगे तब हिंसाजन्य पापके फलस्वरूप कुछ दुःखका भी उन्हें उपभोग करना ही होगा। परन्तु स्वर्गवासी पुरुष सुखकी मोहनी शक्तिके प्रभावसे ऐसे मुग्ध हो जाते हैं, कि उस दुःखकणाको दुःख बिलकुल नहीं समझते, आसानीसे उसे सहन कर लेते हैं।

श्राद्धविवेकटीकामें वृहन्मनुवचनमें लिखा है, कि ब्राह्मण वैध हिंसा भी न करें, क्योंकि वे सात्त्विक अर्थात् सत्त्वगुणप्रधान हैं। इससे यह साबित हुआ, कि सात्त्विक व्यक्ति वैधहिंसा न करें, राजसिक और तामसिकगण वैधहिंसा कर सकते हैं।

वैधहिंसा और बलिदान देखो।

२ हानि पहुंचाना, अनिष्ट करना। हिंसा तीन प्रकारसे हो सकती है, मनसा, वाचा और कर्मणा। पुराणोंमें हिंसा लोभकी कन्या और अधर्मकी भार्या कही गई है। जैन शास्त्रानुसार हिंसा चार प्रकारकी होती है—आकुट्टी हिंसा, दर्प-हिंसा, प्रमाद-हिंसा और कल्पहिंसा। ३ चौरादि कर्म, चोरी आदि करना। ४ द्वेष। ५ ईर्षा।

हिंसाकर्म (सं० क्ली०) १ दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये मारण, उच्चाटन, पुरश्चरण आदि तान्त्रिक प्रयोग। २ वध या पीड़ा पहुंचानेका कर्म, मारने या सतानेका काम।

हिंसात्मक (सं० त्रि०) जिसमें हिंसा हो, हिंसासे युक्त।

हिंसारु (सं० पु०) हिंस आरु। १ व्याघ्र, बाघ। २ हिंस्र पशु, खूंखार जानवर।

हिंसालु (सं० त्रि०) हिंस-आलु। १ वधशील, मारनेके योग्य। २ घातक, मारनेवाला।

हिंसालुक (सं० पु०) १ हिंसाशील, कुत्ता। २ हननशील, घातक।

हिंसित (सं० त्रि०) हिंस क्त। १ हिंसाप्राप्त। २ हत, नष्ट।

हिंसितव्य (सं० त्रि०) हिंसा करने योग्य या जिसकी हिंसा करनी हो।

हिंसीर (सं० पु०) हिंस (हिंसेरीरन्नीरचौ। उण् ५।१९) इति ईरन्। १ व्याघ्र, बाघ। (त्रि०) २ खल, दुष्ट, सतानेवाला।

हिंस्य (सं० पु०) १ हिंसाके योग्य। २ जिसकी हिंसा होनेवाली हो।

हिंस्र (सं० त्रि०) हिंस (नमिकम्पीति। पा ३।२।१६७) इति र। १ हिंसाशील, घातक। (पु०) २ हिंसाकारक जन्तु, खूंखार जानवर। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि हिंस्र पशुकी हिंसा करनेमें कोई पाप नहीं। ३ भीमसेन। ४ घोर। ५ हर।

हिंस्रक (सं० पु०) १ हिंस्रपशु, खूंखार जानवर। (त्रि०) २ हिंसाशील, हिंसा करनेवाला।

हिंस्रपशु (सं० पु०) हिंस्रजन्तु, खूंखार जानवर।

हिंस्रा (सं० स्त्री०) हिंस्र-टाप्। १ जटामासी। २ कण्टकारी, भटकटैया। ३ शिरा। ४ कण्टकपालीलता। ५ गवेधुका।

हिआ (हिं० पु०) १ हृदय। २ छाती।

हिआव (हिं० पु०) साहस, हिम्मत।

हिउपनसिय—ह्युएनसियं देखो।

हिकड़ा (फा० पु०) धोबीकी बोलीमें तीन कोड़ी कपड़ोंका समूह।

हिकमत (अ० स्त्री०) १ तत्त्वज्ञान, विद्या। २ कला कौशल, निर्माणकी बुद्धि। ३ कार्यसिद्ध करनेकी युक्ति, तदबीर। ४ चतुराईका ढंग, चाल। ५ किफायत। ६ हकीमका काम या पेशा, हकीमी। ७ मल्लाही।

हिकमती (अ० वि०) १ कार्य साधनकी युक्ति निकालनेवाला, तदबीर सोचनेवाला। २ चतुर, चालाक। ३ किफायती।

हिकलाना (हिं० क्रि०) हकलाना देखो।

हिकविकानिक (सं० क्ली०) सामभेद।

हिकायत (अ० स्त्री०) कथा, कहानी।

हिक्कल (हिं० पु०) बौद्ध संन्यासियों या भिक्षुओंका दंड।

हिक्का (सं० स्त्री०) १ रोगका उपसर्गविशेष, हिचकी। सभी रोगोंमें यह उपसर्ग हो सकता है। वायुके प्रबल होनेसे यह उपसर्ग होता है। २ बहुत हिचकी आनेका रोग। वायुका पसलियों और अंतड़ियोंको पीड़ित करते हुए ऊपर चढ़ कर गलेसे झटकेसे निकलना ही हिक्का या हिचकी है।

पेटमें अफरा, पसलियोंमें तनाव, कण्ठ और हृदयका भारी होना, मुंह कसैला होना हिक्का रोग होनेके पूर्व लक्षण हैं। वायु और कफके मेलसे पांच प्रकारकी हिक्का कही गई है, यथा—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती।

ऊर्द्ध्वगामी हो कर जो हिक्कारोग उत्पन्न होता है उसे अन्नजा हिक्का, जो हिक्का बार बार हो या दोसे अधिक संख्यामें वेगके साथ देरीसे आती है और जिस हिक्कामें

रोगीका मस्तक और गला कंपने लगता है उसे यमला हिक्का, जो हिक्का जत्रुके मूलदेशसे निकल कर थोड़े वेगके साथ देरीसे प्रकाशित होती है उसे क्षुद्रा, जो हिक्का गम्भीर शब्दके साथ नाभिदेशसे निकलती है और जिस हिक्कामें रोगी तृष्णा और ज्वरादि नाना प्रकारके उपद्रवोंसे प्रपीड़ित होता है उसे गम्भीरा हिक्का और जो हिक्का वस्ति, हृदय और मस्तक आदि मर्म स्थानोंको पीड़न कर हमेशा आती रहती है और रोगीका सारा शरीर कंपने लगता है उसे महती हिक्का कहते हैं।

जिस हिक्कामें रोगीको कंप हो, ऊपरकी ओर दृष्टि चढ़ जाय, आंखके सामने अंधेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, छींक बहुत आवे और भोजनमें अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है। हिक्काके प्रबल होनेसे रोगीको शीघ्र ही मृत्यु होती है। यदि रोगविशेषमें हिक्का उपस्थित हो, तो रोग चंगा करनेकी चेष्टा न कर पहले जिससे हिक्का प्रशमित हो वही उपाय करे।

चिकित्सा—हिक्का और श्वासरोगीको पहले शरीरमें तेल लगा कर स्वेद प्रदान करे। परन्तु दुर्बल व्यक्तिको विरेचन नहीं देना चाहिये, उन्हें संशमन औषध देना उचित है। तर्जन, विस्मयजनन, शीतल जल परिषेक और विविध हितवाक्यके प्रयोग द्वारा हिक्का प्रशमित होती है। बकरीके दूधको पका कर उसमें सोंठका चूर्ण मिला पान करनेसे हिक्का कम हो जाती है। मुलेठीका चूर्ण चीनीके साथ और सोंठका चूर्ण गुड़के साथ नस्य लेनेसे; प्रवाल, शङ्ख और त्रिफला तथा पीपल और गेरूमिट्टी समान भागमें चूर्ण कर मधु और घृतके साथ चाटनेसे तथा गोल उड़दके चूर्णका काढ़ा बना कर उसमें हींग डाल पान करनेसे हिक्का शीघ्र प्रशमित होती है। (भावप्रका० हिक्कारोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इस रोगका विविध मुष्टियोग और औषध लिखा है। पहले हिक्कारोगीके पेटके ऊपर तथा श्वासरोगीकी छाती पर तेलकी मालिश कर उष्ण स्वेद या जलस्वेद दे। घृतादि स्निग्ध द्रव्य लवणके साथ सेवन करा कर वायुकी लघुता सम्पादन करे। बलवान् व्यक्तिको वमन और विरेचन तथा दुर्बल व्यक्तिको औषध सेवन द्वारा पित्त और कफकी समता कर आरोग्यकी चेष्टा करे।

हर्रे और सोंठका चूर्ण समान भाग ले कर गरम जलके साथ अथवा कुटका चूर्ण यवक्षार और मरिचचूर्ण गरम जलके साथ पान करनेसे हिक्का प्रशमित होती है। इसके सिवा हरिद्रादिचूर्ण, शृङ्ग्यादिचूर्ण, भार्गीगुड़, भार्गीशर्करा, शृङ्गीगुड़घृत, डामरेश्वराभ्र, पिप्पल्याद्यलौह, कनकसार और बृहच्चन्दनादि तैल आदि औषध इस रोगमें प्रयोज्य है। (भैषज्यरत्ना० हिक्काश्वासाधि०) चरक सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें और गरुडपुराणके १४५वें अध्यायमें इसके निदान और चिकित्सादिका विशेष विवरण लिखा है।

३ रोने या सिसकनेका वह शब्द जो रुक रुक कर आवे।

हिक्किका (सं० स्त्री०) अल्प हिक्का, हिचकी।

हिक्किन् (सं० त्रि०) हिक्का अस्त्यर्थे इनि। हिक्कारोगी, जिसे हिक्का रोग हो।

हिङ्कार (सं० पु०) १ व्याघ्र, बाघ। २ रंभानेका वह शब्द जो गाय अपने बछड़ेको बुलाते समय करती है। ३ बाघके बोलनेका शब्द। ४ सामगानका एक अङ्ग जिसमें उद्गाता गीतके बीच बीचमें 'हिं' का उच्चारण करता है।

हिङ्गु (सं० पु०) १ जनपदविशेष। २ हिङ्गु, हींग। हिङ्गु देखो।

हिङ्गनघाट—१ मध्यप्रदेशके वर्द्धा जिलान्तर्गत एक महकमा। यह अक्षा० २०° १८′ से २०°४९′ उ० तथा देशा० ७८°३२′ से ७९°१४′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ७२९ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। शासनसुविधाके लिये यहां २ दीवानी और ३ फौजदारी अदालत तथा ३ थाना है।

२ वर्द्धा जिलान्तर्गत उक्त महकमेका एक शहर। यह अक्षा० २०°३४′ उ० तथा देशा० ७८° ५१′ पू० वुना नदीके किनारे अवस्थित है। यह शहर रूई व्यवसायका एक केन्द्र है। यहांकी रूई सभी जगहकी रूईसे अच्छी होती है। यह रूई विलायत भेजनेके लिये यहां अंगरेज वणिकोंने कोठी खोल रखी है। १८८२ ई०में 'काटन मिल्स कम्पनी' नामक रूईसे सूत निकालनेके लिये हिङ्गनघाटमें एक अंगरेज समिति प्रतिष्ठित हुई है। मारवाड़ी ही यहांके प्रधान व्यवसायी हैं। अन्यान्य स्थान विशेषतः बम्बईके साथ इन

लोगोंका वाणिज्य सम्बन्ध है। वर्त्तमान शहर नया हिङ्गन घाट और पुराना हिङ्गनघाट ले कर बना है। पुराना शहर वर्द्धा नदीकी बाढसे नष्ट हो जानेकी आशङ्का है। यहां वर्द्धा-आलि-स्टेट रेलवेका एक स्टेशन, सराय, बंगला और अंगरेजी स्कूल आदि भी हैं।

हिङ्गलाची (सं० स्त्री०) यक्षिणी। (तारनाथ)

हिङ्गलाज—वलुचिस्तानका एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर और तीर्थस्थान। यह अक्षा० २५°३०´ उ० तथा देशा० ६५°३१´ पू०के मध्य विस्तृत है। सिन्धुनदके मुहानेसे ८० मील पश्चिम तथा अरबसमुद्रसे १२ मील दूर जहां गिरिमाला मकरान और लूसको पृथक् करती है उसी गिरिमालाके प्रान्तभागमें यह शहर बसा हुआ है। पहाडके ऊपर एक भीषण कालीमन्दिर है। स्थानीय लोगोंके निकट वह काली 'नानी' या 'महामायी' कहलाती है। इसी देवीके कारण हिन्दू लोग इसे महापीठस्थान समझते हैं।

तन्त्रचूडामणि और बृहन्नीलतन्त्रमें यह स्थान 'हिङ्गुला' तथा शिवचरित नामक तान्त्रिकग्रन्थमें 'हिङ्गला' नामसे परिचित है। उक्त तन्त्रोंके मतसे यह ५१ महापीठोंमेंसे एक है। यहां देवीका ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहाकी शक्तिका नाम कोट्टरी या कोट्टरीशा तथा भैरवका नाम भीमलोचन है। पीठ देखो।

यह तीर्थ अत्यन्त दुर्गम होनेके कारण बहुतसे हिन्दूयात्रियोंको यहा आनेका साहस नहीं होता। यहां अंधेरी गुफामें ज्योतिके उसी प्रकार दर्शन होते हैं जिस प्रकार काँगडेकी ज्वालामुखीमें। कराची बन्दरसे उत्तरकी ओर समुद्रके किनारे किनारे ४५ कोस चल कर लोग यहा पहुंचते हैं।

हिङ्गलाजगढ—देशी इन्दोर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २४°४०´ उ० तथा देशा० ७५°५०´ पू०के मध्य विस्तृत है। २०० फुट चौडी खाईने शहरको घेर रखा है तथा दुर्भेद्य प्राचीर ऊर्द्ध्वमुखी पर्वतगात्रसे निकला है। तीन भिन्न मुखी सेतु द्वारा बाहरके साथ इसमें आने जानेका सम्पर्क है। पहले लोगोंकी धारणा थी, कि यह दुर्ग अभेद्य है, परन्तु १८०४ ई०में मेजर सिनक्लेयर साहब ने महाराष्ट्रयुद्धके समय इस दुर्गको अधिकार किया।

हिङ्ग्वष्टकचूर्ण (हिं० पु०) वैद्यकमें प्रसिद्ध एक अजीर्णनाशक और पाचक चूर्ण। सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अजमोदा, सफेद जीरा, भुनी हींग और सेंधा नमक इन सबको एक साथ चूर्ण कर डाले। सेवनकी मात्रा १ या २ टंक है।

हिङ्गु (सं० क्ली०) स्वनामख्यात द्रव्य, हींग। इसे बम्बईमें हींग, हिङ्गु, महाराष्ट्रमें इङ्गु, कलिङ्गमें लेमु और तैलङ्गमें इङ्गुर कहते हैं।

हींगका पौधा दो ढाई हाथ ऊंचा होता है। इसको पत्तियोंका समूह एक गोल राशिके रूपमें होता है। इसके पौधे अफगानिस्तान, फारसके पूर्वी हिस्से, (खुरासान, यज्द) तुर्किस्तानके दक्षिणी भाग तथा एशियाके कास्पियन और अरब हृदके मध्यवर्त्ती प्रदेशोंमें बहुतायतसे होते हैं। भारतवर्षमें हींग नहीं होती यहा जो देखनेमें आती है, वह कंधारी (अफगानिस्तानकी) हींग है। मूलतानमें भी हींगके पौधे कम देखनेमें आते हैं। यूरोपके उद्भित्तत्त्वविद्गण बहुत दिनोंसे इसका इतिहास संग्रह करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उनके भैषज्यशास्त्रमें हिंगुका नाम Ferula asafoetida रखा गया है। परन्तु उन लोगोंमें भी इसका जातिगत विचार ले कर मतभेद देखनेमें आता है। १८३८ ई०में डाक्टर फालकोनरने कश्मीरकी आस्तर उपत्यकामें इस जातिका उद्भिद् देखा था। पहले उन्होंने समझा था, कि शायद इस बार आसाफिटिडा'के विषयकी अच्छी मीमांसा हो जायेगी। डाक्टर फालकोनर संगृहीत उक्त उद्भिद्का मूल साहारनपुरके बोटानिक गार्डन और पीछे एडिनबराके रायेल बोटानिक गार्डनमें भी भेजा गया था। इन दोनों स्थानोंमें बहुत दिनोंमें और बहुत चेष्टाके बाद १८४२ ई०में इसका स्वाभाविक अङ्कुरोद्गम देखनेमें आया और १८५६ ई०में किसी किसीमें फूल निकलनेके कारण उसमें बीज पाया गया। वे सब बीज संसारके भिन्न भिन्न स्थानोंके बोटानिकल गार्डनमें भेजे गये। पीछे वैदेशिक उद्भित्तत्त्ववित् पण्डितोंका ध्यान इसके तथ्य संग्रहकी ओर दौडा। परन्तु बहुत सोच विचारके बाद देखा गया, कि यूरोपके वाणिज्यक्षेत्रमें जो हींग देखनेमें आती है वह इससे सम्पूर्ण भिन्न जातिकी है। डाक्टर हुकरने ५१६८वें अङ्कके बोटानिकल मैगेजिनमें उस

उद्भिज्जकी आकृतिका एक चित्र प्रकाशित किया और उस सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा कि "इस जातिका उद्भिद् बहुत बढ़िया हींग उत्पादन करता है तथा यह दूध जैसे सफेद रससे भरा है, पर यूरोपमें जिस हिंगुका व्यवहार देखनेमें आता है, वह ऐसा उत्कृष्ट और ऐसा सुन्दर नहीं है।"

उक्त मासिक पत्रिकामें डाक्टर हुकार स्पष्ट स्वीकार कर गये हैं, कि इसका ठीक ठीक विचार करना अभी एकदम असम्भव है। डाक्टर फालकोनरके बहुत पहले जर्मन-भ्रमणकारी किम्फरने पारस्यदेशके एक जातिका उद्भिद् देखा था। आसफिटिडा समझ कर उसे वे यूरोप ले गये। वह बृटिश म्युजियममें रखा गया था। डाक्टर लिनियसने इसीको 'फेरिउला आसाफिटिडा' बताया है। परन्तु फालकोनरने बहुत परीक्षाके बाद स्थिर किया, कि उन्होंने काश्मीरप्रदेशमें जो उद्भिद् देखा था उससे यह सम्पूर्ण विभिन्न है। अतएव इसे यदि 'फेरिउला आसिफिटिडा' कहा जाय, तो उनका संगृहीत उद्भिद् उक्त नामसे कदापि पुकारा नहीं जा सकता। अतः उन्होंने अपने आविष्कृत उक्त उद्भिद्का Narthex asafoetida नाम रखा। इस प्रकार बहुत दिनों तक इसके सम्बन्धमें मतभेद चलता रहा। आखिर डाक्टर डाइमकने पहले पहल इस प्रश्नकी मींमांसा की। उन्होंने कहा, कि भारतमें खूब ऊंची दर पर जो हींग बिकती है, वह यूरोपके बाजारमें बिकनेवाली 'आसाफिटिडा' से सम्पूर्ण विभिन्न है। उन्होंने इसके देशीय नामकी पृथकता दिखा कर भी इसका भेदाभेद समझा दिया। हिङ्गु और हिङ्गारा ये दो देशीय नाम बहुत पहलेसे ही प्रचलित हैं। भारतवर्षमें अधिक दर पर जो 'आसाफिटिडा' बिकता है उसीका नाम हींग है। फिर यूरोपमें जिसकी खपत देखी जाती है वह असली 'हींग' नहीं है, उसका नाम 'हिङ्गारा' है। यह हींग बहुत खराब होती है। परन्तु बहुतेरे फिर इसे भी स्वीकार नहीं करते। इस सम्बन्धमें दो प्रकारका मत देखनेमें आता है। एकके मतसे नाना प्रकारकी वस्तुओंके मिलनेसे उसका ऐसा पार्थक्य होना सम्भव है। दूसरेके मतसे भिन्न देशकी आबहवाके पार्थक्यवशतः ऐसी विभिन्नता हुई है। परन्तु सबने आधुनिक परीक्षा द्वारा डाक्टर ऐचिसनने इस प्रश्नको एक प्रकारसे अन्तिम मीमांसा की है। उनके मतानुसार जिससे ठीक हींग पाई जाती है उसको 'आसाफिटिडा' नहीं कह सकते। उन्होंने उसका Ferula alliacea और Ferula Foetida नाम रखा है और जिससे गोंद आदि पाया जाता है उसीका नाम Ferula asafoetida है। इस सम्बन्धमें पूर्वोक्त डाक्टर और डाइमकके बीच लिखा पढ़ी चली। आखिर दोनोंने एक मत हो कर यह स्थिर किया, कि भारतमें जिस हींगका व्यवहार देखनेमें आता है और जो मसाला आदिमें व्यवहृत होती है वह उक्त 'फेरिउला आलिसिया'से निकली है। उद्भिद्के अच्छे अच्छे फूलोंसे जो निर्यास संग्रह किया जाता है उसीको कन्धारी (मूलतानी) हींग कहते हैं, यही भारतवर्षमें ऊंची दर पर बिकती है। यूरोपके वाणिज्यमें 'आसाफिटिडा' नामसे जो प्रचलित देखा जाता है, वह उक्त उद्भिद्की जड़के अपरिष्कृत निर्याससे निकला है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि वे मतभेद रहते हुए भी अन्तमें यही देखा जाता है, कि किसी एक जातिके उद्भिद्से हिंगु और हिङ्गारा ये दोनों पदार्थ निकले हैं अथवा ये दोनों प्रकारके भैषज्य पदार्थ ही अवस्थाभेदसे उत्कृष्ट और अपकृष्ट गुणविशिष्ट हैं। अभी बहुत दिनोंसे अनुसंधान करनेके बाद वे लोग केवल इतना ही स्थिर कर सके हैं, कि फारससे समुद्रकी राह अधिकांश उक्त भैषज्य द्रव्य जो भारतवर्ष लाये जाते हैं वह हींग है और वह पूर्वोक्त फेरिउला आलसियासे निकली है। परन्तु फारस और तुर्किस्तानसे भी हिंगाराकी यथेष्ट आमदनी देखनेमें आती है। इसके सिवा आसाफिटिडा नामक भैषज्य द्रव्य जो अफगानिस्तानसे नदीपथ हो कर भारतवर्षमें लाया जाता है, वह सभी फेरिउला फिटिडासे निकला है।

भारतवर्ष ही उक्त हींगका प्रधान वाणिज्यस्थान है। बम्बई, सिन्धुप्रदेश, करांचीबन्दर, मन्द्राज और बङ्गदेशमें हींगकी काफी आमदनी होती है। इसमें से बम्बई और कराची बन्दरमें ही इस हींगका वाणिज्य सबसे अधिक है। क्योंकि, पारस्य-उपसागरसे जलपथसे जो आमदनी होती है, वे सभी बम्बई और कराची बन्दरमें भेजी जाती हैं पारस्यसे जो आमदनी होती है, वह पारस्य उपसागरसे

समुद्रपथ द्वारा बम्बई लाई जाती है तथा अफगानिस्तानके काबुल और कंधारसे जो स्थलपथ द्वारा भेजी जाती है, वह कंधार-स्टेट-रेलवे और नार्थ वेष्टर्न रेलवे हो कर आती है। सिंहल और आदेनसे भी जलपथ द्वारा इसकी आमदनी देखनेमें आती है। वह हींग केवल वङ्गदेशमें ही आती है, अन्यान्य स्थानोंमें इसकी आमदनी बहुत कम है।

कंधारी या मूलतानी हींग जो अधिक दर पर मिलती है, वह बम्बईके बाजारमें बहुत कम देखनेमें आती है। हींग जब पहले पहल भारतवर्षमें आती है, तब सफेद पत्थरके टुकड़ों जैसी दिखाई देती है, हाथमें रखनेसे कुछ गोली मालूम होती है, घिसनेसे लाल तिल जैसा एक प्रकारका निर्यास निकलता है, परन्तु कुछ समय रखनेके बाद ही वह कठिन हो जाती है। वर्ण भी उसका पहले जैसा नहीं रहता। गंधकी तीव्रता भी पहलेसे अधिक होती है। गंधकी तीव्रताके सम्बन्धमें बहुतोंका यह भी कहना है, कि ज्यादे दाम पर बेचनेके लिये दूसरे द्रव्यके साथ मिला कर व्यापारी लोग ऐसा किया करते हैं। साधारणतः इसके प्रति मनका दाम २५) रु० है। उत्तम हिङ्गराकी आकृति टुकड़े टुकड़े पत्थरके खंड जैसी और तोड़ने पर उसके भीतर बालूका चूर दिखाई देता है। ऊपरी भाग देखनेमें पीला होता है, परन्तु पहली अवस्थामें तोड़नेसे वह सफेद दिखाई देती है। ज्यों ज्यों इसमें हवा लगती जाती है, त्यों त्यों इसका रंग अपरिष्कृत पीला होता जाता है। इसकी दर कंधारी हींगसे मन पीछे २०) रु० कम है। परन्तु किसी किसीका कहना है, कि कंधारी हींगकी दर बीस रुपये मन तक देखी गई है और हिङ्गारा चौदह रुपये मनमें भी बिकता है।

गुण—हृद्य, कटु, उष्ण, कृमि, वात, कफ, विबन्ध, आध्मान, शूल और गुल्मनाशक, चक्षुष्य। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—पाचक, उष्ण, रुचिकर, तीक्ष्ण, वात और बलासरोगनाशक, रस और पाकमें कटु, स्निग्ध, शूल, गुल्म, उदर, आनाह और कृमिनाशक तथा पित्तजनक।

२ वंशपत्री। ३ काकादनी।

हिङ्गुक (सं० पु०) हिङ्गु स्वार्थे कन्। हिङ्गु देखो।

हिङ्गुनाड़िका (सं० स्त्री०) नाडीहिङ्गु, हिंगारा या हिंगड़ा।

हिङ्गुनिर्यास (सं० पु०) १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। २ हिङ्गुरस, हींग।

हिङ्गुपत्र (सं० पु०) इङ्गुदी, हिंगोट।

हिङ्गुपत्री (सं० स्त्री०) वंशपत्रतृण। गुण—कटु, तीक्ष्ण, तिक्त, उष्ण, कफ, वात, आम और कृमिनाशक, रुचिकर, पथ्य, दीपन, पाचन। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, कटु, हृद्रोग, वह्नि, त्रिविध अर्श, श्लेष्म, गुल्म और वायुनाशक है।

हिङ्गुपर्णी (सं० स्त्री०) वंशपत्री।

हिङ्गुल (सं० पु० क्ली०) स्वनामख्यात पारदभूयिष्ठ द्रव्य, इङ्गुर, सिंगरफ। गुण—मधुर, तिक्त, उष्ण, वात, कफ, त्रिदोष, द्वन्द्वदोष और ज्वरनाशक।

वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि हिङ्गुलको औषधमें प्रयोग करते समय उसे शोध लेना चाहिये। अशोधित हिंगुल हानिकारक है। भावप्रकाशमे लिखा है, कि गंधक और हिङ्गुल आदि उपरसमें गिने जाते हैं। आंशिक रसका गुण होनेके कारण इसको उपरस कहते हैं। दरद, म्लेच्छ, चिलाङ्ग और चूर्णपारद ये सब हिङ्गुलके पर्याय हैं। हिङ्गुल तीन प्रकारका होता है, चर्मार शुकतुण्डक और हंसपाद। ये सब उत्तरोत्तर अधिक गुणदायक हैं। चर्मार श्वेतवर्ण, शुकतुण्डक पीतवर्ण और हंसपाद जवापुष्प-जैसा लोहितवर्ण होता है। हंसपाद हिङ्गुल ही सबसे बढ़िया है।

विशुद्ध हिङ्गुल तिक्त, कटु, कषायरस तथा चक्षुरोग, कफ, पित्त, हृल्लास, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और गरदोषनाशक है। (भावप्र०)

भेड़ीके दूधमें सात बार और अम्लवर्गमें सात बार भावना देनेसे भी हिङ्गुल शोधित होता है। जंबीरी नीबूके रसमें दोलायंत्रमें हिङ्गुल पाक करके अम्लवर्गमें सात बार भावना देनेसे भी शोधित होता है। मकरध्वज बनाते समय जो पारा लिया जाता है वह हिङ्गुलसे बाहर कर लेना होता है। औषधकार्यमें हिङ्गुलोत्थ पारद ही श्रेष्ठ है। जंबीरी और कागजी नीबूके रसमें एक दिन हिङ्गुल घोंट कर ऊर्द्ध्व-पातनयंत्रमें पाक करे, पीछे उसमेंसे पारा ले ले। यह पारा नागवङ्गादि दोषरहित और रसकर्ममें उत्तम है। २ एक नदीका नाम।

हिङ्गुलक (सं० पु० स्त्री०) हिङ्गुल स्वार्थे कन्। हिङ्गुल देखो।

हिङ्गुला (सं० स्त्री०) पीठस्थानविशेष। हिङ्गलाज देखो।

इस पीठस्थान पर सतीका ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहां जो शक्ति है, उसका नाम कोट्टरी है, तथा भैरव भीम लोचन है। वामनपुराणके ६७वें अध्यायमें भी इस स्थानका उल्लेख देखनेमें आता है।

हिङ्गुलाजा (सं० स्त्री०) हिङ्गुलाजमें अधिष्ठिता देवी। हिङ्गलाज देखो।

हिङ्गुलाकृष्टरस (सं० पु०) हिंगुलसे लिया हुआ पारा। रसेन्द्रसारसंग्रहमें रस ग्रहण करनेका नियम लिखा है।

हिङ्गुलि (सं० पु०) हिङ्गुल, सिंगरफ।

हिङ्गुलिका (सं० स्त्री०) हिङ्गुल-ठन्। कण्टकारी, भटकटैया।

हिङ्गुली (सं० स्त्री०) १ वार्त्ताकी, भंटा। २ बृहती, भटकटैया।

हिङ्गुलु (सं० पु० क्ली०) हिङ्गुल, सिगंरफ।

हिङ्गुलेश्वर (सं० पु०) हिङ्गुलसे बनी हुई एक रसौषध जिसका व्यवहार वातज्वरकी चिकित्सामें होता है।

हिङ्गुलोत्थितरस (सं० पु०) हिङ्गुलसे निकाला हुआ पारा। हिङ्गुल और पारद देखो।

हिङ्गुशिराटिका (सं० स्त्री०) वंशपत्री तृण।

हिङ्गूल (सं० क्ली०) १ मधुमूल, आलू। २ हिज्जल नामक पौधा।

हिङ्गोट (सं० पु०) एक झाड़दार कंटीला जंगली पेड़। यह मझोले आकारका होता है और इसकी इधर उधर निकली हुई टहनियां गोल गोल और छोटी तथा श्यामता लिये गहरे हरे रंगकी पत्तियोंसे गुछी होती हैं। इसमें बादामोंकी तरहके गोल छोटे फल लगते हैं। फलकी गुठलियोंसे बहुत अधिक तेल निकलता है। छाल और पत्तियोंमें कसाव होता है। प्राचीन कालमें जंगलमें रह कर तपस्या करनेवाले मुनियों और तपस्वियोंके लिये यह पेड़ बड़े कामका होता था, इसीसे इसको तापसतरु भी कहते थे। संस्कृतमें इसका नाम इङ्गुदी है।

हिङ्गोना—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। यह कुवारी नदीके बाये किनारे अवस्थित है।

हिङ्गोली—निजामराज्यके अन्तर्गत गर्भाणी महकमेका एक शहर। यह अक्षा० १९° ४३´ ३० तथा देशा० ७७° १७´ पू०के मध्य हैदराबादसे एकोला जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां रूईका एक बड़ा बाजार है।

हिङ्ग्वादि गुटिका (सं० स्त्री०) हींगके योगसे बनी हुई एक विशेष प्रकारकी गोली। इसके सेवनसे पेटका दर्द दूर होता है। भुनी हींग, अमलबेत, काली मिर्च, पीपल, अजवायन, काला नमक, इन सबको पीस कर बिजौरे नीबूके रसमें गोलियां बनाते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल है।

हिङ्ग्वादिचूर्ण (सं० पु०) हींगके योगसे बनी हुई एक बुकनी। यह गुल्म, अनाह, अर्श, संग्रहणी, उदावर्त्त, शूल और उन्माद आदि रोगोंमें दी जाती है।

भूनी हींग, पिपला मूल, धनिया, जीरा, वच, चव्य, चीता, पाठा, कचूर, अमलवेत, सांभर नमक, काला नमक, सेंधा नमक, जवाखार, सज्जी, अनारदाना, हड़का छिलका, पुष्करमूल, डांसरा, झाऊकी जड़, इन सबका चूर्ण कर डाले और अदरक तथा बिजौरेके रसके सात सात पुट दे कर सुखा डाले।

हिचक (हिं० स्त्री०) किसी कामके करनेमें वह रुकावट जो मनमें मालूम हो, आगा पीछा।

हिचकना (हिं० क्रि०) १ हिचकी लेना, वायुका उठा हुआ झोंका कंठसे निकलना। २ किसी कामके करनेमें कुछ अनिच्छा, भय या संकोचके कारण प्रवृत्त न होना।

हिचकिचाना (हिं० क्रि०) हिचकना देखो।

हिचकिचाहट (हिं० स्त्री०) हिचक देखो।

हिचकिची (हिं० स्त्री०) हिचक देखो।

हिचकी (हिं० स्त्री०) १ हिक्का देखो। २ रह रह कर सिसकनेका शब्द, रोनेमें रह रह कर कंठसे सांस छोड़ना।

हिचर मिचर (हिं० पु०) १ किसी कामके करनेमें भय, सङ्कोच या कुछ अनिच्छाके कारण रुकना या देर करना, आगा पीछा। २ किसी कामको न करना पड़े, इसीलिये

देर करना या इधर उधरकी बात कहना, टालमटूल।

हिजड़ा (हिं० पु०) होजड़ा देखो।

हिजरी (अ० पु०) मुसलमानी सन् या सम्वत् जो मुहम्मद साहबके मक्केसे मदीने भागनेकी तारीख (१५ जुलाई सन् ६२२ ई० अर्थात् विक्रम-सम्वत् ६७९ श्रावण शुक्ल २का सायंकाल)-से चला है। हिजरी शब्दका मूल अर्थ भागना है। महम्मद और उनके शिष्योंका भागना ही प्रधानतः 'हिजरी' कहलाता है। महम्मद देखो। विपक्षोंके अत्याचारसे छुटकारा पानेके लिये महम्मद पन्द्रह शिष्योंके साथ 'हाबस' देशमें जो भाग गये, वही प्रथम हिजरी है। महम्मदके इस पहली बारके भागनेसे हिजरी अब्द आरम्भ नहीं हुआ है। परन्तु मक्कासे मदीनामें उनकी दूसरी बारके पलायन कालसे ही हिजरी अब्द प्रचलित हुआ है।

खलीफा उमरने विद्वानोंकी सम्मतिसे यह हिजरी सन् स्थिर किया था। हिजरी सन्का वर्ष शुद्ध चान्द्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चन्द्रदर्शन (शुक्ल द्वितीया)से आरम्भ होता है और दूसरे चन्द्रदर्शन तक माना जाता है। हर एक तारीख सायंकालसे आरम्भ हो कर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन्के बारह महीनोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ मुहर्रम	दिन संख्या	३०
२ सफर	"	२९
३ रबी उल् अव्वल	"	३०
४ रबी उस्सानी	"	२९
५ जमादि उल अव्वल	"	३०
६ जमादि उल् आखिर	"	२९
७ रजब	"	३०
८ शाबान	"	२९
९ रमजान	"	३०
१० शव्वाल	"	२९
११ जिल्काद	"	३०
१२ जिल्हिज्ज	"	२९

संवत्सर देखो

हिजली—मेदनीपुर जिलेका एक समुद्रतीरवर्त्ती भूभाग। यह भूभाग रूपनारायणके मुहानेसे पश्चिम हुगली या भागीरथी-तीर तथा उत्तरमें बालेश्वर जिलेकी सीमा तक अक्षा० २१° ३६´ से २२° ११´ ३० तथा देशा० ८७° २७´ से ८८° १´ ४५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०१४ वर्गमील है। लवणका व्यवसाय गवर्मेण्टके खास कर लेनेके पहले यहां लवणका जोरों कारबार चलता था। समुद्रके खारे जलको उबाल कर यह लवण तैयार किया जाता था। लीवरपुललवणकी प्रतियोगितासे यहांका कारोबार बन्द हो गया। देशावली-विवृतिग्रन्थमें यह स्थान हिज्जल नामसे वर्णित है।

हिजाज (अ० पु०) १ अरबके एक भागका नाम। इसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। २ फारसी सङ्गीतके १२ मुकामोंमेंसे एक।

हिजाब (अ० पु०) १ परदा। २ लज्जा, शर्म।

हिज्ज (सं० पु०) हिज्जल देखो।

हिज्जल (सं० पु०) एक प्रकारका पेड़, समुद्रफल। इसे महाराष्ट्रमें पर्यालु, कलिङ्गमें तोरेंगणगिल, उत्कलमें फिञ्जोली, बम्बईमें समुद्रफल और परेल कहते हैं। इसका गुण—कटु, उष्ण, पवित्र, भूत, वातामय और नाना ग्रहचारादि दोषनाशक। भावप्रकाशके मतसे यह जलवेतको तरह गुणवाला और विषनाशक है।

हिज्जे (अ० पु०) किसी शब्दके आये हुए अक्षरोंको मात्रा सहित कहना।

हिज्र (अ० पु०) जुदाई, वियोग।

हिञ्जीर (सं० पु०) हस्तिपादबन्धनरज्जु या शृङ्खल, हाथीके पैरमें बाँधनेकी रस्सी या जंजीर।

हिडिम्ब (सं० पु०) एक प्रसिद्ध राक्षस। महाभारतमें इसका विषय यों लिखा है—पाण्डवगण जतुगृहसे भाग कर जब वन चले गये, तब एक रातको वे सभी सो रहे थे। केवल भीम जगे रह कर उन सबोंकी रक्षा करते थे। इसके पास ही एक शाल वृक्ष पर हिडिम्ब और उसकी बहन हिडिम्बा राक्षसी रहती थी। हिडिम्बने बहुत दिनोंके बाद मनुष्यका शब्द पा कर अपने बहनसे उसे देख आने कहा। हिडिम्बाने वहां जा कर देखा कि युधिष्ठिरादि सो रहे हैं, केवल भीम जगा है। हिडिम्बा भीमकी अनिन्द्य कमनीय कान्ति देख कर कामातुर हो गई। वह अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण कर भीमके पास गई और उनसे बोली, 'इस वनमें हिडिम्ब नामक एक अत्यन्त क्रूर

प्रकृतिका राक्षस रहता है। मैं उसकी बहन हूं, आपका देवोपम रूप देख कर कामवती हो गई हूं इसलिये मेरी इच्छा पूरी कीजिये। पीछे मैं आप लोगोंका यथासाध्य भलाई करूंगी। इस वनमें रहनेसे हिडिम्बके हाथसे बचनेकी कोई आशा नहीं। आप इन लोगोंको उठाइये। मैं सबोंको ले कर बहुत दूरमें रख आती हूं।'

भीमने हिडिम्बाकी बात सुन हंस कर कहा, 'राक्षस, देवता, यक्ष आदि किसीसे भी मैं नहीं डरता।' इधर हिडिम्ब हिडिम्बाको आनेमें विलम्ब देख वृक्ष परसे उतरा और उसी ओर जाने लगा। वहां जा कर उसने देखा, कि हिडिम्बा अत्यन्त रमणीय मूर्त्ति धारण कर भीमके साथ बातचीत कर रही है। इस पर हिडिम्ब बहुत बिगड़ा और बहनको तिरस्कार कर कहा, "नीच, कुलकलंकिनी! तुम कामवशवर्त्तिनी हो मनुष्यकी कामना कर मेरा अपकार कर रही हो! इसलिये पहले तुम्हारा ही विनाश करूंगा, पीछे इन लोगोंको सुखसे खाऊंगा।"

भीमने उसकी यह बात सुन कर कहा, 'मेरे भाई लोग सुखसे सो रहे हैं, इस प्रकार चिल्ला कर उन सबोंकी नींद न तोड़ो। मालूम होता है, तुम्हारा अन्तिम समय आ पहुंचा, इसीलिये तो इस तरह बड़बड़ कर बोलते हो।' भीमके इस वचन पर हिडिम्ब आग बबूला हो गया और भीम पर टूट पड़ा। दोनोंमें घनघोर युद्ध चलने लगा। युद्धके शब्दसे युधिष्ठिरादि सभी जग उठे। भीमने बातकी बातमें हिडिम्बको यमपुर भेज दिया।

इधर कुन्तीने हिडिम्बाका अमानुषरूप देख कर उससे पूछा, 'तुम कौन हो? क्या इस वनकी देवी हो, यक्ष हो, गन्धर्व हो या किन्नरकन्या हो?' उत्तरमें हिडिम्बाने कहा, 'मैं हिडिम्ब राक्षसकी बहन हूं, हिडिम्बा मेरा नाम है।' इसी समय भीम हिडिम्बको मार कर वहां पहुंच गये और हिडिम्बासे बोले, 'हिडिम्बे! अब तुम भी अपने भाईका पद अनुसरण करो।' भीमके इतना कहने पर युधिष्ठिरने भीमको रोक कर कहा, 'स्त्री अवध्य है, इस लिये इसके प्रति निष्ठुराचरण न करो।'

इसके बाद हिडिम्बा कृताञ्जलि हो कुन्तीसे कहने लगी, 'आर्ये! मैं सुहृद्, आत्मीयस्वजन और स्वधर्मका परित्याग कर आपके पुत्रको अपना स्वामी वर चुकी हूं, इसलिये प्रार्थना है, कि मुझे निराश न करें।' अनन्तर भीमने कुन्तीके आदेशानुसार उससे कहा, 'जब तक तुम्हारे पुत्र न होगा, तब तक मैं तुम्हारे साथ रहूंगा।'

अनन्तर हिडिम्बा परमरूप धारण कर रात्रिकालमें भीमसेनको ले रमणीय स्थानोंमें विहार करने लगी। इस प्रकार वह रातको भीमसेनके साथ विहार करती थी और सवेरे उन्हें यथास्थान पहुंचा देती थी। इस प्रकार कुछ दिन रहनेके बाद उसे गर्भ रह गया। इस गर्भसे घटोत्कचकी उत्पत्ति हुई। पुत्र होने पर भीमने हिडिम्बाको छोड़ दिया। यह घटोत्कच महाभारतकी लड़ाईमें कर्णके हाथसे मारा गया था। (भारत आदिपर्व)

विशेष विवरण घटोत्कच शब्दमें देखो।

हिडिम्बजित् (सं० पु०) भीमसेन।

हिडिम्बनिसूदन (सं० पु०) भीम।

हिडिम्बभित् (सं० पु०) भीम।

हिडिम्बा (सं० स्त्री०) हिडिम्बराक्षसकी बहन, घटोत्कचकी माता। हिडिम्ब और घटोत्कच देखो।

हिडिम्बापति (सं० पु०) १ भीम। २ हनूमान्।

हिडिम्बारमण (सं० पु०) १ भीमसेन। २ हनूमान्।

हिडोर (हिं० पु०) हिंडोला देखो।

हिडोल (हिं० पु०) हिंडोला देखो।

हिण्डक (सं० पु०) १ चालक। २ भ्रमणशील।

हिण्डन (सं० क्ली०) १ भ्रमण, घूमना, फिरना। २ यान, सवारी। ३ क्रीडा, खेल। ४ रति, मैथुन।

हिण्डिक (सं० पु०) लग्नाचार्य।

हिण्डिर (सं० पु०) हिण्डीर देखो।

हिण्डी (सं० स्त्री०) दुर्गा देखो।

हिण्टीबदाम (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पेड़ जो अंडमन टापूमें होता है। इसमें एक प्रकारका गोंद निकलता है और इसके बीजोंमें बहुत-सा तेल होता है।

हिण्डीर (सं० पु०) १ एक प्रकारकी समुद्री मछलीकी हड्डी जो 'समुद्रफेन'के नामसे प्रसिद्ध है। २ वार्त्ताकु, बैंगन। ३ पुरुष, मर्द। ४ रुचक। ५ दाडिम, अनार।

हिण्डुक (सं० पु०) शिव।

हिण्डोली (सं० स्त्री०) एक रागिणी जो हनुमत्के मतसे हिंडोल रागकी प्रिया है।

हित (सं० त्रि०) हि-क्त। १ लाभदायक, उपकारी। २ अनुकूल, मुवाफिक। ३ अच्छा व्यवहार करनेवाला, खैरख्वाह। ४ पथ्य। ५ गत। ६ धृत। ७ योग्य। ८ प्रिय। (पु०) ९ लाभ, फायदा। १० कल्याण, मङ्गल। ११ मित्र। १२ ज्योतिषके मतानुसार ग्रहोंके अवस्थानभेदसे संज्ञाविशेष।

ग्रहोंके स्वाभाविक हित, अधिहित और सम हैं, परन्तु अवस्थानविशेषमें इसकी अन्यथा होती है। ग्रहोंके जो स्वाभाविक हित अर्थात् मित्र हैं, वे उस समय अर्थात् जातचक्रके अवस्थान कालमें भी हित होते हैं। १३ अनुकूलता, मुवाफिकत। १४ स्वास्थ्यके लिये लाभ, तंदुरुस्तीको फायदा। १५ प्रेम, स्नेह। १६ मित्रता, खैरख्वाह। १७ सम्बंध, नाता। १८ संबंधी, नातेदार। (अव्य०) १९ लाभके हेतु, खातिर। २० निमित्त-हेतु।

हितक (सं० पु०) १ शिशु, बच्चा। हित स्वार्थे कन्। २ हित देखो।

हितकर (सं० त्रि०) १ मङ्गलदायक, भलाई करनेवाला। २ उपयोगी, लाभ पहुंचानेवाला। ३ स्वास्थ्यकर, शरीरको आराम या आरोग्यता देनेवाला।

हितकर्त्ता (सं० पु०) भलाई करनेवाला।

हितकर्मन् (सं० क्ली०) मङ्गलजनक कर्म, हितकार्य्य।

हितकाम (सं० त्रि०) १ हितकामी, भलाई चाहनेवाला। (पु०) २ भलाईकी कामना या इच्छा।

हितकाम्या (सं० स्त्री०) हितेच्छा, हिताभिलाष।

हितकारक (सं० त्रि०) १ मङ्गलकारक, भलाई करनेवाला। २ लाभ पहुंचानेवाला, फायदेमंद। ३ स्वास्थ्यकर।

हितकारी (सं० त्रि०) १ हित या भलाई करनेवाला, उपकार या कल्याण करनेवाला। २ लाभ पहुंचानेवाला, फायदेमंद। ३ स्वास्थ्यकर।

हितकृत (सं० त्रि०) हितकारी, भलाई करनेवाला।

हितचिन्तक (सं० पु०) भला चाहनेवाला, खैरखाह।

हितचिन्तन (सं० पु०) किसीकी भलाईकी कामना या इच्छा, उपकारकी इच्छा।

हितप्रणी (सं० पु०) चर, दूत।

हितप्रयस (सं० त्रि०) प्रेरित धन। (ऋक् १०।६१।१५)

हितवचन (सं० पु०) भलाईका वचन, कल्याणका उपदेश।

हितवादी (सं० त्रि०) हितकी बात कहनेवाला, बेहतरीकी सलाह देनेवाला।

हितमित्र (सं० त्रि०) हितकर मित्रविशिष्ट।

हितरामराय—एक हिन्दी कवि। कृष्णानन्द व्यासने अपने रागकल्पद्रुममें 'भगवान् हितरामराय' नामक इनकी कविता उद्धृत की है।

हितलोहित (सं० पु०) यावनाल, जुआर, मक्का।

हितहरिवंश स्वामी गोसाईं—एक विख्यात हिन्दी कवि। ये हरिराम शुक्ल वनाम व्यासस्वामीके पुत्र तथा नरवाहन आदि कितने हिन्दीकविके गुरु थे। इन्होंने संस्कृत भाषामें 'राधा-सुधानिधि' और हिन्दीभाषामें 'हित चौरासी धाम की रचना की। १६वीं सदीके मध्यभागमें ये विद्यमान थे। इनके साधुचरित्रके लिये सभी इनको बड़ी श्रद्धा भक्ति करते थे।

हिता (सं० स्त्री०) १ नाली, बरहा। २ एक विशेष प्रकारकी रक्तवाहिनी नस या शिरा।

हिताइन—हिताइत बाइबिलवर्णित एक पराक्रान्त जाति। चार हजार वर्ष पहलेसे इन लोगोंने सिरियामें अपना आधिपत्य फैलाया था। प्राचीन मिश्रवासी इन्हें 'खेत' और आसिरीयगण 'खेता' नामसे पुकारते थे। कुछ दिन हुए, एशियामाइनरके अन्तर्गत बोघजकोई नामक स्थानसे प्रायः १४०० ई०सन्के पहलेकी कुछ शिलालिपि आविष्कृत हुई हैं। उनसे जाना जाता है, कि उसके पहलेसे ही हिताइतगण एशियामाइनरका शासन करते थे। मितानी या उत्तर मेसोपोटामियाके अधिपतियोंके साथ हिताइतपतिका हमेशा युद्ध हुआ करता था। अन्तमें दोनों जातिने मेल कर लिया। उक्त सुप्राचीन शिलालिपिमें दोनों पक्षके राजवंशकी उपास्य देवदेवीका परिचय है।* इस लिपिसे यह भी जाना जाता है, कि हिताइतोंके प्रतिपक्ष मितनीगण मित्र,

---

* Mitteilungen der Deutschen Orientgesellschaft, No. 35,

वरुण, इन्द्र और नासत्ययुगल आदि वैदिक देवताओंके उपासक थे। आश्चर्यका विषय है, कि उस दूर अतीतकालमें भी एशियामाइनरमें वैदिक देवपूजा प्रचलित थी।†

१२४० ई०सन्‌के पहिले हिताइतगण २य रमेशसे पराजित हुए और उनकी राजधानी कदेश तहस नहस कर डाली गई। यह राजधानी 'कदम' नामसे भी परिचित थी। आधुनिक पुराविदोंका अनुमान है, कि ओरन्तिस नदीके बाएं किनारे वर्तमान 'तेल नबिमिहन्दि' नामक जो विस्तीर्ण ध्वंसावशेष है, वहीं पर एक समय हिताइतोंकी राजधानी थी। यह सुप्राचीन राजधानी कैसी दुर्भेद्य थी, पहाड़के ऊपर इसकी अवस्थिति और ओरन्ति ह्रदका बांध तथा प्राचीन गड़खाई देखनेसे ही उसका सहजमें पता लग जाता है।

हिताइतोंके अभ्युदयकालमें उन लोगोंकी व्यवहृत लिपि ही एशियाके प्रतीच्य और यूरोपके प्राच्यभूभागमें तमाम प्रचलित थी। ८३५ ई०सन्‌के पहले शाल्मनेसरने सभी हिताइतपतियोंको परास्त किया। इसी समयसे इस जातिकी अवनतिका सूत्रपात तथा आसिरीयपति सारगणके समय ७१७ ई०सन्‌के पहले हिताइतपति पिसिरीके पतनके साथ हिताइत राज्य विलुप्त और हिताइतलिपिका प्रचलन बंद हुआ। इस समयसे ही आसिरीय कोणाकार लिपि हिताइतलिपिका स्थान अधिकार कर बैठी। एशियामाइनर और साइप्रसके नाना स्थानोंमें हिताइतोंकी सुप्राचीन पुराकीर्त्तिका ध्वंसावशेष दिखाई देता है।

हिताई (हिं० स्त्री०) सम्बन्ध, नाता।

हिताधायिन् (सं० त्रि०) हितकर, हितकारक।

हितानुबन्धिन् (सं० त्रि०) हितकामी, भलाई चाहनेवाला।

हितार्थी (सं० त्रि०) हितकामी, भलाई चाहनेवाला।

हितावली (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात औषध वृक्षविशेष, हिथावली। पर्याय—हृद्गाली, कुण्डली, अङ्गारग्रन्थि, ग्रन्थिल। गुण—सारक, तिक्त, प्लीहा, गुल्मोदर, कृमि और कुष्ठ आदि रोगनाशक। (राजनि०)

हितावह (सं० त्रि०) हितकारी, जिससे भलाई हो।

हिताहित (सं० त्रि०) हित और अहित, भलाई बुराई।

हिती (हिं० वि०) १ भलाई चाहनेवाला, हितू। २ मित्र, दोस्त।

हितू (हिं० पु०) १ भलाई करने या चाहनेवाला। २ दोस्त, संबंधी, नातेदार। ३ सुहृद, स्नेही।

हितेच्छा (सं० स्त्री०) भलाईकी चाह, उपकारका ध्यान।

हितेच्छु (सं० त्रि०) कल्याण मनानेवाला, खैरख्वाह।

हितैषिता (सं० त्रि०) भलाई चाहनेकी वृत्ति, खैरख्वाही।

हितैषी (सं० त्रि०) १ भला चाहनेवाला, कल्याण मनानेवाला। (पु०) २ मित्र, दोस्त।

हितोक्ति (सं० स्त्री०) हितके वचन, भलाईका उपदेश।

हितोपदेश (सं० पु०) हितवाक्योपदेश, भलाईका उपदेश। २ विष्णुशर्मा रचित संस्कृतका एक प्रसिद्ध ग्रंथ। यह एक नीतिग्रन्थ है। मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि ये चार विषय ले कर यह ग्रन्थ रचा गया है। यह अति प्राचीन और उपादेय है।

पञ्चत नामक जो अति प्राचीन आख्यायिका पुस्तक प्रचलित थी, हितोपदेश उसीका एक संस्करण है। राजकुमारोंके भविष्य जीवन सुधारनेके लिये यह हितोपदेश उन्हें पढ़ाया जाता था। पाटलीपुत्रपति एक दिन मूर्ख राजकुमारोंके जीवनकी अवस्था सोच कर दुःख कर रहे थे। विष्णुशर्मा नामक एक पण्डितको यह मालूम हो गया। उन्होंने छः मासके भीतर राजकुमारोंको नीतिशास्त्रमें अभिज्ञ करनेके लिये इस हितोपदेशकी रचना की।

६ठी सदीमें पारस्यसम्राट् नसीर्वानके आदेशसे हितोपदेशका प्राचीन पारस्यभाषामें अनुवाद हुआ। उस अनुवादसे फिर ६वीं सदीमें अरबी अनुवाद हुआ था। इस अनुवाद ग्रंथका नाम 'कालला-ओ-दमना' है। यह हितोपदेश वर्णित करटक और दमनक नामक दो धूर्त्त शृगालोंका नामान्तर है। 'कलिला और दमना' ग्रन्थका फिर हिब्रु, सिरीय और ग्रीक भाषामें अनुवाद हुआ। १५वीं सदीके शेषभागमें कापुआवासी जोहन (John) नामक एक व्यक्तिने हिब्रुका अनुवाद निकाला। यही देख कर यूरोपकी सभी भाषाओंमें इसका अनुवाद होने लगा। वृटिश बालकोंके निकट हितोपदेश Pilpay's Fables नामसे परिचित है। पूर्वोक्त पारस्यानुवादको छोड़ आधुनिक पारस्य और तुर्कीभाषामें इसका यथेष्ट अनु

---

† Journal of the Royal Asiatic Society for 1910, p. 456 off.

वाद हुआ है। इनमेंसे पारसीपण्डित हुसेन-वैज-कशोफी-का 'आनवर-इ-सुहेलि' समस्त मुसलमान-जगत्‌में प्रसिद्ध है। यूरोप और मुसलमान-जगत्‌के नाना स्थानोंमें इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इस ग्रंथमें हुसेनवैज ने हितोपदेशकी कुछ गल्पोंको ले कर उसमें स्वरचित कुछ गल्प भी जोड दी है। परंतु हितोपदेशकी सरल, सुललित और चित्ताकर्षी गल्पके सामने उनका रूपक अलङ्कार और अत्युक्तिपूर्ण कल्पना समान आसन नहीं पा सकती। अकबर बादशाहके मंत्री अबुलफजल हुसेन वैज-के उक्त दोषोंको व्यक्त कर पारस्यभाषामें यार-इ-दानिस (ज्ञानकी स्पर्शमणि) नामक एक और सरल अनुवाद प्रकाश कर गये हैं। बार इ दानिसका फिर 'खिराद अफरोज' नामक उर्दू अनुवाद हुआ है। इन दो ग्रंथोंका भारतीय मुसलमानसमाजमें बडा आदर है। इसके सिवा भारतकी आधुनिक सभी श्रेष्ठ भाषाओंमें हितोपदेश-का अनुवाद दिखाई देता है।

हिदायत (अ० स्त्री०) १ पथप्रदर्शन, रास्ता दिखाना। २ आदेश, निर्देश।

हिनहिनाना (हिं० क्रि०) घोडेका बोलना, हींसना।

हिनहिनाहट (हिं० स्त्री०) घोडेकी बोली।

हिना (अ० स्त्री०) मेहदी।

हिन्ताल (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष। एक प्रकारका जंगली खजूर। इसके पेड छोटे छोटे, जमीनसे दो तिन हाथ ऊँचे होते हैं। यह पेड देखनेमें बहुत सुन्दर होता है और दक्षिणके जंगलोंमें दलदलोंके किनारे और गीली जमीनमें बहुत पाया जाता है। अमरकंटकके आसपास यह बहुत होता है। संस्कृतके पुराने कविने इसका बहुत वर्णन किया है। यह तृणराजमें गिना जाता है। इस हिन्तालपत्र द्वारा दन्तधावन नहीं करना चाहिये। इसका गुण मधुराम्ल, कफवर्द्धक, पित्तज, दाह-नाशक, श्रमतृष्णापहारक, शीतल और वातदोषवर्द्धक माना गया है।

हिन्द (फा० पु०) भारतवर्ष। यह शब्द वास्तवमें 'सिंधु' शब्दका फारसी उच्चारण है। प्राचीन कालमें पारसिक-गण सिन्धुप्रवाहित पञ्चनद और उसके अधिवासियोंको 'हेन्दु' या 'हिन्दू' कहते थे। धीरे धीरे वही अपभ्रष्ट हो कर 'हिन्द' रूपमें परिणत हुआ है। प्रथमतः 'हिन्द' शब्दसे सिन्धुप्रवाहित जनपद समझे जाने पर भी पीछे 'हिन्द' शब्द द्वारा समस्त भारतवर्षका बोध होता था। प्राचीन पारसिकोंसे ग्रीक लोगोंने भारतके सभी विषय मालूम किये, इस कारण ग्रीकोंके ग्रन्थमें 'हिन्द' Indoi नामसे ही वर्णित हुआ है। परवर्त्ती कालमें मुसलमान सम्राट् कैसर-इ-हिन्द अर्थात् भारतके सम्राट् कहलाते थे। अभी भारतेश्वर इङ्गलैण्डपति भी 'कैसर इ-हिन्द' उपाधिसे विभूषित हैं।

प्राचीनकालमें भारतीय आर्यों और पारसिक आर्योंके बीच बहुत कुछ सम्बन्ध था। यज्ञ करानेवाले याजक बराबर एक देशसे दूसरे देशमें आते जाते थे। शाकद्वीपके मग ब्राह्मण पारस्यके पूर्वोत्तर भागसे ही आये हुए हैं। ईसासे ५०० वर्ष पहले दारयवुस् प्रथमके समयमें सिन्धु नदके आस पासके प्रदेश पर पारसियोंका अधिकार हो गया था। प्राचीन पारसी भाषामें संस्कृतके 'स'का उच्चारण 'ह' होता था। जैसे,—संस्कृत 'सप्त' फारसी 'हफ्त'। इसी नियमके अनुसार 'सिन्धु'-का उच्चारण प्राचीन पारस्य देशमें 'हिन्दु' या हिन्द होता था। पारसियोंके धर्म ग्रन्थ 'अवस्ता' में हफ्तहिन्दका उल्लेख है जो वेदोंमें भी सप्त-सिन्धुके नामसे आया है। धीरे धीरे 'हिन्द' शब्द सारे देशके लिये प्रयुक्त होने लगा। प्राचीन यूनानी जब पारस्य आये, तब उन्हें इस देशका परिचय हुआ और वे अपने उच्चारणके अनुसार फारसी 'हिन्द'को 'इण्डिया' 'इण्डिका' कहने लगे, जिससे आज कल 'इण्डिया' शब्द बना है।

हिन्दकि—अफगानिस्तान और पारस्यसे ले कर रूस तक पाश्चात्य देशमें हिन्दू लोग इसी नामसे परिचित हैं। उन सब स्थानोंमें हिन्दकिका वास है। एकमात्र अष्ट्राकान नगरमें ही प्रायः ५ सौ घर हिन्दकि रहते हैं। इस वाणिज्यप्रधान शहरके हिन्दकि वणिक् दूसरे देशके सभी वणिकोंसे बढ कर सम्मान पाते हैं। स्थानीय अधि-वासिमात्र ही इनकी बड़ी भक्तिश्रद्धा करते हैं। अफ-गानिस्तानमें जिन सब हिन्दकियोंका वास है, किसी किसीके मतसे उनमेंसे बहुतेरे अरबपिता और हिन्दूमाता-के वंशधर हैं। कर्णाटकके नवाबके हबशीकी संतान भी एक समय हिन्दी या हिन्दकि कहलाती थी।

हिन्दी (फा० वि०) हिंदी देखो।

हिन्दीभाषा—आर्यावर्त्तमें विशेषतः युक्तप्रदेश, विहार और मध्यप्रदेशमें प्रचलित भारतकी प्रधान भाषा। यही अभी भारतकी राष्ट्रीय भाषा समझी जाती है। इस भाषाकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, नीचे उसीकी आलोचना की गई है,—

भारतीय आर्यजातिके आदिग्रन्थ वेद हैं। उस वैदिक भाषारूपी स्रोतस्वतीसे संस्कृत और प्राकृत दोनों ही धारा निकली हैं। पञ्चनद और सरस्वती-प्रवाहित कुरुक्षेत्रमें आर्यजातिकी बोल चालकी वैदिक भाषा प्रचलित थी। भारतमें आर्योंके आधिपत्यविस्तारके साथ साथ उस भाषामें दूसरी प्रादेशिक भाषा घुस गई। इसके सिवा कालके प्रभावसे बोल-चालकी भाषामें थोड़ा परिवर्तन हो गया। पाणिनि और निरुक्तकार यास्कके समय वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा बहुत कुछ पृथक् पृथक् हो गई थी। वैदिक संस्कृत और पाणिनि शब्द देखो।

पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें 'छान्दस' और 'भाषा' इन दो शब्दों द्वारा 'वैदिक' और अपने समयमें प्रचलित 'लौकिक संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव उस समय वैदिक भाषा अप्रचलित थी, परन्तु तब भी संस्कृत युग चलता था। इस संस्कृतका कथित भाषा रूपमें कब तक प्रचार रहा, वह आज भी अनिश्चित है। पर हां, हम लोग इतना अवश्य कह सकते हैं, कि बुद्धदेवके समय अर्थात् ढाई हजार वर्ष पहले संस्कृत जनसाधारणकी बोलचालकी भाषा नहीं समझी जाती थी। इस समय जनसाधारण या राजपुरुषगण जो भाषा समझते थे उसका 'गाथा' नाम रखा गया था। यह गाथा भाषा संस्कृत व्याकरणसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती थी, इस कारण हम लोग उसे टूटी फूटी संस्कृत कह सकते हैं।

सम्राट् अशोकके समय उस समय प्रचलित प्रादेशिक भाषामें जो सब अनुशासन पाये गये हैं वे गाथाके कुछ परवर्त्ती और पाली भाषाके पूर्वतन प्राकृतरूप समझे जाते हैं। गाथा और पाली देखो।

भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत प्राचीन कालसे ही कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देशभेदसे उस प्राकृतमें भी थोड़ा बहुत प्रभेद था। परन्तु यह प्राकृत जब लिखित भाषा रूपमें व्यवहृत होने लगी, तब आवश्यकतानुसार उसके संस्कारका भी प्रयोजन हुआ। उस सुसंस्कृत प्राकृत भाषाने ही पाली, मागधी या अर्द्धमागधी रूपमें प्रथम लिखित भाषाका स्थान अधिकार किया।

नाट्यसूत्रकार भरतके मतसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र ये ही चार भाषा हैं। प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रधानतः संस्कृतभव, संस्कृतसम और देशी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंमेंसे पालीको 'तत्सम' और अर्द्धमागधीको 'तद्भव' श्रेणीमें गिना जा सकता है। हेमचन्द्रने अपने प्राकृत व्याकरणमें अर्द्धमागधीको आर्ष-प्राकृतके मध्य गिना है। चण्डाचार्यके मतानुसार अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनीके प्राचीन रूपको ही आर्ष प्राकृत कह सकते हैं। चण्डने अपने 'प्राकृत लक्षण' नामक आर्ष प्राकृत व्याकरणमें प्राकृत भाषाको प्राकृत, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भागोंमें विभक्त किया है। परंतु वररुचिके मतसे मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और पैशाची यही चार प्रकारकी प्राकृत भाषा है। १७वीं सदीमें शेषकृष्णने अपनी प्राकृतचन्द्रिकामें लिखा है—आर्ष, मागधी, शौरसेनी, पैशाची, चुलिका पैशाची और अपभ्रंश ये ही छः प्रकारकी मूल प्राकृत हैं। इन सब मूल प्राकृतसे देशभेद और अपभ्रंश भेदमें ६१ प्रकारकी प्राकृत प्रचलित हुई थी। कृष्ण पण्डितके मतसे इन ६१ प्रकारकी प्राकृत भाषामेंसे पाञ्चाल, कैकय, शौरसेनी, व्रावण्ड, गौड, मागध, शावर, दाक्षिणात्य, द्राविड, काञ्चीदेशीय और पाण्ड्य ये ग्यारह पिशाचज अर्थात् पैशाची भाषासे निकली हैं।

प्राकृत शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

पैशाची प्राकृतके उक्त प्रचलन स्थानसे मालूम होता है, कि उत्तरमें हिमालय, पूरबमें गौड देश तथा पश्चिममें मथुरा और व्रजमण्डल तक पैशाची प्राकृतका प्रचार था। पैशाची प्राकृतकी इस प्रकार विशेषता निर्दिष्ट हुई है—

'पैशाचिक्यां रणयोर्लनौ।" (प्राकृत लक्षण ३।३८)

पैशाचिकी भाषामें र और ण-की जगह ल और न होता है।

"णो, नः" (वररुचि-प्राकृत—प्रकाश १०।५)

मूर्द्धन्य 'ण'-की जगह दन्त्य 'न' होता है।

फिर एक विशेष लक्षण यह है—'रशषाणां सः' (चण्ड—प्राकृत-लक्षण ३।१८) अर्थात् रेफयुक्त 'श' और 'ष' तथा केवल 'श' और 'ष' की जगह सभी स्थलोंमें 'स' हुआ करता है।

फिर एक विशेषता इस प्रकार है—'यस्य ज' (प्राकृत लक्षण ३।१५) 'य'-की जगह सर्वत्र 'ज' होता है।

वररुचिने लिखा है—

"पैशाची प्रकृतिः शौरसेनी।" (प्राकृत-प्रकाश १०।२)

अर्थात् पैशाची भाषाकी प्रकृति शौरसेनी है। अर्थात् शूरसेन या मथुरा (व्रजमण्डल)में जो प्राकृत भाषा प्रचलित थी, उससे भी प्राकृत भाषा पुष्ट हुई है।

ऊपर पैशाची प्राकृतकी जो विशेषता कही गई, प्राचीन हिन्दी भाषामें भी हम वैसी ही विशेषता देखते हैं—प्राचीन हिन्दीमें इसी प्रकार 'ण' की जगह 'न', 'ष' और 'श' की जगह 'स' और 'य' की जगह 'ज' हुआ करता है। प्राचीन हिन्दी भाषाके सम्बन्धमें कितने विद्वानोंने गहरी आलोचना की है, पर हम यहां उनका मत संक्षेपमें उद्धृत करते हैं—

प्राचीन कालमें कुरु पंचाल तथा पश्चिमके अन्य लोग कोशल (अवध), काशी (वनारसके चारों ओर), विदेह (उत्तर विहार) और मगध तथा अंग (दक्षिण विहार) वालोंको 'प्राच्य' कहते थे। अब भी दिल्ली मेरठ आदिके रहनेवाले इधरवालोंको पूर्विया और यहांकी भाषा को पूरबी हिन्दी कहा करते हैं। इन्हीं प्राच्योंकी प्राच्य भाषाका विकाश दो रूपोंमें हुआ। एक पश्चिमप्राच्य, दूसरी पूर्व प्राच्य। पश्चिम प्राच्यका अपने समयमें बड़ा प्रचार था, पर पूर्व प्राच्य एक विभाग मात्रकी भाषा थी। प्राकृत वैयाकरणोंके अनुसार हम पश्चिम प्राच्यको अर्द्धमागधी और पूर्व प्राच्यको मागधी कह सकते हैं। यह प्राचीन अर्द्ध मागधी कोशलमें बोली जाती थी। अतः बुद्धदेवकी यही मातृ भाषा थी। इसीसे मिलती जुलती भारतवर्षके पूर्व खंडवासी आर्योंकी भाषा थी जिसमे महावीर स्वामी तथा बुद्धदेवने धर्मोपदेश किया था और जिसका उस समयके राजकुल तथा राजशासनमें प्रयोग होता था। मध्य तथा पूर्व देशोंमें उपलभ्यमान एक अशोक-सम्राट्के शिलालेखोंमें प्रयुक्त तथा उसके राजकुलकी भाषामें भी इस अर्द्धमागधी भाषाकी बहुत-सी विशेषताएं पाई जाती हैं। उस समय राजभाषा होनेके कारण इसका प्रभाव आज कल अंगरेजीकी तरह प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं पर था। इसीसे इस अर्द्धमागधीकी छाप गिरनार, शाहबाजगढ़ी तथा मानसेराके लेखों पर भी काफी पाई जाती है। पिपरहवाका पात्र-लेख, सोहगौराका शिलालेख तथा अशोककी पूर्वीय धर्मलिपियां एवं मध्य एशियामें प्राप्त बौद्ध संस्कृत नाटकके लुप्तावशिष्ट अंश इसके प्राचीनतम प्रयोगस्थल हैं। जैनोंके 'समवायांग'में लिखा है, कि महावीर स्वामी ने अर्द्ध-मागधीमें धर्मोपदेश किया और वह भाषा प्रयोगमें आते आते सभी आर्य्य, अनार्य्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, कीट, पतंगके हित, कल्याण तथा सुखके लिये परिवर्त्तित होती गई अर्थात् इसी मूल भाषासे प्राणिमात्र की भाषाका जन्म हुआ। जान पड़ता है, कि महावीर स्वामीने इस भाषाको सर्वोच्च बनानेके लिये तत्काल प्रचलित अन्य भाषाओंके सुप्रसिद्ध शब्दोंका भी इसमें यथेष्ट सन्निवेश किया, जैसे कि आजकलके रमते साधु लोग भी धर्मोपदेशमें ऐसी ही खिचड़ी भाषाका प्रयोग किया करते हैं। ऊपरके अर्थवादका रहस्य तथा अर्द्ध मागधी नामका अभिप्राय यही है। मागधी तो थी ही, अन्य भाषाओंके मेलसे वह पूरी मागधी न रही। अर्द्ध-मागधी हो गई। इसी अर्द्ध मागधीसे अर्द्धमागधी, अपभ्रंश और उससे आजकलकी पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी निकली है।

आधुनिक देशभाषाओंके विचारसे पश्चिमी हिन्दी और विहारीके बीचकी भाषा पूरबी हिन्दी है और उसमें दोनोंके अंश वर्त्तमान हैं। आधुनिक भाषाओंके विवेचनके आधार पर अंतरंग, वहिरंग और मध्यवर्त्ती भाषाओंके ये तीन समूह नियत किये गये हैं।

यह एक निर्विवाद सिद्धान्त है, कि बोल-चालकी भाषामें जितना शीघ्र परिवर्त्तन होता है, उतना शीघ्र साहित्यकी भाषामें नहीं होता। जब प्राकृतने साहित्यमें पूर्णतया प्रवेश पा लिया और वह शिष्ट लोगोंके पठन-पाठन तथा

ग्रन्थनिर्माणकी भाषा हो गई, तब बोलचालकी भाषा अपनी स्वतन्त्र धारामें बहती हुई जनसमुदायके पारस्परिक भाव-विनिमयमें सहायता देती रही। इसी बोलचालकी भाषाको वैयाकरणोंने 'अपभ्रंश' नाम दिया है।

आगे चल कर प्राकृतकी भांति अपभ्रंश भी व्याकरणके नियमोंसे जकड़ दी गई और केवल साहित्यमें व्यवहृत होने लगी। पर उसका स्वाभाविक प्रवाह चलता रहा। क्रमशः वह भाषा एक ऐसे रूपको पहुंची जो कुछ अंशोंमें तो हमारी आधुनिक भाषाओंसे मिलता है और कुछ अंशोंमें अपभ्रंशसे। आधुनिक हिन्दी भाषा और शौरसेनी अपभ्रंशके मध्यकी अवस्था कभी कभी अवहट्ट' कही गई है। 'प्राकृत पिंगल'में उदाहरण रूपसे सन्निविष्ट कविताएं इसी अवहट्ट भाषामें है। इसी अवहट्टको पिङ्गल भी कहते हैं और राजपूतानेके भाट अपनी डिंगलके अतिरिक्त इस पिंगलमें भी कविता करते रहे हैं। कुछ विद्वानोंने इसे 'पुरानी हिन्दी' नाम भी दिया है। यद्यपि इसका ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है, कि इस अपभ्रंशका कब अन्त होता है और पुरानी हिन्दीका कहांसे आरंभ होता है, तथापि १२वीं सदीका मध्य भाग अपभ्रंशके अन्त और आधुनिक भाषाओंके उदयका काल यथाकथंचित् माना जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है, कि पहले मूल भाषासे वैदिक संस्कृतकी उत्पत्ति हुई और फिर उसने कट-छंट या सुधर कर साहित्यिक रूप धारण किया, पर साथ ही वह बोलचालकी भाषा भी बनी रही।

भारतकी आधुनिक भाषाएं।

अन्तरंग और बहिरंग भाषाएं—आधुनिक भारतीय भाषाओंके विवेचनासे सिद्ध होता है, कि कुछ भाषाएं तो पूर्वागत आर्योंकी भाषाओंसे संबंध रखती हैं जो इस समय भी मध्य देशके चारों ओर फैली हुई है और कुछ परागत आर्योंकी भाषाओंसे संबद्ध है। इस आधार पर हार्नेले और ग्रियर्सनने भारतकी आधुनिक भाषाओंके दो मुख्य विभाग किये हैं। उनमेंसे एक विभागकी भाषाएं तो उन प्रदेशोंमें बोली जाती हैं जो इस मध्यप्रदेशके अन्तर्गत है और दूसरे विभागकी भाषाएं उन प्रदेशोंके चारों ओरके देशोंमें अर्थात् काश्मीर, पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, महाराष्ट्र, मध्य भारत, उड़ीसा, बिहार, बङ्गाल तथा आसाममें बोली जाती हैं। एक गुजरात प्रदेश ही ऐसा है जिसमें बोली जानेवाली भाषाका संबंध बहिरंग भाषाओंसे नहीं, वरन् अन्तरंग भाषाओंसे है, और इसका कारण कदाचित् यही है, कि किसी समय इस गुजरात प्रदेश पर मथुरावालोंने विजय प्राप्त की थी और मथुरा नगरी उसी मध्यदेशके अन्तर्गत है।

अन्तरंग और बहिरंग भाषाओंमें प्रभेद यह है, कि अन्तरंग भाषाओंमें बहुधा 'स' का ठीक उच्चारण होता है, पर बहिरंग भाषाओंके भाषी शुद्ध दन्त्य 'स' का उतना स्पष्ट उच्चारण नहीं कर सकते। वे उसका उच्चारण कुछ कुछ तालव्य 'श' अथवा मूर्द्धन्य 'ष' के समान करते हैं। उक्त दोनों भाषाओंमें एक और अन्तर यह है, कि बहिरंग भाषाओंकी भूतकालिक क्रियाओंके साधारण रूपोंसे ही उनका पुरुष और वचन मालूम हो जाता है, पर अंतरंग भाषाओंमें सभी पुरुषोंमें उन क्रियाओंका रूप एक-सा रहता है। हिन्दीमें 'मैं गया', 'वह गया' और 'तू गया' सबमें 'गया' समान है, पर मराठीमें 'गेलो' से ही 'मैं गया" का बोध होता है और 'गेला' से वह गया का। तात्पर्य यह कि बहिरंग भाषाओंकी भूतकालिक क्रियाओंमें सर्वनाम भी अन्तर्भुक्त होता है, पर अन्तरंग भाषाओंमें यह बात नहीं पाई जाती।

परन्तु इस मतका अब खंडन होने लगा है और दोनों प्रकारकी भाषाओंके भेदके जो कारण ऊपर दिखाए गये हैं वे अन्यथा सिद्ध हैं, जैसे 'स' का 'ह' हो जाना केवल बहिरंगभाषाका ही लक्षण नहीं है, पर अन्तरंग मानी जानेवाली पश्चिमी हिन्दीमें ऐसा ही होता है। इसके तस्य—तस्स—तास=ताह=ता (ताको, ताहि इत्यादि) करिष्यति-करिस्सदि करिसइ-करिहइ-करिहै एवं केसरीसे केहरि आदि बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। इसी प्रकार बहिरंग मानी जानेवाली भाषाओंमें भी 'स' का प्रयोग पाया जाता है; जैसे—राजस्थानी (जयपुरी) करसो, पश्चिमी पञ्जाबी-करेसी इत्यादि। इसी प्रकार संख्यावाचकोंमें 'स' का 'ह' प्रायः सभी मध्यकालीन तथा आधुनिक आर्य भाषाओंमें पाया जाता है। पश्चिमी

हिन्दी और पश्चिमी पञ्जाबी आदिमें सांसिद्धिक साधर्म्य आवश्य है। अब यदि इन भाषाओंका भेद कर सकते हैं तो यों कर सकते हैं, कि पूर्वी भाषाएं कर्त्तरिप्रयोग प्रधान और पश्चिमी कर्मणिप्रयोग प्रधान होती हैं।

भाषाओंका वर्गीकरण—अन्तरंग भाषाओंके दो मुख्य विभाग हैं—एक पश्चिमी और दूसरा उत्तरी। पश्चिमी विभागमें पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पञ्जाबी ये चार भाषाएं हैं और उत्तरी विभागमें पश्चिमी पहाडी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाडी ये तीन भाषाएं हैं। बहिरंग भाषाओंके तीन मुख्य विभाग हैं—उत्तर-पश्चिमी, दक्षिणी और पूर्वी। इनमेंसे उत्तर-पश्चिमी विभागमें कश्मीरी, कोहिस्तानी, पश्चिमी पञ्जाबी और सिन्धी ये चार भाषाएं हैं। दक्षिणी विभागमें केवल एक मराठी भाषा है और पूर्वी विभागमें उड़िया, बिहारी, बंगला और आसामी ये चार भाषाएं हैं।

पश्चिमी हिन्दी—पश्चिमी हिन्दी पश्चिममें पंजाबके सरहिंद नामक स्थानसे पूर्वभागमें प्रयाग तक बोली जाती है। उत्तरमें इसका विस्तार हिमालयकी तराई तक और दक्षिणमें बुन्देलखण्ड तथा मध्य प्रदेशके कुछ उत्तरी भागों तक है। इसकी हिन्दी या हिंदुस्तानी, ब्रज भाषा, कन्नौजी, बुंदेली आदि कई मुख्य बोलियां हैं, जिनमें दक्षिण पूर्व पंजाबकी बांगड़ू और पूर्वी राजपुतानेकी कुछ बोलियां भी सम्मिलित की जा सकती हैं। आधुनिक हिन्दीकी इन बोलियोंके सम्बन्धमें पूरा विवेचन आगे चल कर किया जायगा।

शुद्ध हिन्दीभाषा दिल्ली और मेरठके आस पासके प्रान्तोंमें बोली जाती है और यही प्रायः सारे उत्तरी भारतकी साहित्यकी भी भाषा है। हिन्दी और उर्दूका समस्त आधुनिक साहित्य इसी हिन्दुस्तानी या शुद्ध हिन्दी बोलीमें है। रुहेलखण्डमें पहुंच कर यही भाषा कन्नौजीका रूप धारण कर लेती है। अम्बालेसे आगे बढ़ने पर पञ्जाबी हो जाती है और गुड़गांवके दक्षिणपूर्वमें ब्रजभाषा बन जाती है। यहां हम यह भी बतला देना चाहते हैं, कि इस भाषाका यह हिन्दुस्तानी नाम अङ्गरेजोंका रखा हुआ है, इसका शुद्ध भारतीय नाम हिन्दी ही है। उर्दू या रेख़्ता और दक्खिनी आदि इसके वही रूपान्तर हैं, जो इसमें संस्कृत शब्दोंकी न्यूनता और अरबी तथा फारसी शब्दोंकी अधिकता करनेसे प्राप्त होते हैं।

इटावा, मथुरा और आगरा आदि ब्रज भाषाके प्रधान क्षेत्र हैं। यह ग्वालियरके उत्तर-पश्चिमी विभाग और भरतपुर तथा कांकरौलीमें भी बोली जाती है। अधिक पश्चिम अथवा दक्षिण जाने पर यही राजस्थानीका रूप धारण कर लेती है। इस भाषाकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृतसे है। इसका प्राचीन प्रसिद्ध साहित्य अवधीके साहित्यसे भी अधिक और बढ़ा चढ़ा है। उत्तर भारतके इधर चार पांच सौ वर्षोंके अधिकांश कवियोंने इसी भाषामें कविताएं की हैं। उनमेंसे सूर, तुलसी, बिहारी आदि अनेक ऐसे कवि भी हो गये हैं जिन्होंने अपनी कविताओंके कारण ही बहुत दूर दूर तक ख्याति प्राप्त कर ली है और जो इसी कारण अमर हो गये हैं।

कन्नौजी भाषाका विस्तार इटावे और प्रयागके बीचके प्रदेशमें है। यह हरदोई और उन्नावके भी कुछ विभागोंमें बोली जाती है। इसे ब्रज भाषाका ही एक विकृत रूप समझना चाहिये।

बुन्देलखण्ड और उसके आस पास जालौन, झांसी, हमीरपुर और मध्य प्रदेशके कुछ जिलोंमें बुन्देली बोली जाती है, पर बांदेकी बोली बुंदेली नहीं, बघेली है। पन्नाके महाराज छत्रसालके समयसे बुंदेलीमें भी कुछ साहित्य पाया जाता है। इस प्रकार ब्रज भाषा, कन्नौज और बुंदेलीका आपसमें बहुत सम्बन्ध है।

पञ्जाबके दक्षिण-पूर्वमें जो भाषा बोली जाती है, उसके कई स्थानिक नाम हैं। हिसार और झींदके आस पास हरियाना प्रान्तकी बोली 'हरियानी' कहलाती है और रोहतक, दिल्ली तथा करनालकी भाषा हिन्दी मानी जाती है। इसके भाषी मुख्यतः जाट हैं, इसलिये इसे जाटू भी कहते हैं। जिस प्रांतमें यह बोली बोली जाती है, उसका नाम बागड है, इसलिये इसे बांगड़ू भी कहते हैं। इसका यही नाम कुछ अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसे पश्चिमी हिंदी, पञ्जाबी और मारवाड़ीका मिश्रण कहना चाहिये और इसके चारों ओर ये ही तीनों भाषाएं बोली भी जाती हैं।

बिहारी भाषा—सारे बिहार प्रदेश और उसके आस

पास संयुक्त प्रदेश, छोटा नागपुर और बंगालमें कुछ दूर तक बिहारी भाषा बोली जाती है। यद्यपि बङ्गाल और उड़ीसाकी तरह बिहारी भाषा भी मागध अपभ्रंशसे ही निकली है, तथापि अनेक कारणोंसे इसकी गणना हिंदीमें होती है और ठीक होती है। बिहारी भाषामें मैथिली, मगही और भोजपुरी तीन बोलियां हैं। मिथिला या तिरहुत और उसके आस पासके कुछ स्थानोंमें मैथिली बोली जाती है, पर उसका विशुद्ध रूप दरभंगेमें पाया जाता है। इस भाषाके प्राचीन कवियोंमें विद्यापति ठाकुर बहुत ही प्रसिद्ध और श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, जिनकी कविताका अब तक बहुत आदर होता है। इस कविताका अधिकांश सभी बातोंमें प्रायः हिन्दी ही है। प्राचीन कालमें यही प्रदेश मगध कहलाता था। इस भाषामें कोई साहित्य नहीं है। भोजपुरी बोली शाहाबाद और उसके चारों ओर दूर दूर तक पश्चिमी बिहार, पूर्वी संयुक्त प्रान्त, पालामऊ, रांची, आजमगढ़ आदि स्थानों या उनके कुछ अंशोंमें थोड़े बहुत परिवर्तित रूपोंमें बोली जाती है। इस बोलीके तीन उपविभाग किये जा सकते हैं—शुद्ध भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी और नागपुरिया। संयुक्त प्रान्तवालोंने पश्चिमी भोजपुरीका नाम 'पूर्वी' रख छोड़ा है जो बहुत ही उपयुक्त और सुन्दर है, पर कभी कभी इस 'पूर्वी' से ऐसी भाषाओंका भी बोध होता है जिनका भोजपुरीसे कुछ संबंध ही नहीं है। मैथिली और मगहीमें परस्पर कुछ विशेष सम्बंध है और भोजपुरी इन दोनोंसे अलग है।

पूर्वी हिन्दी—अन्तरंग और बहिरंग भाषाओंकी मध्यवर्ती भाषा पूर्वी हिंदी है। यह भाषा अर्द्धमागधीकी स्थानापन्न मानी जाती है और अवध, बघेलखण्ड, बुंदेलखण्ड, छोटानागपुर तथा मध्य प्रदेशके कुछ भागोंमें बोली जाती है। इसमें अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी ये तीन बोलियां सम्मिलित हैं। बघेली और अवधीमें परस्पर बहुत थोड़ा अन्तर है, पर मराठी और उड़ियाका प्रभाव पड़नेके कारण छत्तीसगढ़ी इन दोनोंसे बहुत भिन्न जान पड़ती है। पर फिर भी अवधीके साथ उसका घनिष्ठ संबन्ध देखनेमें आता है।

अवधी बघेली बोली संयुक्तप्रान्तके पूर्व बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और जबलपुर तथा मंडला आदि जिलोंमें बोली जाती है। फतहपुर और बांदेके बीचमें जहां यमुना नदी बहती है, उसके उत्तरमें और इलाहाबाद जिलेकी दक्षिणी सीमा तक अवधी बोलीका प्रचार है और उसके दक्षिणके प्रान्तोंमें बघेलीका। छत्तीसगढ़ और उसके आस पास उदयपुर, कोरिया, सरगुजा आदि रियासतोंमें छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। तात्पर्य यह, कि उत्तरमें नेपालकी तराईसे ले कर दक्षिणमें बस्तर रियासत तक पूर्वी हिन्दीका प्रचार है। परन्तु इसका जितना अधिक विस्तार उत्तर-दक्षिणमें है उतना अधिक पूर्वपश्चिममें नहीं है।

हिन्दी पर अन्य भाषाओंका प्रभाव—हिन्दीके संबंधमें विचार करनेके समय यह स्मरण रखना चाहिये, कि इसका उदय क्रमशः शौरसेनी और अर्द्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंशोंसे हुआ है। अतएव जब हम हिन्दीके शब्दोंकी उत्पत्ति तथा उसके व्याकरणके किसी अंग पर विचार करते हैं, तब हमें यह जान लेना आवश्यक होता है, कि प्राकृतों या अपभ्रंशोंमें उन शब्दोंके क्या रूप या व्याकरणके उस अंगकी क्या व्यवस्था होती है।

विदेशी प्रभाव—हमारी भाषा पर भारतवर्षकी अन्यान्य भाषाओं तथा विदेशियोंकी भाषाओंका भी कम प्रभाव नहीं पड़ा है। द्रविड भाषाओंके बहुतसे शब्द संस्कृत और प्राकृतोंमें मिल गये हैं और उनमेंसे होते हुए हिन्दी भाषामें आ गये हैं। टवर्गी अक्षरोंके विषयमें बहुतोंका यह कहना है, कि इनका आगमन संस्कृत और प्राकृतमें तथा उनसे हिन्दी भाषामें द्रविड़ भाषाओंके प्रभावके कारण हुआ है। डाक्टर ग्रियर्सनकी सम्मति है, कि द्रविड भाषाओंके केवल शब्द ही हमारी भाषामें नहीं मिल गये हैं, वरन् उनके व्याकरणका भी उस पर प्रभाव पड़ा है। द्रविड विभक्तियोंकी अनुरूपता हमारी विभक्तियोंके जिस रूपमें पाई गई, वही रूप अधिक ग्राह्य समझा गया। मिस्टर केलाग का कहना है, कि टवर्गके अक्षरोंसे आरम्भ होनेवाले अधिकांश शब्द द्रविड भाषाके हैं और प्राकृतोंसे हिन्दीमें आये हैं। उन्होंने हिसाब लगा कर बताया है, कि प्रेम-

सागरके टवर्गके अक्षरोंसे आरंभ होनेवाले ८९ शब्दोंमेंसे २१ संस्कृतके तत्सम और ६८ प्राकृतके तद्भव हैं और 'क' से आरम्भ होनेवाले १२८ शब्दोंमेंसे २१ तद्भव और १०७ तत्सम हैं। इससे यह सिद्धान्त निकालते हैं, कि भारतवर्षके आदिम द्रविड निवासियोंकी भाषाओंका जो प्रभाव आधुनिक भाषाओंपर पड़ा है, वह प्राकृतोंके द्वारा पड़ा है।

अब कई आधुनिक आर्य भाषाओंके भी शब्द हिन्दीमें मिलने लगे हैं, जैसे—मराठीके लागू, चालू, बाजू आदि, गुजरातीके लोहनी, कुनबी, हडताल आदि और बंगला-के प्राणपण, चूडान्त, भद्र लोग, गल्प नितान्त, सुविधा आदि। इसी प्रकार कुछ अनार्य-भाषाओंके शब्द भी मिले हैं, जैसे—तामिल पिल्लईसे पिल्ला, शुलुट्टुसे चुरुट; तिब्बती—चुंगी; चीनी—चाय; मलय—साबू इत्यादि।

हिन्दीके शब्दभाण्डार पर मुसलमानों और अङ्गरेजोंकी भाषाओंका भी कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा है। मुसलमानोंकी भाषाएं फारसी, अरबी और तुर्की मानी जाती हैं। इन तीनों भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग मुसलमानों द्वारा अधिक होनेके कारण तथा मुसलमानोंका उत्तरी भारत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़नेके कारण ये शब्द हमारी बोलचालकी भाषामें बहुत अधिकतासे मिल गये हैं और इसी कारण साहित्यकी भाषामें भी इनका प्रयोग चल पड़ा है, पर यहां इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इनमेंसे अधिकांश शब्दोंका रूपात्मक विकाश हो कर हिन्दी भाषामें आगम हुआ है। यह एक साधारण सिद्धान्त है, कि ग्राह्य भाषाका विजातीय उच्चारण ग्राहक भाषाके निकटतम सजातीय उच्चारणके अनुकूल हो जाता है। इसी सिद्धान्तके अनुसार मुसलमानी शब्दोंका भी हिन्दीमें रूपान्तर हुआ है।

मुसलमानी भाषाओंसे आये हुए शब्दोंमें आगमन, विपर्यय और लोप संबंधी भेद भी प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, जैसे मर्दसे मरद, फिक्रसे फिकर, अमानतसे अनामत।

इन भाषाओंसे आये हुए कुछ शब्दोंका यदि यहां निर्देश कर दिया जाय तो अनुचित न होगा। सुभीतेके लिये इनके विभाग कर दिये जायें तो और अच्छा हो।

राजकाज, लड़ाई, आखेट आदिके—अमीर, उमरा, खानदान, खिताब, ख्याल, खास, तख्त, ताज, दरबार, दौलत, नकीब, नवाब, बादशाह, मिर्ज़ा, मालिक, हजूर, हजरत, कूच, कतार, काबू, खंजर, जखम, जंजीर, जमादार, तवक, तंबू, तोप, दुश्मन, नगद, नेजा, फौज, फौत, बहादुर, वजीर मनसबदार, रसद, रिसाला, शिकार, शमशेर, सरदार, हल्का हिम्मत आदि।

राजकर, शासन और दंडविधान आदि—औलाद, मर्दुम शुमारी, आबाद, इस्तमरारी, वासिल, कब्जा, कसब, खजाना, खारिज, गुमाश्ता, चाकर, जमा, जमीन, जायदाद तहवील, ताल्लुक, दारोगा, दफ्तर, नाजिर, प्यादा, फिहरिस्त, बाब, बीमा, महकमा, माफ, मोहर, रैयत, शहर, सन, सरकार, सजा, हद, हिसाब, हिस्सा, आइना, अदालत, इजहार, इलाका, उज्र, कसूर, काजी, कानून, खिलाफ, सिरिश्ता, सुलहनामा, मौजे, जवान, जब्त, जारी, जिरह, तकरार, तामील, दरखास्त, दलील, दस्तखत, नाबालिग, नालिश, पेशा, फ़रियादी, करार, बखरा, बाजाब्ता, मुकद्दमा, मुंसिफ, रद, राय, रुजू, शिनाख्त, सफाई, सालिस, हक, हाकिम, हाजत, हुलिया, हिफाजत आदि।

धर्मसम्बन्धी आदि—वजू, औलिया, अल्ला, इंजील, इबादत, ईमान, इसलाम, ईद, कबर, कफन, कलंदर, काफिर, काबा, गाजी, जल्लाद, जुम्मा, तोबा, ताजिया, दरगाह, दरवेश, दीन, दुआ, नबी, नमाज, निकाह, नूर, फरिस्ता, रोजा, बिस्मिल्ला, बुजुर्ग, मसजिद, मुहर्रम, मुरीद, मोमिन, मुल्ला, शरीयत, शहीद, शिरनी, शिया, हदीस, हलाल आदि।

विद्या, कला, साहित्य संबंधी—अदब, आलिम, इज्जत, इम्तिहान, इल्म, खत, गजल, तरजुमा, दरद, कसीदा, मजलिस, मुंशी, रेखता, शर्म, सितार, हरूफ आदि।

विलासिता, व्यवसाय, शिल्प आदि संबंधी—अस्तुरा, आइना, अखनी, अंगूर, अचकन, अतर, आतिशबाजी, आबनूस, अर्क, इमारत, कागज, कलफ, कुलुफ, कीमख्वाब, किशमिश, बर्फी, कोर्मा, कसाई, खरबूजा, खाल, खानसामाँ, खस्ता, गज, गिर्दा गुलाब, गोश्त, चरखा, चश्मा, चपकन चाबुक, चिक, जरी, जर्दा, जवाहिरात, जामा, जुलाब, ताफता, तकमा, तराजू, तसवीर, तकिया, दालान, दस्ताना, दवा, दूर्बीन, दवात, नारंगी, परदा,

पाजामा, पुलाव, फर्राश, फानूस, फुहारा, बरफ, बागीचा, बादाम, बुलबुल, मलमल, लबादा, मलहम, मसाला, मलाई, मिश्री, मीना, मेज, रफ़ू, रूमाल, रिकाब, रेशम, लगाम, शहनाई, शाल, शीशी, संदूक, सुर्खी, सुराही, हलुवा, हुक्का, हौज, हौदा आदि।

भिन्न भिन्न देशवासियोंके नाम—अरब, अरमनी, यहुदी उजबक, तिब्बती, विलायती, हबशी इत्यादि।

साधारण वस्तुओं और भावोंके लिये—अंदर, आवाज, अफसर, आबहवा, आसमान, असल, इल्लत, कदम, कम, कायदा, कारखाना, कमर, खबर, खुराक, गरज, गरम, गुजरान, चंदा, जल्दी, जानवर, जहाज, जिद, तलाश, ताजा, दखल, दम, दरकार, दगा, दाना, दुकान, नकद, नमूना, नरम, निहायत, नशा, पसंद, परी, फुरसत, बदजात, बंदोबस्त, बदहवाई, बेवकूफ, मजबूत, मियाँ, मुर्गा, मुलुक, यार, रकम, रोशनाई, वजन, सौदा, साफ, हफ्ता, हजार, हजम, होशियार, हजूम आदि।

थोड़ेसे तुर्की शब्दोंका पृथक् दिग्दर्शन कराना भी उपयोगी होगा—

आगा, उजबक (ओजबेक), उर्दू (ओर्दू=खेमा), कलंगा (कलगः), कैंची (कैची), काबू (क़ापू=चाल, अवसर, अधीनता, अधिकार, पकड़), कुली (क़ुली=ग़ुलाम), कोतका=ठेंगा (कुतका=डण्डा), कोर्मा (कवुर्मा), खातुन=महिला (ख़ातून), खान, खा (ख़ान ख़ाक़ान), गलीचा (कलीचा), चकमक (चक़मक़), चाकू (चाक़ू), चिक (फा० चिग, तु० चिक़), तमगा (तमगा), तुपक, तोप, तगाड=सुर्खी चूनेका गड्ढा (तगार), तुरुक (तुर्क), दरोगा (दारोग़ा), बख्शी (फा० बख़्शी, तु० बख्शी), बावर्ची, (बावर्ची), बहादुर, बीबी, बेगम (बेगुम), बकचा=बण्डल (बक़्चा), मुचलका, लाश, सौगात, सुराक=पता (सुराग) और 'ची' प्रत्यय जैसे मशालची, खजानची इत्यादि। इनके अतिरिक्त पठान (पश्तान), रोहिल्ला (पश्तो रोह=पहाड़) आदि कुछ शब्द पश्तो भाषाके भी मिलते हैं।

यूरोपीय भाषाओंके शब्द भी जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हमारी भाषामें मिल गये हैं और वर्तमान समयमें तो बहुत अधिकतासे मिलते जाते हैं। इन शब्दोंमें से थोड़ेसे शब्द तो पुर्तगाली भाषाके हैं, जैसे Cameraसे कमरा, Martello से मारतौल, Lelloosे नीलाम; कुछ फ्रेंच भाषाके, जैसे Cartouch से कारतूस, Franchiseसे फरासीसी, Anglaisसे अंगरेज, कुछ डच भाषाके, जैसे Troef से तुरुप (ताशका खेल), Boomसे बम (गाडीका), पर अंगरेजी भाषाके शब्दोंकी संख्या हमारी भाषामें बहुत अधिक हो गई है और नित्य बढती जा रही है। इनमेंसे कुछ शब्द तो तत्सम रूपमें आये हैं, पर अधिकांश शब्द तद्भवरूपमें आये हैं। तत्सम रूपमें आये हुए शब्दोंके कुछ उदाहरण ये हैं—इञ्च, फुट, अमोनिया, बेंच, बिल, बोर्ड, बोट, पाउडर, बजेट, नटन आदि। तद्भव शब्दोंके संबंधमें आगम, विपर्यय, लोप और विकारके नियमोंका स्पष्ट प्रभाव देख पड़ता है, जैसे—(१) Sample से सैंपुल, Recruitसे रंगरूट, Dozenसे दर्जन, (२) General-से जनरल, Deskसे डेस्क, (३) Reportसे रपट, Pantaloonसे पतलून, Magistrateसे मजिस्टर, Lanternसे लालटेन, Hundredweight से हंडर या हंडरवेट Town duty से टून डूटी, Time से टैम, Ticket-से टिकट Quinineसे कुनैन, Kettleसे केतली। इन उदाहरणोंको देखनेसे यह स्पष्ट होता है, कि शब्दोंके रूपात्मक विकाशमें आगम, विपर्यय, लोप और विकारके नियमोंमेंसे कोई एक नियम किसी एक शब्दके रूपके परिवर्तित होनेमें नहीं लगता, वरन् दो या अधिक नियम एक साथ लगते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह मुख्य सिद्धान्त निकलता है, कि हिन्दी भाषामें प्राचीन आर्य्य भाषाओंके अथवा विदेशी भाषाओंके जो शब्द आये हैं, वे या तो तत्सम रूपमें ही आये हैं, अथवा तद्भव रूपमें। अधिकांश शब्द तद्भव रूपमें ही आये हैं। तत्सम शब्दोंकी संख्या बहुत कम है, पर साथ ही यह प्रवृत्ति भी देख पडती है, कि जो लोग प्राचीन आर्य्य भाषाओंके अथवा विदेशी भाषाओंके ज्ञाता हैं, वे उन भाषाओंके शब्दोंको तत्सम रूपमें ही व्यवहृत करनेका उद्योग करते हैं। यह प्रवृत्ति यहा तक बढ रही है, कि रूपात्मक विकाशके सिद्धान्तोंकी भी परवा न करके लोग उन शब्दोंको शुद्ध विदेशी या प्राचीन रूपमें ही अपनी भाषा

में रक्षित रखना चाहते हैं। इससे एक ओर तो नये उच्चारणोंके लिये, जो हमारी भाषामें वर्त्तमान नहीं हैं, नये चिह्नोंके बनानेकी आवश्यकता उपस्थित हो गई है और दूसरी ओर हमारी भाषाकी पाचनशक्तिमें व्याघात पहुंच रहा है। संस्कृत, पारसी और अङ्गरेजीके विद्वानों को यह ध्यान रखना चाहिये, कि अपने पाण्डित्यकी कौंधके आगे वे कहीं अपनी मातृभाषाको विवर्ण और छिन्न भिन्न न कर दें।

हिन्दीके विकाशकी अवस्थाएं—हिन्दीका विकाश क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंशके अनन्तर हुआ है। पर पिछली अपभ्रंशमें भी हिन्दीके बीज बहुत स्पष्ट रूपमें दिखाई पड़ते हैं। इसीलिये इस मध्यवर्त्ती अपभ्रंश भाषाको कुछ विद्वानोंने पुरानी हिन्दी माना है। यद्यपि अपभ्रंशकी कविता बहुत पीछेकी बनी हुई भी मिलती है परन्तु हिन्दीका विकाश चंद बरदाईके समयसे स्पष्ट देख पड़ने लगता है। इसका समय १२वीं सदीका अन्तिम अर्द्धभाग है। परन्तु उस समय भी इसकी भाषा अपभ्रंशसे बहुत भिन्न हो गई थी। अपभ्रंशका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कतु।
लज्जेज्जं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु ॥१॥
पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण" ॥२॥

दोनों दोहे हेमचन्द्रके हैं जिनका जन्म संवत् ११४५में और मृत्यु सं० १२२९में हुई थी। अतएव यह माना जा सकता है, कि ये दोहे सं० १२००के लगभग अथवा उसके कुछ पूर्व लिखे गये होंगे। अब हिन्दीके आदि कवि चन्दके कुछ छंद ले कर मिलाइये और देखिये दोनोंमें कहां तक समता है।

"उच्चिष्ठ छंद चंदह वयन सुनत सुजंपिय नारि।
तनु पवित्त पावन कविय उकति अनूठ उधारि ॥
ताडी खुल्लिय ब्रह्म दिक्खि इक असुर अदब्भुत।
दिग्घ देह चख सीस मुष्ष करुना जस जप्पत ॥"

हेमचन्द्र और चंदकी कविताओंको मिलानेसे यह स्पष्ट विदित होता है, कि हेमचंद्रकी कविता कुछ प्राचीन है और चंदकी उसकी अपेक्षा कुछ अर्वाचीन।

इस अवस्थामें यह माना जा सकता है, कि हेमचंद के समयसे पूर्व हिंदीका विकाश होने लग गया था और चंदके समय तक उसका कुछ कुछ रूप स्थिर हो गया था, अतएव हिन्दीका आदि काल हम सं० १०५० के लगभग मान सकते हैं।

चन्दका समकालीन जगनिक कवि हुआ है, जो बुन्देलखण्डके प्रतापी राजा परमालके दरबारमें था। यद्यपि इस समय उसका बनाया कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, पर यह माना जाता है; कि उसके बनाये ग्रन्थके आधार पर ही आरम्भमें 'आल्हखण्ड' की रचना हुई थी। हिन्दीके जन्मका समय भारतवर्षके राजनीतिक उलट फेरका था। उसके पहले हीसे यहां मुसलमानोंका आना आरम्भ हो गया था और इस्लाम धर्मके प्रचार तथा उत्कर्षवर्द्धनमें उत्साही और दृढ साहसी मुसलमानोंके आक्रमणोंके कारण भारतवासियोंको अपनी रक्षाकी चिंता लगी हुई थी। ऐसी अवस्थामें साहित्यकलाकी वृद्धिकी किसको चिंता हो सकती थी। ऐसे समयमें तो वे ही कवि सम्मानित हो सकते थे जो केवल कलम चलानेमें ही निपुण न हों, वरन् तलवार चलानेमें भी सिद्धहस्त हों तथा सेनाके अग्रभागमें रह कर अपनी वाणी द्वारा सैनिकोंका उत्साह बढ़ानेमें भी समर्थ हों। चंद और जगनिक ऐसे ही कवि थे, इसीलिये उनकी स्मृति अब तक बनी है। परन्तु उनके अनन्तर कोई सौ वर्ष तक हिन्दीका सिंहासन सूना देख पड़ता है। अतएव हिंदीका आदि काल संवत् १०५०के लगभग आरम्भ हो कर १३७५ तक चलता है। इस कालमें विशेष कर वीर-काव्य रचे गये थे। ये काव्य दो प्रकारकी भाषाओंमें लिखे जाते थे। एक भाषाका ढाँचा तो बिलकुल राजस्थानी या गुजराती होता था जिसमें प्राकृतके पुराने शब्द भी बहुतायतसे मिले रहते थे। यह भाषा जो चारणोंमें बहुत काल पीछे तक चलती रही है, डिंगल कहलाती है। दूसरी भाषा एक सामान्य साहित्यिक भाषा थी जिसका व्यवहार ऐसे विद्वान् कवि करते थे जो अपनी रचनाको अधिक देशव्यापक बनाना चाहते थे। इसका ढाँचा पुरानी व्रजभाषाका होता था जिसमें थोड़ा बहुत खड़ी या पञ्जाबीका भी मेल हो जाता था। इसे पिङ्गल भाषा कहने लगे थे। वास्तवमें हिंदीका संबध

इसी भाषासे है। पृथ्वीराजरासा इसी साहित्यिक सामान्य भाषामें लिखा हुआ है। वीसलदेवरासोकी भाषा साहित्यिक नहीं है। पर हां, यह कहा जा सकता है, कि उसके कविने जगह जगह अपनी राजस्थानी बोलीमें इस सामान्य साहित्यिक भाषा (हिंदी) को मिलानेका प्रयत्न अवश्य किया है।

डिंगलके ग्रन्थोंमें प्राचीनताकी झलक उतनी नहीं है जितनी पिङ्गल ग्रन्थोंमें पाई जाती है। राजस्थानी कवियोंने अपनी भाषाको प्राचीनताका गौरव देनेके लिये जान बूझ कर प्राकृत अपभ्रंशके रूपोंका अपनी कवितामें प्रयोग किया है। इससे भाषा वीरकाव्योपयोगी अवश्य हो जाती है, पर साथ ही उसमें दुरूहता भी आ जाती है।

इसके अनन्तर हिन्दीके विकासका मध्य काल आरम्भ होता है जो ५२५ वर्षों तक चलता है। भाषाके विचारसे इस कालको हम दो मुख्य भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—एक सं० १३७५-से १७०० तक और दूसरा १७०० से १९०० तक। प्रथम भागमें हिन्दीकी पुरानी बोलियां बदल कर व्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोलीका रूप धारण करती हैं और दूसरे भागमें प्रौढ़ता आती है; तथा अन्तमें अवधी और व्रजभाषाका मिश्रण सा हो जाता है और काव्य भाषाका एक सामान्य रूप खड़ा हो जाता है। इस कालके प्रथम भागमें राजनीतिक स्थिति डांवाडोल थी। पीछेसे उसमें क्रमशः स्थिरता आई जो दूसरे भागमें दृढ़ताको पहुंच कर पुनः डांवाडोल हो गई। हिन्दीके विकासकी चौथी अवस्था संवत् १९०० में आरंभ होती है। उसी समयसे हिन्दी गद्यका विकास नियमितरूपसे आरंभ हुआ है और खड़ी बोलीका प्रयोग पद्य और गद्य दोनोंमें होने लगा है।

व्रजभाषा एक प्रकारसे चिर प्रतिष्ठित प्राचीन काव्य-भाषाका विकसित रूप है। पृथ्वीराजरासोंमें ही इसके ढांचेका बहुत कुछ आभास मिल जाता है—

"तिहिं रिपुजय पुरहरन को भये प्रथिराज नरिंद।"

सूरदासके रचनाकालका आरंभ संवत् १५७५ के लगभग माना जाता है। उस समय तक काव्य-भाषाने व्रजभाषाका पूरा पूरा रूप पकड़ लिया था, फिर भी उसमें क्या क्रिया, क्या सर्वनाम और क्या अन्य शब्द सबमें प्राकृत तथा अपभ्रंशका प्रभाव देखाई देता है। पुरानी काव्य-भाषाका प्रभाव व्रजभाषामें अब तक लक्षित होता है।

उत्तर या वर्त्तमान कालमें साहित्यकी भाषामें व्रजभाषा और अवधीका प्रचार घटता गया और खड़ी बोलीका प्रचार बढ़ता गया। इधर इसका प्रचार इतना बढ़ा, कि अब हिन्दीका समस्त गद्य इस भाषामें लिखा जाता है और पद्यकी रचना भी बहुलतासे इसीमें हो रही है।

आधुनिक हिन्दी गद्य या खड़ी बोलीके आचार्य शुद्धताके पक्षपाती थे। वे खड़ी बोलीके साथ उर्दू या फारसीका मेल देखना नहीं चाहते थे। इंशाउल्ला खांकी यही सम्मति थी। उन्होंने 'हिन्दी छुट किसीको पुट' अपनी भाषामें न आने दी, यद्यपि फारसी रचनाकी छूतसे वे अपनी भाषाको न बचा सके। इसी प्रकार आगरा-निवासी लल्लू-लालकी भाषामें व्रजका पुट है और सदल मिश्रकी भाषामें पूरबीकी छाया वर्त्तमान है, परन्तु सदासुखलालकी भाषा इन दोनोंसे मुक्त है।

परन्तु अब राष्ट्रीय आन्दोलनमें मुसलमानोंके आ मिलनेसे तथा हिन्दुओंके उनका मन रखनेके कारण एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई है। वही राष्ट्रीयता जिसके कारण पहले शुद्ध हिन्दीका आन्दोलन चला था, अब मिश्रणकी पक्षपातिनी हो रही है और अपनी गौरवान्वित परम्पराको नष्ट कर राजनीतिक स्वर्गलाभकी आशा तथा आकांक्षा करती है। अब प्रयत्न यह हो रहा है, कि हिन्दी और उर्दूमें लिपिभेदके अतिरिक्त और कोई भेद न रह जाय और ऐसी मिश्रित भाषाका नाम हिन्दुस्तानी रखा जाय। हिन्दी यदि हिन्दुस्तानी बन कर देशमें एकच्छत्र राज्य कर सके तो नाम और वेशभूषाका यह परिवर्त्तन महार्घ न होगा, पर आशंका इस बातकी है, कि अध्रुवके पीछे पड कर हम ध्रुवको भी नष्ट न कर दें।

इस एकताके साथ साथ साहित्य और बोलचाल तथा गद्य और पद्यकी भाषाको एक करनेका उद्योग वर्त्तमान युगकी विशेषता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका विशेष संबंध साहित्यकी भाषासे है। बोलचालमें तो अब तक अवधी

व्रजभाषा और खड़ी बोली अनेक स्थानिक भेदों और उपभेदोंके साथ प्रचलित हैं, पर साधारण बोलचालकी भाषा खडी बोली ही है।

हिन्दीकी उपभाषाएं ।

हिन्दीके विकाशके भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न बोलियोंके नाम दिये हैं। इनमें मुख्य राजस्थानी, अवधी, व्रज भाषा और खडी बोली हैं। बुंदेलखण्डी स्थूल दृष्टिसे व्रजभाषाके अन्तर्गत आती है। नीचे उनका अलग अलग विचार किया गया है।

राजस्थानी भाषा—यह भाषा राजस्थानमें बोली जाती है। इसके पूर्वमें व्रजभाषा और बुंदेली, दक्षिणमें बुंदेली, मराठी, भीली, खानदेशी और गुजराती, पश्चिमी पंजाबी तथा उत्तरमें पश्चिमी पंजाबी और बाँगड़ू भाषाओंका प्रचार है। इनमेंसे मराठी, सिंधी और पश्चिमी पंजाबी बहिरंग शाखाकी भाषाएं हैं और शेष सब अन्तरंग शाखा की।

राजस्थानी भाषाकी चार बोलियाँ है—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी इनके अनेक भेद उपभेद हैं। मारवाडीका पुराना साहित्य डिंगल नामसे प्रसिद्ध है। जो लोग व्रजभाषामें कविता करते थे, उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी और उससे भेद करनेके लिये मारवाडी भाषाका उसीकी ध्वनि पर गढा हुआ डिंगल नाम पडा। जयपुरीमें भी साहित्य है। दादूदयाल और उनके शिष्योंकी वाणी इसी भाषामें है। मेवाती और मालवीमें किसी प्रकारके साहित्यका पता नहीं चला है। इन भिन्न भिन्न बोलियोंकी बनावट पर ध्यान देनेसे यह प्रकट होता है, कि जयपुरी और मारवाडी गुजरातीसे, मेवाती व्रज भाषासे और मालवी बुंदेलखडीसे बहुत मिलती जुलती है। राजस्थानी भाषा वाक्य-विन्यासके संबंधमें गुजरातीका अनुकरण करती है।

अवधी—इस भाषाका प्रचार अवध, आगरा प्रदेश, बघेलखड, छोटानागपुर और मध्य-प्रदेशके कई भागोमें है। इसकी प्रचार-सीमाके उत्तरमें नेपालकी पहाड़ी भाषाएं, पश्चिममें पश्चिमी हिन्दी, पूर्वमें बिहारी तथा उड़िया और दक्षिणमें मराठी भाषा बोली जाती है।

अवधीके अन्तर्गत तीन मुख्य बोलियां है—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी और बघेलीमें कोई अन्तर नहीं है। बघेलखंडमें बोली जानेके ही कारण वहां अवधीका नाम बघेली पड गया है। छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उडियाका प्रभाव पड़ा है और इस कारण वह अवधीसे कुछ बातोंमें भिन्न हो गई है। हिन्दी साहित्यमें अवधी भाषाने एक प्रधान स्थान ग्रहण किया है। इसके मुख्य दो कवि मलिक मुहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

व्रजभाषा—यह अन्तरंग समुदायकी सबसे मुख्य भाषा है। यह शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। इसका मुख्य स्थान व्रजमण्डल है, पर इसका प्रचार दक्षिणकी ओर आगरे, भरतपुर, धौलपुर और करौलीमें तथा ग्वालियरके पश्चिम भाग और जयपुरके पूर्व भागमें है। उत्तरकी ओर यह गुड़गांव जिलेके पूर्व भाग तक बोली जाती है। उत्तर-पूर्वकी ओर इसका प्रचार बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, बदाऊं, बरेली होते हुए नैनीतालके तराई परगनों तक चला गया है। इसका केन्द्रस्थान मथुरा है, और वहांकी भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। इस केन्द्रस्थानसे जिधर जिधर यह फैली है, उधर उधरकी भाषाओंसे संसर्ग होनेके कारण इसके रूपमें कुछ न कुछ विकार हो गया है।

बुन्देली भाषा—व्रजसे मिलती जुलती या उसकी एक शाखा बुंदेली या बुंदेलखंडी भी है, जिसकी छाया कवियोंकी भाषामें बराबर मिलती है। यह भाषा बुंदेलखण्ड, ग्वालियर और मध्य प्रदेशके कुछ जिलोंमें बोली जाती है। इसकी विस्तार-सीमाके पूर्व ओरकी हिन्दीकी बघेली बोली, उत्तर पश्चिमकी ओर व्रजभाषा, दक्षिण पश्चिमकी ओर राजस्थानी और दक्षिणकी ओर मराठी भाषाका साम्राज्य है। उत्तर, पूर्व और पश्चिमकी ओर तो यह क्रमशः उन दिशाओंमें बोली जानेवाली भाषाओंमें लीन हो जाती है। वहां इसका मिश्र रूप देख पड़ता है, पर दक्षिणकी ओर यह मराठीसे बहुत कम मिलती है। यद्यपि इसकी कई बोलियां बताई जाती हैं, पर वास्तवमें सर्वत्र इसका एक-सा ही रूप है। इधर उधर जो अन्तर देख पड़ता है वह नाममात्रका है।

खड़ी बोली—यह भाषा मेरठके चारों ओरके प्रदेशमें बोली जाती है। दिल्लीमें मुसलमानी शासनका केन्द्र होनेके कारण विशेष रूपसे उन्होंने उसी प्रदेशकी भाषा खड़ी बोलीको अपनाया। यह कार्य एक दिनमें नहीं हुआ। अरब, पारस और तुर्किस्तानसे आये हुए सिपाहियोंको यहां वालोंसे बातचीत करनेमें पहले बड़ी दिक्कत होती थी। न ये उनकी अरबी, पारसी समझते थे और न वे इनकी 'हिन्दवी'। पर बिना वाग व्यवहारके काम चलना असम्भव था, अतः दोनोंने दोनोंके कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान प्रदानका रास्ता निकाला।

आजकल जैसे अङ्गरेजी पढ़े लिखे भी अपने नौकरसे 'एक ग्लास पानी' न मांग कर एक 'गिलास' यही मांगते हैं, वैसे उस समय मुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध सौकर्यके अनुरोधसे वे लोग अपने 'ओजबेक'का उजबक, 'कुनबा' का कनबा कर लेने देते और स्वयं करते थे; एवं वे बरहमन् सुन कर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिन्दी, पण्डिताऊ हिन्दी, बाबू इङ्गलिशकी तरह यह उस समय उर्दू हिन्दी कहलाती थी, पर पीछे केवल उर्दू शब्द स्वयं भेद्य बन कर उसी प्रकार उस भाषाके लिये प्रयुक्त होने लगा जिस प्रकार 'संस्कृत वाक्' के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानोंने अपनी संस्कृतिके प्रचारका सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषाको खूब उन्नत किया और जहां जहां फैलते गये, वे इसे अपने साथ लेते गये। उन्होंने इसमें केवल पारसी तथा अरबीके शब्दोंकी ही उनके शुद्ध रूपमें अधिकता नहीं कर दी, बल्कि इसके व्याकरण पर भी पारसी, अरबी व्याकरणका रंग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। इस अवस्थामें इसके दो रूप हो गये, एक तो हिन्दी ही कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नामसे प्रसिद्ध हुआ। दोनोंके प्रचलित शब्दोंको ग्रहण करके, पर व्याकरणका संघटन हिन्दी हीके अनुसार रख कर अङ्गरेजोंने इसका एक तीसरा रूप 'हिन्दुस्तानी' बनाया। अतएव इस समय इस खड़ी बोलीके तीन रूप वर्त्तमान हैं—(१) शुद्ध हिंदी—जो हिंदुओंकी साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिंदुओंमें है, (२) जिसका प्रचार विशेष कर मुसलमानोंमें है और जो उनके साहित्यकी और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिंदुओंकी घरके बाहर की बोलचालकी भाषा है और (३) हिन्दुस्तानी—जिसमें साधारणतः हिंदी उर्दू दोनोंके शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका सब लोग बोलचालमें व्यवहार करते हैं। इसमें अभी साहित्यकी रचना बहुत कम हुई है, इस तीसरे रूपके मूलमें राजनीतिक कारण हैं।

पूर्वकालमें खड़ी बोली केवल बोलचालकी भाषा थी। मुसलमानोंने इसे अङ्गीकार किया और आरम्भमें उन्होंने इसको साहित्यिक भाषा बनानेका गौरव भी पाया। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, कि खड़ी बोलीका सबसे पुराना नमूना जो अब तक मिला है वह नामदेवकी कवितामें है। नामदेवको छोड़ भी दिया जाय, तो हमें खड़ी बोलीका सबसे पहला कवि अमीर खुसरो मिलता है। खुसरोने हिन्दी और अरबी पारसी शब्दोंका प्रचार बढ़ाने तथा हिन्दू मुसलमानोंमें परस्पर भाव-विनिमयमें सहायता पहुंचानेके उद्देशसे खालिकबारी नामका एक कोष पद्यमें बनाया था। कहते हैं, कि इस कोषकी लाखों प्रतियां लिखवा कर तथा ऊंटों पर लदवा कर सारे देशमें बांटी गई थीं। अतएव अमीर खुसरो खड़ी बोलीके आदि कवि ही नहीं हैं, वरन् उन्होंने हिन्दी तथा पारसी अरबीमें परस्पर आदान प्रदानमें भी अपने भरसक सहायता पहुंचाई है। विक्रमकी १४वीं शताब्दीकी खड़ी बोली की कविताका नमूना खुसरोकी कवितामें अधिकतासे मिलता है। जैसे—

"टट्टी तोड़के घरमें आया।
अरतन बरतन सब सरकाया॥
खा गया, पी गया, दे गया बुत्ता।
ए सखि! साजन? नां सखि कुत्ता॥
स्याम बरन की है एक नारी।
माथे ऊपर लागै प्यारी॥
जो मानुष इस अरथको खोलै।
कुत्तेकी वह बोली बोलै॥"

रहीम खानखानाने भी खड़ी बोलीमें कविता की है। हिन्दी कवियोंने तथा कबीर, नानक, दादू आदि संतोंने भी अपनी कवितामें इस खड़ी बोलीका प्रयोग किया है। शीतलकवि (१७८०)ने खड़ी बोलीमें बड़ी ही सुन्दर रचना की है।

अतएव यह सिद्ध है, कि खडी बोलीका प्रचार कमसे कम १६वीं सदीमें अवश्य था, पर साहित्यमें इसका अधिक आदर नहीं था। आनन्दकी बात है, कि अब धीरे धीरे खडी बोलीको कविताकी भाषा सरल गद्यकी-सी हो रही है जो समयकी प्रवृत्तिके अनुकूल तथा भाषा कविताके भविष्यका द्योतक है। १८वीं सदीमें विशेषरूपसे हिन्दीके गद्यकी रचना आरम्भ हुई और इसके लिये खड़ी बोली ग्रहण की गई।

सम्वत् १६३७में गोलकुण्डेके बादशाह सुलतान इब्राहीमकी मृत्यु पर उसका पुत्र मुहम्मद कुली कुतुबशाह गद्दी पर बैठा। पर हिन्दीका खडी बोलीवाला रूप हमें साहित्यमें १३०० वि०के आरम्भमें अर्थात् उर्दूके आदि कवि मुहम्मद कुलीसे कोई ३०० वर्ष पहले भी मिलता है। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है, कि उर्दूके आधार पर खडी बोलीका रूप प्रस्तुत हुआ। मुहम्मद कुलीके कई सौ वर्ष पहलेसे उर्दू पर ब्रजकी काव्यमयी भाषाका प्रभाव पड चुका था। मुसलमानोंकी उर्दू कवितामें भी ब्रजभाषाके रस-परिपुष्ट शब्दोंका बराबर और निसंकोच प्रयोग होता था। पीछेके उर्दू कवियोने इस काव्य भाषाके शब्दोंसे अपना पीछा छुडा कर और खडी बोलीको अरबी तथा पारसी वेषभूषासे सुसजित करके उसे स्वतन्त्र रूप दे दिया। अतएव यह कहना तो ठीक है, कि उर्दू वास्तवमें 'हिन्दी'की विभाषा है, पर यह कहना सर्वथा अनुचित है, कि उर्दूके आधार पर हिन्दी खडी हुई है।

हम पहले कह चुके हैं, कि उर्दू भाषा हिन्दीकी विभाषा थी। इसका जन्म हिंदीसे हुआ और उसका दुग्ध पान करके यह पालित पोषित हुई। पर जब यह शक्तिसम्पन्न हो गई, इसमें अपने पैरों पर खड होनेकी शक्ति आ गई और मुसलमानोंके लाड प्यारसे यह अपने मूलरूप भूल कर अपने पृष्ठ पोषकोंको ही सब कुछ समझने लग गई, तब इसने क्रमशः स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका उद्योग किया। इस प्रकार उर्दू निरन्तर हिन्दीसे अलग होनेका उद्योग करती आ रही है। चार बातोंमें हिन्दीसे उर्दूकी भिन्नता हो रही है—

(१) उर्दूमें अरबी पारसीके शब्दोंका अधिकतासे प्रयोग हो रहा है और वह भी तद्भव-रूपमें नहीं, अपितु तत्सम रूपमें।

(२) उर्दू पर पारसीके व्याकरणका प्रभाव बहुत अधिकतासे पड रहा है। उर्दू शब्दोंके बहुवचन हिन्दीके अनुसार न बन कर पारसीके अनुसार बन रहे हैं।

(३) संबंध कारककी विभक्तिके स्थानमें 'ए'को इजाफत करके शब्दोंका समस्त रूप बनाया जाता है, करण और अपादान कारककी विभक्ति 'से'के स्थानमें 'अज' शब्दका प्रयोग होता है। अधिकरण कारककी विभक्ति 'मे'के स्थानमें भी 'दर'का प्रयोग होता है।

(४) हिन्दी और उर्दूकी सबसे अधिक विभिन्नता वाक्य-विन्यासमें देख पडती है। हिन्दीके वाक्योंमें शब्दोंका क्रम इस प्रकार होता है, कि पहले कर्त्ता, फिर कर्म और अन्तमें क्रिया; पर उर्दूकी प्रवृत्ति यह देख पडती है, कि इस क्रममें उलट फेर हो। उर्दूमें क्रिया कभी कभी कर्त्ताके पहले भी रख देते हैं। जैसे—'राजा इंदरका आना' न कह कर 'आना राजा इंदरका' कहते हैं। इसी प्रकार यह न कह कर कि 'उसने एक नौकरसे पूछा' यह कहेंगे—'एक नौकरसे उसने पूछा।'

हिन्दुस्तानी भाषाके विषयमें इतना ही कहना है, कि इसकी सृष्टि अंगरेजी राजनीतिके कारण हुई है। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओंको मिला कर, अर्थात् इन दोनों भाषाओंके शब्दोंमेंसे जो शब्द बहुत अधिक प्रचलित हैं, उन्हें ले कर तथा हिन्दी व्याकरणके सूत्रमें पिरो कर इस भाषाको यह रूप दिया जा रहा है।*

विशेष विवरण हिन्दी साहित्य शब्दमें देखो।

हिन्दी व्याकरण—जिस शास्त्रमें शब्दोंके शुद्ध रूप और प्रयोगके नियमोंका निरूपण होता है, उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरणके नियम अकसर लिखी हुई भाषाके आधार पर निश्चित किये जाते हैं क्योंकि उसमें शब्दोंका प्रयोग बोली हुई भाषाकी अपेक्षा अधिक सावधानीसे किया जाता है। व्याकरण शब्दका अर्थ 'भली भांति समझना' है। व्याकरणमें वे नियम समझाये जाते हैं जो शिष्ट जनोंके द्वारा स्वीकृत शब्दोंके रूपों और प्रयोगोंमें दिखाई देते हैं।

व्याकरणके विभाग—व्याकरण भाषा संबन्धी शास्त्र है

---

* राय साहब श्यामसुन्दर दासजीके 'हिन्दी भाषा और साहित्य'में विस्तृत आलोचना द्रष्टव्य।

और भाषाका मुख्य अंग वाक्य है। वाक्य शब्दोंसे बनता है और शब्द प्रायः मूलध्वनियोंसे। लिखी हुई भाषामें एक मूलध्वनिके लिये अक्सर एक चिह्न रहता है, जिसे वर्ण कहते हैं। वर्ण, शब्द और वाक्यके विचारसे व्याकरणके तीन प्रधान विभाग होते हैं, वर्णविचार, शब्दसाधन और वाक्यविन्यास। वर्णविचार विभागमें वर्णोंके आकार, उच्चारण और उनके मेलसे शब्द बनानेके नियम दिये जाते हैं। शब्दसाधनमें शब्दोंके भेद रूपान्तर और व्युत्पत्तिका वर्णन रहता है। वाक्यविन्यासमें वाक्योंके अवयवोंका परस्पर संबंध बताया जाता है और शब्दोंसे वाक्य बनानेके नियम दिये जाते हैं।

वर्ण-विचार—वर्णविचार व्याकरणके उस भागको कहते हैं जिसमें वर्णोंके आकार, भेद, उच्चारण तथा उनके मेलसे शब्द बनानेके नियमोंका निरूपण होता है। वर्ण उस मूल-ध्वनिका नाम है जिसके खण्ड न हो सकें जैसे, अ, इ, क्, ख् इत्यादि।

हिन्दी वर्णमालामें ४४ वर्ण हैं जिनके दो भेद हैं, स्वर और व्यञ्जन। स्वर वही है जिसका उच्चारण आपे आप होता है और जो व्यञ्जनोंके उच्चारणमें सहायता पहुंचाता है। इस प्रकारके स्वर हिन्दीमें ११ हैं, यथा—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। व्यञ्जन वही वर्ण है जो विना स्वरकी सहायताके नहीं बोले जा सकते। क-से ले कर ह-तक ३३ व्यञ्जन हैं। व्यञ्जनोंमें दो वर्ण और हैं, अनुस्वार और विसर्ग। अनुस्वारका चिह्न स्वरके ऊपर एक बिंदी और विसर्गका चिह्न स्वरके आगे दो बिंदियां हैं, जैसे अं, अः।

अनुस्वार और विसर्ग शब्द देखो।

वर्णोंका उच्चारण और वर्गीकरण—मुखके जिस भागसे जिस अक्षरका उच्चारण होता है, उसे उस अक्षरका स्थान कहते हैं। स्थानभेदसे वर्णोंके नीचे लिखे अनुसार वर्ग होते हैं—

कण्ठ्य—जिनका उच्चारण कण्ठसे होता है अर्थात् अ, आ, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग।

तालव्य—जिनका उच्चारण तालुसे होता है अर्थात् इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य और श।

मूर्द्धन्य—जिनका उच्चारण मूर्द्धासे होता है अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष।

दन्त्य—जिनका उच्चारण ऊपरके दांतों पर जीभ लगानेसे होता है अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स।

ओष्ठ्य—जिनका उच्चारण ओठोंसे होता है जैसे, उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म।

अनुनासिक—जिनका उच्चारण मुख और नासिकासे होता है अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार।

कंठ तालव्य—जिनका उच्चारण कंठ और तालुसे होता है, जैसे ए, ऐ।

कंठोष्ठ्य—जिसका उच्चारण कंठ और ओठोंसे होता है, जैसे ओ और औ।

दंत्योष्ठ्य—जिनका उच्चारण दांतों और ओठोंसे होता है, जैसे व।

शब्द साधन।

शब्द साधन व्याकरणके उस विभागको कहते हैं जिसमें शब्दोंके भेद, रूपान्तर और व्युत्पत्तिका निरूपण किया जाता है।

शब्द उसीको कहते हैं, जो एक या अधिक अक्षरोंके मेलसे बना हो और जिसका कुछ अर्थ निकले, जैसे घोड़ा, किताब। परस्पर संबंध रखनेवाले दो या अधिक शब्दोंको जिनसे पूरी बात नहीं जानी जाती, वाक्यांश कहते हैं, जैसे पेड़से गिरा हुआ, सबका सब इत्यादि। एक पूर्ण विचार व्यक्त करनेवाला शब्दसमूह वाक्य कहलाता है, जैसे—विद्या विनय देती है, गाय घास खाती है, इत्यादि।

प्रयोगके अनुसार शब्दोंको भिन्न भिन्न जातियोंको शब्दभेद कहते हैं। शब्दोंको भिन्न भिन्न जातियां बताना उनका वर्गीकरण कहलाता है। शब्दके अर्थमें हेर फेर करनेके लिये उस शब्दके रूपमें जो हेर फेर होता है, उसे रूपान्तर कहते हैं। रूपान्तरके अनुसार शब्दोंके दो भेद होते हैं, विकारी और अविकारी। जिस शब्दके रूपमें कोई विकार होता है, उसे विकारी शब्द कहते हैं, जैसे—कुत्तासे कुत्ते, कुत्तों, कुत्ती। जिस शब्दके रूपमें कोई विकार नहीं होता, उसे अविकारी शब्द या अव्यय कहते हैं, जैसे—परन्तु, विना, हठात्। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया

विकारी शब्द हैं और क्रियाविशेषण, संबंधसूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द या अव्यय हैं।

विकारी शब्द संज्ञा—संज्ञा उसे कहते हैं जिससे किसी वस्तुका नाम सूचित हो, जैसे—घोड़ा, हिमालय, गंगा, बल। संज्ञाके तीन भेद हैं, जातिवाचक, व्यक्तिवाचक और भाववाचक।

जिस संज्ञासे सम्पूर्ण पदार्थों या उनके समूहोंका बोध होता है, उसे जातिवाचक कहते हैं, जैसे—मनुष्य, पहाड़, नदी।

जिस संज्ञासे एक ही पदार्थ या पदार्थोंके एक ही समूहका बोध होता है, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे—राम, काशी, गंगा।

जिस संज्ञासे पदार्थमें पाये जानेवाले किसी धर्मका बोध होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे—लंबाई, बुढ़ापा, चतुराई। भाववाचक संज्ञा अकसर तीन प्रकारके शब्दोंसे बनाई जाती है. जातिवाचक संज्ञासे, जैसे—लड़कपन, मित्रता, पण्डिताई। विशेषणसे, जैसे—गरमी, कठोरता, मिठास, क्रियासे, जैसे—घबराहट, सजावट, चढ़ाई।

सर्वनाम—सर्वनाम उस विकारी शब्दको कहते हैं जो किसी बदलाके बदलेमें आवे। जैसे—मैं, तुम, वह। हिन्दीमें सब मिला कर ११ सर्वनाम हैं जैसे—मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या। सर्वनामके तीन पुरुष होते हैं, उत्तम पुरुष मैं, हम, मध्यम-पुरुष तू, तुम, आप; अन्य पुरुष वह, वे, यह, सो, जो, कौन, क्या, कोई, कुछ। अपनेसे बड़े दरजेवाले मनुष्यके लिये 'तुम'के बदले 'आप' का प्रयोग शिष्ट और आवश्यक समझा जाता है। विशेष विवरण सर्वनाम शब्दमें देखो।

विशेषण—जिस विकारी शब्दसे संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित होती है, उसे विशेषण कहते हैं, जैसे—बड़ा, दयालु, भारी, इत्यादि। विशेषणके योगसे जिस संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित होती है, उस संज्ञाको विशेष्य कहते हैं, जैसे चतुर बालक, यहां चतुर विशेषण और बालक विशेष्य है। इसी प्रकार और जगह जानना होगा। विशेषणके मुख्य तीन भेद किये जाते हैं, सार्वनामिक विशेषण, गुणवाचक विशेषण और संख्यावाचक विशेषण।

सार्वनामिक विशेषण पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामोंको छोड़ कर शेष सर्वनामोंका प्रयोग विशेषणके समान होता है। जब ये शब्द अकेले आते हैं, तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है, तब ये विशेषण होते हैं। जैसे—'धोबी आया है, वह बाहर खड़ा है।" इस वाक्यमें 'वह' सर्वनाम है, क्योंकि वह 'धोबी' संज्ञाके बदलेमें आया है। 'वह धोबी नहीं आया' यहां 'वह' धोबी संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित करता है, अर्थात् उसका निश्चय बताता है।

गुणवाचकविशेषण—गुणवाचक विशेषणोंकी संख्या और सब विशेषणोंकी अपेक्षा अधिक रहती है। गुणवाचक विशेषणोंके साथ हीनताके अर्थमें 'सा' प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे—'बड़ा-सा पेड़', 'ऊंची-सी दीवार', इत्यादि।

संख्यावाचक विशेषणके तीन भेद हैं, निश्चित संख्यावाचक, अनिश्चित संख्यावाचक और परिमाण-बोधक।

निश्चित संख्यावाचक विशेषणोंसे वस्तुओंकी निश्चित संख्याका बोध होता है। जैसे—एक लड़का, दश रुपये।

जिस संख्यावाचक विशेषणसे किसी निश्चित संख्याका बोध नहीं होता, उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—एक दूसरा, सब, बहुत, कम।

परिमाण बोधक विशेषणोंसे किसी वस्तुकी नाप या तौलका बोध होता है, जैसे—और, सब, समूचा, कुछ, थोड़ा।

क्रिया—जिस विकारी शब्दके प्रयोगसे हम किसी वस्तुके विषयमें कुछ विधान करते हैं, उसे क्रिया कहते हैं जैसे सोता है, सोया, खाता है, खाया। क्रियाके दो भेद हैं, सकर्मक और अकर्मक।

जिस धातुसे सूचित होनेवाले व्यापारका फल कर्त्तासे निकल कर किसी दूसरी वस्तु पर पड़ता है, उसे सकर्मक धातु कहते हैं। जैसे—'बिल्ली चूहेको पकड़ती है' यहां क्रियाके व्यापारका फल 'बिल्ली' कर्त्तासे निकल

कर चूहे पर पडता है, इसलिये 'पकडती' है, क्रिया सकर्मक है।

जिस धातुसे सूचित होनेवाला व्यापार और उसका फल कर्त्ता ही पर पड़े, उसे अकर्मक धातु कहते हैं। जैसे 'लडका रोता है', यहां क्रियाका व्यापार और उसका फल 'लडका' कर्त्ता ही पर पडता है, इसलिये 'रोता है' क्रिया अकर्मक है। कोई कोई धातु प्रयोगके अनुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों होते हैं, जैसे, खुजलाना, लजाना, भूलना, घबराना, घिसना, बदलना, ऐंठना, ललचाना। जैसे हाथ खुजलाता है (अ०) वह मेरा बदन खुजलाता है (स०) इत्यादि।

देना, बतलाना, कहना, सुनाना और इन्हीं अर्थोंके दूसरे कई सकर्मक धातुओंके साथ दो दो कर्म रहते हैं। एकका नाम मुख्य कर्म और दूसरेका नाम गौणकर्म है। जिस कर्मसे बहुधा पदार्थका बोध होता है उसे मुख्य कर्म और जो बहुधा प्राणिवाचक होता है उसे गौणकर्म कहते हैं। जैसे, 'मा बच्चेको दूध पिलाती है' यहां 'मा' गौणकर्म और 'दूध' मुख्य कर्म है।

विशेष विवरण क्रिया शब्दमें देखो।

अव्यय—जिससे क्रियाकी कोई विशेषता जानी जाती है उसे क्रिया-विशेषण या अव्यय कहते हैं। जैसे, यहां, वहां, धीरे, अभी, बहुत, कम। क्रिया विशेषणोंका वर्गीकरण तीन आधारों पर हो सकता है, प्रयोग, रूप और अर्थ। प्रयोगके अनुसार क्रियाविशेषण तीन प्रकारके होते हैं, साधारण, संयोजक और अनुबद्ध।

जिन क्रियाविशेषणोंका प्रयोग किसी वाक्यमें स्वतंत्र होता है, उन्हें साधारण क्रिया-विशेषण कहते हैं। जैसे "हाय! अब तुम क्या करोगे, अरे! वह सांप कहां गया!"

जिनका सम्बंध किसी उपवाक्यके साथ रहता है, उन्हें संयोजक क्रिया विशेषण कहते हैं, जैसे 'जब लड़का ही चल बसा, तब मैं हो जीके क्या करूंगी।' जहां अभी समुद्र है, वहां पर किसी समय जंगल था।

अनुबद्ध क्रिया-विशेषण वे हैं जिनका प्रयोग अवधारणके लिये किसी भी शब्द भेदके साथ हो सकता है, जैसे, 'यह तो किसीने धोखा ही दिया है, मैंने उसे देखा तक नहीं।' विशेष विवरण अव्यय शब्दमें देखो।

शब्द-साधन।

संज्ञामें लिङ्ग, वचन और कारक होते हैं। संज्ञाके जिस रूपसे वस्तुकी जातिका अर्थात् पुरुष या स्त्रीका बोध होता है, उसे लिङ्ग कहते है। हिन्दीमें दो लिङ्ग होते हैं, पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग। जिस संज्ञासे पुरुषत्वका बोध होता है, उसे पुंलिङ्ग कहते हैं। जैसे, घोडा, बकरा, बैल। जिस संज्ञासे स्त्रीत्वका बोध होता है उसे स्त्रीलिङ्ग कहते हैं जैसे घोडी, बकरी, गाय।

हिन्दीमें लिङ्गका पूर्ण निर्णय करना कठिन है। उसके लिये व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते क्योंकि इनके लिये भाषाके निश्चित व्यवहारका आधार नहीं है, तथापि हिंदीमें लिङ्गनिर्णय दो प्रकारसे किया जा सकता है। (१) शब्दके अर्थसे और (२) उसके रूपसे। बहुधा प्राणिवाचक शब्दोंका लिङ्ग अर्थके अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दोंका रूपके अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दोंका लिङ्ग केवल व्यवहारके अनुसार माना जाता है।

जिन प्राणिवाचक संज्ञाओंसे जोडेका ज्ञान होता है उनमें पुरुषबोधक संज्ञाएं पुंलिङ्ग और स्त्रीबोधक स्त्रीलिङ्ग होती हैं, जैसे 'पुरुष, घोडा, मोर पुंलिङ्ग और घोडी, मोरनी स्त्रीलिङ्ग हैं।

हिन्दीमें अप्राणिवाचक शब्दोंका लिङ्ग जानना विशेष कठिन है, क्योंकि यह बात अधिकांशमें व्यवहारके अधीन है। अर्थ और रूप दोनो ही साधनोंसे इन शब्दोंका लिङ्ग जाननेमें कठिनाई होती है।

किसी किसी वैयाकरणने अप्राणिवाचक संज्ञाओंके अनुसार लिङ्ग निर्णय करनेके लिये कई नियम बनाये हैं। उनके मतानुसार ग्रहोंके नाम (पृथ्वीको छोड), धातुओंके नाम (चांदी, मिट्टी धातुको छोड), रत्नोंके नाम (मणि, चुन्नी, लालडीको छोड), पेडोंके नाम (नीम, इमली, कचनारको छोड), अनाजोंके नाम (मक्का, जुआर, मूंग, अरहरको छोड), द्रव्य-पदार्थोंके नाम (छाछ, स्याही, मसिको छोड), पुंलिङ्ग हैं और तिथियोंके नाम, नक्षत्रोंके नाम, किरानेके नाम (तेजपात और कपूरको छोड), भोजनोंके नाम (भात, रायता, हलुआ, मोहनभोगको छोड़) स्त्रीलिङ्ग हैं।

वर्णमालाके अक्षरोंमें इ, ई और ऋको छोड़ कर शेष शब्द पुंलिङ्ग हैं।

फिर ये सब संज्ञाएं पुंलिङ्ग हैं, (१) ऊनवाचक संज्ञाओंको छोड शेष आकारान्त संज्ञाएं, जैसे, कपड़ा, गन्ना, आटा। (२) जिन भाववाचक संज्ञाओंके अन्तमें ना, आव, पन, या पा होता है, जैसे, जाना, चढ़ाव, लड़कपन, बुढापा। (३) कृदन्तकी आनान्त संज्ञाएं, जैसे, लगान, नहान, उठान।

सब ईकारान्त संज्ञाएं स्त्रीलिङ्ग हैं, १ नदी, चिट्ठी, रोटी आदि (पानी, घी, जी, मोती, दही, मट्ठीको छोड) २ ऊनवाचक आकारान्त संज्ञाएं, जैसे पुडिया, कुडिया, खटिया, डिबिया। ३ तकारान्त संज्ञाएं, जैसे, रात, बात, लात, छत, भीत (भात, खेत, सूत, गात और दातको छोड), ४ ऊकारात संज्ञाएं, जैसे बालू, दारू, ब्यालू, झाडू (आसू, आलू, रतालू, टेसूको छोड), ५ अनुस्वारान्त संज्ञाएं, जैसे सरसों, खड़ाऊं, जोखो (कोदों, गेहूंको छोड), ६ सकारात संज्ञाएं, जैसे प्यास, मिठास, रास, सास (निकास और कांसको छोड) 'कृदन्तकी अकारान्त संज्ञाएं, जैसे लूट, मार, दौड, चमक, पुकार, (खेल, नाच, मेल, बिगाड, बोल और उतारको छोड) और ८ जिन भाववाचक संज्ञाओंके अन्तमे ट, वट या हट होता है, जैसे झझट, सजावट, घबराहट, आदि।

जिन उर्दू शब्दोंके अन्तमें 'आव' होता है, वे अकसर पुंलिङ्ग होते हैं जैसे गुलाब, जुलाब, जवाब, कबाब (परतु शराब, मिहराब, किताब, कमख्वाब, ताब, स्त्रीलिङ्ग हैं) जिनके अन्तमें 'आर' या 'आन' होता, वे भी पुंलिङ्ग हैं, जैसे बाजार, इकरार, इश्तिहार, इनकार, मकान, (दूकान, सरकार, तकरारको छोड)।

ईकारान्त उर्दू भाववाचक संज्ञाएं स्त्रीलिङ्ग होती हैं, जैसे, गरीबी, गरमी, सरदी, बीमारी, चालाकी, तैयारी, नवाबी। इसके सिवा शकारान्त (ताश, होशको छोड), तकारान्त (शरबत, वक्त, तख्त, दस्तखत, बदोबस्त, दरख्तको छोड) और आकारान्त उर्दू संज्ञाएं (सिर्फ दगाको छोड) भी स्त्रीलिङ्ग हैं।

वचन, कारक, काल, कृदन्त, समास आदिका विवरण इन्हीं सब शब्दोंमें सविस्तार लिखा जा चुका है, इस कारण यहा उनका विवरण नहीं किया गया।

विशेष विवरण व्याकरण शब्दमें देखो।

हिन्दी साहित्य—हिंदी भाषाका साहित्य।

हिन्दीभाषा देखो।

उत्तरभारतके विस्तृत और विशाल भूखडमें विगत हजार वर्षों से प्रचलित हिन्दी भाषाका साहित्य भारतकी जातीय और राष्ट्रीय आशाओं, आकांक्षाओं और स्थितियोंको जाननेका अद्वितीय साधन है। अपनी विशालता, विस्तार और व्यापकताके कारण ही नहीं, भारतकी सभ्यता और संस्कृति परम्पराकी रक्षाके करनेके कारण भी हिन्दी-साहित्यकी महिमा और महत्त्व अपार है। मानव-हृदयके सत्यं शिवं सुन्दरंकी अभिव्यञ्जनाके लिये और भारतके जातीय जीवनकी अभिव्यक्तिके लिये हिन्दी साहित्यके प्रयास स्तुत्य और अर्हणीय हैं। भारतकी प्राचीन आर्यसभ्यता और आर्यसंस्कृति हिन्दी-साहित्यके नवीन वस्त्राभूषण धारण कर नवीन रंग रूपमें विकसित हुई है और फूली फली है। अपने परिवर्तनशील और गतिशील जीवनका प्रतिबिंब देख कर आज भी सम्पूर्ण उत्तरापथका विशाल जनसमूह हिन्दी साहित्यका श्रेय स्वीकार करता है।

भारतीय साहित्यकी मूल रागिणी समूह-मुखी है, इस तथ्यको सदैव याद रखना चाहिये। हिन्दी साहित्य भी इसी परम्पराका पालन करता है। देशकालकी स्थितिके अनुरूप जनताकी चित्तवृत्तिका प्रतिबिंब हिन्दीमें आदिकालसे ही मिलता है। समूहकी ध्वनि जब जब बदली है—साहित्यमें भी परिवर्तन हुआ है। इस दृष्टिसे विद्वानोंने हिन्दी-साहित्यको प्रारम्भसे अब तक चार कालोंमें विभक्त किया है।

(१)	वीरगाथा काल	१०५०से १४०० तक।
(२)	भक्तिकाल	१४००से १७०० तक।
(३)	रीतिकाल	१७००से १८५० तक।
(४)	गद्यकाल	१८५०से अब तक।

निश्चय ही ये तिथियाँ ज्योतिष अथवा गणितकी तिथियोंकी तरह नितान्त अकाट्य नहीं हैं, फिर भी

हिन्दी साहित्यके सामान्य विवेचनमें ये सामान्यतः विद्वानों द्वारा स्वीकार कर ली गई हैं।

वीरगाथाकाल।

यह युग घोर राजनीतिक हलचल तथा अशान्तिका था। भारतके सिन्ध आदि पश्चिमीय प्रदेशों पर अरबोंके आक्रमण तो बहुत पहिलेसे प्रारंभ हो चुके थे और एक विस्तृत भूभाग पर उनका आधिपत्य भी बहुत कुछ स्थायी रीतिसे प्रतिष्ठित हो चुका था, परन्तु पीछे समस्त उत्तरापथ विदेशियोंसे पादाक्रान्त होने लगा और मुसलमानोंकी विजयवैजयन्ती लाहौर, देहली, मूलतान तथा अजमेर आदिमें फहराने लगी। महमूद गजनवीके आक्रमणोंका यही युग था और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने भी इसी कालमें भारत-विजयके लिये प्रयत्न किये थे। पहिले तो इस देश पर विदेशियोंके आक्रमण, स्थायी अधिकार प्राप्त करके शासन करनेके उद्देश्यसे नहीं, केवल यहांकी अतुल सम्पत्ति लूट ले जानेकी इच्छासे हुआ करते थे। महमूद गजनवीने इसी आशयसे सत्तरह बार चढ़ाई की थी और वह देशके विभिन्न स्थानोंसे विपुल सम्पत्ति ले गया था। परन्तु कुछ समयके उपरान्त आक्रमणकारियोंके लक्ष्यमें परिवर्त्तन हुआ, वे कुछ तो धर्मप्रचारकी इच्छासे और कुछ यहांकी सुख-समृद्धिशाली अवस्था तथा विपुल धन धान्यसे आकृष्ट हो कर इस देश पर अधिकार जमानेकी धुनमें लगे। यहांके राजपूतोंने उनके साथ लोहा लिया और वे उनके प्रयत्नोंको निष्फल करके उन्हें बहुत समय तक पराजित करते रहे, जिससे उनके पैर पहले तो जम नहीं सके, पर धीरे धीरे राजपूत-शक्ति अन्तःकलहसे क्षीण होती गई और अंतमें उसे मुस्लिम शक्तिके प्रबल वेगके आगे सिर झुकाना पड़ा।

राजनीतिक हलचलके इस भीषण युगमें देशकी सामाजिक स्थिति कितनी शोचनीय हो गई थी, इस पर कम लोग ध्यान देते हैं। जबसे गुप्त साम्राज्यका अंत हुआ था और देश अनेक छोटे छोटे टुकड़ोंमें बंट गया था, तबसे हर्षवर्द्धनके अस्थायी राजत्वकालके अतिरिक्त कई शताब्दियों तक सारे देशको एक सूत्रमें बांधनेका प्रयत्न हुआ ही नहीं। उलटे गृह-कलहकी निरंतर वृद्धि होती गई और विक्रमकी नवीं, दशवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियोंमें यह भीषण दोष अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। स्वयम्वरोंमें अपने अपने शौर्यका प्रदर्शन करना एक साधारण बात थी, कभी कभी तो अपना बल दिखलाने या मन बहलानेके लिये ही अकारण लड़ाई छेड़ दी जाती थी। विप्लवों और युद्धों आदिका यह अनंत क्रम समाजके लिए बहुत ही हानिकर सिद्ध हुआ। जो जीवन किसी समय ज्ञान-विज्ञानका मूल स्रोत तथा विविध कलाओंका आविर्भावक था, वह अविद्यांधकारमें पड़ कर अनेक अंधविश्वासोंका केन्द्र बन गया। जो लोग आसमुद्रकी क्षितीशोंके साम्राज्यमें सुख समृद्धिपूर्वक समय बिताते थे, वे अपनी रक्षा तक कर सकनेमें असमर्थ हो गये। सोमनाथ पर मुसलमानोंके आक्रमणका प्रतिकार न कर मन्दिरमें छिपे रहना और अनंगपालके हाथीके संयोगवश पीछे घूम पड़ने पर सारी सेनाका भाग खड़ा होना हिन्दुओंके तत्कालीन चरम पतनका सूचक है। यद्यपि अन्य स्थानोंमें प्रबल वीरता प्रदर्शित करनेके अनेक ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं, परन्तु फिर भी जो समाज अपना भला बुरा तक पहिचाननेमें असमर्थ हो जाता है और जो अपने विलासी तथा अदूरदर्शी शासकोंके ही हाथोंका पुतला बन जाता है उसका कल्याण कब तक हो सकता है। फल यह हुआ, कि साधारण जनता तो तत्कालीन नृपतियोंका आत्मार्पण करती गई और अपरिणामदर्शी नृपतियोंने घरमें ही वैर तथा फूटके बीज बोए जिनका कटु फल देश तथा जातिको अब तक भोगना पड़ रहा है।

देशके जिस भूभागमें जिस समय ऐसी अशांति तथा अंधकारका साम्राज्य छाया हुआ था, उसी भूभागमें लगभग उसी समय अपभ्रंश भाषाओंसे उत्पन्न हो कर हिन्दी-साहित्य अपना शैशवकाल व्यतीत कर रहा था। हिन्दीकी इस शैशवावस्थामें देशकी जैसी स्थिति थी, उसीके अनुरूप उसका साहित्य भी विकसित हुआ। भीषण हलचल तथा घोर अशांतिके उस युगमें वीरगाथाओंकी ही रचना संभव थी, साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति उस कालमें हो ही नहीं सकती थी। यह

तो साधारण बात है, कि जिस समय कोई देश लड़ाइयोंमें व्यस्त रहता है और जिस कालमें युद्धकी ही ध्वनि प्रधान रूपमें व्याप्त रहती है, उस कालमें वीरोल्लासिनी कविताओंकी ही गूंज देश भरमें सुनाई पड़ती है। उस समय एक तो अन्य प्रकारकी रचनाएं होती ही नहीं और जो थोड़ी बहुत होती भी हैं, वे सुरक्षित न रह सकनेके कारण शीघ्र ही कालकवलित हो जाती हैं। हिन्दीके आदि युगमें जो केवल वीररसकी कविताएं मिलती हैं, उसका यही कारण है।

यहां इस बातका भी उल्लेख कर देना आवश्यक होगा, कि तत्कालीन कविताकी रचना राजाओंके आश्रयमें ही हुई, अतः उसमें राजाश्रित कविताकी प्रायः सभी विशेषताएं मिलती हैं । यद्यपि उस कालके राजाओंकी नीति देशके लिये हितकर नहीं थी और उनके पारस्परिक विद्वेष तथा संघर्षसे जो अग्नि प्रज्वलित हुई, उसने देशकी स्वतन्त्रताको भस्म करके ही सांस लिया, तथापि राजाश्रित कवियोंकी वाणी अपने स्वामियोंके कीर्तिकथनमें कभी कुंठित नहीं हुई। उसका यह कार्य बराबर होता रहा। साराश यह है, कि उस समयके कवि प्रायः राजाओंको प्रसन्न रखने और उनके कृत्योंका अंध समर्थन करनेमें ही अपने जीवनकी साथकता समझ बैठे थे। देशकी स्थिति और भविष्यकी ओर उनका ध्यान ही न था । जिस समय कवियोंकी ऐसी हीन अवस्था हो जाती है और जिस समय कवितामें उच्च आदर्शोंका समावेश नहीं होता, उस समय देश और जातिकी ऐसी दुर्दशा अवश्यम्भावी हो जाती है। हिन्दीके आदियुगमें अधिकाश ऐसे ही कवि हुए जिन्हें समाजको संघटित तथा सुव्यवस्थित कर उसे विदेशीय आक्रमणोंसे रक्षा करनेमें समर्थ बनानेकी उतनी चिंता नहीं थी जितनी अपने आश्रयदाताओंकी प्रशंसा द्वारा स्वार्थसाधन करने की थी । यही कारण है, कि जयचंद जैसे नृपतियोंकी काल्पनिक वीरगाथाएं रचनेवाले कवि तो हुए पर सच्चे वीरोंकी पवित्र गाथाएं उस कालमें लिखी ही नहीं गईं और यदि लिखी भी गई हो तो अब उनका पता नहीं है।

इन राजाश्रित कवियोंकी रचनाओंमें न तो इतिहाससम्मत घटनाओंका ही अधिक उल्लेख मिलता है और न उच्च प्रकारके कवित्वका ही उन्मेष पाया जाता है। एक तो उस युगकी रचनाएं अब अपने मूल रूपमें मिलती ही नहीं और जो कुछ मिलती भी हैं, उनमें ऐतिहासिक तथ्यो से बहुत कुछ विभिन्नता पाई जाती है। जो कवि अपने अधिपतियोंको प्रसन्न करनेके लिये ही रचनाएं करेगा उसे बहुत कुछ इतिवृत्तकी अवहेलना करनी पड़ेगी, साथ ही उसकी कृतियोंमें हृदयके सच्चे भावोंका अभाव होनेके कारण उच्च कोटिके कवित्वका स्फुरण न हो सकेगा । जहां केवल प्रशंसा करना ही उद्देश रह जाता है, वहां इतिहासकी ओरसे दृष्टि हटा लेनी पड़ती है और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाको एक संकीर्ण क्षेत्रमें आबद्ध करना पड़ता है। इसी संकीर्ण क्षेत्रमें बहती बहती काव्यधारा परम्परागत हो गई जिससे भाट चारणोंकी जीविका तो चलती रही पर कविताके उच्च लक्ष्यका विस्मरण हो गया। पुरानी रचनाओंमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन करके और उसे नवीन रूपमें सुना कर राज-सम्मान पानेकी जो कुप्रथा चारणोंमें चली उससे कविता तो लक्ष्य-भ्रष्ट हो ही गई, साथ ही अनेक ऐतिहासिक विवरणोंका लोप भी हो गया। ग्रंथोंमें क्षेपक इतने अधिक बढ़ चले कि वे मूलसे भी अधिक हो गये और मूलका पता लगना भी असभव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया। यदि इस कुप्रथाका अंत हिंदीके भक्त कवियोंकी कृपासे न हो गया होता और कविताका सम्पर्क राजाश्रयसे हट कर जनसमूहकी हार्दिक वृत्तिसे न हो जाता, तो अब तक हिंदी कविताकी कितनी अधोगति हो गई होती, इसका सहजमें अनुमान किया जा सकता है। इस युगके कवियोंकी रचनाओंमें जहां तहां सच्चे राष्ट्रीय भावोंकी भी झलक देख पड़ती है। देशानुरागसे प्रेरित हो कर देशके शत्रुओंका सामना करनेके लिये वे अपने आश्रयदाताओंको केवल अपनी वाणी द्वारा प्रोत्साहित ही नहीं करते थे, वरन् समय पड़नेपर स्वयं तलवार हाथमें ले कर मैदानमें कूद पड़ते थे और इस प्रकार तलवार तथा कलम दोनोंको चलानेकी अपनी कुशलताका परिचय देते थे। कभी कभी ये कवि देशके अंतर्विद्रोहमें सहायक हो कर वाणीका दुरुपयोग भी करते थे, पर यह

उस कालकी एक ऐसी व्यापक विशेषता थी, कि कविगण उससे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते थे।

उस युगके कवियोंमें उच्च कोटिके कवित्वकी झलक भी मिलती है। यद्यपि जीवनके अनेक अंगोंकी व्यापक तथा गम्भीर व्याख्या तत्कालीन कवितामें नहीं पाई जाती, पर उन्होंने अपनी कृतियोंमें वीरोंके चरित्र-चित्रणमें नई नई रमणीय उद्भावनाओं तथा अनेक कोमल सूक्तियोंका सुंदर समावेश किया है। इस कालके कवियोंका युद्धवर्णन इतना मर्मस्पर्शी तथा सजीव हुआ है, कि उनके सामने पीछेके कवियोंकी अनुप्रासगर्भित किन्तु निर्जीव रचनाएं नकल सी जान पड़ती हैं।

हिन्दीमें वीर गाथाएं दो रूपोंमें मिलती हैं—कुछ तो प्रबन्ध काव्योंके रूपमें और कुछ वीरगीतोंके रूपमें। प्रबन्धके रूपमें वीर-कविता करनेकी प्रणाली प्रायः सभी साहित्योंमें चिरकालसे चली आ रही है।

पृथ्वीराजरासो—पृथ्वीराजरासो समस्त वीरगाथा युगकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना है। उस कालकी जितनी स्पष्ट झलक इस एक ग्रंथमें मिलती है, उतनी दूसरे अनेक ग्रंथोंमें नहीं मिलती। छंदोंका जितना विस्तार तथा भाषाका जितना साहित्यिक सौष्ठव इसमें मिलता है, अन्यत्र उसका अर्द्धांश भी नहीं दिखाई देता। पूरी जीवन गाथा होनेके कारण इसमें वीरगीतोंकी सी संकीर्णता तथा वर्णनोंकी एकरूपता नहीं आने पाई है, वरन् नवीनता-समन्वित कथानकोंकी ही इसमें अधिकता है। यद्यपि 'रामचरितमानस' अथवा 'पद्मावत'की भांति इसमें भावोंकी गहनता तथा अभिनव कल्पनाओंकी प्रचुरता उतनी अधिक नहीं है, परन्तु इस ग्रंथमें वीरभावोंकी बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है और कहीं कहीं कोमल कल्पनाओं तथा मनोहारिणी उक्तियोंसे इसमें अपूर्व काव्य चमत्कार आ गया है। रसात्मकताके विचारसे उसकी गणना हिन्दीके थोड़ेसे उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थोंमें हो सकती है। भाषाकी प्राचीनताके कारण यह ग्रंथ अब साधारण जनताके लिये दुरूह हो गया है। अन्यथा राष्ट्रोत्थानके इस युगमें पृथ्वीराजरासोकी उपयोगिता बहुत अधिक हो सकती थी।

वीर-गाथा-कालके प्रबंध काव्योंके रचयिताओंमें भट्ट केदारका जिसने जयचंद्रप्रकाश, मधुकरका जिसने जयमयंकजसचन्द्रिका, सारंगधरका जिसने हम्मीर काव्य और नल्हसिंहका जिसने विजयपालरासो लिखा है, उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकाशित होता है, कि इस प्रकारके काव्योंकी परम्परा बहुत दिनों तक चली थी, पर राजपूतानेमें इस प्रकारकी प्राचीन पुस्तकोंकी खोज न होने तथा अनेक ग्रन्थोंके उनके मालिकोंके मोह, अविवेक अथवा अदूरदर्शिताके कारण अंधेरी कोठरियोंमें बंद पड़े रहनेके कारण इस परंपराका पूरा पूरा इतिहास उपस्थित करनेकी सामग्रीका सर्वथा अभाव हो रहा है।

आल्हखण्ड—कुछ विद्वानोंने इसे चंदबरदाई कृत पृथ्वीराजरासोका ही एक खण्ड बतलाया है और इस दृष्टिसे इसे स्वतंत्र ग्रंथके रूपमें ग्रहण नहीं किया है, परन्तु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। पृथ्वीराजरासो तथा आल्हखण्डमें सबसे प्रधान भेद यह है, कि पहिला ग्रंथ दिल्लीके अधिपति पृथ्वीराजके दरबारी कविका लिखा होनेके कारण उसके कृत्योंको बहुत अधिक उत्कर्ष प्रदान करता है, परंतु आल्हखण्डमें यह बात नहीं पाई जाती। इस वीर गीतमें न तो पृथ्वीराजके चरित्रकी प्रधानता और न उसकी वीर कृतियोंकी प्रशंसा है। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि यह ग्रंथ प्राचीनरूपमें जगनिकका लिखा हुआ था जो महोबेके चंदेल शासक परमालके दरबारमें रहता था। यह चंदेल-शासक पृथ्वीराजका समकालीन और कन्नौजके अधिपति जयचंदका मित्र तथा सामंत था।

इस पुस्तकमें प्रधानतः आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) नामक वीर क्षत्रियों तथा साधारणतः उनके अनेक भाइयों और कुटुम्बियोंकी वीर-गाथाएं हैं। आल्हा और ऊदल बनाफर शाखाके क्षत्रियोंके वंशज थे और महोबेके तत्कालीन चंदेल अधिपति परमालके सामंतों तथा सेनापतियोंमें थे। यद्यपि परमाल अशक्त तथा भीरु शासक था परन्तु उसकी स्त्री मल्हना अपने वीर सामंतोंकी सहायतासे कई बार पृथ्वीराज तकके आक्रमणोंको विफल करनेमें समर्थ हुई थी। आल्हा, ऊदल, लाखन, सुलखे आदि वीर भ्राताओंकी धाक तत्कालीन छोटे छोटे राज्यों पर

तो थी ही, कन्नौज जैसे विस्तृत साम्राज्यका अधिपति जयचन्द भी उनकी वीरताके आगे सिर झुकाता था। आल्हखण्डके वीर-गीतोंमें इन्हीं वीर भ्राताओंके अनेक विवाहों तथा प्रायः वावन लडाइयोंका वर्णन है। उस समयकी कुछ ऐसी स्थिति हो गई थी कि प्रत्येक विवाहमें वीर क्षत्रियोंके लिये अपनी वीरताका प्रदर्शन करना आवश्यक होता था और कन्यापक्षवालोंको पराजित करने पर ही उन्हें कन्यासे विवाह करनेका अधिकार मिलता था। यद्यपि इस पुस्तकमें युद्धोंका जितना विशाल रूप प्रदर्शित किया गया है, उसमें वहुत कुछ अतिशयोक्ति भी है, परन्तु यह निश्चित है, कि महोवेके इन वीर सर्दारोंने सफलतापूर्वक अनेक युद्ध किये थे और उनमें विजयी हो कर उन्होंने राजकन्याका अपहरण भी किया था। पुस्तकके अंतमें अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित होता है। सव वीर वनाफर युद्धमे मारे जाते हैं, उनकी रानियां सती होनेके लिये अग्निकी शरण लेती हैं और वचे हुए केवल दो व्यक्ति आल्हा और उसका पुत्र इन्दल गृह परित्याग कर, किसी कजरी वनमें जा वसते हैं। इस कजरीवनका ठीक ठीक पता अभी तक नहीं लग सका है। यह कोई कविकल्पित स्थान जान पडता है जिससे निर्जनता तथा अन्धकारकी व्यंजना होती है।

इस वीर-गीतमें अनेक युद्धोंका वर्णन वहुत कुछ एक ही प्रकारसे हुआ है, साथ ही इसमें अनेक भौगोलिक अशुद्धियां भी पाई जाती हैं, परन्तु साधारण पाठकोंके लिये इसके वर्णनोंमें वडा आकर्षण है। यद्यपि इसमें साहित्यिक गुणोंकी वहुत कुछ न्यूनता पाई जाती है, पर उत्तर भारतके प्रायः सभी प्रदेशोंमें इसका प्रचार है। इसमें वर्णित युद्धोंकी भयानकता यद्यपि वहुत कुछ वढ़ा चढ़ा कर अङ्कित की गई है, परन्तु युद्ध अवश्य हुए थे और उनमें वीर वनाफरोंकी अनेक वार विजय भी हुई थी। यद्यपि जगनिककृत आल्हाखण्ड अव अपने पूर्वरूपमें नहीं मिलता और उसके आधुनिक संस्करणोंमें भाषाकी नवीनता तथा घटनाओंका प्रक्षेप प्रत्यक्ष देख पडता है फिर भी यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

अमीर खुसरो—जिस प्रकार चंद वरदाई आदि वीरगाथाकारोंकी रचनामें तत्कालीन हिंदू मनोवृत्तिका परिचय मिलता है और हिन्दुओंके राजदरवारोंकी अवस्थाका अभिज्ञान होता है, उसी प्रकार अमीर खुसरोकी रचनाओंमें हम मुसलमानोंके उन मनोभावोंकी झलक पाते हैं जो उनके इस देशमें आ कर वस जानेके उपरान्त यहांकी परिस्थितिसे प्रभावान्वित हो कर तथा यहांकी आवश्यकताओंका ध्यान रख कर उत्पन्न हुए थे। इस विचारसे यद्यपि हम खुसरोकी कृतियोंमें साधारण जनताकी चित्तवृत्तियोंकी छाप नहीं पाते परंतु तत्कालीन स्थितिसे परिचित होनेके लिये हमें उनकी उपयोगिता अवश्य स्वीकृत करनी पड़ेगी। भाषाके विकासकी दृष्टिसे खुसरोकी मसनवियों तथा पहेलियोंका और भी अधिक महत्त्व है। खुसरो द्वारा प्रयुक्त खड़ी वोलीके शुद्ध भारतीय स्वरूपमें अरव और पारसके शब्दोंकी भरमार करके आज कलके कृत्रिम उर्दू वोलनेवाले जव आधुनिक हिंदीको उर्दूसे उत्पन्न वतलाने लगते हैं, तव उनके भ्रम निवारणार्थ खुसरोकी रचनाओंका जो सहारा लेना पडता है वह तो है ही, भारतीय भाषा शास्त्रके एक अंगकी पूर्तिके लिये उपकरण वन कर सहायता देनेमें भी उनकी कृतियोंने कम काम नहीं किया है।

परंतु खुसरोकी कविताका वास्तविक रहस्य समझानेके लिये हमको तत्कालीन कलाओं पर भी ध्यान देना होगा। उनकी कुछ रचनाएं पारसीमें और कुछ हिन्दीमें पाई जाती हैं और कुछ रचनाओंमें मिश्रित भाषाका प्रयोग दिखाई देता है। जव हम उस समयकी वास्तुकला और संगीतकला पर ध्यान देते हैं तो उनमें हिन्दू और मुसलमान आदर्शोंका मेल पाते हैं। ऐसा जान पड़ता है, कि उस समय हिन्दू मुसलमानोंमे परस्पर वहुत कुछ आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि साहित्यमें हिन्दीके वीरगाथाकाल तक अपनी पूर्व परम्पराका परित्याग नहीं पाया जाता, परन्तु यहांकी भाषामें वहुत कुछ विदेशीय शब्द आने लगे थे। अमीर खुसरोने अपना "खालिकवारी" कोष तय्यार करके भाषाके आदान-प्रदानमें वहुत वडी सहायता पहुंचाई थी। उसके कुछ काल उपरान्त साहित्यमें भावोंका आदान-प्रदान भी आरंभ हुआ। इस प्रकार हम खुसरोकी कवितामें युग प्रवर्त्तनका वहुत कुछ पूर्वाभास पाते हैं।

भक्तिकाल ।

संतकवि—प्रसिद्ध वीरशिरोमणि हम्मीरदेवके पतनके बाद हिन्दीसाहित्यमें वीरगाथाओंकी रचना शिथिल पड़ गई थी। कबीर आदि संत कवियोंके जन्मके समय हिन्दू जातिकी यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवादके लिए बहुत ही उपयुक्त थी। यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसका रुकना कदाचित् कठिन हो जाता। परंतु कबीर आदिने बड़े ही कौशलसे इस अवसरसे लाभ उठा कर जनताको भक्तिमार्गकी ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभावका प्रचार किया। प्रत्येक प्रकारकी भक्तिके लिये जनता इस समय तैयार नहीं थी। मूर्तियोंकी अशक्तता वि० सं० १०८१में बड़ी स्पष्टतासे प्रकट हो चुकी थी, जब कि महमूद गजनवीने आत्मरक्षामें विरत, हाथ पर हाथ रखे हुए श्रद्धालुओंके देखते देखते सोमनाथका मंदिर नष्ट करके उनमेंसे हजारोंको तलवारके घाट उतारा था और लूटमें अपना धन प्राप्त किया था। गजेन्द्रकी एक ही टेर सुन कर दौड़ आनेवाले और ग्राहसे उसकी रक्षा करनेवाले सगुण भगवान् जनताके घोरसे घोर संकट कालमें भी उसकी रक्षाके लिए आते हुये न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनताको सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव था। पंढरपुरके भक्त-शिरोमणि नामदेवकी सगुण भक्ति जनताको आकृष्ट न कर सकी। लोगोंने उसका वैसा अनुसरण न किया जैसा आगे चल कर कबीर आदि संत कवियोंका किया और अंतमें उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्तिकी ओर झुकना पड़ा। उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्मकी भक्तिके ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुणकी शक्तिका भली भांति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभासमात्र मिल सकता था। पर प्रबल जलधारामें बहते हुए मनुष्यके लिये वह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस कामकी जो उसकी रक्षाके लिये तत्परता न दिखलावे? उसकी ओर बह कर आता हुआ तिनका भी जीवनकी आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसीका सहारा पानेके लिए वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। संत कवियोंने अपनी निर्गुण भक्तिके द्वारा भारतीय जनताके हृदयमें यही आशा उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्तिकी इस अथाह जलराशिके ऊपर बने रहनेकी उत्तेजना दी। यद्यपि सहायताकी आशासे आगे बढ़े हुए हाथको वास्तविक सहारा सगुण भक्तिमें ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लगा कर सर्वथा निरापद कर सकी, पर इससे जनता पर होनेवाले कबीर, दादू, रैदास आदि संतोंके उपकारका महत्त्व कम नहीं हो जाता। कबीर यदि जनताको भक्तिकी ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार आंखें मूंद करके सूर तुलसीको ग्रहण कर लेते? सारांश यह कि संत कवियोंका आविर्भाव ऐसे समयमें हुआ जब मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पीड़ित भारतीय जनताको अपने जीवित रहनेकी आशा तक नहीं रह गई थी और न उसमें अपने आपको जीवित रखनेकी इच्छा ही शेष थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तनके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था। यद्यपि धर्मशील तत्त्वज्ञोंने सगुण उपासनासे आगे बढ़ते बढ़ते निर्गुण उपासना तक पहुंचनेका सुगम मार्ग बतलाया है और वास्तवमें यह तत्त्व युक्तिसंगत भी जान पड़ता है, पर उस समय जनताको सगुण उपासनाकी निःसारताका परिचय मिल चुका था और उस परसे उसका विश्वास भी उठ चुका था। अतएव कबीरको अपनी व्यवस्था उलटनी पड़ी। मुसलमान भी निर्गुणोपासक थे। अतएव उनसे मिलते जुलते पथ पर लगा कर कबीर आदिने हिन्दू जनताको संतोष और शांति प्रदान करनेका उद्योग किया। यद्यपि इस उद्योगमें उन्हें पूरी पूरी सफलता नहीं हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीरके निर्गुणवादने तुलसी और सूरके सगुणवादके लिये मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरीय भारतके भावी धर्ममय जीवनके लिये उसे बहुत कुछ संस्कृत और परिष्कृत कर दिया। कबीर देखो।

जिस समय निर्गुण संत कवियोंका आविर्भाव हुआ था, वह समय ही भक्तिकी लहरका था। उस लहरको बढ़ानेके प्रबल कारण प्रस्तुत थे। भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवादके भेदकी ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनोंके विचित्र मिश्रणके रूपमें निर्गुण

भक्तिमार्ग चल पड़ा। रामानन्दके बारह शिष्योंमेंसे कुछ इस मार्गके प्रवर्त्तनमें प्रवृत्त हुए जिनमेंसे कबीर प्रमुख थे। शेषमें सेना, धन्ना, भवानंद, पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा जितना कबीरका।

मुसलमानोंके आगमनसे हिन्दू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा। पददलित शूद्रोंकी दृष्टिका उन्मेष हो गया। उन्होंने देखा कि मुसलमानोंमें द्विजों और शूद्रोंका भेद नहीं है। सहधर्मी होनेके कारण वे सब एक हैं, उनके व्यवसायने उनमें कोई भेद नहीं डाला है, न उनमें कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अतएव इन दुरराए हुए शूद्रोंमेंसे कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्योंकी एकता उद्घोषित करनेका विचार किया। इस नवोत्थित भक्तितरंगमें सम्मिलित होनेके कारण हिन्दू समाजमें प्रचलित भेद भावके विरुद्ध आन्दोलन होने लगा। रामानन्दजीने सबके लिये भक्तिका मार्ग खोल दिया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाजकी नीची श्रेणीके ही थे पर उनका नाम आज तक आदरसे लिया जाता है।

शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे देखने पर भी हम संत कवियोंका एक विशेष स्थान पाते हैं। यह ठीक है कि बिहारी और केशव आदिकी-सी भाषाकी प्रांजलताका अभिमान ये कवि नहीं कर सकते और न सूर, तुलसीकी सरसता और व्यापकता ही इनकी कवितामें पाई जाती है। जायसीने प्रकृतिके नाना रूपोंके साथ अपने हृदयकी जैसी एकरूपता दिखायी है अनेक निर्गुण संत कवि उतनी सफलतासे वह नहीं दिखा सके। यह सब होते हुए भी इन कवियोंका स्थान हिन्दीसाहित्यमें अत्यंत उत्कर्षपूर्ण तथा उच्च समझा जायगा। भाषाकी प्राजलता कम होते हुए भी उसमें प्रभावोत्पादकता बहुत है और उनकी तीव्रतासे भावोंमें व्यापकताकी बहुत कुछ कमी हो जाती है। उनके संदेशोंमें जो महत्ता है उनके उपदेशोंमें जो उदारता है, उनकी सारी उक्तियोंमें जो प्रभावोत्पादकता है, वह निश्चय ही उच्च कोटिकी है। कविताके लिये उन्होंने कविता नहीं की है।

अब हम कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध संत कवियोंकी वैयक्तिक विशेषताओंका संक्षेपमें उल्लेख करते हैं।

अब तकके अनुसंधानोंके अनुसार महात्मा कबीरदासका जन्म संवत् १४५६ और मृत्यु-संवत् १५७५ माना जाता है। यद्यपि निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, फिर भी सब बातों पर विचार करनेसे इस मतके ठीक होनेकी अधिक संभावना है कि ये ब्राह्मणी या किसी हिन्दू स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न और मुसलमान परिवारमें लालित पालित हुए। कदाचित् उनका बाल्यकाल मगहरमें बीता था और वे पीछेसे काशीमें आ कर बसे थे जहांसे अन्तकालके कुछ पहले उन्हें पुनः मगहर जाना पड़ा हो। प्रसिद्ध स्वामी रामानन्दको इन्होंने अपना गुरु स्वीकार किया था। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि उनके गुरु शेख तकी नामक कोई सूफी मुसलमान फकीर थे। धर्मदास और सुरत गोपाल नामके उनके दो चेले हुए। कबीरकी मृत्युके पीछे धर्मदासने छत्तीसगढ़में कबीरपंथकी एक अलग शाखा चलाई और सुरत गोपाल काशीवाली शाखाकी गद्दीके अधिकारी हुए।

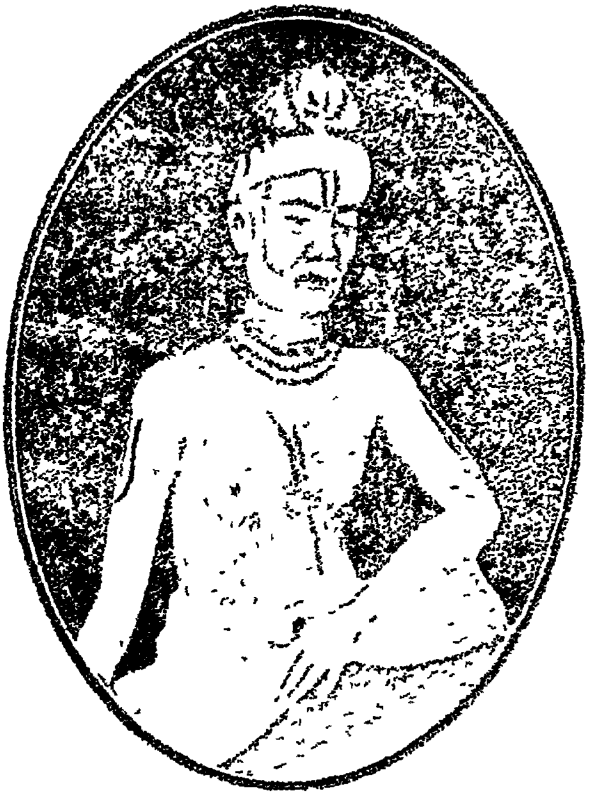

कबीर।

कबीरके साथ प्रायः लोईका नाम भी लिया जाता है। सम्भवतः लोई उनकी पत्नी और कमल उनका पुत्र था।

कबीर बहुश्रुत थे। उनको सत्संगसे वेदान्त, उपनिषदों और पौराणिक कथाओंका थोड़ा ज्ञान हो गया था, परन्तु वेदोंका उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। कबीरदास सरल जीवनके पक्षपाती तथा अहिंसाके समर्थक थे। उन्होंने शाक्तोंकी बड़ी निंदा की है।

जैसे कबीरका जीवन संसारसे ऊपर उठा हुआ था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटिसे ऊंचा है। कबीरदास छन्दशास्त्रसे अनभिज्ञ थे, यहां तक कि वे दोहोंको भी पिंगलकी खराद पर न चढ़ा सके। मात्राओंके घट बढ़ जानेकी चिंता उनके लिये व्यर्थ थी परन्तु साथ ही कबीरमें प्रतिभा थी, मौलिकता थी।

कबीरकी भाषाका निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीरकी रचनामें कई भाषाओंके शब्द मिलते हैं परन्तु भाषाका निर्णय प्रायः शब्दोंसे नहीं होता।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, इसीसे उन पर बाहरी प्रभाव बहुत अधिक पड़े। भाषा और व्याकरणकी स्थिरता उनमें नहीं मिलती। यह भी संभव है कि उन्होंने जान-बूझ कर अनेक प्रान्तोंके शब्दोंका प्रयोग किया हो।

कबीर ही हिन्दीके सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि हुए। सभी संत कवियोंमें थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है, पर उनका काव्य विशेषकर कबीरका ही ऋणी है। बंगालके वर्तमान कवीन्द्र रवीन्द्रको भी कबीरका ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। हिन्दीकी वर्तमान काव्य प्रगतिमें भी कबीरके रहस्यवादकी छाप देख पड़ती है।

कबीर पहुंचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियोंकी नक़ल नहीं था और न वह सुनी सुनाई बातोंका बेमेल भंडार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं, परन्तु सत्संगसे भी जो बातें मालूम हुईं उन्हें वे अपनी विचारधाराके द्वारा मानसिक पाचनसे सर्वथा अपनी ही बना लेनेका प्रयत्न करते थे। कबीर देखो।

गुरु नानक—प्रसिद्ध सिक्ख सम्प्रदायके संस्थापक तथा प्रथम गुरु नानकजी जातिके खत्री थे। इनके पिता कालूचन्द खत्री लाहौरके निवासी थे। इन्होंने प्रारम्भमें वैवाहिक जीवन व्यतीत किया था और इन्हें श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामके दो पुत्र भी हुए थे। गुरु नानकने घर बार छोड़ कर जब संन्यास ग्रहण किया, तब कहा जाता है कि उनकी भेंट महात्मा कबीरसे हुई थी। कबीरके उपदेशोंका उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था। उनके ग्रंथ साहबमें कबीरकी वाणी भी सङ्गृहीत है। नानकजी पञ्जाबके निवासी थे और पञ्जाब मुसलमानोंका प्रधान केन्द्र था। इसलाम धर्म और हिन्दू धर्मके संघर्षके कारण पञ्जाबमें जो अशान्ति फैलनेकी आशङ्का थी, नानकजीने उसे दूर करनेका सफल प्रयास किया। उनकी वाणीमें हिन्दू और मुसलमान विचारोंका मेल प्रशंसनीय रीतिसे हुआ है।

गुरु नानक।

कबीरकी ही भांति नानक भी अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, पर साधुओंके संसर्ग तथा पर्यटनके अनुभवसे नानकके उपदेशोंमें एक प्रकारकी विशेष प्रतिभा तथा प्रभा

वोत्पादकता पाई जाती है। यह ठीक है कि काव्यकी कृत्रिम दृष्टिसे नानककी कविता साधारण कोटिकी ही समझी जायगी, परन्तु कलामें जो स्वाभाविकता तथा तीव्रता अपेक्षित होती है, नानकमें उसकी कमी नहीं है। नानकके पद प्रसिद्ध सिक्ख 'ग्रंथ साहब'में एकत्र किये गये हैं। यह ग्रंथ सिक्खोंका धर्मग्रन्थ है और अत्यन्त पूज्य दृष्टिसे देखा जाता है। नानक देखो।

दादू—दादूदयालका जन्मसंवत् १६०१में गुजरातके अहमदाबाद नामक स्थानमें बतलाया जाता है। इनकी जातिका ठीक ठीक पता नहीं चलता। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण बतलाते है और कुछ इन्हें मोची या धुनिया मानते हैं। सम्भवतः ये नीची जातिके ही थे। ये स्पष्टतः कबीरके शिष्य तो नहीं थे, पर इन्होंने अपने सभी सिद्धातोंको कबीरसे ही ग्रहण किया है। दादूका एक अलग सम्प्रदाय चला था और अब भी अनेक दादूपंथी पाये जाते हैं। इनकी मृत्यु जयपुर प्रान्तके अन्तर्गत भराने-की पहाडी नामक स्थानमें हुई थी और यही स्थान अब तक दादूपंथियोंका मुख्य केंद्र बना हुआ है।

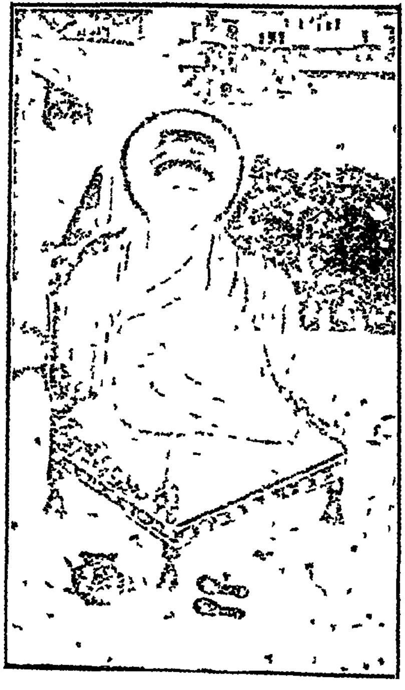

दादू दयाल।

दादूका प्रचारक्षेत्र अधिकतर राजपूताना तथा उसके आस-पासका प्रांत था, अतः उनके उपदेशोंकी भाषामें राजस्थानोंका पुट पाया जाता है। संत कवियोंकी भांति दादूने भी साखिया तथा पद आदि कहे हैं जिनमें सतगुरुकी महिमा, ईश्वरकी व्यापकता, जाति पातिकी अवहेलना आदिके उपदेश दिये गये हैं। इनकी वाणीमें कबीरकी वाणीसे सरसता तथा तत्त्व अधिक है, यद्यपि वे कबीरके समान प्रतिभाशाली नहीं थे। कबीर तर्क-प्रिय थे; अतः उन्हें तार्किककी-सी कठोरता भी धारण करनी पडी थी, परन्तु दादूने हृदयकी सच्ची अनुभूतियों-का ही अभिव्यञ्जन किया है। इनकी मृत्यु संवत् १६६० में हुई थी। आरम्भकालके संत कवियोंमें ये पढे लिखे जान पडते हैं। दादू दयाल देखो।

मलूकदास औरङ्गजेबके समकालीन निर्गुण भक्त-कवि थे। "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम" वाला प्रसिद्ध दोहा इन्हींकी रचना है। इनकी भाषा साधारण संत कवियोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध और संस्कृत होती थी और इनको छन्दोंका भी ज्ञान था। रत्नखान तथा ज्ञानबोध नामकी इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं जिनमे वैराग्य तथा प्रेम आदिकी मनोहर वाणी व्यक्त की गई है। एक सौ साठ वर्षकी अवस्थामें सं० १७३६में इनकी मृत्यु हुई थी। ये कडा जिला इलाहाबादके निवासी थे।

इन संत कवियोंमें सबसे अधिक विद्वान् तथा पण्डित कवि सुन्दरदास हुए। सुन्दरदास दादू दयालकी शिष्य-परम्परामें थे। इनका अध्ययन विशेष विस्तृत था। इन्होने काशीमें आ कर शिक्षा प्राप्त की थी। सुंदरदासकी भाषा शुद्ध काव्य भाषा है और उनकी वाणीमें उनके उपनिषदों आदिसे परिचित होनेका पता चलता है, परंतु कबीर आदिकी भांति उनमें स्वभावसिद्ध मौलिकता तथा प्रतिभा अधिक नहीं थी, इससे उनका प्रभाव भी विशेष नही पडा। सुंदरदासके अतिरिक्त संतोंमें अक्षर अनन्य, धर्मदास, जगजीवन आदिका नाम भी लिया जाता है, साथ ही तुलसी साहब, गोविंद साहब, भीखा साहब, पलटू साहब आदि अनेक संत हुए जिनमेंसे अधिकांशका साहित्य पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। परंतु संतोंकी परम्पराका अंत नहीं हो गया और न्यूनाधिक रूपमें वह बराबर चलती रही और अब तक चली जा रही है।

यद्यपि साहित्यिक समीक्षामें निर्गुण संत कवियोंको

उच्चतम स्थान नहीं दिया जाता, पर इससे हम उनके किये हुए उपकार नहीं भूल सकते। मुसलमान और हिंदू संस्कृतियोंके उस संघर्ष कालमें जिस शांतिमयी वाणीकी आवश्यकता थी, संतोंने उसीकी अभिव्यञ्जना की। अब भी हिंदीके प्रधान कवियोंमें कबीर आदिका उच्च स्थान है और प्रचारकी दृष्टिसे तो महात्मा तुलसीदासके बाद इन्हींका नाम लिया जायगा। इसमें संदेह नहीं कि इस युगमें इन संत महात्माओंके कारण हिंदी-साहित्यका बड़ा उपकार हुआ।

सुन्दरदास।

प्रेमगाथा या सूफी कवि—कबीर आदि संतोंकी वानी अटपटी है। उसमें ब्रह्मकी निराकार उपासनाका उपदेश दिया गया है और वेदों और पुराणोंकी निंदा करके एक प्रकारके ईश्वरहित सरल सदाचारपूर्ण धर्मकी स्थापनाका लक्ष्य रखा गया है। राम और रहीमको एक ठहराकर हिन्दू तथा मुसलमान मतोंका अद्भुत मेल मिलाया गया है। इसी प्रकार हिंसा और मांसभक्षणका खंडन कर नमाज और पूजाका विरोध करके इन संतोंने किस मार्गका अनुसरण किया किसका नहीं, यह साधारण जनताकी समझमें नहीं आ सकता था। फिर भी कबीर आदिका देशके साधारण जन समुदाय पर जो महान् प्रभाव पड़ा, वह कहने सुननेकी बात नहीं है। वे संत पढ़े लिखे न थे, उनकी भाषामें साहित्यिकता न थी, उनके छंद ऊटपटांग थे तथापि उन्हें जनताने स्वीकार किया और उनकी विशेष प्रसिद्धि हुई। इसके विपरीत सूफी कवियोंके उद्गार अधिकतर शृंखलित और शास्त्रानुमोदित थे। उनकी भाषा भी अच्छी मंजी हुई थी और छंद आदिका भी उन्हें ज्ञान था। इन कवियोंकी संख्या भी कम न थी। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि देशमें सूफी कवियोंकी न तो अधिक प्रसिद्धि ही हुई और न उनका अधिक प्रचार ही हुआ। इनमेंसे अनेक कवि तो नामावशेष ही थे और कठिनाईसे उनके ग्रन्थोंका पता लगा है। संभवतः साहित्यिक समाजमें भी इन कवियोंका विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान कभी नहीं माना गया। इनकी कविताओंके उदाहरण न तो लक्षण ग्रंथोंमें मिलते हैं और न धार्मिक संग्रहोंमें ही उन्हें स्थान दिया गया है। संभवतः सूफियोंकी रहस्योन्मुख भावनाएं इस देशकी जलवायुके उतनी भी अनुकूल नहीं थी जितनी कबीर आदिकी अटपटी और अव्यवस्थित वाणी थी।

प्रेमाख्यानक सूफी कवियोंकी परंपरा हिन्दीमें कुतबनके समयसे चली। कुतबन शेरशाहके पिता हुसैन शाहके आश्रित थे और चिश्ती वंशके शेख बुरहानके शिष्य थे। इनके प्रेमकाव्यका नाम मृगावती है जो इन्होंने सन् ९०९ हिजरीमें लिखा था। चंद्रनगरके अधिपति गणपतिदेवके राजकुमार तथा कांचननगरकी राजकुमारी मृगावतीकी प्रेमगाथा इसमें अंकित की गई है। प्रेममार्गके कष्ट तथा त्याग आदिका वर्णन करते हुए कुतबनने अज्ञातकी प्राप्तिके कष्टोंका आभास दिया है। मृगावतीके उपरान्त दूसरी प्रेमगाथा मधुमालती लिखी गई जिसकी एक खण्डित प्रति खोजमें मिली है। इसके रचयिता मंझन बड़े ही सरस हृदय कवि थे। इन्होंने प्रकृतिके दृश्योंका बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है और उन दृश्योंके द्वारा अज्ञातकी ओर बड़े ही मधुर संकेत किए हैं। प्रेमगाथाकारोंमें सबसे प्रसिद्ध कवि जायसी हुए जिनका पदुमावत काव्य हिन्दीका एक जगमगाता रत्न है। इस काव्यमें कविने ऐतिहासिक तथा

काल्पनिक कथानकोंके संयोगसे बड़ी ही रोचकता ला दी है। इसमें मानव-हृदयके उन सामान्य भावोंके चित्रणमें बड़ी ही उदारता तथा सहानुभूतिका परिचय दिया गया है जिनका देश और जातिकी संकीर्णताओंसे कुछ भी संबंध नहीं। प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करते हुए कविकी तन्मयता इतनी बढ़ जाती है कि वह अखिल दृश्य जगत्‌को एक निरंजन ज्योतिसे आभासित पाता और आनंदातिरेकके कारण उसके साथ तादात्म्यका अनुभव करता है। जायसीके उपरान्त उसमान, शेख नबी, नूर मुहम्मद आदि अनेक प्रेमगाथाकार हुए पर पद्मावतका-सा विशद काव्य फिर नहीं लिखा गया। सगुणोपासक तुलसी, सूर आदि भक्त कवियोंके आविर्भावसे प्रेमगाथाकारोंकी शक्ति बहुत कुछ क्षीण पड़ गई थी।

उपर्युक्त प्रेमगाथाओंमें बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं। एक तो इनकी रचना भारतीय चरितकाव्योंकी सर्गबद्ध शैलीमें न हो कर पारसीकी मसनवियोंके ढंग पर हुई है। जिस प्रकार पारसीकी मसनवियोंमें ईश्वर-वन्दना, मुहम्मद साहबकी स्तुति, तत्कालीन राजाकी प्रशंसा आदि कथारंभके पहले होते थे, उसी प्रकार इनमें भी है। प्रेमगाथाओंकी भाषा भी प्रायः एक-सी है। यह भाषा अवध प्रांतकी है। इन प्रेमकी पीरके कवियोंका प्रधान केन्द्र अवधकी भूमि ही थी। छंदोंके प्रयोगमें भी इस समुदायके कवियोंमें समानता पाई जाती है। सबने प्रायः दोहों और चौपाइयोंमें ही ग्रंथरचना की है। ये छंद अवधी भाषाके इतने उपयुक्त हैं, कि महाकवि तुलसीदासने भी अपने प्रसिद्ध रामचरितमानसमें इन्हीं छंदोंका प्रयोग किया है। चौपाई छंद तो मानों अवधी भाषाके लिये ही बनाया गया हो; क्योंकि व्रजभाषा कवियोंने इस छन्दका सफलता-पूर्वक उपयोग कभी किया ही नहीं। समताकी अंतिम बात यह है, कि प्रेमगाथाकार सभी कवि मुसलमान थे। एक तो यह संप्रदाय ही मुसलमानोंके सूफी मतको ले कर खड़ा हुआ था। दूसरे हिन्दू कवियोंमें उसी समयके लगभग सगुणोपासना चल पड़ी और वे व्यक्तके भीतर अव्यक्तका रहस्यमय साक्षात्कार करनेकी अपेक्षा व्यक्तको ही सब कुछ मानने और अवतार रूपमें राम और कृष्णकी जीवन गाथा अंकित करनेमें प्रवृत्त हुए। मुसलमान प्रारंभसे ही मूर्तिद्वेषी थे। अतः उन्हें सूफियोंकी शैलीके प्रचारका विशेष सुभीता था।

प्रेममार्गी सूफी कवियोंने प्रेमका चित्रण जिस रूपमें किया है उसमें विदेशीयता ही नहीं है, भारतीय शैलियोंका भी प्रभाव है। एक तो इस देशकी रीतिके अनुसार नायक उतना प्रेमोन्मुख नहीं होता जितनी नायिका होती है, परन्तु जायसी आदिने पारसीकी शैलीका अनुसरण करते हुए नायकको अधिक प्रेमी तथा प्रेमपात्रकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील दिखाया है। वास्तवमें इन कवियोंका प्रेम ईश्वरोन्मुख था। सूफी अपने प्रियतम ईश्वरकी कल्पना स्त्रीके रूपमें करते थे। इसलिये जायसी आदिके भी नायकके प्रेमको प्रधानता देनी पड़ी। परन्तु भारतीय शैलीके अनुसार असंख्य गोपिकायें कृष्णके प्रेममें लीन, उनके विरहमें व्याकुल और उनकी प्राप्तिमें प्रयत्नशील रहती हैं। वास्तवमें यह प्रेम भी अपने शुद्ध रूपमें ईश्वरोन्मुख है, क्योंकि भारतीय दृष्टिमें कृष्ण भगवान् पूरी कलाओंके अवतार, जगदुद्धारक, योगीश्वर आदि माने जाते हैं, उनके प्रति गोपिकाओंका प्रेम पुरुषके प्रति प्रकृतिका प्रेम समझा जाता है। सूफी कवियों पर इस भारतीय शैलीका प्रभाव पड़ा था और उन्होंने प्रारम्भमें नायकको प्रियतमाकी प्राप्तिके लिये अत्यधिक प्रयत्नशील दिखा कर ही संतोष नहीं कर लिया, वरन् उपसंहारमें नायिका (प्रियतमा)के प्रेमोत्कर्षको भी दिखाया। दूसरी बात यह भी है कि इस देशमें प्रेमकी कल्पना लोकव्यवहारके भीतर ही की जाती है और कर्त्तव्यबुद्धिसे उच्छृंखल प्रेमका नियंत्रण किया जाता है। राम और सीताका प्रेम ऐसा ही है। कृष्ण और गोपियोंके प्रेममें ऐकान्तिकता आ गई है, परन्तु सूफियोंके प्रेमकी तरह वह भी बिलकुल लोकबाह्य नहीं है। भारतीय सूफी कवियोंने इस देशकी प्रेमपरम्पराका तिरस्कार नहीं किया, उनका प्रेम बहुत कुछ लोकव्यवहारके परे है पर फिर भी असंयत नहीं। जायसीने तो पद्मावतमें नायिकाके सतीत्व तथा उत्कट पतिप्रेम आदिका दृश्य दिखा कर अपने भारतीय होनेका पूरा परि

त्य दिया है। इन दो मुख्य बातोंके अतिरिक्त प्रेम वर्णनोंमें अश्लील दृश्योंको भरसक बचा कर प्रकृतिके सुरम्य रूपोंको चित्रित कर यहाके प्रेममार्गी कवियोंने अपने काव्योंको भारतीय जलवायुके बहुत कुछ अनुकूल कर दिया है।

सूफी सिद्धान्तके अनुसार अतमें आत्मा परमात्मामें मिल जाता है। इसीलिये उनकी कथाओंका अंत या समाप्ति दुखांत हुई है। आरम्भमें तो यह बात बनी रही पर आगे चल कर इस संप्रदायके कवि यह बात भूल गये अथवा भारतीय पद्धतिका जो आदर्शवादी थी और जिसके अनुसार दुःखांत नाटक तक नहीं बने, उन पर इतना अधिक प्रभाव पडा कि उन्होंने नायक और नायिकाको भोगविलास और सुख चैनमें रख कर ही अपने ग्रन्थकी समाप्ति की है।

सूफी कवियोंका प्रेम ईश्वरोन्मुख था। उन्होंने अपने प्रेम प्रबंधोंमें यद्यपि लौकिक कथा ही कही है परन्तु वह लौकिक कथा उनकी हृदयानुभूतिके व्यक्त करनेका साधनमात्र है। उस कथासे उनका संबंध बहुत घनिष्ठ नहीं है, वहीं तक है जहां तक वह उनके ईश्वरोन्मुख प्रेमके अभिव्यञ्जनमें समर्थ होती है। सूफियोंका प्रेम ईश्वरके प्रति होता है, परन्तु ईश्वर तो निराकार है, निर्गुण है, अतः अवर्णनीय है। हाँ, उसका आभास देनेके लिए लौकिक कथाओंकी सहायता लेनी पडती है। पद्मावतकी ही कथाको ले लीजिये। उसमें यद्यपि चितौडके अधिपति रत्नसेन और सिंहलद्वीपकी राजकन्या पद्मावतीकी कथा कही गई है, परन्तु जायसीने एक स्थान पर स्पष्ट कह दिया है कि उनकी यह कथा तो रूपक मात्र है, वास्तवमें वे उस ईश्वरीय प्रेमकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं जो प्रत्येक साधकके हृदयमें उत्पन्न होती है और उसे ईश्वरप्राप्तिकी ओर प्रवृत्त करती है। यही नहीं, जायसीने तो अपने रूपकको और भी खोल दिया है और अपनी कथाके विविध प्रसंगों तथा पात्रोंको ईश्वर प्रेमके विविध अवयवोंका व्यञ्जक बतलाया है। इस प्रकार उनकी पूरी कथा एक महान् अन्योक्ति ठहरती है। सभी प्रत्यक्ष वर्णन अप्रत्यक्षकी ओर संकेत करते हैं, कविकी दृष्टिसे स्वतः उनका विशेष महत्त्व नहीं। यह ठीक है कि कविकी दृष्टि ही समीक्षककी भी दृष्टि नहीं होती, अतः साहित्यसमीक्षक सारे वर्णनोंको अप्रस्तुत न मान कर बीच बीचमें अप्रस्तुतकी ओर संकेतमात्र मानते हैं, परंतु संत सूफियोंका ठीक आशय समझनेमें हम भूल नहीं कर सकते। रत्नसेन और पद्मावतीके लौकिक रूपसे उनका उतना संबंध नहीं था जितना अपने पारमार्थिक प्रेमसे था। कथा प्रसंगोंमें बीच बीचमें प्रेमीके कष्ट और त्याग आदिके वर्णन मिलते हैं और अव्यक्तसे विशाल प्रकृतिके विरह तथा मिलनका ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है, कि हमारी दृष्टि लौकिक सीमासे ऊचे उठ कर उस ओर जाता देख पडती है जिस ओर ले जाना प्रेममार्गी संत कवियोंका लक्ष्य था।

कबीर आदि संतोंका रहस्यवाद ज्ञानजन्य है; अतः वह उतना काव्योपयोगी नहीं है जितना जायसी आदि सूफियोंका। जायसीने अपनी रहस्यात्मकताको दृश्य जगत्के नाना रूपोंका अव्यक्तके साथ संबंध चरितार्थ करते हुए दिखाया है। कभी जब यह दृश्य जगत् अव्यक्तसे वियुक्त होता है, तब वियोगके कितने ही व्यापक और रमणीय दृश्य दिखाई पडते हैं, कभी जब इसका उसके साथ संयोग होता है, तब सारी प्रकृति मानो आनन्दोल्लाससे नाच उठती है। इस प्रकार प्रकृतिकी ही सहायतासे जायसीका रहस्यवाद व्यक्त हुआ है। इसके विपरीत कबीरने वेदान्तके अनेक वादों तथा अन्य दार्शनिक शैलियोंका अनुसरण करते हुए रहस्योद्गार व्यक्त किये हैं।

जायसीके कुछ काल उपरान्त जब तुलसीदासका आविर्भाव हुआ तब सूफियोंकी कविता क्षीण हो चली। हिन्दुओंकी सगुण भक्तिके प्रवाहमें सूफियोंकी निर्गुण भक्ति ठहर न सकी, बह गई। उसमान जहागीरके समकालीन कवि थे। वे शाह निजामुद्दीन चिश्तीकी शिष्यपरंपरामें थे, हाजी बाबा इनके गुरु थे। सम्वत् १६७० में इनका चित्रावली नामक काव्य लिखा गया। सभी प्रेमगाथाओंकी भाँति इनमें भी पैगम्बर गुरु आदिकी वंदना है और बादशाह जहागीरको भी स्मरण किया गया है।

उसमानके उपरान्त शेख नबी हुए। परन्तु इनके उपरात प्रेममार्गी कवि सम्प्रदाय प्रायः निर्जीवसा हो गया।

यद्यपि कासिम शाह, नूर मुहम्मद, फाजिल शाह आदि कवि होते रहे, पर उनकी रचनाओंमें इस संप्रदायका ह्रास साफ बोलता-सा ज्ञान पड़ता है। हा. नूर मुहम्मदकी "इन्द्रावती"को प्रेम कहानी अवश्य सुन्दर बन पडी है। यह संवत् १८०१ में लिखी गई थी।

क्या भावोंके विचारसे और क्या भाषाके विचारसे सूफी कवियोंने हिन्दीको पहलेसे बहुत आगे बढ़ाया। वीरगाथा कालमें केवल वीरोल्लासपूर्ण कविताका सृजन हुआ, वह भी परिमाणमें अधिक नहीं। उस कालकी भाषा तो बिलकुल अविकसित थी। अक्खड़ कवियोंके हाथमें पड़ कर वह और भी भोंडी बन गई। उसके उपरान्त कबीरका समय आया। कबीर महात्मा थे और उनके द्वारा साहित्यमें पूत भावनाओंका समावेश हुआ। काव्यत्वके विचारसे उन पूत भावनाओंका उत्कर्ष चाहे अधिक न हो पर इससे उनका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। कबीरकी भाषा तो बहुत ही बिगडी हुई है। कुछ पंजाबी खडी बोली, कुछ ब्रजभाषा और कुछ अवधीका पुट दे कर जो खिचड़ी तैय्यार हुई वह रमते साधुओंके कामकी भले ही हो, सर्व साधारण विशेष कर परिमार्जित रुचि रखनेवालोंके लिये उसमें कुछ भी नहीं है। सूफी कवियोंने अपने उदार भावोंको पुष्ट भाषामें व्यक्त करके दोनों ही क्षेत्रोंमें अपनी सफलता का परिचय दिया। कबीर आदि संतोंकी बानी सामूहिक रूपसे देशके लिये बडी हितकारिणी सिद्ध हुई। परन्तु सूफियोंकी प्रबन्ध रचनाओंने सामाजिक हित भी किया और साहित्यिक समृद्धिमें भी सहायता दी। यह ठीक है, कि सूर और तुलसी आदिके प्रवेश करते ही प्रेममार्गी कवि बहुत कुछ भुला दिये गये और हिन्दी भी अत्यधिक समृद्ध हो गई, पर इतना कहना ही पडेगा कि तुलसीको एक मार्जित भाषा दे कर रामचरितमानसकी रचना में सहायक होनेमें जायसी आदि सूफियोंका नाम अवश्य लिया जायगा। हिन्दुओंके प्रति सहानुभूति इन मुसलमान कवियोंकी खास विशेषता है। इनका हृदय अतिशय उदार और स्वर्गीय प्रेमकी पीरसे ओतप्रोत था। सबसे बडी वस्तु इनका कवितागत रहस्यवाद है जिसकी समता हिन्दी साहित्यमें कोई नहीं कर सकता।

इन मुसलमान सूफी कवियोंकी देखा देखी हिन्दू कवियोंने भी उपाख्यान काव्योंकी रचना की। पर इन सब काव्योंका ढंग था तो पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा पूर्णतया साहित्यिक है। सूफी कवियोंकी रचनाओंमें धर्मकी जो लहर अदृश्यरूपसे व्याप्त हो रही है, उसका हिन्दू कवियोंकी इन रचनाओंमें अभाव है। ऐसे काव्योंमें लक्ष्मणसेन-पद्मावती कथा, डोलामारू री चउपही, रसरतन काव्य, चन्द्रकला, प्रेमपयोनिधि, कनकमंजरी, कामरूपकी कथा, हरिचंद्रपुराण आदि हैं। इनके सम्बंधमें इतना कह देना आवश्यक है, कि इन्हीं उपाख्यानोंकी परम्पराके परिणामस्वरूप उन अमर काव्योंकी हिन्दीमें रचना हुई जिनके कारण हिन्दी साहित्य गौरवान्वित और सम्मानित हुआ।

रामभक्त कवि—वैष्णव भक्तिकी रामोपासिका शाखाका आविर्भाव महात्मा रामानंदने विक्रमकी पंद्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें किया था। यद्यपि रामानंदके पहिले भी नामदेव तथा त्रिलोचन आदि प्रसिद्ध भक्त हो चुके थे, पर उन्होंने भक्ति-आन्दोलनको एक नवीन स्वरूप दे कर तथा उसे अत्यधिक लोकप्रिय और उदार बना कर हिन्दूधर्मके उन्नायकोंमें सम्माननीय स्थान पर अधिकार पाया। कबीर, तुलसी और मीरा आदि उनके शिष्य अथवा शिष्यपरंपरामें थे और इसीसे उनके महत्त्वका अनुभव हम अच्छी तरह कर सकते हैं।

स्वामी रामानन्द यद्यपि रामानुजके ही अनुयायी थे, पर मतभेद, तिलकभेद, तथा अन्य विभेदोंके कारण कुछ लोग उन्हें श्रीवैष्णव सम्प्रदायमें नहीं मानते। वे त्रिदंडी संन्यासी नहीं थे, अतएव उनमें और श्रीसम्प्रदायमें भेद बतलाया जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि रामानन्द काशीके बाबा राघवानन्दके शिष्य थे और बाबा राघवानंद श्री सम्प्रदायके वैष्णव संत थे। यद्यपि यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि रामानन्द और राघवानन्दमें आचारके सम्बन्धमें कुछ मतभेद हो जानेके कारण रामानन्दने अपना सम्प्रदाय अलग स्थापित किया, फिर भी इसमें संदेह नहीं कि बाबा राघवानन्दकी मृत्युके उपरांत रामानन्द जीने

रामभक्तिका मार्ग प्रशस्त कर उत्तर-भारतमें एक नवीन भक्तिमार्गका अभ्युदय किया। रामानन्द देखो।

रामभक्तिकी शाखा महात्मा रामानन्द द्वारा विकसित हुई। कबीर, पीपा, रैदास, सेना, मलूक आदि संत सब रामानन्दके ऋणसे ऋणी हैं, यद्यपि उनके चलाये हुए सम्प्रदायों पर विदेशीय प्रभाव भी पड़े और अनेक साधारण विभेद भी हुए। जनता पर इन संतोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। परन्तु महात्मा रामानन्दका ऋण इन संतों तक ही परिमित नहीं है। इनकी शिष्य परम्परामें आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास हुए जिनकी जगत् प्रसिद्ध रामायण हिन्दी-साहित्यका सर्वोत्कृष्ट रत्न तथा उत्तर भारतके धर्मप्राण जनसाधारणका सर्वस्व है। कबीर आदि संतोंके सम्प्रदाय देशके कुछ कोनोंमें ही अपना प्रभाव दिखा सके और पढ़ी लिखी जनता तक उनकी वाणी पहुंच भी न सकी, परन्तु गोस्वामी तुलसीदासकी कविता ऊंच नीच राजा राव, पढ़े बे-पढ़े सबकी दृष्टिमें समान रूपसे आदरणीय हुई। ये गोस्वामी तुलसीदासजी स्वामी रामानन्दके ही उपदेशोंको ग्रहण करते चले थे, अतः स्वामी रामानन्दका महत्त्व हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। और उनके उपदेशोंसे अंकुरित रामभक्तिको आज असंख्य घरोंमें फैली हुई देख सकते हैं।

तुलसीदास—महाकवि तुलसीदासजीका जो व्यापक प्रभाव भारतीय जनता पर है, उसका कारण उनकी उदारता उनकी प्रतिभा तथा उनके उद्गारोंकी सरलता आदि तो हैं ही, साथ ही विलक्षण प्रतिभा तथा उसका सबसे बड़ा कारण है उनका विस्तृत अध्ययन और उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति। "नाना पुराण निगमागम सम्मत" रामचरितमानस लिखनेकी बात अन्यथा नहीं है, सत्य है। यों तो उनके अध्ययनका विस्तार प्रायः अपरिसीम था, परन्तु उन्होंने प्रधानतः वाल्मीकि रामायणका आधार लिया है। साथ ही उन पर वैष्णव महात्मा रामानंदकी छाप स्पष्ट देख पड़ती है। उनके रामचरितमानसमें मध्यकालीन धर्मग्रन्थों विशेषतः अध्यात्म रामायण, योगवाशिष्ठ तथा अद्भुत रामायणका प्रभाव कम नहीं है। भुशुंडि रामायण और हनुमन्नाटक नामक ग्रन्थोंका ऋण भी गोस्वामीजीको स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायणकी कथा ले कर उसमें मध्यकालीन धर्मग्रन्थोंके तत्त्वोंका समावेश कर साथ ही अपनी उदार बुद्धि और प्रतिभासे अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर उन्होंने जिस अनमोल साहित्यकी सृष्टि की, वह उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्तिके साथ ही उनकी प्रगाढ़ मौलिकताका भी परिचायक है।

तुलसीदास।

गोस्वामीजीकी समस्त रचनाओंमें उनका रामचरितमानस ही सर्वश्रेष्ठ रचना है और उसका प्रचार उत्तर-भारतमें घर-घर है। गोस्वामीजीका स्थायित्व और गौरव उसी पर अवलंबित है। रामचरितमानस करोड़ों भारतीयोंका एकमात्र धर्म-ग्रन्थ है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्यमें वेद, उपनिषद् तथा गीता आदि पूज्य दृष्टिसे देखे जाते हैं, उसी प्रकार आज संस्कृतका लेशमात्र ज्ञान न रखनेवाली जनता भी करोड़ोंकी संख्यामें रामचरित-

मानसको पढ़ती और वेद आदिकी ही भांति उसका सम्मान करती है। इस कथनका यह तात्पर्य नहीं कि गोस्वामीजीके अन्य ग्रन्थ निम्न कोटिके हैं। गोस्वामीजी-की प्रतिभा सबमें समान रूपसे लक्षित होती है, पर रामचरितमानसकी प्रधानता अनिवार्य है। गोस्वामीजीने हिन्दूधर्मका सच्चा स्वरूप रामके चरित्रमें अंतर्निहित कर दिया है। धर्म और समाजकी कैसी व्यवस्था होनी चाहिये, राजा प्रजा, ऊंच नीच, द्विज शूद्र आदि सामाजिक सूत्रोंके साथ माता पिता, गुरु भाई आदि पारिवारिक संबंधोंका कैसा निर्वाह होना चाहिये आदि जीवनके सरलतम और जटिलतम प्रश्नोंका बड़ा ही विशद विवेचन इस ग्रन्थमें मिलता है। हिन्दुओंके सब देवता, उनकी सब रीति नीति, वर्णाश्रम-व्यवस्था तुलसीदासजीको सब स्वीकार हैं। शिव उनके लिए उतने ही पूज्य हैं जितने स्वयं राम। वे भक्त होते हुए भी ज्ञानमार्गके अद्वैतवाद पर आस्था रखते हैं। संक्षेपमें वे व्यापक हिन्दू धर्मके संकलित संस्करण हैं और उनके रामचरितमानसमें उनका वह रूप बड़ी मार्मिकतासे व्यक्त हुआ है।

गोस्वामीजीके रामचरितमानस और विनयपत्रिकाके अतिरिक्त दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न आदि बड़े ग्रन्थ तथा बरवै रामायण, रामलला नहछू, कृष्णगीतावली, वैराग्यसंदीपनी, पार्वती मङ्गल और जानकीमंगल छोटी रचनाएं प्रसिद्ध हैं। उनकी बनाई अन्य पुस्तकोंका नामोल्लेख शिवसिंहसरोजमें किया गया है, परन्तु उनमेंसे कुछ तो अप्राप्य हैं और कुछ उनके उपर्युक्त ग्रन्थोंमें सम्मिलित हो गई हैं तथा कुछ संदिग्ध हैं। साधारणतः ये ही ग्रंथ गोस्वामीजी रचित निर्विवाद माने जाते हैं। बाबा वेणीमाधवदासने गोस्वामीजीकी "रामसतसई"का भी उल्लेख किया है। कुछ लोगोंका कहना है कि उसकी रचना गोस्वामीजीकी अन्य कृतियोंके अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसमें अनेक दोहे क्लिष्ट और पहेली आदिके रूपमें आये हैं।

कहा जाता है, कि गोस्वामी तुलसीदासने नर-काव्य नहीं किया। केवल एक स्थान पर अपने काशीवासी मित्र टोडरकी प्रशंसामें दो चार दोहे कहे हैं, अन्यत्र सर्वत्र अपने उपास्य देव रामकी ही महिमा गाई है और रामकी कृपासे गौरवान्वित व्यक्तियोंका रामकथाके प्रसंगमें नाम लिया है। "कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना"का पद इस तथ्यकी ओर संकेत करता है। यद्यपि गोस्वामीजीने किसी विशेष मनुष्यकी प्रशंसा नहीं की है और अधिकतर अपनी वाणीका उपयोग रामगुणकीर्त्तनमें ही किया है, पर रामचरित्रके भीतर मानवताके जो उदात्त आदर्श फूट निकले हैं वे मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकर हैं। यही नहीं, रामचरितके बाहर जा कर भी उन्होंने मानवसमाजके लिए हितकर पथका निर्देश किया है। उदाहरणार्थ दोहावलीमें उन्होंने सच्चे प्रेमकी जो आभा चातक और घनके प्रेममें दिखलाई है, अलोकोपयोगी उच्छृंखलताका जो खंडन साखी-शब्दी-दोहाकारोंकी निंदा करके किया है, रामचरितमानसमें मर्यादावादकी जैसी सुन्दर पुष्टि शिष्यकी गुरुकी अवहेलनाको दण्डित करके की है, रामराज्यका वर्णन करके जो उदात्त आदर्श रखा है, उनमें और ऐसे ही अनेक प्रसंगोंमें गोस्वामीजीकी मनुष्य-समाजके प्रति हितकामना स्पष्टतः झलकती देख पड़ती है। उनके अमर काव्योंमें मानवताके चिरंतन आदर्श भरे पड़े हैं।

यह सब होते हुए भी तुलसीदासजीने जो कुछ लिखा है, स्वांतःसुखाय लिखा है। उपदेश देनेकी अभिलाषासे अथवा कवित्व प्रदर्शनकी कामनासे जो कविता की जाती है, उसमें आत्माकी प्रेरणा न होनेके कारण स्थायित्व नहीं होता। कलाका जो उत्कर्ष हृदयसे सीधी निकली हुई रचनाओंमें होता है वह अन्यत्र मिलना असंभव है। गोस्वामीजीकी यह विशेषता उन्हें हिन्दी कविताके शीर्षासन पर ला रखती है। एक ओर तो वे काव्य-चमत्कारका भद्दा प्रदर्शन करनेवाले केशव आदिसे सहजमें ही ऊपर आ जाते हैं और दूसरी ओर उपदेशोंका सहारा लेनेवाले कबीर आदि भी उनके सामने नहीं ठहर पाते। कवित्वकी दृष्टिसे जायसीका क्षेत्र तुलसीकी अपेक्षा अधिक संकुचित है और सूरदासके उद्गार सत्य और सबल होते हुए भी उतने व्यापक नहीं हैं। इस प्रकार केवल कविताकी दृष्टिसे ही तुलसीदास हिन्दीके अद्वितीय कवि ठहरते हैं। इसके साथ ही जब हम भाषा पर उनके अधिकार तथा जनता पर उनके उपकारकी तुलना अन्य

कवियोंने करते हैं तब गोस्वामीजीकी अनुपम महत्ताका साक्षात्कार स्पष्ट रीतिसे हो जाता है। तुलसीदास देखो।

महाकवि तुलसीदासके उपरान्त रामभक्तिके अन्य कितने ही कवि हुए जिनमें 'भक्तमाल'के रचयिता नाभादास, प्राणचंद, हृदयराम, विश्वनाथसिंह, रघुराजसिंह आदिके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं। आधुनिक कालमें बाबू मैथिलीशरण गुप्तजीने रामचरित पर एक खंड काव्य लिखा है और एक महाकाव्य भी लिख रहे हैं।

कृष्ण-भक्त कवि—शंकरके अद्वैतवादमें भक्तिके लिये जगह न थी, यह हम पहले ही कह चुके हैं। शंकरके उपरान्त स्वामी रामानुजाचार्यने जिस विशिष्टाद्वैत मतका प्रतिपादन किया था, वह भी भक्तिके बहुत उपयुक्त न था। भागवतपुराणमें भक्तिका दृढ़ मार्ग निरूपित हुआ और मध्वाचार्यने पहिले पहल द्वैतमतका प्रचार कर भक्त और भगवान्‌के संबंधको सिद्ध किया। उन्होंने पहिले शंकर मतकी शिक्षा पाई थी। भागवतपुराणके अध्ययनका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे शंकरके ज्ञानमार्गके विरोधी और भक्तिके समर्थक बन गये। मध्वाचार्य देखो। उत्तर-भारतमें उनके सिद्धान्तोंका प्रत्यक्षमें तो अधिक प्रभाव नहीं पड़ा, पर अनेक सम्प्रदाय उनके उपदेशोंका आधार ले कर दक्षिणमें खड़े हुए और देशके विस्तृत भूभागोंमें फैले। हिन्दीके कृष्णभक्त कवियोंमें विद्यापति पर माध्व-सम्प्रदायका प्रभाव स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु विद्यापति पर माध्व-सम्प्रदायका ही ऋण नहीं है, उन्होंने विष्णुस्वामी तथा निंबार्काचार्यके मतोंको भी ग्रहण किया था। न तो भागवतपुराणमें ही और न माध्व मतमें ही राधाका उल्लेख किया गया है। कृष्णके साथ विहार करनेवाली अनेक गोपियोंमें राधा भी हो सकती है, पर कृष्णकी चिर प्रेयसीके रूपमें वे नहीं देख पड़ती। उन्हें यह रूप विष्णुस्वामी तथा निंबार्क संप्रदायोंमें ही पहले पहल प्राप्त हुआ था। विष्णु स्वामी मध्वाचार्यकी ही भांति द्वैतवादी थे। भक्तमालके अनुसार वे प्रसिद्ध मराठा भक्त ज्ञानेश्वरके गुरु और शिक्षक थे। राधाकृष्णकी सम्मिलित उपासना इनकी भक्तिका नियम था। विष्णुस्वामीके ही समकालीन निंबार्क नामक तैलंग ब्राह्मणका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने वृन्दावनमें निवास कर गोपाल कृष्णकी भक्ति की थी। निंबार्कने विष्णुस्वामीसे भी अधिक दृढ़तासे राधाकी प्रतिष्ठा की और उन्हें अपने प्रियतम कृष्णके साथ गोलोकमें चिर निवास करनेवाली कहा। राधाका यही चरम उत्कर्ष है। विद्यापतिने राधा और कृष्णकी प्रेमलीलाका जो विशद वर्णन किया है, उस पर विष्णुस्वामी तथा निंबार्क मतोंका प्रभाव प्रत्यक्ष है। विद्यापति राधा और कृष्णके संयोग श्रृङ्गारका ही विशेषतः वर्णन करते हैं। उसमें कहीं कहीं अश्लीलत्व भी आ गया है। पर अधिकांश स्थलोंमें प्रिया राधाका प्रियतम कृष्णके साथ बड़ा ही सात्विक और रसपूर्ण सम्मिलन प्रदर्शित किया गया है। बंगालके चण्डिदास आदि कृष्णभक्त कवियोंने भी राधाकी प्रधानता स्वीकृत की है। हिन्दीकी प्रसिद्ध भक्त और कवयित्री मीराबाईके प्रसिद्ध पद "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई"में गोपाल कृष्णका स्मरण है जो निंबार्क सम्प्रदायके प्रचलनके अनुसार है। मीराबाईके कुछ पदोंमें जो अश्लीलता देख पड़ती है, वह वास्तवमें प्रेमातिरेकके कारण है और निःसन्देह सात्विक है। विद्यापति और मीराबाई पर विष्णुस्वामी तथा निंबार्क मतकी छाप थी। विष्णु स्वामी सिद्धान्तोंमें मध्वाचार्य और निंबार्क स्वामी रामानुजके अनुयायी थे।

वल्लभाचार्यके दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद कहलाये। शंकरके ज्ञानके बदले ये भक्तिको ग्रहण करते हैं और भक्ति ही साधन तथा साध्य भी बतलाई जाती है।
वल्लभाचार्य तथा वल्लभाचारी देखो।

सूरदास—वल्लभाचार्यके शिष्योंमें सर्वप्रधान, सूरसागरके रचयिता, हिन्दीके अमर कवि महात्मा सूरदास हुए। जिनकी सरस वाणीसे देशके असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और भग्नाश जनताको जीनेका नवीन उल्लास मिला। सूरदासका जन्म लगभग सं० १५४०में आगरासे मथुरा जानेवाली सड़कके किनारे नकता नामक गांवमें हुआ था।

जब महात्मा वल्लभाचार्यसे सूरदासजीकी भेंट हुई थी तब तक वे वैरागियोंके वेशमें रहा करते थे। तबसे ये उनके शिष्य हो गए और उनकी आज्ञासे नित्य प्रति अपने उपास्यदेव और सखा कृष्णकी स्तुतिमें नवीन

भजन बनाने लगे। इनकी रचनाओंका वृहत् संग्रह सूरसागर है जिसमें एक ही प्रसंग पर अनेक पदोंका संकलन मिलता है। भक्तिके आवेशमें वीणाके साथ गाते हुए जो सरस पद उन अंध कविके मुखसे निःसृत हुये, उनमें पुनरुक्ति चाहे भले ही हो, पर उनकी मर्मस्पर्शिता और हृदयहारितामें किसीको कुछ भी संदेह नहीं हो सकता।

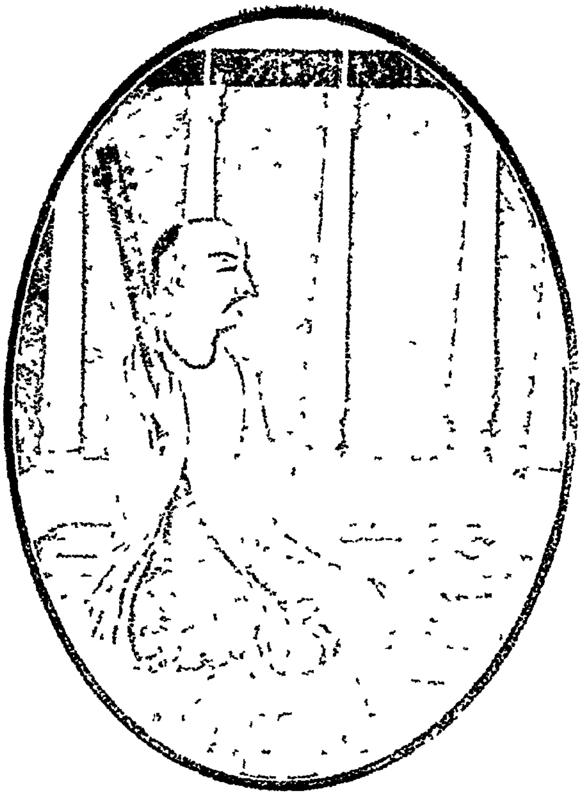

सूरदास।

सूरसागरके सम्बन्धमें कहा जाता है, कि उसमें सवा लाख पदोंका संग्रह है। पर अब तक सूरसागरकी जो प्रतियां मिली हैं उनमें छः हजारसे अधिक पद नहीं मिलते। परन्तु यह संख्या भी बहुत बड़ी है। इतनी ही कविता उसके रचयिताको सरस्वतीका वरद महाकवि सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। इस ग्रन्थमें कृष्णकी बाल-लीलासे ले कर उनके गोकुलत्याग और गोपिकाओंके विरह तककी कथा फुटकर पदोंमें कही गई है। ये पद मुक्तकके रूपमें होते हुए भी एक भावको पूर्णता तक पहुंचा देते हैं। सभी पद गेय हैं, अतः हम सूर सागरको गीतकाव्य कह सकते हैं। गीत काव्यमें जिस प्रकार छोटे छोटे रमणीय प्रसंगोंको ले कर रचना की जाती है, प्रत्येक पद जिस प्रकार स्वतःपूर्ण तथा निरपेक्ष होता है, कविके आंतरिक हृदयोद्गार होनेके कारण उसमें जैसे कविकी अंतरात्मा झलकती देख पड़ती है, विवरणात्मक कथा-प्रसंगोंका बहिष्कार कर तथा क्रोध आदि कठोर और कर्कश भावोंका सन्निवेश न कर उसमें जैसे सरसता और मधुरताके साथ कोमलता रहती है, उसी प्रकार सूरसागरके गेय पदोंमें उपर्युक्त सभी बातें पाई जाती हैं। यद्यपि कृष्णकी पूर्ण जीवन-गाथा भी सूरसागरमें मिलती है, पर उसमें कथा कहनेकी प्रवृत्ति बिलकुल नहीं देख पड़ती, केवल प्रेम, विरह आदि विभिन्न भावोंकी वेगपूर्ण व्यंजना उसमें बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी है।

सूरदासकी कीर्त्तिको अमर कर देने और हिन्दी कवितामें उन्हें उच्चासन प्रदान करनेके लिए उनका वृहदाकार ग्रन्थ सूरसागर ही पर्याप्त है। सूरसागर हिन्दी की अपने ढंगकी अनुपम पुस्तक है। शृंगार और वात्सल्यका जैसा सरस और निर्मल स्रोत इसमें बहा है वैसा अन्यत्र नहीं देख पड़ता। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों तक सूरकी पहुंच है, साथ ही जीवनका सरल अकृत्रिम प्रवाह भी उनकी रचनाओंमें दर्शनीय है। यह ठीक है कि लोकके संबंधमें गंभीर व्याख्याएं सूरदासने अधिक नहीं की, पर मनुष्य जीवनमें कोमलता, सरलता और सरसता भी उतनी ही प्रयोजनीय हैं जितनी गंभीरता। तत्कालीन स्थितिको देखते हुए तो सूरदासका उद्योग और भी स्तुत्य है। परन्तु उनकी कृति तत्कालीन स्थितिसे सम्बंध रखती हुई भी सार्वकालीन और चिरंतन है। उनकी उत्कट कृष्णभक्तिने उनकी सारी रचनाओंमें जो रमणीयता भर दी है, वह अतुलनीय है। उनमें नवोन्मेष शालिनी अद्भुत प्रतिभा है। उनकी पवित्र वाणीमें जो अनूठी उक्तियां आपसे आप आ कर मिल गई हैं, अन्य कवि उनकी जूठनसे ही सन्तोष कर सकते हैं। सूरदास हिन्दीके अन्यतम कवि हैं। उनके जोड़का दूसरा कवि गोस्वामी तुलसीदासको छोड़ कर दूसरा नहीं है। इन दोनों महाकवियोंमें कौन बड़ा है, यह

निश्चयपूर्वक कह सकना सरल काम नहीं।

महाकवि सूरदासके अतिरिक्त राधाकृष्णके प्रेममें मग्न, सरस पद रचना चतुर कृष्णदास, परमानन्द, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, गोविन्दस्वामी आदि अष्ट छापके कवि वल्लभस्वामी और उनके पुत्र विट्ठलनाथकी शिष्यपरंपरामें हुए। इन अनेक उत्कृष्ट कवियोंसे हिन्दी साहित्यकी अशेष श्रीवृद्धि हुई।

हितहरिवंश—अष्ट छापके बाहर रह कर भक्तिकाव्यकी रचना करनेवालोंमें हितहरिवंश और स्वामी हरिदास विशेष रीतिसे उल्लेखयोग्य हैं, क्योंकि ये दोनों ही उत्कृष्ट पदोंके प्रणेता और नवीनी संप्रदायोंके स्रष्टा हुए। हितहरिवंशजी माध्व और निंबार्क मतोंसे प्रभावित थे, पर उन्होंने राधाकी उपासना ग्रहण कर राधावल्लभी सम्प्रदायकी सृष्टि की। उनके "राधा-सुधनिधि" और "हित चौरासी" नामक ग्रन्थके सभी पद अत्यन्त कोमल और सरस भावापन्न हैं। इनके शिष्योंमें ध्रुवदास और व्यासजी प्रधान हुए, जिनकी रचनाओंसे हिन्दीकी पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई। अत्यंत कोमल भावापन्न सरस पदोंके रचयिता रसखान भी इस युगके भक्ति-स्रोतमें मग्न महाकवि हुए। रसखान देखो।

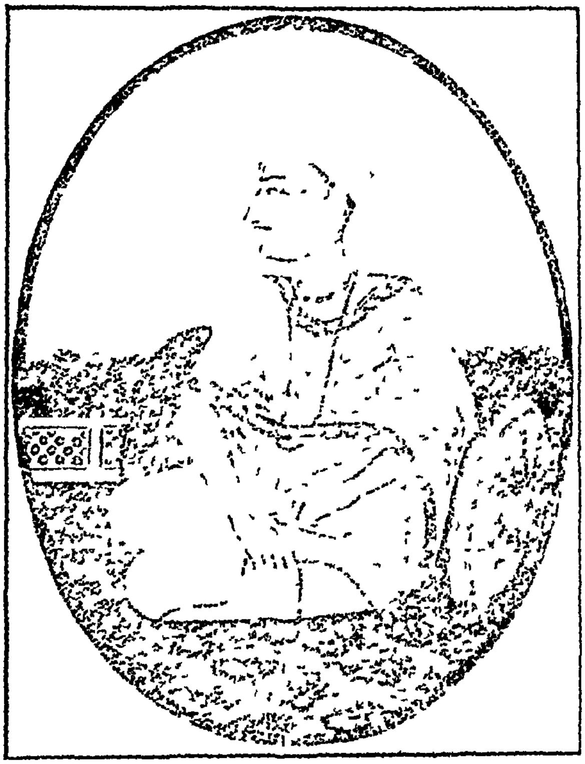

हितहरिवंश।

अकबरी दरबार—इन भक्त कवियोंके समकालीन प्रसिद्ध मुगल-सम्राट् अकबरके दरबारमें भी अनेक कवियोंको प्रश्रय मिला था। अकबरका राजत्वकाल सुख और समृद्धिसे सम्पन्न था। वैभवकी अट्टालिकाएं खड़ी की जा रही थी। हिन्दू और मुसलमानोंका साम्य बढ़ रहा था। ऐसे अवसर पर नीतिकार और सूक्तिकार कवियोंका अभ्युदय स्वाभाविक था।

रहीम—अकबरके दरबारके उच्च कर्मचारी होते हुये भी हिन्दी कविताकी ओर खिंचे थे। नीतिके सुन्दर सुन्दर दोहे इन्होंने बड़ी मार्मिकतासे कहे। जीवनके सुख वैभवका अच्छा अनुभव करनेके कारण रहीमकी तत्संबंधी उक्तियोंमें तीव्र भावव्यंजना है। दोहोंके अतिरिक्त इन्होंने बरवै, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि अनेक छंदों तथा संस्कृतके वृत्तोंमें भी रचना की है। उनका बरवै छंदोंमें लिखा नायिकाभेद ठेठ अवधीके माधुर्यसे समन्वित है। कहते हैं, कि गोस्वामी तुलसीदास तकने इससे प्रभावित हो कर इसी छंदमें बरवै रामायण लिखी थी। गोस्वामीजीकी ही भांति रहीमका अवधी और व्रजभाषाओं पर समान अधिकार था और गोस्वामीजीकी रचनाओंकी भांति इनकी रचनाएं भी जनतामें अत्यधिक प्रचलित हुईं। गोस्वामीजीसे इनकी भेंट हुई थी और दोनोंमें सौहार्द भाव भी था। ये बड़े ही उदार-हृदय दानी थे और इनका अनुभव बड़ा ही विस्तृत, सूक्ष्म और सत्य था।

गंग और नरहरि—ये दोनों ही अकबरके दरबारके श्रेष्ठ हिन्दू कवि थे। गङ्गकी शृंगार और वीररसकी जो रचनायें संग्रहोंमें मिली हैं, उनसे इनके भाषा अधिकार और वाग्वैभवका पता चलता है। जनतामें इनका बड़ा नाम है, परन्तु इनकी एक भी रचित पुस्तक अब तक नहीं मिली। "तुलसी गंग दोऊ भये, सुकविनके सरदार" की पंक्ति इन्हींको लक्ष्य करके कही गई है। नरहरि बंदीजन अकबरके दरबारमें सम्मानित हुए थे। कहते हैं कि बादशाहने इनका एक छप्पय सुन कर अपने राज्यमें गो-वध बंद कर दिया था। नीति या

पर इन्होंने अधिक छंद लिखे। गंग और नरहरि देखो।

अकबरके दरबारियोंमें बीरबल और टोडरमल भी कवि हो गए हैं। बीरबल अकबरके मंत्रियोंमेंसे थे और अपनी वाक्चातुरी तथा विनोदके लिये प्रसिद्ध थे। इनके आश्रयमें कवियोंको अच्छा सम्मान मिला था और इन्होंने स्वयं व्रज-भाषामें सरस और सानुप्रास रचना की थी। महाराज टोडरमलके नीति संबंधी फुटकर छंद मिलते हैं जो कविताकी दृष्टिसे बहुत उच्च कोटिके नहीं हैं। इनके अतिरिक्त मनोहर, होलराय आदि कवि भी अकबरी दरबारमें थे। स्वयं बादशाह अकबरकी भी व्रज भाषामें कुछ रचनायें पाई जाती हैं। व्रज भाषाको इतना बड़ा राजसम्मान इसको पहिले कभी नहीं मिला था।

दरबारसे असंपर्कित कवियों में सेनापतिका स्थान सर्वोच्च है। इन्होंने षट्ऋतुओंका वर्णन किया है जो बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। इन्हें प्रकृतिकी सूक्ष्म सूक्ष्म बातोंका अनुभव भी था और इनका निरीक्षण भी विशेष तीव्र था। इनकी पिछले समयकी भक्ति और वैराग्य की रचनायें चित्त पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। भाषा व्रजकी ग्रामीण होते हुए भी अलंकृत है। इनका कवित्त-रत्नाकर अब तक अप्रकाशित है। सेनापति देखो।

इसी कालकी रचनाओंमें नरोत्तमदासका "सुदामाचरित्र" भी है, जो कविताकी दृष्टिसे अच्छा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर और जहांगीरके राजत्वकालमें हिन्दी कविता, क्या भाषा और क्या भावोंकी दृष्टिसे विशेष प्रौढ़ हो गई।

रीतिकाल।

हिन्दीमें सूर और तुलसीके समय तक साहित्यकी इतनी अधिक अभिवृद्धि हो चुकी थी कि कुछ लोगोंका ध्यान भाषा और भावोंको अलंकृत करने तथा संस्कृतकी काव्यरीतिका अनुसरण करनेकी ओर खिंच रहा था। इसका यह अर्थ नहीं है कि सूर और तुलसी तथा उनके पूर्वके सत्कवियोंमें आलङ्कारिकता नहीं थी अथवा वे काव्य रीतिसे परिचित ही न थे। ऐसी बात नहीं थी। अनेक कवि पूर्ण शास्त्रज्ञ और काव्य कलाविद् थे। वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म आलंकारिक शैलियोंका पूरा पूरा ज्ञान रखते थे। स्वयं महात्मा तुलसीदासजीने अपनी अनभिज्ञताका विज्ञापन देते हुए भी व्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर अपना पूर्ण आधिपत्य तथा काव्य रीतिका सूक्ष्मतम अभिज्ञान दिखाया है। अन्तर इतना ही है कि उन्हें काव्य कलाको साधन मात्र बना कर रचना करनी थी, साध्य बना कर नहीं। अतएव उन्होंने अलङ्कारों आदिसे सहायकका काम लिया है, स्वामीका नहीं। इसके विपरीत पीछेके जो कवि हुए, उन्होंने काव्य-कला की परिपुष्टिको ही प्रधान मान कर शेष सब बातोंको गौण स्थान दिया और मुक्तकोंके द्वारा एक एक अलङ्कार एक एक नायिका अथवा एक एक ऋतु वर्णन किया है। आगे चल कर यह प्रथा इतनी प्रचलित हुई कि बिना रीति-ग्रन्थ लिखे कवि-कर्म पूरा नहीं समझा जाने लगा। हिंदी साहित्यके इस कालको हम इसीलिये रीतिकाल कहते हैं। नीचे रीतिकालके कुछ मुख्य कवियों तथा आचार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

केशवदास—यद्यपि समय विभागके अनुसार केशवदास भक्तिकालमें पड़ते हैं और यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास आदिके समकालीन होने तथा रामचन्द्रचन्द्रिका आदि ग्रंथ लिखनेके कारण ये कोरे रीतिवादी नहीं कहे जा सकते, परंतु उन पर पिछले कालके संस्कृत साहित्य का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अपने कालकी हिंदी काव्यधारासे पृथक् हो कर वे चमत्कारवादी कवि हो गए और हिंदीमें रीति ग्रंथोंकी परम्पराके आदि आचार्य कहलाए।

केशवदास ओड़छेके राजा इंद्रजित्सिंहके आश्रित दरबारी कवि थे। संस्कृत साहित्य-मर्मज्ञ पंडित-परम्परामें उत्पन्न होनेके कारण इनकी प्रवृत्ति रीति-ग्रंथों की ओर हुई थी। संस्कृतसे पूर्ण परिचित होनेके कारण इनकी भाषा संस्कृतमिश्रित और साहित्यिक है। इनकी कृतियोंमें कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रचंद्रिका आदि मुख्य हैं। यद्यपि केशवके पहले भी कृपाराम, गोप, मोहनलाल आदिने रीति साहित्यके निर्माणका प्रारम्भ किया था, पर उनकी रचनाएं केशवदासके सर्वतोमुख प्रयासके सामने एकांगी हो गई हैं। रीति कालके इन प्रथम आचार्य केशवदासका स्थान हिंदीमें बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। कुछ आलोचक उन्हें हृदयहीन कहते हैं पर

हृदयहीनता कह कर सम्बोधित करनेसे हम उनके प्रति अन्याय करते हैं; क्योंकि एक तो उनकी हृदयहीनता जानो समझी हृदय-हीनता है, और फिर अनेक स्थलोंमें उन्होंने पूर्ण सहृदय होनेका परिचय दिया है। जिस कविकी रसिकता वृद्धावस्था तक वनी रहे, उसे हृदयहीन कहा भी कैसे जा सकता है? यह वात अवश्य है कि केशवदास उन कविपुंगवोंमें नहीं गिने जा सकते जो एक विशिष्ट परिस्थितिके निर्माता हैं। वे तो अपने समयकी परिस्थिति द्वारा निर्मित हुए हैं और उसके प्रत्यक्ष प्रतिबिंब हैं। केशवदास देखो।

केशवदास।

चिंतामणि और मतिराम—ये त्रिपाठी वन्धु मुक्तक छंदोंमें रीतिशैलीकी रचना करनेवालोंमें अग्रगामी हुए। चिन्तामणिके काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश आदि बड़ी ही सरस कविता-पुस्तकें हैं। मतिराम तो अपनी भाषा और भावोंके सरल, सुंदर स्वाभाविक प्रवाहके लिये रीतिकालके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें परिगणित हुए। रसराज और ललितललाम रीतिकालकी श्रेष्ठ रचनाएं इन्हींकी कृतियां हैं। मतिराम देखो।

विहारीलाल—रीतिकालके कवियोंमें प्रसिद्धिकी दृष्टिसे विहारी अन्यतम हैं। विहारी उस श्रेणीके समीक्षकोंमें सवसे अधिक प्रिय हैं जो अलग अलग दोहोंकी कारीगरी पर मुग्ध होते और वातकी करामात पसंद करते हैं। सौंदर्य और प्रेमके सुन्दरतम चित्र विहारीने खींचे हैं। पर अलंकरणकी ओर उनकी प्रवृत्ति सवसे अधिक थी। उनकी कविता आवश्यकतासे अधिक नपी तुली हो जानेके कारण सर्वत्र स्वाभाविकता समन्वित नहीं है। विहारीने

विहारीलाल।

घाट-बाट देखनेमें जितना परिश्रम उठाया होगा, उतना वे यदि हृदयकी टोहमें करते तो हिन्दीकविता उन्हें पा कर अधिक सोभाग्यशालिनी होती। यह सब होते हुए भी उनकी सतसई हिंदीकी अमरकृति कहलायगी और श्रेणी-विशेषके साहित्य समीक्षकों तथा काव्य-प्रेमियोंके लिये तो वह सर्वश्रेष्ठ रचना है ही। दोहे जैसे छोटे छन्दमें इतने अलंकारोंकी सफल योजना करनेमें बिहारीकी टक्करका कदाचित् ही कोई कवि हिंदीमें मिले।

बिहारीलाल देखो।

देव—ये इटावेके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका काव्यक्षेत्र बड़ा व्यापक और विस्तृत था। रीतिकालके कवियोंमें इतनी व्यापकता और कहीं नहीं देख पड़ती। देवकी सौन्दर्य-विवृति सत्य अतः मर्मस्पर्शिनी है। परन्तु इनके गायनका मुख्य विषय प्रेम है। रीतिकालके थोड़ेसे आचार्योंमें देवकी गणना की जाती है। रीति संबंधिनी उनकी कुछ स्वतंत्र उद्भावनाओंका उल्लेख मिश्र बंधुओंने किया है। पांडित्यकी दृष्टिसे रीतिकालके समस्त कवियोंमें देवका स्थान आचार्य केशवदाससे कुछ नीचे माना जा सकता है, कलाकारकी दृष्टिसे वे बिहारीसे निम्न ठहर सकते हैं, परन्तु अनुभव और सूक्ष्मदर्शितामें उच्चकोटिकी काव्यप्रतिभाका मिश्रण करने और सुंदर कल्पनाओंकी अनोखी शक्ति ले कर विकसित होनेके कारण हिंदी काव्यक्षेत्रमें सहृदय और प्रेमी कवि देवको रीतिकालका प्रमुख कवि स्वीकार करना पड़ता है।

भिखारीदास—ये ट्योंगा, प्रतापगढ़ (अवध) के रहनेवाले कायस्थ कवि थे। इनका काव्यनिर्णय ग्रन्थ अब भी रीतिके विद्यार्थियोंका प्रिय ग्रंथ है। भिखारीदासके आचार्यत्वकी बड़ी प्रशंसा की जाती है और रीतिके सब अंगोंका विवेचन करनेके कारण उनकी कृतियां बड़े आदरसे देखी जाती हैं। उनकी सुन्दर समीक्षाओं तथा मौलिक उद्भावनाओंका उल्लेख भी किया गया है। कविताकी दृष्टिसे दासजीकी रचनाएं बहुत ऊंची नहीं उठतीं। रीति-कालके पूर्ववर्ती कवियोंके भावोंको ले कर स्वतंत्र विषय खड़ा करनेमें यद्यपि ये बड़े पटु थे, पर भावोंके निर्वाहकी मौलिक शक्ति न होनेके कारण उन्हें सफलता कम मिली है। अवधमें रह कर शुद्ध चलती व्रज भाषा लिख सकना तो बहुत कठिन है, पर दासजीकी भाषा सामान्यतः शुद्ध और साहित्यिक है। इससे उनके व्रज भाषाके विस्तृत अध्ययनका पता चलता है। समीक्षा बुद्धिके अभावके कारण रीतिकी लीक पर चलनेवाले अनेक कवियोंसे भिखारीदासका स्थान बहुत ऊंचा है, पर कवियोंकी बहुत ऊंची पंक्तिमें उन्हें कभी स्थान नहीं दिया गया।

पद्माकर—रीतिकालके अंतिम चरणके पद्माकर सबसे प्रसिद्ध कवि हैं। ये तैलङ्ग ब्राह्मण मोहनलाल भट्टके पुत्र थे। पिताकी प्रसिद्धिके कारण अनेक राजदरबारोंमें इनका सम्मान हुआ था। इनकी शृंगाररसकी कविताएं इतनी प्रसिद्ध हुईं कि इनके नाम पर कितने ही कविनाम धारियोंने अपनी कुत्सित वासनाओंसे सने उद्गारोंको मनमाने ढंगसे फैलाया। आज भी इनके नामकी ओट ले कर बहुत-सी अश्लील रचनाएं देहातोंकी कविमंडलीमें सुनी सुनाई जाती हैं। पद्माकरकी कृतियोंमें यदि थोड़ा अश्लीलत्व है तो उनके अनुकरणकारियोंमें उसका दशगुणा। पद्माकरकी अनुप्रासप्रियता भी बहुत प्रसिद्ध है। जहां अनुप्रासोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जायगा वहां भावोंका नैसर्गिक प्रवाह अवश्य भंग होगा और भाषामें अवश्य तोड़ मरोड़ करनी पड़ेगी। संतोषकी बात इतनी ही है कि उनके छंदोंमें उनकी भावधाराको सरल स्वच्छन्द प्रवाह मिला है, जिनमें हावोंकी सुन्दर योजनाके बीचमें सुन्दर चित्र खड़े किए गए हैं।

इसके अतिरिक्त कालिदास त्रिवेदी, कुलपति मिश्र, कृष्ण कवि, ग्वाल कवि, घनानन्द, ठाकुर कवि, तोषनिधि, थान कवि, दूलह, द्विजदेव, नेवाज, पजनेस, प्रतापसाहि, बोधा, भूपति (राजा गुरुदत्त सिंह), मण्डन मिश्र, महाराज जसवन्त सिंह, यशोदानन्दन, रघुनाथ, रसनिधि, रसलीन, रसिक सुमति, श्रीधर या मुरली, श्रीपति, सुखदेव मिश्र आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

भूषण और लाल—हिन्दीके इस सर्वतोव्याप्त शृंगार प्रवाहके बीच भूषण और लालका अभ्युदय हुआ जिन्होंने जातीय जागृतिका शक्तिशाली उपक्रम किया। 'भूषण'

और 'लालकवि' देखो। औरंगजेबके धार्मिक कट्टरपनके कारण जब हिन्दू जातिका अस्तित्व ही संकटापन्न हो गया, तब प्रतिकारकी प्रेरणासे महाराष्ट्र-शक्तिका अभ्युदय हुआ। इस शक्तिको संघटित करनेवाले छत्रपति-शिवाजी हुए जिनके मार्गप्रदर्शनका कार्य समर्थ गुरु रामदासने किया था। शिवाजीके अतिरिक्त बुंदेलखंडके प्रसिद्ध अधिपति छत्रसालने भी स्थानीय राजपूत शक्तिको उत्तेजित करनेका सफल प्रयास किया था। इस प्रकार महाराष्ट्र और मध्यदेशकी शक्तिका जो उत्थान हुआ, उसमें राष्ट्रीयताकी पूरी पूरी झलक दिखाई पडी। संयोगसे इन दोनों राष्ट्रनायकोंको भूषण तथा लाल जैसे सुकवियोंका सहयोग भी प्राप्त हुआ, जिससे शक्तिसंघटनमें बड़ी सहायता मिली। जातियोंके उत्थानमें जब कभी महात्माओं, योद्धाओं तथा कवियोंकी सम्मिलित सहायता मिलती है, तब वह बड़े ही सौभाग्यकी सूचना होती है और उससे उनके कल्याणका पथ बहुत कुछ निश्चित और निर्धारित हो जाता है। उसी कालमें सिक्खोंकी वीरताका भी उदय हुआ और उन्होंने राष्ट्रहितकी साधनामें पूरा पूरा सहयोग दिया, पर सिक्ख धर्मका आरंभ संतोंकी वाणी तथा उन्हींकी प्रवृत्ति और प्रकृतिके अनुकूल हुआ था। पीछेसे समयकी स्थितिने इस धर्म पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह संत साधुओंके धर्मका बाना उतार कर वीरोंकी वेश भूषा तथा कृतियोंसे सुसज्जित और अलंकृत हो गया। यद्यपि गुरु गोविंदसिंहके समयमें हिंदी काव्योंकी रचना हुई पर वे वीरगाथात्मक नहीं थे वरन उस समयके साहित्यकी प्रगतिके अनुकूल थे। भूषण और लालकी रचनाओं पर विचार करते हुए हमें यह भूल न जाना चाहिये कि इनका आविर्भाव उस कालमें हुआ था जिस कालमें रीति-ग्रंथोंकी परम्परा ही सर्वत्र देख पडती थी। नायिका-भेदकी पुस्तकों, नखशिख वर्णनों और शृंगाररसके फुटकर पद्योंका जो प्रबल प्रवाह उस समय चला था, उससे बच कर रहना तत्कालीन किसी कविके लिये बडा ही कठिन था। भूषण और लाल भी उस सर्वतोमुखी प्रवाहसे एकदम बचे न रह सके। यद्यपि भूषणकी सभी रचनाएं प्रायः वीररसकी हैं परंतु उन्होंने अपने "शिवराजभूषण" नामक ग्रंथमें उन रचनाओंको विविध अलङ्कारों आदिके उदाहरण-स्वरूप रखा है। यह काल-दोष था। उस समय इससे बच सकना असम्भव था। इसी प्रकार लालकविने भी यद्यपि वीरव्रत धारण किया था, तथापि "विष्णुविलास' नामक नायिका-भेदकी एक पुस्तक उन्होंने लिख ही डाली। कविवर लालके 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथमें प्रसिद्ध छत्रसालकी वीरगाथा अङ्कित है और प्रबंधकाव्यके रूपमें होते हुए भी उसकी रचना अत्यंत प्रौढ और मार्मिक हुई है। महाकवि भूषणकी ही भांति कविवर लालके इस ग्रंथमें जातीयताकी भावना मिलती है और उन्हींकी भांति इनकी इस रचनामें शृङ्गार रस नहीं आने पाया है।

आधुनिक काल।

कवितामें परिवर्तन—हिन्दीकी ह्रासकारिणी शृंगारिक कविताके प्रतिकूल आदोलनका श्रीगणेश उस दिनसे समझा जाना चाहिये जिस दिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपने "भारतदुर्दशा" नाटकके प्रारंभमें समस्त देशवासियोंको संबोधित करके देशकी गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहानेको आमंत्रित किया था। इस देशके और यहांके साहित्यके इतिहासमें वह दिन किसी अन्य महापुरुषके जयंती-दिवससे किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उस दिन शताब्दियोंसे सोते हुए साहित्यने जागनेका उपक्रम किया था, उस दिन रूढियोंकी अनिष्टकर परंपराके विरुद्ध प्रबल क्रांतिकी घोषणा हुई थी। उस दिन छिन्न भिन्न देशको एक सूत्रमें बांधनेकी शुभ भावनाका उदय हुआ था। उस दिन देश और जातिके प्राण एक सत्कविने सच्चे जातीय जीवनकी झलक दिखाई थी और उसी दिन संकीर्ण प्रांतीय मनोवृत्तियोंका अंत करनेके लिये स्वयं सरस्वतीने राष्ट्रभाषाके प्रतिनिधि कविके कंठमें बैठ कर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वसित की थी। भारत माताकी करुणोज्ज्वल छवि देशने और देशके साहित्यने उसी दिन देखी थी और उसी दिन सुनी थी टूटी फूटी शृङ्गारिक वीणाके बदले गंभीर झंकार, जिसे सुनते ही एक नवीन जीवनके उल्लासमें वह नाच उठा था।

राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, भारतेन्दु

हरिश्चंद्र आदिके उद्योगसे सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में जो हलचल मची, उसके परिणामस्वरूप सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात हुई जनतामें शिक्षाकी अभिरुचि। संस्कृत तथा उर्दू फारसीकी ओर प्रवृत करनेवाली प्रेरणा स्वामी दयानंदसे अधिक मिली और हिन्दी अङ्गरेजीकी पढ़ाई तो कुछ पहिलेसे ही प्रारम्भ हो चुकी थी। पड़ोसमें होनेके कारण उन्नतिशील बंगला भाषाकी ओर भी कुछ लोगोंका ध्यान लगभग उसी समयसे खिंचा। इस प्रबल शिक्षाप्रचारका जो प्रभाव राजनीतिक अभिज्ञता, सामाजिक जागर्ति और धार्मिक चेतना आदिके रूपमें पड़ा, वह तो पड़ा ही, हिन्दी साहित्यक्षेत्र भी उसके शुभ-परिणामस्वरूप अनंत उर्वर हो गया। सारा साहित्य नवीन प्रकाशसे परिपूर्ण हो कर ज्योतिकी शत सहस्र किरणें विकर्ण करने लगा। हमारी कविता भी सजग हो उठी। वह अपनी स्थविरताका परित्याग कर आगे बढ़ी और सामयिक प्रवृत्तियोंके अनुकूल रूप-रंग बदल कर शिक्षित जनताके साहचर्यमें आ गई। उस कालकी हिन्दी कविता मुख्यतः देश-प्रेम और जातीयताकी भावनाको ले कर उदित हुई थी, यद्यपि अन्य प्रकारकी रचनायें भी थोड़ी बहुत होती रहती थीं।

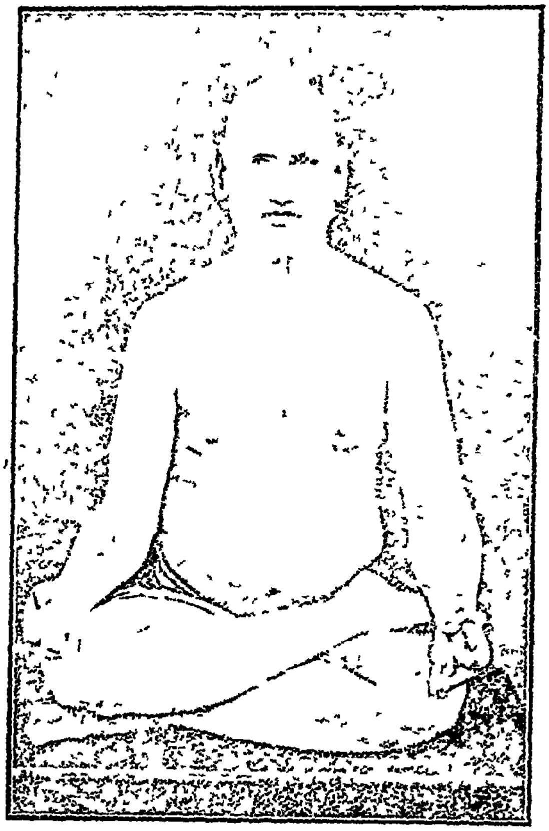

स्वामी दयानन्द सरस्वती।

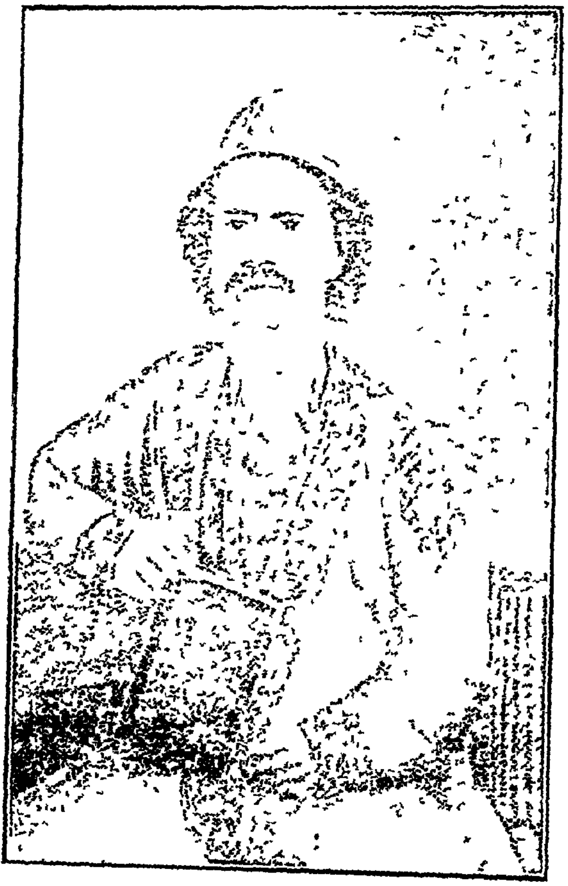

भारतेंदु हरिश्चंद्र।

भारतेन्दु हरिश्चंद्रकी कविता हिन्दीमें नवीन प्रगतिकी पताका ले कर आई थी, उस समयके अन्य कवियोंने सच्चे सैनिकोंकी भांति अपने सेनापतिका अनुगमन किया था। उन सभी कवियों पर भारतेन्दुका प्रभाव स्पष्टतः देख पड़ता है। यहां हम हरिश्चंद्रकी फुटकर रचनाओंकी बात नहीं कहते जो चली आती हुई शृंगारिक कविताकी श्रेणीकी ही मानी जायेंगी। उनकी जो रचनायें जातीय भावनाओंसे प्रेरित हो कर लिखी गईं, जिनमें देशकी अवस्था और समाजकी अवस्था आदिका वर्णन है, यहां उसीका विवेचन अभीष्ट है। हम यह स्वीकार करते हैं,

कि भारतेन्दुमें उत्कट देश प्रेम और प्रगाढ समाज हितैषिताके भाव थे, परन्तु साथ ही हम यह भी मान लेते हैं कि उनका देशानुराग, जातिप्रेम आदि बाह्य परिस्थितियोंके फलस्वरूप थे, उन्हें उन्होंने जीवनके प्रवाह के भीतरसे नहीं देखा था। अनेक अवसरों पर तो राजा शिवप्रसाद आदिके विरोधमें इन्होंने स्वदेश प्रेमका व्रत धारण किया था। इसी कारण उनकी तत्संबंधिनी रचनायें विशेष तन्मयताकी सूचना नहीं देतीं। ये ही कहीं तो बंगला आदिके अनुवादोंके रूपमें ही व्यक्त हुई हैं। क्षणिक परिस्थितियोंके आधार पर निर्मित साहित्यके मूलमें भावनाकी वह तीव्रता और स्थिरता नहीं होती जो स्थायी साहित्यके लिये अपेक्षित है। राजनीति और समाजनीतिको जीवनके अविच्छिन्न अंग बना कर जो रचनायें होंगी, काव्यकी दृष्टिसे उनका ही महत्त्व होगा, इन्हें प्रचारक या उपदेशककी दृष्टिसे देखनेसे कविकर्ममें अवश्य बाधा पड़ेगी।

हरिश्चंद्रके उपरांत हिन्दीके कवियोंकी प्रवृत्ति अंगरेजीकी लीरिक कविताके अनुकरणमें छोटी छोटी कवितायें बनाने और उन्हें पत्रोंमें प्रकाशित करनेकी ओर हुई। लीरिक कवितामें आत्माभिव्यंजनकी प्रधानता रहनी चाहिए, पर हिन्दीके तत्कालीन कविताकारोंमें यह बात कम देखी जाती है। न तो कवियोंके उपयुक्त चुनावकी दृष्टिसे और न तन्मयताकी दृष्टिसे उनकी रचनाएं श्रेष्ठ लीरिक कविताओंमें गिनी जा सकती हैं। यह स्पष्ट ज्ञात पड़ता है, कि शिक्षा आदि विषयों पर कविता लिखनेवाले व्यक्तिमें काव्यकी सच्ची प्रेरणा कम होती है, निबंधरचनाका भाव अधिक होता है। हिन्दीके उस कालके कवियोंने ऐसे ही विषयों पर कविता की, जिससे जनसमाजमें जागर्ति तो फैली, पर कविताका विशेष कल्याण न हो सका। काव्यके लिये निबंधोंकी सी बुद्धिगम्य विचारप्रणालीकी आवश्यकता नहीं होती, भावोंको उच्छ्वसित करना आवश्यक होता है। अनेक प्रमाणोंको एकत्र कर पद्यका ढाँचा खड़ा करना कविता नहीं है और चाहे जो कुछ हो। उस कालकी हिन्दी कविता में समाजसुधार और जातीयताका इतना दृढ़ प्रभाव पड़ चुका था, कि उनके प्रभावसे मुक्त हो कर रचना करना किसी कविके लिये संभव नहीं था।

अब तक ब्रजभाषा ही कविताका माध्यम थी और कवित्त सवैया आदि छंदोंका ही प्रयोग अधिक होता था। पर इस समयके लगभग भाषाके माध्यममें परिवर्तन किया गया, ब्रजभाषाके बदले खड़ी बोलीका प्रयोग होने लगा। इस समय तक खड़ी बोली हिन्दी गद्यकी प्रचलित भाषा हो चुकी थी, पर पद्यमें अपनी कोमलता और सौंदर्यके कारण ब्रज भाषा ही व्यवहारमें लाई जा रही थी। खड़ी बोलीके पक्षपातियोंका सबसे बड़ा तर्क यही था कि बोलचालकी जो भाषा हो उससे विभिन्न भाषाका प्रयोग कवितामें न होना चाहिये। यहाँ हम इस तर्ककी उपयुक्तता पर कुछ भी नहीं कहेंगे। पर पढ़ी लिखी जनताकी प्रवृत्ति खड़ी बोलीकी ओर अधिक हो रही थी, इसमें संदेह नहीं। छंदोंमें भी अनेकरूपता आने लगी थी। नए नए छंदोंका इस कालमें अच्छा आविष्कार हुआ। परंतु इस कालकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात है व्याकरणकी प्रतिष्ठा। भारतेंदु हरिश्चन्द्रके समसामयिक कवियोंको जो मार्ग प्रशस्त करना था, उसमें व्याकरणके जटिल नियमोंको स्थान नहीं दिया जा सकता था। हिन्दीके उस क्रांति-युगमें व्याकरणकी व्यवस्था संभव भी नहीं थी। उस समय तो कविताको रीतिकी संकीर्णतासे निकलना था, उसे खुली हवामें ला कर स्वस्थ करना था, पर कुछ कालके उपरांत जब हिन्दी गद्य कुछ उन्नत हुआ, तब भाषा संस्कार आदिकी ओर भी ध्यान दिया गया। यह सब होते हुए भी हमको इतना तो अवश्य स्वीकृत करना पड़ेगा, कि उस कालकी खड़ी बोली बड़ी कर्कशता ले कर आई थी, उसमें काव्योपयुक्त कोमलता नहीं थी। परन्तु कर्कशतामें कोमलताका समावेश करने और व्याकरणके नियमोंसे भाषाको श्रृंखलित करनेकी चेष्टा उस कालमें अवश्य हुई थी।

पाठकजी और द्विवेदीजी—स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी खड़ी बोलीकी कविताके प्रथम लेखक और आचार्य हुए। पाठकजीने गोल्डस्मिथकी कवितापुस्तकोंका अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' 'एकांतवासी योगी" और 'श्रांत पथिक' के नामसे किया और कुछ मौलिक कविताएँ भी कीं। द्विवेदीजीने मराठी साहित्यकी प्रगतिसे परिचित हो कर

हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका 'सरस्वती'में छोटी छोटी रचनाएँ कीं और अनेक कवियोंको प्रोत्साहन दिया। यदि पाठकजीमें कवित्व द्विवेदीजीसे अधिक है तो द्विवेदीजीमें भाषाका मार्जन पाठकजीकी अपेक्षा अधिक है। उस समय खड़ी बोलीका जो अनिश्चित रूप प्रचलित था उसे सुधार कर काव्योपयुक्त बनानेकी चेष्टा करनेके कारण द्विवेदीजीका स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जायगा। परन्तु मराठी कविताकी कर्कशता द्विवेदीजीकी रचनाओंमें भी देख पड़ी। कुछ काल उपरान्त द्विवेदीजीने 'कुमारसम्भव' आदि संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवाद कवितामें किए, जो अपने ढंगके अनुपम हुए। पाठकजीने ब्रजभाषाका पल्ला भी पकड़ा और बड़ी ही मधुर कविताकी सृष्टि की। द्विवेदीजीके अनुयायियोंमें आगे चल कर अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त सबसे अधिक यशस्वी हैं। पाठकजीको प्रकृतिकी रम्य क्रीडाभूमि काश्मीरमें तथा अन्य मनोहर पहाड़ी प्रदेशोंमें रहनेका सुअवसर मिला था, जिसके फलस्वरूप उनके रसिक हृदयने प्राकृतिक दृश्योंके साथ आंतरिक अनुराग प्राप्त कर लिया था। इस अनुरागकी स्पष्ट झलक उनकी रचनाओंमें देख पड़ती है।

श्रीधर पाठक।

उपाध्यायजी और नाथूरामजी—पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय और पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा हिन्दीके उन प्रसिद्ध कवियोंमें हैं जिन्होंने द्विवेदीजीके प्रभावके बाहर रह कर काव्य-रचना की। अपने प्रारंभिक कविता-कालमें उपाध्यायजी ब्रजभाषामें कविता करते थे; पर आगे चल कर उन्होंने पदावलीका आश्रय ले कर संस्कृत वृत्तोंमें 'प्रियप्रवास' की रचना की। 'प्रियप्रवास'में उपाध्यायजीकी कवित्वशक्ति बड़ी सुन्दर और उसके कुछ स्थलोंमें काव्यत्व उच्च कोटिका मिला, परन्तु 'प्रियप्रवास'की रचनाके उपरांत उन्हें काव्यमें मुहावरोंका चमत्कार दिखाने तथा उपदेशों और व्यंग्यों द्वारा समाजसुधार करनेकी धुन सवार हुई। तथापि अंतःकरणकी अकृत्रिम प्रेरणासे लिखे जानेके कारण उनकी अनेक कृतियां अच्छी बन पड़ी हैं। हिन्दीके आधुनिक कवियोंमें उपाध्यायजी अपनी कृति बहुलता और अनेकमुखी साहित्यसृष्टिके कारण भिन्न भिन्न पाठकोंकी रुचिको भिन्न भिन्न प्रकारसे आकर्षित करते हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध)।

पण्डित नाथूरामजीशर्मा विलक्षण शब्दनिर्माता और कवि हैं। आर्यसमाजी होते हुए भी उनकी सब कविताएं सांप्रदायिक नहीं हो गई हैं और कुछमें तो उत्तम कोटिके कवित्वकी झलक मिलती है। शृंगारसके पद्माकरी कवियोंकी भांति भी इन्होंने कुछ कविताएं कीं, पर वे उनके योग्य नहीं कही जा सकतीं।

पंडित नाथूराम शंकर शर्म्मा।

मैथिलीशरण गुप्त।

मैथिलीशरण गुप्त—बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त आधुनिक खड़ी बोलीके सबसे प्रसिद्ध प्रतिनिधि कवि हैं। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीके प्रभावमें रह कर उन्होंने अपनी भाषाका बड़ा ही सुन्दर और परिमार्जित रूप खड़ा किया। द्विवेदीजीकी ही भाँति उनकी भाषामें संस्कृतका पुट रहता है पर 'प्रियप्रवास' की भाँति वह अतिशय संस्कृतगर्भित नहीं होता। उर्दूके बहुत ही थोड़े शब्दोंको ग्रहण करनेके कारण वे पंडित गयाप्रसाद 'सनेही' जी की उर्दूमिश्रित कविताशैलीसे भी विभिन्न रूपमें हमारे सामने आते हैं। भाषाकी दृष्टिसे उनका मध्यम मार्ग ही कहा जायगा। लोकप्रियताकी दृष्टिसे मैथिली शरणजीको जितना गौरव प्राप्त हुआ है, उतना आधुनिक कालमें भारतके शायद ही किसी कविको प्राप्त हुआ हो। विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरको ख्याति समस्त संसारमें हैं। संसारकी अनेक भाषाओंमें उनकी रचनाओंका अनुवाद भी हो चुका है और उनके अनेकों संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु बंगलामें श्री रवीन्द्रनाथकी किसी भी पुस्तकके इतने संस्करण नहीं निकले जितने श्री गुप्तजीकी पुस्तकोंके निकल चुके हैं। वास्तवमें श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायको छोड़ कर भारतकी किसी अन्य भाषाके किसी भी कवि या लेखकको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ कि उसके जीवन हीमें उनकी पुस्तकोंके इतने संस्करण निकल सकें जितने श्रीगुप्तजीके 'जयद्रथ-वध' के प्रकाशित हो चुके हैं। गुप्तजीकी 'भारत भारती' अब भी देशप्रेमी नव युवकोंका कंठहार हो रही है। उसके सैकड़ों पद हिन्दीभाषा-भाषी जनताकी जिह्वाकी नोक पर धरे रहते हैं। कितने ही नौ-सिखिए कवि अब भी उसका अनुकरण करते देखे जाते हैं। पर काव्यकी दृष्टिसे उसका विशेष महत्त्व नहीं है। काव्यको

दृष्टिसे उनका 'जयद्रथवध' खंड-काव्य उत्कृष्ट हुआ है। इसमें वीररसका पूर्ण परिपाक और बीच बीचमें करुण रसके सुन्दर छींटे देख कर मन रसमग्न हो जाता हैं। उनकी अन्य रचनाओंमें 'पंचवटी' सर्वश्रेष्ठ है। उसमें लक्ष्मणका चरित बड़ा ही उज्ज्वल चित्रित हुआ है, और पूरी पुस्तकमें सुंदर पद्योंकी अनोखी छटा देख पड़ती है। गुप्तजीका आधुनिक समयकी प्रतिनिधि कवि होना इसी बातसे सिद्ध होता है कि उनकी छायावादके ढंगकी रचनाएं भी उस श्रेणीके कवियोंकी प्रशंसा पा चुकी हैं। गुप्तकी कवितामें कहीं कृत्रिमता नहीं देख पड़ती। गुप्तजीने 'साकेत' नामक एक महाकाव्य भी लिखा है। यह अभी तक पुस्तकाकार रूपमें प्रकाशित नहीं हुआ है, परन्तु उसके बहुतसे अंश हिन्दीके सामयिक मासिक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके है। गुप्तजीकी यह कृति "निश्चय ही उन्हें हिन्दीके आधुनिक कवियोंमें सर्वोच्च आसन प्रदान कर अमर बनावेगी। 'साकेत'में जा कर गुप्तजीकी भाषा पूर्ण परिपक्वताको प्राप्त हुई है। इसमें उनका भाषा पर अधिकार और काव्य प्रतिभाके साथ-साथ चरित्र चित्रण और मनोभावोंके विश्लेषणकी प्रतिभाका भी पूर्ण परिचय मिलता है। उन्होंने बंगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्तके 'मेघनादवध', 'वीरांगना', 'विरहिणी व्रजांगना' तथा नवीन चंद्रसेनके 'पलासीर युद्ध'का भी हिंदीमें अनुवाद किया है। इन अनुवादोंमें गुप्तजीको अद्भुत सफलता मिली है। इनसे इनकी विलक्षण क्षमताका पता तो चलता ही है, खड़ी बोलीकी शब्दशक्ति भी प्रकट होती है।

सनेहीजी और दीनजी—पंडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही और लाला भगवानदीन उर्दू मिली भाषामें कविता करते हैं। दोनों ही राष्ट्रीयताके भावको ले कर आये हैं और दोनोंकी रचनाएं ओजस्विनी हुई हैं। अंतर इतना ही है कि सनेहीजीने आधुनिक समाजको अपनी कविताका लक्ष्य बनाया और दीनजी महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि वीर नृपतियोंकी प्रशस्तियाँ लिखनेमें लगे रहे। राष्ट्रीय कवियोंको साहित्यकी क्लिष्ट भाषा ले कर नहीं चलना पड़ता, उन्हें तो जनताकी प्रचलित भाषाका आश्रय लेना पड़ता है। इस दृष्टिसे सनेहीजी और दीनजी दोनोंने ही भाषाका उपयुक्त चुनाव किया है। राष्ट्रीय कवियोंको पूरी सफलता तभी मिल सकती है जब वे राष्ट्रीय आंदोलनोंमें स्वयं सम्मिलित हों और उत्साहपूर्वक जनताको मुक्तिका पथ दिखलावें। चंद, भूषण आदि वीर कवियोंने ऐसा ही किया था। हिन्दीके आधुनिक राष्ट्रीय कवियोंमें पंडित माखनलाल चतुर्वेदी और पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'का कार्य इस दृष्टिसे प्रशंसनीय कहा जायगा। सनेहीजीकी कुछ शृंगारिक रचनाएं अच्छी नहीं हुई हैं, पर वे उनकी प्रारंभिक कृतियां हैं।

शुक्लजी—पंडित रामचंद्र शुक्लकी प्रसिद्धि उत्कृष्ट गद्यलेखक और समालोचककी दृष्टिसे है, उनकी कविताएं उन्हें अधिक सम्मानित नहीं कर सकी हैं। बुद्ध-चरितके अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएं इधर उधर

रामचन्द्र शुक्ल।

बिखरी पड़ी हैं, संगृहीत नहीं हुई हैं। शुक्लजी हिन्दीके विद्वान् और दार्शनिक आलोचक हैं, परन्तु उनकी सहृदयता भी विशेष उल्लेखयोग्य है। वन्य प्रकृतिके उजाड़ और सूने स्वरूपके प्रति भी उनका जितना अनुराग है उतना बागीचोंमें खिले हुए गुलाबके फूलके प्रति नहीं। सौन्दर्यको बड़े ही व्यापकरूपमें देखनेकी अंतर्दृष्टि शुक्लजीको मिली है। उनके प्राकृतिक वर्णन बुद्धचरितके सर्वश्रेष्ठ अंश हैं, उनसे उनका सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिभासित होता है। 'हृदयके मधुरभार' शीर्षक उनके फुटकर पद्योंमें कहीं व्यंग्य और कहीं मीठी चुटकियोंके द्वारा मानव समाजकी अज्ञता, दुर्बलता और अहंकारिताका नग्नरूप दिखाया गया है।

त्रिपाठीजी—पंडित रामनरेश त्रिपाठीने हिंदीमें 'मिलन', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' नामक तीन खंड-काव्योंकी रचना की है। उनकी भाषामें संस्कृतका सौंदर्य दर्शनीय है। यद्यपि उनमें भावोंकी प्रचुरता नहीं है, पर एक ही वस्तुको बड़ी सुन्दरतासे कई बार दिखानेमें उन्हें बड़ी सफलता मिली है। राष्ट्रीयताकी भावना उनकी पुस्तकोंमें भरी पड़ी है। इसीसे राजनीतिक क्षेत्रके बड़े-बड़े व्यक्तियोंने उनकी प्रशंसा की है, यद्यपि उनकी राजनीति कहीं कहीं उनकी कवितामें बाधक हो गई है। 'विधवाका दर्पण' शीर्षक उनकी एक मुक्तक रचना, हिन्दीमें उनकी अब तककी कृतियोंमें उच्च स्थानकी अधिकारिणी है।

व्रजभाषाके आधुनिक कवि।

व्रज भाषामें कविता करनेवालोंमें हरिश्चन्द्रके उपरात प्रेमघन और श्रीधर पाठक श्रेष्ठ कवि हुए। इनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके पश्चात् स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण शर्मा कविरत्न और बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकरका नाम प्रसिद्ध है। राय देवीप्रसाद पूर्ण कानपूरके वकील थे। वे व्रजभाषाकी अच्छी कविता करते थे। उनके 'चन्द्रकला-भानुकुमार' नाटकके कुछ सवैये ऐसे उत्कृष्ट हुए हैं जो देव और मतिरामकी समता करते हैं। उन्होंने कालिदासके अमरकाव्य 'मेघदूत' का व्रजभाषामें 'धराधरधावन' नामसे अनुवाद भी किया है। वे खड़ीबोलीमें भी कविता करते थे। उनकी स्फुट कविताओंमें 'शकुन्तला जन्म' नामक कविता अच्छी बन पड़ी है।

पण्डित सत्यनारायण कविरत्न व्रजमंडल (आगरे) के रहनेवाले व्रजपतिके अनन्यभक्त, बड़े ही रसिक और सरल स्वभावके व्यक्ति थे। उनकी रचनाओंमें व्रजकी माधुरी लबालब भरी है। उनकी स्फुट कविताओंका संग्रह 'हृदय तरंग' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। उन्होंने भवभूतिके 'मालती-माधव' नाटकका ऐसा सरस और मधुर अनुवाद किया है, जिसमें मौलिकताका आभास झलकता है। देशके कुछ महा-पुरुषोंकी—जैसे महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक आदि—जो प्रशस्तियां सत्यनारायणजीने लिखी हैं वे भी बड़े मार्केकी हैं। स्वदेशानुरागकी सच्ची झलक दिखानेवाले थोड़े कवियोंमें उनकी गणना होगी।

रत्नाकरजी—व्रजभाषाके आधुनिक सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। इनका 'हरिश्चन्द्रकाव्य' सुंदर हुआ है, पर 'गंगावतरण' नामक नवीन रचनामें इनकी सच्ची काव्यप्रतिभा चमक उठी है। इस ग्रन्थमें रत्नाकरजीने प्रकृतिके नाना रूपोंके साथ

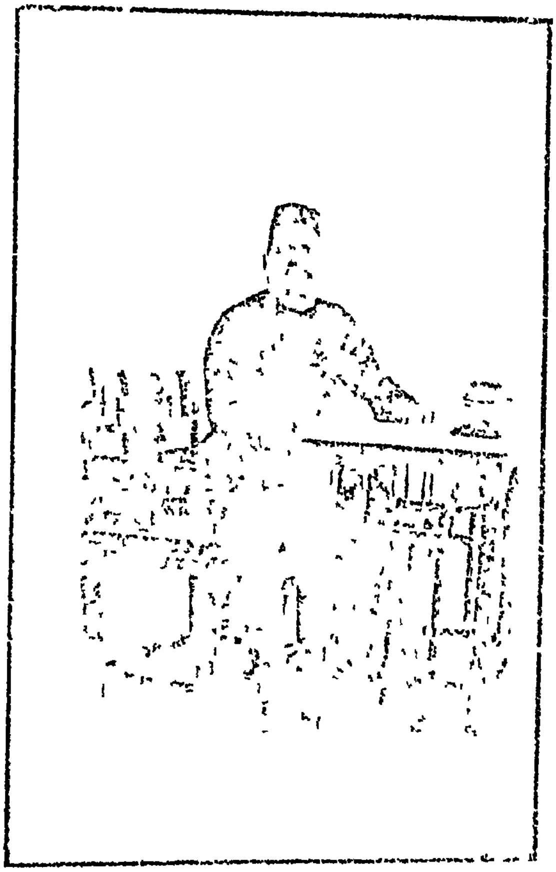

जगन्नाथदास रत्नाकर।

अपने हार्दिक भावोंका सामञ्जस्य दिखा दिया है। रत्नाकरजीकी भाषा-शैली पद्माकरी कही जा सकती है और अनुभावोंके प्रस्तुत करनेमें उन्होंने आधुनिक मनोविज्ञानके सिद्धांतोंका उपयोग किया है। व्रजभाषाके आधुनिक कवियोंमें वियोगी हरिजीकी भी अच्छी प्रसिद्धि है। ये भक्त हैं, दार्शनिक हैं और वीररसकी कविता करनेवाले हैं। यद्यपि यह युग व्रजभाषाका नहीं है तथापि उपर्युक्त कवियोंकी रचनाएं उत्कृष्ट भी हुई हैं और पठित जनतामें उनका प्रचार भी हुआ है। आधुनिक कालके व्रजभाषाके कवियोंमें रत्नाकरजीका स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

अन्य कविगण—इस युगके अन्य कवियोंमें पण्डित रूपनारायण पाडेय, बाबू सियारामशरण गुप्त, पंडित अनूप शर्मा, पण्डित गिरिधर शर्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, पंडित रामचरित उपाध्याय, पंडित लोचनप्रसाद पाडेय, ठाकुर गोपाल शरणसिंह, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि भी उल्लेखयोग्य है। रूपनारायणजीकी भाषा चलती हुई खड़ी बोली है, उनकी कवितामें पूरी रसात्मकता है। हिन्दीकी लीरिक कविताओंमें उनकी 'वनविहंगम' शीर्षक रचना उत्कृष्ट है। सियारामशरणजीने सामाजिक कुरीतियों पर इतनी तीव्र व्यंग्यमयी और करुणकविता की है, कि चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। समाजनीतिको काव्योपयोगी बनानेकी विधि हिंदीमें सियारामशरणजीको सबसे अधिक आती है। इस क्षेत्रमें उनकी सफलता प्रायः अद्वितीय है। वीररसकी फड़कती हुई कविता करनेके कारण पंडित अनूप शर्माको कुछ लोग आधुनिक भूषण कहते हैं, वास्तवमें उनकी अनेक रचनाएं अपूर्व ओजस्विनी हुई हैं। पंडित गिरिधर शर्मा "नवरत्न" संस्कृतके विद्वान् और हिन्दीके अच्छे कवि हैं। इन्हें गुजराती और बंगला की कविता-पुस्तकोंके अनुवादमें अच्छी सफलता मिली है। गुरुजीकी कविताओंमें व्याकरणके नियमोंकी अच्छी रक्षा हुई है। पंडित रामचरित उपाध्याय और पंडित लोचनप्रसाद पांडेयको आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने प्रोत्साहित कर कवि बनाया था। उपाध्यायजीकी रामचरितचिन्तामणि अपने ढंगकी सुन्दर पुस्तक है। पांडेयजीकी छोटी छोटी रचनाएं अच्छी हुई हैं। ठाकुर गोपाल शरणसिंह भी 'सरस्वती' और द्विवेदीजीकी छायामें ही बढ़ कर कवि हुए हैं। 'माधवी'में उनकी कुछ रचनायें अच्छी हुई हैं। श्रीमती सुभद्राकुमारी निश्चय ही इस समयकी सबसे अच्छी महिला-कवि हैं। उनकी रचनायें सरल और सजीव होती हैं। उनमें सुकुमार, संवेदनापूर्ण भावोंकी न्यूनता नहीं होती। इन कवियोंके अतिरिक्त स्वर्गीय पंडित मन्नन द्विवेदी और पंडित माखनलाल चतुर्वेदी आदिकी कविताएं भी महत्त्व रखती हैं। माखनलाल चतुर्वेदीकी रचनायें, पुरानी शैली और नवीन छायावादी शैली—दोनोंके बीचकी हैं। पुरानी शैलीके विचारसे उनकी कृतियाँ छायावाद लिए हुए होती हैं और छायावादी रचनाओंमें वे सबसे अधिक सुलझी हुई होती हैं। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कुछ रचनायें अच्छी हुई हैं।

छायावाद।

हिन्दीकी काव्यधाराका सामान्य परिचय ऊपर दिया गया है। अब थोड़े समयसे हिन्दी कवितामें रहस्यवाद या छायावादकी सृष्टि हो रही है। कुछ लोग रहस्यवाद या छायावादको आध्यात्मिक कविता बतलाते हैं और पाश्चात्य देशोंके उदाहरण द्वारा यह सिद्ध करते हैं, कि धर्मगुरुओं और ज्ञानियोंने ही रहस्यवादकी कविता की है। इंग्लैंडके अनेक रहस्यवादी कवि सांप्रदायिक कवियोंकी श्रेणीमें आवेंगे, क्योंकि उनकी कवितामें लोकसामान्य भावोंका समावेश नहीं है, विभिन्न संप्रदायोंकी विचारपरंपराके अनुसार उसकी रचना हुई है। परन्तु रहस्यवादकी कविता साम्प्रदायिक आधारको ग्रहण किए बिना भी लिखी जा सकती है। इंग्लैंडके ब्लेक, पारसके उमर खैयाम और भारतके जायसी आदि कवियोंने बहुत कुछ ऐसी ही कविता की है। यह ठीक है, कि उनकी काव्यगत अनुभूतियाँ सामान्य अनुभूतियोंसे विभिन्न हैं; पर वे सत्य हैं, अतः उनमें रसात्मकता पूरी मात्रामें पाई जाती हैं। हिन्दीके कवि जायसीने प्रकृतिके विविध रूपोंमें अनंत विच्छेद और अनंत संयोगकी जो झलक दिखलाई है, उसका उन्होंने स्वतः अनुभव किया था, केवल सूफी संप्रदायकी किंवदंतीके आधार पर वह अवलंबित

राजा अ'नङ्ग त-सई राजसिंहासन पर अधिष्ठित थे। उन्होंने परिव्राजकके सम्मानार्थ उत्सव मनानेका हुकुम दिया। स्वयं चीन सम्राट्, अमात्य, सचिववर्ग, राजकर्मचारीवर्ग, वणिक् वृन्द और जनसाधारणने अपना अपना काम काज बंद कर उनका स्वागत किया। राजधानीकी प्रत्येक नरनारीने नाच गान, ध्वजच्छत्र आदिसे सडक पर उनका स्वागत किया था। और तो क्या, उस समय चीनराजधानीकी निराली छटा देख कर किसका मन नहीं लुभा जाता था!

तुषारावृत शैलशिखर और अनुर्वर मरुक्षेत्रमें शीत और ग्रीष्मका घोर कष्ट अनुभव कर परिव्राजक युएन चुअङ्ग सुस्थ शरीरसे स्वदेश लौटे हैं और अपने साथ भारतसे अत्यंत मूल्यवान् सम्पत्ति लाये हैं, यह सुन कर उनके दर्शनार्थ चीनवासियोंका ताता बंध गया। चीन परिव्राजक इस उपलक्षमें भारतसे ६५७ तालपत्रमें लिखित पवित्र धर्मग्रंथ (विनय, त्रिपिटक इत्यादि) साथ लाये थे। वे सब ग्रंथ भारतीय देवभाषामें लिखे हुए थे। इसके सिवा वे सोने, चांदी, स्फटिक और चंदनकी लकडीकी बनी हुई बुद्ध तथा नाना बौद्धाचार्यो या बोधिसत्त्वमूर्त्ति साथ ले गये थे। उसके साथ कुछ अद्भुत चित्र और १५० बुद्धदेवके उत्तम स्मृति-चिह्न भी विद्यमान थे। उन सब वस्तुओंको २० घोडोंकी पीठ पर लाद कर परिव्राजकजीने जुलूसकी शोभाको बढ़ाते हुए नगरमें प्रवेश किया था।

उस समय बिना सम्राट्की आज्ञाके किसी भी चीनवासीको देशांतर जानेका अधिकार नहीं था। हुय'सिय'-के राजाज्ञाका उल्लंघन करने पर भी सम्राट् त अइ-नसुङ्गने जरा भी क्रोध न किया, वरन् उनका दिल खोल कर स्वागत किया और पीछे उनसे मित्रता कर ली। उन्होंने परिव्राजक युएन चुअङ्गको अपने गुप्त मंत्रणागारमें बुला कर उनके मुखसे अज्ञात भारतका आनुपूर्विक विवरण सुना। पीछे सम्राट्ने उन्हें कष्टकर धर्मजीवनका परित्याग कर गार्हस्थ्यधर्म ग्रहण करनेका अनुरोध किया, पर वे फिर इस संसारमें प्रवेश करनेको राजी न हुए। इसके बाद दृढप्रतिज्ञ परिव्राजक अपने संघारामकी निर्जन कोठरीमें बैठ कर पूर्वोक्त बौद्धधर्मग्रंथोंका चीन-भाषामें अनुवाद करने लग गये। अकेला कुल ग्रंथोंका अनुवाद कर उनका प्रचार करना असम्भव-सा जान कर उन्होंने सम्राट्से सहायता मांगी। सम्राट्ने परिव्राजकके सहायतार्थ अन्यान्य पण्डितोंको अनुवाद, लिपिकरण और मुद्राङ्कन आदि कार्यों में नियुक्त किया। ६४६ ई०में उनके भ्रमणवृत्तान्त (हुसि-यु-चि)की पहली कापी सम्राट्को समर्पण की गई। परन्तु सच पूछिये, तो वह ग्रंथ ६४८ ई०में संशोधित हो कर प्रचारित हुआ था।

परिव्राजक कुछ समय अनुवाद करनेमें और बाकी लोगोंको धर्मोपदेश देनेमें बिताते थे। ६६४ ई०के द्वितीय मासके ६ठे दिनमें इनका तिरोधान हुआ।

वे देखनेमें पिताके जैसे लंबे और अच्छे डील डौलके थे। उनका नैतिक जीवन बड़ा ही मधुर था। उसके साथ ज्ञानका उन्मेष रहनेके कारण उनके हृदयमें दया-दाक्षिण्य मानों भरपूर था। वे बौद्धधर्मके कट्टर विश्वासी शाक्य मुनिके अनुरक्त भक्त होने पर भी देशके प्राचीन मत पर विश्वास करते थे। साठ वर्षकी उमरमें भी इनके हृदयमें पुत्रका कर्त्तव्य जाग्रत था। वे प्राचीन प्रथासे पिताको उपयुक्त समाधि देनेके लिये अग्रसर हुए थे। जब वे स्वयं लाख चेष्टा करके भी पिताके समाधिक्षेत्रका पता न लगा सके, तब उन्होंने अपनी बहन श्रीमता चङ्गा-को जो कहीं बाहर चली गई थी, बुलाया और उसका सहायतासे पिताकी समाधिको खोज कर निकाला। पीछे सम्राट्की आज्ञा ले कर उन्होंने पिताकी हड्डीको कब्रमेंसे निकाला और कुलप्रथाके अनुसार बडी धूमधाम-से फिर उसे गाड दिया। भारतमें आ कर बुद्ध और बौद्धधर्मके सभी विषय जाननेके अलावा उन्हें और किसी बातका अरमान नहीं था। स्वयं गौतम बुद्धने जो धर्ममत प्रचार किया, उसमें विश्वास रहने पर भी कई विषयोंमें इनका मत नहीं मिलता था। वे हीनयान मत-को निन्दनीय समझते थे। बुद्धकी सरल उपदेशावली उनको आलोचनाकी एकमात्र उपकरण थी। नालन्दा बिहारमें बौद्धयति शीलभद्रने जो धर्म प्रचार किया था, उन्हींके अनुकरण पर युएनचुवंग चीनसाम्राज्यमें बौद्ध-धर्मका चतुर्थ साम्प्रदायिक मत चला गये हैं।

हिय (हिं० पु०) १ हृदय, मन। २ वक्षस्थल, छाती।

हियरा (हिं० पु०) १ हृदय, मन। २ वक्षस्थल, छाती।

हिया (हिं० पु०) १ हृदय, मन। २ वक्षस्थल, छाती।

हियव (हिं० पु०) कोई कठिन काम करनेकी मानसिक दृढ़ता, साहस।

हिर (हिं० पु०) कपड़े आदिकी पट्टी।

हिरकुल—एक शैलमाला। यह तुमकुर, हस्सन और कदूर जिलाओंके संगमस्थल पर महिसुर राज्यके मध्य अवस्थित है। इन शैलमालामें-से एक पर तिरुपतिका प्रसिद्ध मन्दिर है। दूसरे पर हैदरअलीने नयापुरी नामक एक शहर बसानेकी चेष्टा की थी।

हिरगुनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बढ़िया कपास जो सिंधमें होती है।

हिरङ्गु (सं० पु०) राहुग्रह।

हिरण (सं० क्ली०) १ रेतः, वीर्य। २ स्वर्ण, सोना। ३ वराटक, कौड़ी।

हिरणमय (सं० क्ली०) १ जम्बू द्वीपके नौ खंडों या वर्षोंमें-से एक। भागवतमें पञ्चम स्कन्धके १६वें अध्यायमें इस वर्षका विवरण लिखा है। इस वर्षके उत्तर इला वृत वर्ष है। श्वेत नामक पर्वत इस वर्षका मर्यादागिरि है। यह वर्ष दो हजार योजन विस्तृत है। इसके दोनों ओर क्षीरोदसमुद्र अवस्थित है। (पु०) २ उक्त वर्षका शासक, अग्नीध्रका पुत्र। ३ हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा। ४ एक ऋषि। (लि०) ५ सुवर्णमय, सोनेका।

हिरण्य (सं० क्ली०) हर्य्यो गतिकान्त्योः (हर्यतेः कन्यन् हिर च। उण् ५।४४) इति कन्यन् हिरादेशश्च। १ सुवर्ण, सोना। सुवर्ण देखो। २ धुस्तूर, धतूरा। ३ रेतः, वीर्य। ४ द्रव्य, वस्तु। ५ वराट, कौड़ी। ६ अक्षर। ७ एक मन या तौल। ८ हिरणमय वर्ष या खंड। ९ एक दैत्य। १० नित्य, तत्त्व। ११ ज्ञान। १२ ज्योति, तेज। १३ अमृत। १४ रजत, चांदी। १५ धन, दौलत। १६ एक प्रकारका गुग्गुल।

हिरण्यक (सं० पु०) स्वर्ण, सोना।

हिरण्यकक्ष (सं० लि०) स्वर्णकक्षयुक्त।

हिरण्यकक्ष्य (सं० लि०) हिरण्यकक्षसम्बन्धी।

हिरण्यकर्ण (सं० लि०) जिसके कानोंमें सोनेके कुण्डल हों।

हिरण्यकर्त्तृ (सं० पु०) स्वर्णकार, सुनार।

हिरण्यकशिपु (सं० पु०) एक दैत्य। इसके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम दिति था। श्रीमद्भागवत और विष्णु आदि सभी पुराणोंमें इस दैत्यका विवरण आया है जो संक्षेपमें इस प्रकार है। वैकुण्ठ-भवनमें भगवान् हरिके जय और विजय नामक दो द्वारपाल थे। भगवान् विष्णुके द्वारकी रक्षा करना ही इनका काम था। एक दिन सनन्दादि ऋषिगण विष्णुलोक गये। जय और विजयने इन ऋषियोंको पुरप्रवेश करनेसे निषेध किया। इस पर वे लोग बड़े बिगड़े और द्वारपालको शाप दिया, 'भगवान्के निकट रहते हुए भी तुम लोगोंके हृदयका रजस्तमोमल दूर नहीं हुआ है, इसलिये तुम यहां रहनेके योग्य नहीं हो, शीघ्र ही तुम्हारा आसुरी योनिमें जन्म होगा।' इस प्रकार शाप देते ही वे दोनों स्वर्गसे पतित हुए। उन्हें पतित होते देख ऋषियोंको दया आई। उन्होंने जय विजयसे कहा, 'अभी तो आसुरी योनिमें आ कर जन्म लो, पर तीन ही जन्मके बाद तुम शापसे विमुक्त हो जाओगे।' इसी जय और विजयने प्रथम जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु, द्वितीय जन्ममें रावण और कुम्भकर्ण तथा तृतीय जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्र रूपमें जन्म ग्रहण किया।

कश्यपके दिति और अदिति नामकी दो पत्नियां थीं। अदितिके गर्भसे देवताओंका जन्म हुआ। वे अमर और बलवान् हो कर स्वर्गके अधीश्वर हुए। कुछ दिन बाद दितिने भी सौ वर्ष गर्भ धारण कर दो यमजपुत्र प्रसव किये। वे दोनों विशाल पर्वत सदृश और पाषाणके समान कठिन हो दिन पर दिन बढ़ने लगे। प्रजापति कश्यपने उन दोमेंसे जो पहले जन्मा था उसका नाम हिरण्यकशिपु और जो पीछे जन्मा था उसका नाम हिरण्याक्ष रखा। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुका बड़ा प्यारा था और प्रति दिन उसके प्रीतिकर काम किया करता था। धीरे धीरे हिरण्याक्ष अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो उठा। एक दिन हिरण्याक्ष गदा ले कर युद्धकी कामनासे स्वर्ग जा पहुंचा। वहां वरुणकी विभावरी नामक पुरी अपना कर सुखसे रहने लगा। वरुण हिरण्याक्षके भयसे छिप रहे। एक दिन हिरण्याक्षने वरुणको देख कर युद्धके लिये ललकारा।

वरुणने कहा, 'हे असुर! आप रणमें बड़े सुदक्ष हैं, रणमें भगवान्‌को छोड़ और कोई भी व्यक्ति आपको प्रसन्न नहीं कर सकता। इसलिये आप उन्ही के पास जाये और रणपिपासाको निवृत्त करें।"

हिरण्याक्ष नारदके मुखसे हरिकी गति जान कर शीघ्र ही रसातलमें घुसा। वराहरूपी विष्णु पर उसकी दृष्टि पड़ने ही दोनोंमें घोर युद्ध चलने लगा। वराहरूपी हरिने उसके साथ बहुत देर तक युद्ध कर उसे दाँतसे विदीर्ण कर डाला और सुदर्शनचक्रसे उसका वध किया।

हिरण्यकशिपुको जब मालूम हुआ, कि वराहरूपी विष्णुके हाथसे उसका छोटा भाई मारा गया, तब वह बहुत दुःखित हुआ और विष्णुके साथ इसका बदला लेना चाहा। उसने मन ही मन स्थिर किया कि, "विष्णुको चाहे जिस तरह हो निधन कर उनके रक्तसे प्यारे भाईका तर्पण करूंगा।'

अनन्तर हिरण्यकशिपुने दुःखित चित्तसे भाईके श्राद्ध तर्पणादि करके मन्दर पर्वतकी कन्दरामें घुस घोर तपस्या ठान दी। उसकी तपस्यासे ब्रह्मा स्थिर न रह सके। उन्होंने हिरण्यकशिपुके पास जा उसे संबोधन कर कहा, 'तुम्हारी सिद्धि हो चुकी, मैं वर देने आया हूं, जो इच्छा हो मांगो।' इतना कह कर ब्रह्माने अपने कमण्डलुमेंसे जल निकाल दैत्यपति हिरण्यकशिपुके अंग पर जिसे च्युंटियां खा रही थी, छिड़का। ब्रह्माके कमण्डलुका जल पड़ते ही हिरण्यकशिपु सर्वावयव-सम्पन्न और वज्रके समान दृढ़ाङ्ग हो सामर्थ्य, बल और तेजके साथ उस वल्मीक और कीचड़-मेंसे बाहर निकला। तपे सोनेकी तरह उसका शरीर दमकने लगा।

हिरण्यकशिपुने ब्रह्माको प्रणाम कर उनका स्तव किया और कहा, 'भगवन्! आप यदि मुझ पर प्रसन्न है, तो यही वर दीजिये, जिससे जगत्‌से मेरी मृत्यु न हो। केवल यही नहीं, भीतर या बाहरमे, दिन या रातको किसीसे भी मैं न मरूं! नर या मृगसे मेरी मृत्यु न हो और न भूमि या आकाश ही में।'

अनंतर ब्रह्माने हिरण्यकशिपुको प्रसन्न करनेके लिये आगे पीछेका विचार किये विना उससे कहा, 'वत्स! तुम मुझसे जो वर मांग रहे हो, यद्यपि वह वर अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि मैंने तुम्हें दे दिया।'

हिरण्यकशिपुने वर पा कर स्वर्णदेहको धारण किया। विष्णुने उसके भाईका निधन किया है, यह स्मरण कर उनके प्रति वह अत्यन्त द्वेष करने लगा। पीछे इन्द्रका स्वर्गराज्य अधिकार कर वह स्वयं इन्द्र बन वहां रहने लगा। देवगण सताये जा कर उसीकी सेवामें नियुक्त हुए। ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनको छोड़ बाकी सभी उपहार द्वारा उसकी उपासना करते थे। समस्त यज्ञका भाग हिरण्यकशिपुको ही मिलता था। देवताओंके उद्देशसे कोई भी यज्ञ नहीं कर पाता था। अनन्तर देवताओंने अत्यन्त पीड़ित हो भगवान् विष्णुकी शरण ली। जब वे लोग विष्णुकी उपासना कर रहे थे उसी समय दैववाणी हुई, 'तुम लोग डरो मत, समयकी प्रतीक्षा करो। हिरण्यकशिपु ब्रह्माके वरसे ही ऐसा दुर्वृत्त हो गया है। जब वह अपने प्रिय पुत्र प्रह्लादके ऊपर अत्याचार करेगा, उसी समय मैं उसका वध करूंगा।' देवगण यह दैववाणी सुन कर निश्चिन्त हुए और भयभीत हो कर रहने लगे।

हिरण्यकशिपुकी पत्नीका नाम कयाधु था। इसी कयाधुके गर्भसे आगे चल कर हिरण्यकशिपुके ह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद और प्रह्लाद या प्रह्राद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। प्रह्लाद अपनी सुकृतिके कारण जन्मसे ही विष्णुका सेवक था। शुक्राचार्य दैत्योंके कुलपुरोहित थे। शुक्राचार्यके शण्ड और अमर्क नामक शुक्रके समान गुणसम्पन्न अत्यन्त नीतिज्ञ दो पुत्र थे। हिरण्यकशिपुने सुपण्डित नीतिविशारद शण्डामर्कको अपने पुत्रोंका शिक्षाभार सौंपा।

शण्डामर्क इन सब पुत्रोंको दण्डनीतिकी शिक्षा देते थे। परंतु प्रह्लाद उस ओर जरा भी कान नहीं देता था, एकमात्र भगवान्‌के प्रति अनुरक्त रहता था। केवल अपने ही नहीं, वह सहपाठी बालकोंको भी शण्डामर्ककी अनुपस्थितिमें भगवद्भक्तिकी शिक्षा देता था। पुत्रको इस प्रकार भगवत्प्रीति देख और सुन कर हिरण्यकशिपु उसको उस ओरसे खींचनेकी चेष्टा करने लगा। पर प्रह्लाद विष्णु नाम कब छोड़नेवाला था। पीछे

हिरण्यकशिपुने उसकी हत्या करनेका हुक्म दे दिया। तदनुसार उसके अनुचरोंने प्रह्लादको मारनेके अनेक उपाय किये, पर किसीसे भी उसकी मृत्यु न हुई।

प्रह्लाद देखो।

हिरण्यकशिपु जब किसी भी तरहसे प्रह्लादका वध न कर सका, तब उसने अत्यंत क्रुद्ध हो पुत्रसे कहा, 'तुम मेरी अवज्ञा कर सर्वदा विष्णुका नाम जपा करते हो, अब भी यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो विष्णुका नाम छोड़ दो।' इस पर प्रह्लाद कृताञ्जलि हो उसके चरणोंमें गिर कहने लगा, 'पिताजी! आप जन्मदाता हैं, आपका जिससे कल्याण हो, वही करना मेरा एकांत कर्त्तव्य है। भगवान् विष्णु ही इस जगत्के ईश्वर हैं, उनका पराक्रम असीम है, वे ही सामर्थ्य, साहस, धैर्य और इंद्रियके स्वरूप हैं। वह परम पुरुष ही अपनी शक्तिसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय किया करते हैं, आप आसुरिक भावका परित्याग कर उन्हींकी शरण लीजिये।'

पुत्रके ऐसे वचन सुन कर हिरण्यकशिपु और भी आग बबूला हो गया। उसने कहा, 'क्या मेरे सिवा और भी कोई इस जगत्का ईश्वर है? रे मूर्ख, यदि है, तो बताओ वह कहां है? यदि कहो, कि वह सर्वत्र व्यापी है, तो यह स्तम्भ जो तुम देखते हो, उसमें क्यों नहीं होगा? इस पर प्रह्लादने वह स्तम्भ देख कर कहा, 'वे जब सर्वत्र विद्यमान हैं, तब इस स्तम्भमें भी वे जरूर हैं। उनकी सत्ता नहीं रहनेसे जगत्की सत्ता हो नहीं सकती।' हिरण्यकशिपु बोला, अभी तुम्हारा शिर धड़से अलग करता हूं, देखूं तो सही, किस प्रकार तुम्हारा ईश्वर तुम्हारी रक्षा करता है।'

हिरण्यकशिपु इतना कह कर बड़े जोरसे गरज उठा और उस स्तम्भमें एक मुक्का जमाया। मुक्का लगते ही उस स्तम्भमें ऐसा भयानक शब्द निकला, कि तीनों लोक थर्रा उठा। ब्रह्मादि देवगण अपने अपने धाममेंसे वह अद्भुत ध्वनि सुनने रहे।

अनन्तर भगवान् अपने भक्त प्रह्लादका वचन सत्य करनेके लिये दैत्यघातक घोररूप धारण कर उस स्तम्भमेंसे निकल पड़े। उनका वह रूप मृगाकार नहीं था और न सिंहाकार ही था, इसलिये बड़ा ही अद्भुत था। हिरण्यकशिपुने पहले उस नृसिंहमूर्त्तिको देखा, परन्तु उनका गर्जन सुन कर वह एकदम चमक उठा।

नृसिंहदेवने हिरण्यकशिपु पर आक्रमण कर दिया। दोनोंमें तुमुल संग्राम चलनेके बाद नृसिंहदेवने उसे चट दबाया और नाखूनसे चीर फाड़ कर, हृत्पद्म निकाल कर मार डाला। अब चराचर जगत्में शान्ति विराजने लगी। (भाग० ७।१-१५ अ०)

विष्णुपुराण, अग्निपुराण और हरिवंश आदिमें भी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुका उपाख्यान विस्तृत भावमें लिखा है।

हिरण्यकामधेनु (सं० स्त्री०) दान देनेके निमित्त बनी हुई सोनेकी कामधेनु गाय। ऐसी गायका दान १६ महादानोंमें है।

हिरण्यकार (सं० पु०) स्वर्णनिष्पादक, सुनार।

हिरण्यकुक्षि (सं० त्रि०) स्वर्णकुक्षि।

हिरण्यकुल (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

तोरमाण देखो।

हिरण्यकृत् (सं० पु०) १ सुवर्णकार, सुनार। २ अग्नि, आग।

हिरण्यकृतचूड़ (सं० पु०) शिव।

हिरण्यकेश (सं० त्रि०) १ सुवर्णकी तरह रोचमान ज्वालाविशिष्ट। (ऋक् १।७९।१) २ हिरण्यकी तरह कपिशवर्ण केशविशिष्ट। (भागवत ३।१८।७) (पु०) ३ विष्णु।

हिरण्यकेशिन् (सं० पु०) गृह्यसूत्रकार मुनिभेद।

हिरण्यकेशी (सं० स्त्री०) हिरण्यकेशिप्रवर्त्तित शाखा।

हिरण्यकेश्य (सं० त्रि०) हिरण्यवर्णकेशविशिष्ट।

हिरण्यकोष (सं० पु०) कृताकृत स्वर्णरूप्य।

हिरण्यगर्भ (सं० पु०) १ वह ज्योतिर्मय अंड जिससे ब्रह्मा और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। २ ब्रह्मा। ३ सोलह महादानके अन्तर्गत दूसरा महादान। पुण्यतिथिमें तुलापुरुषके विधानानुसार यह दान करना होता है। मत्स्यपुराणमें इस दानका विधान विशेषरूपसे लिखा है। ४ विष्णु। ५ सूक्ष्म शरीरसे युक्त-आत्मा। ६ एक मन्त्रकार ऋषि। ७ लिङ्गभेद।

हिरण्यगुप्त (सं० पु०) योगनन्दके एक पुत्रका नाम।

हिरण्यचक्र (सं० पु०) जिस रथके चक्र सोनेके बने हों। (ऋक् १।८८।५)

हिरण्यज (सं० त्रि०) सुवर्णनिर्मित, सोनेका।

हिरण्यजा (सं० त्रि०) स्वर्णोद्भवा, सोनेसे उत्पन्न।

हिरण्यजित् (सं० त्रि०) हिरण्यजेता।

हिरण्यजिह्व (सं० त्रि०) हित और रमणीय वाक्ययुक्त।

हिरण्यज्योतिस् (सं० त्रि०) स्वर्ण जैसा दीप्तिमान्।

हिरण्यतेजस् (सं० क्ली०) स्वर्ण जैसा तेज या दीप्ति।

हिरण्यत्वच् (सं० त्रि०) हिरण्याच्छादितरूप, सोनेका मढ़ा हुआ। (ऋक् ५।७७।३)

हिरण्यत्वचस् (सं० त्रि०) सुवर्णावरणयुक्त।

हिरण्यद (सं० पु०) सुवर्णद, सुवर्णदाता। सुवर्ण दान करनेवाले दीर्घायु होते हैं। (मनु ४।२३०)

हिरण्यदंष्ट्र (सं० त्रि०) स्वर्णदंष्ट्राविशिष्ट।

हिरण्यदा (सं० त्रि०) पृथ्वी।

हिरण्यद्यु (सं० त्रि०) स्वर्ण जैसा द्युतिविशिष्ट।

हिरण्यद्रापि (सं० पु०) सुवर्णनिर्मित कवच।

हिरण्यधनुस् (सं० त्रि०) १ स्वर्णधनुर्युक्त। (पु०) २ एक निषादपति। (भारत)

हिरण्यनाभ (सं० पु०) १ मैनाकपर्वत। २ मुनिविशेष। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि हिरण्यनाभ आदि मुनिगण सिद्ध थे और वे हमेशा ज्ञानकी खोजमें इधर उधर घूमा करते थे। ३ वह मकान जिसमें तीन बड़ी शालाएं पूर्व, पश्चिम और उत्तरकी ओर हों और दक्षिणकी ओर कोई शाला न हो। (वृहत्संहिता)

हिरण्यनिर्णिज (सं० त्रि०) हित और रमणीय रूपविशिष्ट।

हिरण्यनेमि (सं० त्रि०) सुवर्णसदृश-रमणीय प्रान्त।

हिरण्यपक्ष (सं० त्रि०) सुवर्ण पक्षविशिष्ट।

हिरण्यपति (सं० पु०) शिव। (भारत १२ पर्व)

हिरण्यपर्ण (सं० त्रि०) हितरमणीय पर्णविशिष्ट।

हिरण्यपर्वत (सं० पु०) चीनपरिव्राजकने नालन्दासे चम्पा आते समय जिस इ-लन्-न-पो-फ-तो नामक जनपदका उल्लेख किया है, फरासी-पण्डित जूले ने उसीको हिरण्यपर्वत माना है। परन्तु उसका असल नाम ईरण या उपरगिरि है। कनिंहमने इन दोनों स्थानोंको मुङ्गेर समझा है। परन्तु वाडेल साहबने मुङ्गेर जिलेके 'उरेन' नामक शैलको ही चीनपरिव्राजक-वर्णित स्थान प्रमाणित किया है।

हिरण्यपाणि (सं० त्रि०) सुवर्णधारी।

हिरण्यपाव (सं० पु०) सुवर्णद्वारा पवित्रकारी।

हिरण्यपुर (सं० क्ली०) असुरोंका एक नगर। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि निवातकवच और कालकेय आदि दानवगण इस हिरण्यपुरमें रहते थे। रसातलके नीचे यह हिरण्यपुर अवस्थित है।

हिरण्यपुष्पि (सं० पु०) गोत्रप्रवरोक्त ऋषिभेद।

हिरण्यपुष्पी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिका, कलियारी नामका जहरीला पौधा।

हिरण्यपेशस् (सं० त्रि०) हिरण्मय अलङ्कार द्वारा अलङ्कृत रूप। (ऋक् ८।१२।६)

हिरण्यप्रउग (सं० त्रि०) हिरण्मय युगबंधन स्थानयुक्त रथ। (ऋक् १।३५।५)

हिरण्यबाहु (सं० पु०) हिरण्यवत् बाहुर्यस्य। १ शोण नद। २ शिव, महादेव। ३ एक नागका नाम।

हिरण्यबिन्दु (सं० पु०) १ पर्वतभेद। २ अग्नि, आग। ३ एक तीर्थ।

हिरण्यमूर्द्धन् (सं० त्रि०) स्वर्णशिरस्त्राणयुक्त।

हिरण्यय (सं० त्रि०) १ हिरण्यात्मक। २ हिरण्यविकार।

हिरण्ययु (सं० त्रि०) जो सोनेकी कामना करता है।

हिरण्यरशन (सं० त्रि०) हिरण्यवत् रशनायुक्त।

हिरण्यरूप (सं० त्रि०) १ सोने जैसा रूपवाला। (पु०) २ अग्नि।

हिरण्यरेतस् (सं० पु०) १ अग्नि, आग। वामनपुराणके ५३वें अध्यायमें लिखा है, कि महादेवके वीर्यत्याग करने पर पहले अग्निने उस वीर्यको धारण किया। इससे अग्निका तेज मन्द हो गया। इस पर अग्नि सभी देवताओंके साथ ब्रह्मलोक गये। राहमें कुटिला देवीसे उनकी भेंट हुई। अग्निने उन्हें देख कर कहा, 'हे देवी! बड़ी कृपा हो, यदि आप महादेवका तेज धारण करें'। इतना कहने पर देवीने महादेवका तेज धारण कर लिया। यह तेज धारण करनेसे अग्निके मांस, अस्थि, रक्त, मेद,

मज्जा, त्वक, रोम और अस्थिकेशादि सभी हिरण्यवर्ण हो गये थे, तभीसे पावक हिरण्यरेता कहलाये।

२ चित्रकवृक्ष, चीता। ३ सूर्य। ४ शिव। ५ प्रियव्रतके एक पुत्रका नाम। ६ बारह आदित्योंमेंसे एक।

हिरण्यलोमन् (सं० पु०) १ पञ्चम मन्वन्तरके एक ऋषि। २ भीष्मकका एक नाम। ३ पर्जन्यके एक पुत्रका नाम

हिरण्यव (सं० पु०) देवस्व, देवोत्तर सम्पत्ति।

हिरण्यवक्षस् (सं० त्रि०) स्वर्ण जैसा कठिन वक्षोयुक्त।

हिरण्यवन्धुर (सं० त्रि०) हिरण्य-निवासाधार काष्ठोपेत।

हिरण्यवर्त्तनि (सं० त्रि०) सुवर्णमय रथविशिष्ट।

हिरण्यवर्म (सं० पु०) १ सुवर्णनिर्मित वर्म, सोनेका कवच। २ दशार्णके राजभेद।

हिरण्यवान् (सं० त्रि०) १ सोनेवाला, जिनमें या जिसके पास सोना हो। (पु०) २ अग्नि, आग।

हिरण्यवाशी (सं० त्रि०) हितरमणीय वाक्यविशिष्ट।

हिरण्यवाह (सं० पु०) १ शोणनद। (शब्दरत्ना०) २ शिव।

हिरण्यविद् (सं० त्रि०) हिरण्यलम्भक।

हिरण्यवार्शी (सं० त्रि०) अग्निरूप ब्रह्म।

हिरण्यवेगा—रेवाखण्डवर्णित नदीभेद।

हिरण्यशिप्र (सं० त्रि०) सुवर्णमय शिरस्त्राणयुक्त।

हिरण्यशृङ्ग (सं० त्रि०) हितरमणीय शृङ्ग, ऊंची चोटीवाला। (पु०) २ सुवर्णमय शृङ्ग, सोनेके सींग।

हिरण्यश्मश्रु (सं० त्रि०) सुवर्ण जैसा श्मश्रुविशिष्ट, जिसके दाढ़ी मूंछ सुनहली हों।

हिरण्यष्ठीव (सं० पु०) सेतुशैलविशेष। भागवत (५।२०।४)में लिखा है, कि जम्बूद्वीपमें वज्रकूट और हिरण्यष्ठीव आदि सात सेतु शैल हैं, इनमेंसे हिरण्यष्ठीव पर्वतसे ऋतम्भरा नामक महानदी निकली है।

हिरण्यसन्दृश (सं० त्रि०) हिरण्यवत् रोचमान तेजोविशिष्ट। (ऋक् ६।१६।३८)

हिरण्यसरस (सं० पु०) एक तीर्थ।

हिरण्यस्तुति (सं० स्त्री०) स्तुतिभेद।

हिरण्यस्तूप (सं० पु०) अङ्गिराके पुत्र ऋषिभेद।

हिरण्यस्रज् (सं० त्रि०) जिसे सोनेकी माला या हार हो।

हिरण्यहस्त (सं० त्रि०) १ प्राणदाता। (ऋक् १।३५।१०) (पु०) २ सुवर्णमय पाणि, सोनेका हाथ।

हिरण्याक्ष सं० पु०) १ एक प्रसिद्ध दैत्य जो हिरण्यकशिपुका भाई था। यह कश्यप और दितिसे उत्पन्न हुआ था। इसने पृथ्वीको ले कर पातालमें रख छोड़ा था। ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थना पर विष्णुने वराह अवतार धारण करके इसे मारा और पृथ्वीका उद्धार किया। २ वसुदेवके छोटे भाई श्यामकके एक पुत्रका नाम। ३ पीठस्थानविशेष। इस पीठस्थानमें देवीका नाम महोत्पला है। (देवीभा० ७।३०।६४)

हिरण्याङ्ग (सं० पु०) ऋषिभेद।

हिरण्याभीशु (सं० त्रि०) हिरण्मय प्रग्रहविशिष्ट।

हिरण्याश्व (सं० पु०) तुलापुरुषादि सोलह महादानोंके अन्तर्गत एक दान। मत्स्यपुराण और हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दानका विधान विस्तृत भावसे लिखा है। सोनेका घोड़ा बना कर तुलापुरुषके विधानानुसार उसे दान करना होता है। (मत्स्यपु० २८ अ०)

हिरण्याश्वरथ (सं० पु०) सोलह महादानोंमेंसे एक दान। मत्स्यपुराण और हेमाद्रिके दानखण्डमें लिखा है, कि सोनेका घोड़ा बना कर सोनेके बने हुए रथमें लगावे और तुलापुरुष दानके विधानानुसार दान करे।

हिरण्यिन् (सं० त्रि०) सुवर्णविशिष्ट, सोनेका।

हिरण्येशय (सं० पु०) महापुरुष, विष्णु।

हिरण्येष्टका (सं० स्त्री०) स्वर्ण द्वारा इष्टकाविशेष

हिरण्वत् (सं० पु०) आग्नीध्रके पुत्र।

हिरदावल (हिं० पु०) घोड़ेकी छातीकी भौंरी जो बड़ा भारी दोष मानी जाती है।

हिरन (हिं० पु०) हरिन, मृग। हरिण देखो।

हिरनखुरी (हिं० स्त्री०) बरसातमें उगनेवाली एक प्रकारकी लता या बेल। इसके पत्ते हिरनके खुरसे मिलते जुलते होते हैं।

हिरनौटा (हिं० पु०) मृगशावक, हिरनका बच्चा।

हिरफत (अ० स्त्री०) १ व्यवसाय, पेशा। २ दस्तकारी, हाथकी कारीगरी। ३ कलाकौशल, हुनर। ४ चालाकी, चतुराई। ५ धूर्त्तता, चालबाजी।

हिरफतबाज (फा० वि०) धूर्त्त, चालबाज।

हिरमजी (अ० स्त्री०) लाल रंगकी एक प्रकारकी मिट्टी जिससे कपड़े, दीवार आदि रंगते हैं।

हिरमिजी (फा० स्त्री०) हिरमजी देखो।

हिरवा चाय (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सुगंधित घास। इसकी जडमेंसे नीवूकी-सी सुगंध आता है और इससे सुगंधित तेल वनता है।

हिरहल—मन्द्राज विभागके वेलरी जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १५° ०′ ३०″ उ० तथा देशा० ७६° ५४′ पू०के मध्य अवस्थित है। वेलरीसे १२ मील दूर वङ्गलूर जानेके रास्ते पर यह वसा हुआ है। यहां एक पुराने दुर्गका खण्डहर दिखाई देता है। यह शहर कासेके व्यवसायके लिये प्रसिद्ध है।

हिरा (सं० स्त्री०) रक्तनाडी या शिरा।

हिरात—१ अफगानिस्तानके पश्चिम सीमान्तवर्त्ती एक प्रदेश। यह अमीर द्वारा नियुक्त किये गये एक ऊंचे कर्मचारीके शासनाधीन है। इस प्रदेशमें ६ जिला हैं, यथा—घोरियान, सब्जवार, तढा, वकवा, कुरुक और ओबे। पहले हिरात और कन्धारके मध्यस्थित फरा जिला भी इसी प्रदेशके अन्तर्गत था।

हिरातके उत्तरमें थार-विलायत् तथा फिरोजकोही, पूर्वमें ताइमुनीस और कंधार, दक्षिणमें लशजवैन तथा सिस्तान और पश्चिममें पारस्य और हरिरूद है। यहां जौकी अच्छी उपज होती है।

हिरातके अन्तर्गत हिरात उपत्यका नामक जो उपत्यका है वह वहुत उर्वरा तथा शस्यशाली है। हरिरूदनदी इस स्थानमें वह गई है। इस प्रदेशमें जमीनका उपसत्व दो प्रकारका हैं, खसोला और अरवावी। खसोला सरकारी जमीन है और अरवावी प्रजाकी।

२ हिरात प्रदेशका शासनकेन्द्र। यह हरिरूद नदीके वाएं किनारे एक उर्वर और अत्यन्त रमणीय स्थान पर अक्षा० ३४° २२′ उ० तथा देशा० ६२° ८′ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इस स्थानकी ऊंचाई २६५० फुट है। कन्धारसे हिरात ३६९ मील दूर पडता है। यह शहर समकोण समवाहु चतुर्भुजाकार हैं। उत्तर और दक्षिणकी ओर इसकी लंवाई १५०० गज तथा पश्चिम और पूर्वकी ओर १६०० गज है। शहर २५से २० फुट ऊंचे एक प्राचीन और गहरी खाईसे घिरा है। हिरातमें पाच सिंहद्वार हैं। प्रत्येकके सामने चार चार राजपथ शहरके भीतरसे जा कर उसके केन्द्रमें मिल गये हैं।

शहरमें जलका अच्छा प्रवंध है। अधिवासी वड़े मैले कुचेले रहते हैं, इस कारण शहर भी मैला कुचेला है। १५वीं सदीके शेष भागमें जुमा मसजिद वनाई गई है। यही यहांकी सवसे वड़ी और सुन्दर इमारत है। हिरातके अधिवासी अधिकाश सिया-सम्प्रदायभुक्त मुसलमान हैं। पारसिक, यहूदी, तातार आदि अन्यान्य जातिके लोग भी यहा कम नहीं हैं।

हिराती (हिं० पु०) १ हिरात नामक स्थान जो अफगानिस्तानके उत्तरमें है। हिरात देखो। २ एक जातिका घोड़ा। इसका डील डौल औसत दर्जेका और हाथ पैर दोहरे होते हैं। यह गरमीमें नहीं थकता। ३ हिरातवासी।

हिराना (हिं० क्रि०) १ खो जाना, गायव होना। २ न रह जाना। ३ मिटना, दूर होना। ४ आश्चर्यसे अपनेको भूल जाना, हक्कावक्का होना। ५ भूल जाना, ध्यानमें न रहना। ६ खेतोंमें भेंड वकरी गाय आदि चौपाए रखना जिसमें उनकी लेंडी या गोवरसे खेतमें खाद हो जाय।

हिरावल (हिं० पु०) हरावल देखो।

हिरास (फा० स्त्री०) १ भय, त्रास। २ नैराश्य, नाउम्मेदी। ३ खिन्नता, रंज। (वि०) ४ निराश, हताश। ५ खिन्न, उदासीन।

हिरासत (अ० स्त्री०) १ पहरा, चौकी। २ कैद, नजरवंदी।

हिरासा (फा० वि०) १ निराश, नाउम्मेद। २ हिम्मत हारा हुआ, पस्त। ३ खिन्न, उदासीन।

हिरिशिप्र (सं० त्रि०) हरणशील हनु या दीप्तोष्णीषविशिष्ट।

हिरिश्मश्रु (सं० त्रि०) हिरण्यवर्ण श्मश्रुविशिष्ट, सुनहरी दाढ़ीवाला।

हिरिमत् (सं० पु०) हरिताश्व या पीला घोड़ा।

हिरिमश (सं० त्रि०) हरिद्वर्ण श्मश्रुविशिष्ट, भूरे रंगकी दाढ़ीवाला। (ऋक् १०।१०५।७)

हिरुक (सं० अव्य०) १ विना। २ मध्य। ३ सामीप्य। ४ अधम।

हिरोदोतस—प्रसिद्ध पाश्चात्य ऐतिहासिक । हेलिकार्णसस में लगभग ४८४ ई०सनके पहले इनका जन्म हुआ। उस समय इनकी जन्मभूमि पारस्य-सम्राट्के अधीन थी। पनियासिस नामक इनके एक बहुत नजदीकी रिश्तेदार हेलिकार्णससके राजा लिगदामिस द्वारा राजविद्रोहके संदेह पर पकड़े गये। पनियासिस उस समयके एक प्रसिद्ध महाकाव्य-रचयिता थे। उनके प्रभावका हिरोदोतस पर अच्छा असर पड़ा था। बचपनमें अन्यान्य ग्रीक लोगोंकी तरह हिरोदोतसने व्याकरण, शारीरिक व्यायाम और सङ्गीत सीखा था। अन्तमें उच्च भावमें जीवन यापन करनेका कोई सुयोग न पा कर इन्होंने साहित्यचर्चा आरम्भ कर दी। उस समय ग्रीसका साहित्य बहुत विस्तृत था। थोडी ही उमरमें हिरोदोतसने कुल पढ़ लिया था। इन्होंने एशिया-माइनर और ग्रीसके विभिन्न स्थानोंमें परिभ्रमण कर ऐतिहासिक तथ्य आविष्कार किया था। जब इनकी उमर २० वर्षकी हुई, तबसे ये घूमने लगे थे। ये सुसा और बाबिलन भी गये थे। शायद ४६० ई०के बाद ये मिश्रदेश आये। जब अत्याचारसे प्रपीडित हो हेलिकार्णससीय लोगोंने वालेनडामिसको राज्यसे भगा दिया था, उसी समय हिरोदोतस अपने देश लौटे। परन्तु वहां अपनी पुस्तकका सम्यक् आदर न होनेके कारण इन्होंने ग्रीसमें रहनेका पक्का इरादा किया। ज्ञान और उन्नत साहित्य-चर्चामें उस समय एथेन्स पाश्चात्यजगत्में सर्वश्रेष्ठ था। वहीं पर इस लेखकने अपने परिश्रम और प्रतिभाका उचित सम्मान पाया। परंतु एथेन्समें इनकी ऊंची आकांक्षा तृप्त न हुई। हिरोदोतस एथेन्सके विदेशी थे। साहित्यिक हैसियतसे सम्मान मिलने पर भी वे उस देशके नागरिकोंमें श्रेष्ठ सम्मान नहीं पा सकते थे। इस कारण जब पेरिक्लिसने इटलीमें 'थुरि' उपनिवेश बसानेका प्रस्ताव उठाया, तब हिरोदोतस नागरिक अधिकार पानेकी इच्छासे वहां जानेको तैयार हो गये। ·

थुरीमें हिरोदोतसने अपना शेष जीवन बिताया। ये आधुनिक इतिहासके जनक माने जाते हैं। ऐसा बड़ा इतिहास इनके पहले और कहीं भी नहीं लिखे गये हैं। इनकी भाषा मनोहारी, स्वाभाविक और गंभीर है।

हिर्स (अ० स्त्री०) १ लालच, लोभ। २ इच्छाका वेग, कामनाकी उमंग। ३ स्पर्द्धा, रीस।

हिलदा (हिं० पु०) मोटा ताजा आदमी, तगडा आदमी।

हिलकोर (हिं० पु०) लहर, तरंग।

हिलकोरा (हिं० पु०) हिलकोर देखो।

हिलकोरना (हिं० क्रि०) जलको क्षुब्ध करना, पानीको हिला कर तरंगें उठाना।

हिलग (हिं० स्त्री०) १ संबंध, लगाव। २ प्रेम, लगन। ३ परिचय, हेलमेल।

हिलगत (हिं० स्त्री०) १ परचनेका भाव। २ आदत, टेव।

हिलगना (हिं० क्रि०) १ अटकना, टंगना। २ हिलमिल जाना। ३ परचना। ४ पास होना, सटना।

हिलगाना (हिं० क्रि०) १ अटकाना, टांगना। २ फंसाना, बझाना। ३ घनिष्ठता स्थापित करना, मेलजोलमें करना। ४ परिचित और अनुरक्त करना, परचाना।

हिलना (हिं० क्रि०) १ चलायमान होना, डोलना। २ अपने स्थानसे टलना, सरकना। ३ खूब जम कर बैठा न रहना, ढीला होना। ४ कम्पित होना, थरथराना। ५ प्रवेश करना, घुसना। ६ झूमना, लहराना।

हिलमुची (सं० स्त्री०) हिलमोचिका नामक शाक।

हिलमोचि (सं० स्त्री०) हिलमोचिका।

हिलमोचिका (सं० स्त्री०) शाकविशेष। इसका गुण शोथ, कुष्ठ, कफ और पित्तनाशक होता है। जिसका धातु पित्त प्रधान है, वह यदि इस शाकका सेवन करे, तो उसका पित्त-विकार दूर होता है।

हिलमोची (सं० स्त्री०) हिलमोचिका।

हिलसा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली जो चिपटी और कांटेदार होती है।

हिलाना (हिं० क्रि०) १ चलायमान करना, डुलाना। २ स्थानसे उठाना, टालना। ३ नीचे ऊपर या इधर उधर डुलाना, झुलाना। ४ कंपित करना, कंपाना। ५ परिचित और अनुरक्त करना, परचाना। ६ प्रवेश कराना, घुसाना।

हिलोर (हिं० पु०) हवाके झोंके आदिसे जलका उठना और गिरना, तरंग, लहर।

हिलोरा (हिं० पु०) हिलोर देखो ।

हिलोरना (हिं० क्रि०) १ जलको क्षुब्ध और तरंगित करना, पानीको इस प्रकार हिलाना कि लहरें उठें । २ लहराना, इधर उधर हिलाना डुलाना ।

हिलोल (हिं० पु०) हिल्लोल देखो ।

हिल्ल (सं० पु०) शरारि पक्षी ।

हिल्लाज (सं० पु०) प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् । इन्होंने पारसिक-फलित ज्योतिषके अनेक विषय संस्कृत भाषामें प्रकाशित किये हैं ।

हिल्लोल (सं० पु०) १ तरङ्ग, लहर । २ आनन्दकी तरङ्ग, मौज । ३ सोलह प्रकारके रतिबंधोंमेंसे आठवां रतिबन्ध ।

"हृदि कृत्वा स्त्रियाः पादौ कराभ्यां धारयेत् करौ ।
यथेष्टं ताडयेद्योनिं बन्धो हिल्लोलसंज्ञकः ॥" (रतिमञ्जरी)

४ एक रागका नाम, हिंडोल ।

हिल्लोलन (सं० पु०) १ तरंग उठना, लहराना । २ दोलन, भूलना ।

हिवं (हिं० पु०) बर्फ, पाला ।

हिवाँर (हिं० पु०) बर्फ, पाला ।

हिबुक (सं० क्ली०) ज्योतिषके मतसे लग्न या राशिसे चौथा स्थान ।

हिस (अ० पु०) १ अनुभव, ज्ञान । २ संज्ञा, होश ।

हिसका (हिं० पु०) १ ईर्ष्या, डाह । २ स्पर्द्धा, देखादेखी किसी बातकी इच्छा । ३ किसीकी बराबरी करनेकी हवस ।

हिसाब (अ० पु०) १ गणित, लेखा । २ लेन देन या आमदनी खर्च आदिका लिखा हुआ ब्योरा, लेखा । २ गणितविद्या, वह विद्या जिसके द्वारा संख्या मान आदि निर्धारित हो । ४ गणितविद्याका प्रश्न, गणितकी समस्या । ५ प्रत्येक वस्तु या निर्दिष्ट संख्या या परिमाणका मूल्य जिसके अनुसार कोई वस्तु बेची जाय, भाव, दर । ६ निर्णय, निश्चय । ७ नियम, कायदा । ८ दशा, अवस्था । ९ व्यवहार, चाल । १० ढंग, रीति । ११ मितव्यय, किफायत । १२ हृदय या प्रकृतिकी परस्पर अनुकूलता, मेल ।

हिसाबकिताब (अ० पु०) १ वस्तु या धनकी संख्या, आय, व्यय आदिका लेखबद्ध विवरण, लेखा । २ ढंग, रीति ।

हिसाबचोर (हिं० पु०) वह जो व्यवहार या लेखेमें कुल रकम दबा लेता हो ।

हिसाब-बही (हिं० स्त्री०) वह पुस्तक जिसमें आय-व्यय या लेनदेन आदिका ब्यौरा लिखा जाता हो ।

हिसार (हिस्सार)—पञ्जाबके दिल्ली विभागका एक जिला । यह अक्षा० २८ ३६´ से ७६´ ३०´ उ० तथा देशा० ७४´ २६´ से ७६´ २०´ पू०के मध्य विस्तृत है । भूपरिमाण ५२१७ वर्गमील है । इसके उत्तरमें फिरोजपुर जिला और पतियाला राज्य, पूरबमें झिन्द निजामत और रोहतक जिला, दक्षिणमें दादरी निजामत और दक्षिण-पश्चिममें बीकानेर मरुभूमि है । हिसार शहर इस जिलेका सदर है ।

यह जिला बीकानेर राज्यकी विशाल मरुभूमिका पूर्वी प्रान्त है । अधिकांश स्थान बलुई समतल क्षेत्र है, बीच बीचमें छोटा टीला और बालूका पहाड़ दिखाई देता है जिसकी चोटी ८०० फुट होगी । यहांकी नदियोंमें घागर नदी प्रधान है । ग्रीष्मके समय जब वह सूख जाती है, तब स्थानवासी नदीकी नीची भूमिमें जौ, मक्का आदि अनाज उपजाते हैं । सम्राट् फिरोजशाह तुगलकने इस जिलेके पूर्वसे ले कर पश्चिम तक एक बड़ी खाई खोदवाई थी । यह खाई २४ ग्राम हो कर चली गई थी, परन्तु पश्चिममें बीकानेर मरुभूमिमें जा कर इसका जल सूख गया था, इस कारण बृटिश सरकारने इसका पुनः संस्कार कराया है । आजकल यह पश्चिम-यमुना-खाल (Western Jumna Canal) नामसे मशहूर है । वृष्टि होने पर यहां काफी अनाज उत्पन्न होता है ।

मुसलमानी अमलके पहले होसे यह जिला चौहान राजपूतोंके रहनेका निरापद स्थान था । हांसी उस समय जिलेकी राजधानी थी । फिरोज शाह तुगलकने हिस्सारको बसाया । नादिरशाह और सिखोंके आक्रमणसे इस जिलेमें अराजकता फैल गई । मराठोंका वेतनभोगी एक आइरिश सेनानायक यहांका शासन करना चाहता था, पर फरासीसेनापति पिरोंने उसे परास्त कर यह स्थान दखल कर लिया ।

१८०३ ई०में हिस्सार वृटिश गवर्मेण्टके दखलमें आया। सिपाही-विद्रोहके समय यहांके अधिवासी विद्रोहीदलमें मिल गये थे। पीछे हिस्सार जिला पञ्जाबके छोटे लाटके शासनाधीन हुआ।

इस जिलेमें ८ शहर और ९६४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८ लाखके करीब है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ७० है। विद्याशिक्षामें इस प्रदेशके अट्ठाईस जिलोंमेंसे इस जिलेका स्थान चौबीसवां पड़ता है। अभी ८ सिकेण्ड्री, ८० प्राइमरी और ५० एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ८ चिकित्सालय और एक बड़ा जेल है।

विशेष विवरण हरियाना शब्दमें देखो।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ५४´से २९° ३२´ ३० तथा देशा० ८५° २२´से ७६° २´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या डेढ़ लाखके लगभग है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २९° १०´ ३० तथा देशा० ७५° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ९० हजारके करीब है। १३५६ ई०में फिरोजशाह तुगलकने इस शहरको बसाया। उसने जलका अभाव दूर करनेके लिये नहर कटवाई थी। उसके समय यह शहर बहुत उन्नत था। पूर्व समृद्धिके चिह्नस्वरूप बहुतसे पुराने मन्दिरों और मसजिदोंका खंडहर दिखाई देता है। १८वीं सदीमें बार बार सिखोंके आक्रमण और दुर्भिक्षसे शहर उजाड़-सा हो गया। १७९६ ई०में आइरिश कर्मचारी जार्ज टामसने इसका पुनः संस्कार किया। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक ऐङ्गलो वर्नाक्युलर हाई-स्कूल और सिविल अस्पताल है।

हिसार (फा० पु०) पारसी संगीतकी २४ शोभाओंमेंसे एक।

हिस्टीरिया (अं० पु०) मूर्च्छा रोग जो प्रधानतः स्त्रियोंको होता है।

हिस्सा (अ० पु०) १ भाग, अंश। २ टुकड़ा, खंड। ३ उतना अंश जितना प्रत्येकको विभाग करने पर मिले, बखरा। ४ विभाग, तकसीम। ५ किसी बड़ी या विस्तृत वस्तुके अन्तर्गत कुछ वस्तु या अंश, अधिकके भीतरका कोई खंड या टुकड़ा। ६ विभाग, खंड। ७ किसी व्यवसायके हानि-लाभमें योग, साझा।

हिस्सेदार (फा० पु०) १ किसी वस्तुके किसी भाग पर अधिकार रखनेवाला, वह जिसे कुछ हिस्सा मिला हो। २ रोजगारमें शरीक, साझेदार।

हिहि (सं० अव्य०) १ आह्लादसूचक शब्द, हास्य शब्द। २ एक गंधर्वका नाम।

हिहिनाना (हिं० क्रि०) घोड़ोंका बोलना, हिनहिनाना।

हींग (हिं० स्त्री०) एक छोटे पौधेका जमाया हुआ दूध या गोंद जिसमें बड़ी तीक्ष्ण गंध होती है और नित्यके मसालेमें बघारके लिये होता है।

विशेष विवरण हिङ्गु शब्दमें देखो।

हींगड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घटिया हींग।

हींठी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जोंक।

हींस (हिं० स्त्री०) घोड़े या गधेके बोलनेका शब्द, रेंक या हिनहिनाहट।

हींसना (हिं० क्रि०) १ घोड़ेका बोलना, हिनहिनाना। २ गदहेका बोलना, रेंकना।

हींहीं (हिं० स्त्री०) हंसनेका शब्द।

ही (सं० अव्य०) १ एक अव्यय जिसका व्यवहार जोर देनेके लिये या निश्चय, अनन्यता, अल्पता, परिमिति तथा स्वीकृति आदि सूचित करनेके लिये होता है। २ विस्मय। ३ दुःख। ४ हेतु। ५ विषाद, शोक।

हीक (हिं० स्त्री०) १ हिचकी। २ हलकी अरुचिकर गंध।

हीज (हिं० वि०) आलसी, मट्ठर।

हीठना (हिं० स्त्री०) १ समीप होना, पास जाना। २ जाना, पहुंचना।

हीन (सं० त्रि०) १ परित्यक्त, छोड़ा हुआ। २ शून्य, वञ्चित। ३ निकृष्ट, घटिया। ४ नीच, बुरा। ५ तुच्छ, नाचीज। ६ सुख समृद्धि रहित, दीन। ७ अल्प, कम। (पु०) ८ प्रमाणके अयोग्य साक्षी। व्यवहारतत्त्वमें लिखा है, कि अन्यवादी, क्रियाद्वेषी, नोपस्थायी, निरुत्तर और आहूतप्रपलायी, इन पांच प्रतिवादीको हीन कहते हैं। ९ अधम नायक।

हीनक (सं० त्रि०) हीन देखो।

हीनकर्ण (सं० पु०) कर्णबन्धनाकृति। (सुश्रुतसूत्र १६)

हीनकर्मा (सं० त्रि०) १ यज्ञादि विधेय कर्मसे रहित, अपना निर्दिष्ट कर्म या आचार न करनेवाला। २ निकृष्ट कर्म करनेवाले, बुरा काम करनेवाला।

हीनकुल (सं० त्रि०) बुरे या नीच कुलका, नीचे खानदानका।

हीनक्रम (सं० पु०) काव्यमें एक दोष। यह दोष उस स्थान पर माना जाता है जहां जिस क्रमसे गुण गिनाये गये हों, उसी क्रमसे गुणी न गिनाये जाय'।

हीनकुष्ठ (सं० क्ली०) क्षुद्र कुष्ठ, खराब कोढ।

हीनचरित (सं० त्रि०) जिसका आचरण बुरा हो।

हीनज (सं० त्रि०) जो नीच जातिसे उत्पन्न हुआ हो।

हीनजाति (सं० त्रि०) नीच वर्ण, नीचजाति।

हीनतस् (सं० अव्य०) हीनसे या हीन द्वारा।

हीनता (सं० स्त्री०) १ अभाव, कमी। २ क्षुद्रता, तुच्छता। ३ ओछापन। ४ निकृष्टता, बुराई।

हीनत्व (सं० पु०) हीनता।

हीनदग्ध (सं० त्रि०) अल्प दग्ध, थोड़ा जला हुआ।

हीनपक्ष (सं० पु०) १ गिरा हुआ पक्ष, ऐसी बात जो दलीलोंसे साबित न हो सके। २ कमजोर मुकदमा।

हीनबल (सं० त्रि०) शक्तिरहित, कमजोर।

हीनबाहु (सं० पु०) शिवके एक गणका नाम।

हीनबुद्धि (सं० त्रि०) बुद्धिशून्य, जड, मूर्ख।

हीनमति (सं० त्रि०) जड, मूर्ख।

हीनमूल्य (सं० पु०) कम दाम।

हीनयान (सं० क्ली०) बौद्ध सम्प्रदायभेद। भगवान् बुद्ध-प्रवर्त्तित आदि धर्ममतावलम्बीगण पहले श्रावकयान और प्रत्येकबुद्धयान नामसे प्रसिद्ध थे। उन लोगोंके मतसे केवल वे ही लोग निर्वाणलाभके अधिकारी हैं जिन्होंने भगवान् बुद्धके तथा उनके शिष्यानुशिष्यों के मुखसे धर्मोपदेश सुना है। आगे चल कर कुछ बौद्धाचार्यों ने यह घोषणा कर दी, कि सारा संसार निर्वाणलाभके अधिकारी हैं, सभी इस निर्वाणधर्ममें दीक्षित हो सकते हैं। इस महोद्देश्यके कारण वे लोग 'महायान' तथा हीन या संकीर्ण गण्डीके मध्य निर्वाण तत्त्वको सीमाबद्ध रखनेके कारण पूर्वोक्त आदि बौद्धसम्प्रदायगण 'ही[illegible] सम्राट् कनिष्कके समय बौद्धसमाजमें ही[illegible] महायान ये दो प्रधान विभाग हुए थे। बौद्ध देखो।

इस शाखाका प्रचार एशियाके दक्षिण भागोंमें अर्थात् सिंहल, बरमा और श्याम आदि देशों में है, इसीसे यह दक्षिण शाखाके नामसे भी प्रसिद्ध है। 'यान'का अर्थ है निर्वाण या मोक्षकी ओर ले जानेवाला रथ। हीनयानके सिद्धान्त उसी सीधे सादे रूपमें है, जिस रूपमें गौतम बुद्धने उनका उपदेश किया था। पीछे 'महायान' शाखामें न्याय, तंत्र आदि बहुतसे विषयोंके सम्मिलित होनेसे जटिलता आ गई। वैदिक धर्मानुयायी नैयायिकोंके साथ खंडन मंडनमें प्रवृत्त होनेवाले बौद्ध महायान शाखाके थे जो क्षणिकवाद आदि सिद्धान्तों पर बहुत जोर देते थे। आराधना और उपासनाका तत्त्व न रहनेसे जनसाधारणके लिये रूखा था; इससे 'महायान शाखा'के बहुत अनुयायी हुए। जो बुद्ध, बोधिसत्त्वों, बुद्धिकी शक्तियोंकी 'महाविद्याएं' हैं, आदिके अनुग्रहके लिये पूजा और उपासनामें प्रवृत्त रहने लगे। 'हीनयान' का यह अर्थ लिया गया, कि उसमें बहुत कम लोगोंके लिये जगह है।

हीनयोग (सं० त्रि०) १ योगभ्रष्ट। (पु०) २ उचित परिमाणसे कम ओषधि मिलाना।

हीनयोनि (सं० त्रि०) नीच जातिका, जिसकी उत्पत्ति अच्छे कुलमें न हो।

हीनरस (सं० पु०) काव्यमें एक दोष। यह किसी रसका वर्णन करते समय उस रसके विरुद्ध प्रसङ्ग लानेसे होता है।

हीनरात्र (सं० त्रि०) जो रात्रिमें नहीं रहती और यदि रहती भी है तो थोड़ी, ऐसी तिथि।

हीनरोमन् (सं० त्रि०) लोमहीन या अल्प लोमयुक्त।

हीनवर्ण (सं० पु०) नीच जाति या वर्ण।

हीनवाद (सं० पु०) १ मिथ्या तर्क, फजूलकी बहस। २ मिथ्या साक्ष्य, झूठी गवाही जिसमें पूर्वापर विरोध हो।

हीनवादी (सं० त्रि०) १ मूक, गूंगा। २ विरुद्धवादी, खिलाफ बयान करनेवाला। ३ जिसका लाया हुआ अभियोग गिर गया हो, जो मुकदमा हार जाय।

हीनवीर्य्य (सं० त्रि०) हीनबल, कमजोर।

हीनसख्य (सं० क्ली०) नीचके साथ मित्रता।

हीन हयात (अ० पु०) १ जीवनकाल, वह समय जिसमें कोई जीता रहा हो।

हीनाङ्ग (सं० त्रि०) १ खण्डित अंगवाला, जिसके कोई अंग न हो। २ जो सर्व्वाङ्गपूर न हो, अधूरा।

हीनाङ्गी (सं० स्त्री०) क्षुद्र पिपीलिका, छोटी च्युंटी। अङ्गहीना स्त्री।

हीनार्थ (सं० त्रि०) १ अर्थहीन, जिसका कोई अर्थ न हो। २ विफल, जिसका कार्य्य सिद्ध न हुआ हो। ३ जिसे लाभ न हुआ हो।

हीनोपमा (सं० स्त्री०) काव्यमें वह उपमा जिसमें बड़े उपमेयके लिये छोटा उपमान लाया जाय, बड़ेको छोटेसे उपमा।

हीयमान (सं० त्रि०) ह्रास होना।

हीर (हिं० पु०) १ इन्द्रका वज्र। २ शिव। ३ वज्र। ४ मोतीकी माला। ५ सर्प, सांप। ६ सिंह। ७ श्रीहर्षके पिता। श्रीहर्षने नैषधकाव्यमें लिखा है, कि श्रीहीर उनके पिता और मामल्लदेवी माता थी। ८ छप्पयके ८२वें भेदका नाम। ९ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें भगण, सगण, नगण, जगण, नगण और रगण होते हैं। १० एक मात्रिक छन्द। इसमें ६, ६ और ११ के विरामसे २३ मात्राएं होती हैं।

हीर (सं० पु०) १ सार, गूदा। २ शक्ति, बल। ३ वीर्य्य, धातु। ४ लकड़ीके भीतरका सार भाग जो छालके नीचे होता है।

हीरक (सं० पु० क्ली०) हीर स्वार्थे कन्। रत्नविशेष, हीरा। पर्याय—वज्र, हीर, दधीच्यस्थि, वज्रक, सूचीमुख, वराटक, रत्नमुख, वज्रपर्याय। विराट देशीय हीरकके पर्याय—विराटज, राजपट्ट, राजावर्त्त। गुण—सारक, शीतल, कषाय, स्वादु, कान्तिकारक, चक्षुका हितकर, पहननेसे पाप और अलक्ष्मीनाशक।

यह एक प्रकारका खनिज पदार्थ है। आर्य्यशास्त्रमें हीरेको वज्रमणि और सभी रत्नोंमें श्रेष्ठ कहा है। हिमालय प्रदेशके मातङ्ग (पम्पा नदीके तटवर्त्ती प्रदेश) जनपदमें, पौण्ड्रराज्यके रङ्गपुर, दिनाजपुर, राजशाही, बीरभूम, मुर्शिदाबाद, वर्द्धमान, मेदिनीपुर आदि स्थानोंमें, कलिङ्ग देशमें अर्थात् उड़ीसा और द्राविड़देशके मध्यगत स्थानोंमें, अयोध्याके निकटवर्त्ती भूभागमें, महाराष्ट्रके अन्तर्गत वेण्वा नदीके किनारे, सौवीर अर्थात् सिन्धु और शतद्रु नदके मध्यवर्त्ती प्रदेशमें हीरा पाया जाता है। स्थलविशेषमें जलवायुकी विशेषताके कारण हीरककी भी वर्णपृथक्ता होती है। हिमालय पर्वतका हीरक कुछ ताम्रवर्ण, वेण्वानदीके किनारेका चन्द्रमाके समान निर्मल शुक्लवर्ण, सौवीरका श्वेतपद्म या शुभ्र मेघसदृश, सौराष्ट्रका ताम्रवर्ण, कलिङ्गराज्यका सुवर्णवर्ण, कोशलका पीतवर्ण, पौण्ड्रराज्यका श्यामवर्ण और मातङ्गप्रदेशका हीरक पीतवर्ण होता है।

साधारणतः हरित्, शुक्ल, पीत, पिङ्गल, ताम्रवत् कुछ लोहित् और श्यामवर्णका हीरक देखनेमें आता है। उनके अधिष्ठात्री देवता यथाक्रम नारायण, वरुण, इन्द्र, अग्नि, यम और वायु हैं। ऊपर कहे गये छः प्रकारके हीरोंमें जवाकुसुम अथवा मूंगेकी तरह लाल और हल्दी रसकी तरह पीला हीरा ही राजाओंका शुभजनक है। वज्रपरीक्षकोंने मनुष्यकी तरह हीरकके भी ब्राह्मणादि जातिभेद स्थिर किये हैं। शङ्ख, कुमुदपुष्प या स्फटिकके समान सफेद हीरा विप्रजाति, खरहेकी आंख जैसा लाल हीरा क्षत्रियजाति; चिकने, केलेकी तरहका फीका वैश्यजाति और परिष्कृत तलवार जैसा सांवला हीरा शूद्रजातिका माना जाता है। पूर्वोक्त चार वर्णोंके हीरक जाति भिन्न भिन्न गुणवाली होती है अर्थात् उसे धारण करनेसे विशेष विशेष फल होता है।

षट्कोण, अष्टपार्श्व द्वादशधार, उत्तुङ्ग, समान और तीक्ष्णाग्र आदि गुण हीरकके स्वभावसिद्ध हैं। रत्नविदोंने हीरकके षट्कोणत्व, लघुत्व, समान अष्टदलत्व, तीक्ष्णाग्रत्व और निर्मलत्व ये पाच गुण; मल, बिन्दु, रेखा, त्रास और काकपद आदि पाच दोष तथा वर्णके हिसाबसे श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्णकी छायाको स्थिर किया है। दोषयुक्त हीरक निन्दित है। उसके धारण करनेसे पुत्रनाश, बंधुनाश, वित्तनाश आदि अनेक प्रकारके अमङ्गल होते हैं। छायाहीन हीरक विपदका हेतु, मलिनहीरक शोकजनक, कर्कश हीरक दुःखदायक, रेखा

काकपद और विन्दुयुक्त हीरक मृत्युका निदान, इत्यादि माना गया है।

अग्निपुराणके मतसे दो दलवाला हीरक कलहका कारण, तीन दलवाला सुखनाशक, चार दलवाला सुखदायक, पांच दलवाला शोकजनक, छः दलवाला राजभयका निदान, मृत्युका कारण और आठ दलवाला अत्यन्त विशुद्ध है। दूसरेके मतसे त्रिकोण हीरक कलहवर्द्धक, चतुष्कोण मृत्युजनक और षट्कोण मङ्गलमय है। इस कारण षट्कोण, अष्टदल, अभेद्य, निर्मल, निर्दोष, सुपार्श्व, उत्तमवर्ण, लघु, जलमें तैरनेवाला, सूर्यकी किरण पड़नेसे इन्द्रधनुषके समान प्रकाश देनेवाला और तेज नोकवाला हीरक सबसे उमदा कहा गया है। जो हीरा गरम जल, दूध, तेल या घृतमें डालनेसे उसी समय उन वस्तुओंकी गरमी दूर हो जाती है वह देवदुर्लभ है। जो कोटि सूर्यके समान प्रकाशवान्, पर चन्द्रमाके समान शीतल होता है वह सर्वश्रेष्ठ है। उसके पहनने ही रोग भाग जाते हैं। जो हीरा जलसे उत्पन्न हुआ हो, जिसका वर्ण दूबके ऊपर गिरे हुए जलविन्दु जैसा स्वच्छ हो और जिसका वजन एक तोला हो, उस हीरेका मूल्य एक करोड़ रुपया होगा। भग्नकोण तथा विन्दुरेखा और वैवर्ण्ययुक्त दूषित हीरकसे यदि इन्द्रधनुषकी प्रभा निकलती हो, तो उसके पहननेसे सुखसम्पत्ति, धनधान्य और सन्तानसंतति प्राप्त होती है।

पृथिवी पर जितने प्रकारके रत्न और लौहादि कठिन पदार्थ हैं उन सबों पर हीरेसे दाग दिया जा सकता है, पर ऐसी एक भी धातु नहीं जो हीरेके ऊपर घिसनेसे दाग देवे। अकृत्रिम हीरेसे कृत्रिम हीरा अंकित होता है। असल हीरा कुरुविन्द अथवा हीरेसे ही अंकित होता है, दूसरी किसी भी वस्तुसे नहीं। लौह, पद्मराग, गोमेद, वैदुर्य, स्फटिक और विभिन्न वर्णके कांचसे सुनिपुण शिल्पी कृत्रिम हीरक बनाते हैं। क्षार लगाने, शाण अथवा घिसनेसे हीरेकी परीक्षा सहजमें की जा सकती है। जो हीरा क्षार लगानेसे चूर्ण और घिसनेसे क्षयको प्राप्त हो जाय वही कृत्रिम है। क्षारयुक्त अम्ल हीरकमें लेप कर धूपमें सुखावे, पीछे उसे धो डाले। यदि उसका रंग बदल जाय, तो उसे कृत्रिम हीरा जानना चाहिये। जो असल हीरा है, उसका रंग कदापि नहीं बदलता, वरन् पहलेसे और भी साफ हो उठता है।

इस रत्नका अधिष्ठाती देवता शुक्र है। ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है, कि शुक्रग्रह यदि अत्यन्त विगुण हो तो हीरक धारण करनेसे शुभ फल होता है। रत्न धारण करना सबोंके लिये नहीं कहा गया है। जो इसके योग्य हैं, वे ही धारण कर सकते हैं।

वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे हीरककी चार जाति हैं। इनमेंसे शुभ्रवर्णका हीरक ब्राह्मण जातिका, रक्तवर्ण हीरक क्षत्रिय जाति, पीतवर्ण हीरक वैश्य जाति और कृष्णवर्ण हीरक शूद्र जातिका है। शुभ्रवर्ण हीरक रसायन कार्यमें उत्तम और सभी क्रियाओंका सिद्धिदायक है। रक्तवर्ण हीरक रोगनाशक, जरा और अकालमृत्युनाशक; पीतवर्ण हीरक सम्पत्तिप्रदायक और शरीरकी दृढ़ता सम्पादक, कृष्णवर्ण हीरक रोगनाशक और वयःस्थापक है। ये चारों जातिके हीरक पुं०, स्त्री० और नपुंसकके भेदसे तीन प्रकारके हैं। उनमेंसे जो हीरक सुन्दर गोलाकार, ज्योतिर्मय, रेखा और विन्दुहीन होता है उसे पुंजाति, रेखा या विन्दुयुक्त और षट्कोण हीरकको स्त्री जाति तथा त्रिकोण और दीर्घ हीरकको नपुंसक जाति कहते हैं। औषधमें प्रयोग करते समय इसे शोध लेना होता है। शोधित या मारित हीरकका सेवन करनेसे परमायु वृद्धि, शरीरपुष्टि, बल, वीर्य, वर्ण और सुखवृद्धि तथा समस्त रोग विनष्ट होता है।

कण्टकारी या भटकटैयामें हीरा रख कर कोदों धानके काढ़े और कुलथी कलायके काढ़ेमें ७ दिन दोला यन्त्रमें पाक करे। पीछे उसे घोड़ेके मूत और थूहरके दूधसे सींचे। इसी नियमसे हीरा शोधित होता है।

हीराभस्म—तीन वर्षकी पुरानी कपासकी जड़को पुराने पानके रसमें पीस कर उसमें हीरा रख सात बार गजपुट देनेसे हीराभस्म होता है।

अशुद्ध हीरेका औषधमें व्यवहार करनेसे उससे कुष्ठ, पार्श्ववेदना, पाण्डुरोग और पङ्गुता होती है, इस कारण पहले हीरेको शोधन कर पीछे उसका व्यवहार करना ही कर्त्तव्य है। हीरकभस्मसे जो सब औषध

बनाई जाती है वह अमृतसदृश है। उस औषधका सेवन करनेसे शरीर रोगरहित हो कर वज्रके सदृश सबल हो जाता है। हीरकभस्मचूर्ण श्लेष्मानाशक है।

प्राच्य और प्रतीच्य-जगत्‌के प्राचीन लोग एक स्वरसे स्वीकार करते हैं, कि भारत ही हीरेका आदि आकर या खान है। इस भारतभूमिसे ही प्राचीन कालमें सुदूर यूरोपके पश्चिम प्रान्तमें हीरा लाया जाता था। द्रोनिसियसपेरि एगेटितके वर्णनसे हमें मालूम होता है, कि भारतवासी नदीके जलमेंसे हीरकमणि निकालते थे। महम्मद बिन-मनसुरने लिखा है, कि भारतके पूरबमें हीरककी खान है। भारतसे जो हीरक उत्पन्न हो कर यूरोप और पारस्यमें बेचनेको लाया जाता था, यह उन्हें अच्छी तरह मालूम था। कहते हैं, कि माकिदनवीर अलेकसन्दर लोगोंके मुखसे जुलमिया शैलशिखर परकी हीरकमण्डित उपत्यकाका हाल सुन कर वहां गये थे। शैलशृङ्ग पर चढ़ कर उन्होंने देखा, कि वहां मनुष्योंका जाना बिलकुल कठिन है। इसलिये उन्होंने अपने अनुचरोंसे कहा, कि तुम लोग जिस उपायसे हो कुछ पशुओंकी हत्या कर यहां फौरन फेंक दो। अनुचरोंने वैसा ही किया। गिद्ध पक्षी मांसके साथ साथ उसमें लगे हुए हीरेके टुकड़ेको भी निगल गये थे। उन पक्षियोंने पीछे जहां जहां मल त्याग किया, वहां वहां हीरे पाये गये। १३वीं सदीमें भारत पर भ्रमण करनेवाले मार्कोपोलोने इसी प्रकार एक किंवदन्तीमें हीरकोत्पत्तिका विवरण प्रकाशित किया है। १७वीं सदीमें भारत-भ्रमणकारी पाश्चात्य वणिक् जिनवासित्ते टावार्नियर स्वयं भारतमें हीरेकी खान देख गये हैं। उनके विवरणमें लिखा है, कि गोलकुण्डासे ५ दिन और विशापुरसे ८-६ दिनके रास्ते पर अवस्थित रावलकोण्डा नामक स्थानमें तथा कोलुर और सम्बलपुरमें हीरेकी खान हैं। दुःखका विषय है, कि उन्होंने भारतके चिरप्रसिद्ध गोलकुण्डाकी हीरेकी खानको नहीं देखा। १६२२ ई०में मेथोल्ड नामक किसी यूरोपीयने सबसे पहले गोलकुंडेमें हीरेकी खान देखी थी।

कालेरीटर भारतमें हीरे मिलनेवाले प्रदेशोंकी स्तरावलि देख कर उन्हें पांच विभिन्न श्रेणियोंमें निबद्ध कर गये हैं। यथा—

१म—कड़ापा श्रेणी। यह पेन्नर नदीके किनारे अवस्थित है। यहांका हीरा बहुत उमदा होता है।

२य रन्दियाल श्रेणी—यह पेन्नर और कृष्णा नदीके मध्यवर्त्ती बङ्गपल्लीके निकट अवस्थित है। यह हीरक साधारणतः दो मुंहवाला है।

३य—इलोरा श्रेणी, यही निम्नकृष्णा या गोलकुण्डा क्षेत्र नामसे प्रसिद्ध है। सच पूछिये तो गोलकुंडामें कोई खान नहीं है। कृष्णा और पेन्नर नदीके पास नोलमूल नामक शैलशिखरके नीचे हीरेकी खान है। यही पहले अपरिष्कृत अवस्थामें गोलकुंडा ला कर परिष्कार किया और काटा जाता था। इस कारण उस समय गोलकुंडा राजधानीमें हीरेका कारबार खोला गया था। भ्रमणकारी टावर्नियरने जिस रावलकुंडा खानको देखा था, वह कृष्णा नदीकी मध्य प्रशाखाके पास अवस्थित थी। उस खानमें 'ग्रेट मुगल' नामक हीरेके खण्ड पाये गये थे।

४र्थं सम्बलपुरश्रेणी—गोदावरी नदीके उत्तर और महानदीका मध्य शाखाके बहुत नजदीक यह विस्तीर्ण हीरकक्षेत्र अवस्थित है।

५म पन्नाश्रेणी—बुन्देलखण्डके मध्य सोनार और शोननदीके मध्यस्थलमें अवस्थित है। यहांका हीरा साधारणतः चार भागोंमें विभक्त है,—१ मोतीचूड—यह उज्ज्वल और स्वच्छ होता है, माणिक—कुछ बादामी रंगका, ३ पन्ना—फीका कमला नीबू जैसा और ४ बासपात—गाढ़े आसमानी रंगका।

भारतवर्षके सिवा साइबेरिया, ब्रेजिल, दक्षिण अफ्रिका, अष्ट्रेलिया, बोर्णियो, सुमात्रा, यवद्वीप और सिलेबिस द्वीपोंमें जमीनके अंदर हीरेकी खान पाई जाती है।

१८४० ई०में मूसो हेरिकोर्ट डि थुरिने फरासी राज्यके Academie des Sciences नामक विद्यालयमें एक हीरेका खण्ड देखा था जो दक्षिण अफ्रिकाके अलजेरियाके अन्तर्गत कुस्तुनतुनिया प्रदेशमें गोमेल नदीके किनारे मिला था। दक्षिण अफ्रिकाका 'Cape diamond' नामक प्रसिद्ध

हीरेका टुकड़ा पहले पहल होपटाउन नामक नगरके पास एक मैदानमें मिला था। १८६७ ई०में वह फ्रान्सकी राजधानी पेरिस नगरकी विख्यात प्रदर्शनीमें (The Universal Exhibition) दिखलाया गया था। उसका वजन २१६ करात था और वह ५ हजार रुपयेमें विका था। जब यह सम्वाद चारों ओर फैल गया, तब जनसाधारणकी चेष्टासे दक्षिण अफ्रिकाके अन्यान्य स्थानोंमें भी हीरेकी खानका पता लगाया गया। १८७१ ई०में ग्रिकोयालैण्ड अङ्गरेजोंके दखलमें आया। उसके पश्चिममें एक वहुत वड़ी हीरेकी खान आविष्कृत हुई है।

सोना मिलनेवाले अष्ट्रेलिया द्वीपमें भी हीरेकी खानका अभाव नहीं है। वहांके न्यू साउथ वेल्स विभागके वाथर्व नामक स्थानमें १८५१ ई०को मि० हारग्रेव और रेवरेण्ड क्लार्कने सवसे पहले हीरेका निदर्शन पाया था। १८६६ ई०के जुलाई मासमें 'अष्ट्रेलियन डायमण्ड माइनर्स' नामक एक कम्पनी हीरेकी खोजमें वाहर निकली तथा उसने विञ्जारो, एचुका और मेन्स जिलेमें इसकी खानका पता लगाया। मेन्स जिलेका हीरा पीलापन लिये स्फटिक जैसा होता है।

वोर्नियो द्वीपमें रातुस शैलके पश्चिमी किनारे तथा १८४० ई०में सुमात्रा द्वीपके डालादोला जिलेमें हीरेकी खान आविष्कृत हुई।

हीरेके सम्वन्धमें जिन्हें पूरा ज्ञान है, वे कहते हैं, कि मिट्टी या वालूके टीलेमें ही प्रधानतः हीरा पाया जाता है। कृष्णाप्रदेश और वुन्देलखण्डका पन्ना नामक स्थान ही उत्कृष्ट हीरेका जन्मस्थान है। हीरेके लिये भारतवर्ष वहुत दिनोंसे वैदेशिक जगत्में प्रसिद्ध रहा, परन्तु अभी हीरेके वाणिज्यमें भारतकी वह प्रसिद्धि जाती रही। भारतीय हीरेकी खानसे जो सव हीरे सभ्य जगत्के सभी स्थानोंमें भेजे जाते थे, ग्रीक और लाटिन लेखकोंने उसी वज्रमणिका आदामन्त (Adamant) नाम रखा। जिस समय प्राचीन संस्कृत कवियोंने हीरेका उल्लेख किया है, उस समय यूरोपकी सभ्य जातियोंको हीरेका अस्तित्व तक भी मालूम नहीं था।

हीरक खानकी खोदाईका भार प्राचीन कालसे भारतके अनार्य या इतर जातीय लोगोंके हाथ सौंपा गया था। प्रायः देखा जाता है, कि हीरेको पहली वार धोने पर उसमें जैसी उज्ज्वलता आती है, सौ वार धोने पर भी उसकी वही उज्ज्वलता रह जाती है, जरा भी कमी वेशी नहीं होती। हीरा धोनेकी प्रथा भारतवासियोंको पहले जिस प्रकार मालूम थी अभी उस प्रकार नहीं है। यह भी हीरकव्यवसायकी अवनतिका एक कारण है। जैसा हीरक अभी जगत्के प्रधान प्रधान राजाओंके अधिकारमें है वैसा उज्ज्वल वृहत् और मूल्यवान हीरक अभी कहीं भी देखनेमें नहीं आता।

निजामके अधिकारभुक्त हैदरावाद अञ्चलमें हीरकखानकी उन्नतिके लिये वहुत दिनोंसे चेष्टा हो रही है, पर आज तक उससे कोई फल नहीं निकला। मध्यप्रदेशमें १८०६ ई०को एक वड़ा हीरेका टुकड़ा मिला था जो वहुत भारी था। कहते हैं, कि वह किसी तरह मराठोंके हाथ आया। उसके वाद मालूम नहीं, वह कहां चला गया। हीरकतत्त्वविदोंने भारतीय मिट्टीकी अवस्था देख कर आज भी जमीनके अन्दर हीरा पानेकी आशा छोड़ी नहीं है। इस कारण हीरेकी खानका काम आज भी चल रहा है।

कई सदियोंसे भारतवासी हीरेकी महार्घतासे अवगत थे। पाश्चात्य जगत् जव अज्ञानरूपी अंधकारसे ढका था, विज्ञान ज्योतिका जव जरा भी प्रकाश उनके चित्त क्षेत्र पर नहीं पड़ा था, उसी प्राचीन समयसे भारतीय राजे हीरेसे मढ़े हुए शिरस्त्राणसे अपनेको अलंकृत कर गौरवान्वित समझते थे। आज भी रूस, फ्रान्स और इंगलैण्डके राजराजेश्वर भारतके हीरेसे सज कर अपनेको विशेष मर्यादासम्पन्न समझते हैं। वर्त्तमानकालमें दक्षिण अमेरिकाके ब्रेजिलराज्य और दक्षिण अफ्रिकाके अंगरेजी उपनिवेशमें जगह जगह हीरेकी खान आविष्कृत हुई, फिर भी यूरोपीय संभ्रान्त जनसाधारणके निकट उसका उतना आदर नहीं है।

भारतके अतीत गौरवके दिन जव हीरेका वहुत प्रचार था, उसी समयसे भारतवासियोंने हीरेको काटना और पालिश करना सीख लिया था। अतएव यह कहना पड़ेगा, कि उस समय भारतवर्षमें हीरेको काटने, पालिश करने और चूर्ण वनानेके यन्त्र भी प्रचलित थे।

हीरेके चूर्णसे हीरेको काटने और पालिश करनेकी प्रथा यूरोपमें १४७६ ई०को सबसे पहले ब्रेजेलवासी लुइ-डि-वार्केमने चलाई। हिन्दू और चीनवासी हीरक-चूर्णके बदलेमें कुरुन्द चूर्णका व्यवहार करते थे। इसके पहले यूरोपमें, ऐसा भी नहीं कह सकते, कि हीरा काटनेकी विद्या एकदम अप्रचलित थी। राजा चार्लिमनकी कमीजमें जो चार हीरेके टुकड़े जड़े हुए थे, वे परिष्कृत नहीं थे। फिर किसी किसीका कहना है, कि जब उस भूषणकी सौन्दर्यवृद्धिके लिये हीरा काममें लाया जाता था, उस समय इसका रंग बिलकुल सफेद था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। जो हो, हम इतिहासमें देखते हैं, कि १२६० ई०को पेरिस नगरमें हीरकादि मणिकी पालिश करने और उसे काटनेके लिये एक व्यवसायी दल संगठित हुआ था। १३७३ ई०को नूरनवर्गमें तथा १४३४ ई०को ष्ट्रासवर्गवासी एड्रियनने डाइजेसेनसे गुटेनवर्ग हीरा काटना सीखा था। १३६०से १३६८ ई०में एञ्जर ड्यूक लुईने कुछ हीरे प्रदर्शनीमें दे दिये थे। वार्गमके छात्रोंमेंसे कुछ अमष्टार्डाम और कुछ पेरिस राजधानीमें व्यवसायके उद्देशसे गये थे। पेरिस राजधानीमें कार्डिनल माजरिनके उत्साहसे एक व्यक्तिने अच्छी सुख्याति पाई थी। कार्डिनलने उन्हें जो बारह हीरे नये ढंगसे काटने दिये थे, वे इतिहासमें Twelve mazarins नामसे प्रसिद्ध हैं। अभी हालैण्डराज्यमें हीरे काटनेकी बड़ी उन्नति हुई है। वहांके यहूदी अधिवासी इस व्यवसायमें लिप्त हैं।

भेनिस नगरवासी भिनसेनजिओ पेरुजीने १७वीं सदीके शेष भागमें ब्रिलियेंट नामक हीरा काटनेकी प्रथा चलाई। १५२० ई०में गुलाबकी कलीके आकारमें हीरा काटनेकी प्रथा निकाली गई। यह रोजकट (Rose-cut) नामसे प्रसिद्ध है। १५६१ ई०में बेण्टमन नामक एक व्यक्तिने 'पायेण्ट कट' नामक हीरा काटनेकी प्रथा निकाली थी। प्राचीन कालके अलंकारादिमें पायेण्टकट हीरेका निदर्शन मिलता है।

१५०० ई०में मिलानवासी एम्ब्रोगियस काराडोसोने हीरेके ऊपर किसी पादरीकी मूर्त्ति अंकित की थी। पावलो मेरिजियाका कहना है, कि मिलानवासी प्रसिद्ध चित्रकार ट्रेजोने पहले पहल हीरेके ऊपर सम्राट् ५म चार्ल्सका राजचिह्न अंकित किया था। उनके शिष्य क्लेमण्ट बिरागोने हीरेके ऊपर डान-कार्लोकी प्रतिमूर्त्ति अंकित की। स्काटलैण्डकी रानी मेरीके लिये जेपरा वास थोनस नामक एक ओलन्दाजने हीरेमें राजचिह्न अंकित कर दिया था। एक बड़े टेबिल हीरककी पीठ पर सम्राट् १म लियोपोल्डकी आवक्ष मूर्त्ति विराजित है। १८वीं सदीको रोमनगरमें कोष्टानिज नामक एक सुविख्यात कारीगर आविर्भूत हुए। उन्होंने बहुतसे हीरोंमें खुदाई की थी जिनमेंसे अण्डोनियस और नेवोकी प्रतिकृति विशेष उल्लेखयोग्य है। महारानी विक्टोरियाके हीरक संग्रहमें युवराज चार्ल्सकी अंगूठी तथा राजा १५वें लुईके नियोजित राजस्वर्णकार लुई सिरिज एक खण्ड ब्रिलियंट हीरकके ऊपर टाइतसकी कन्या जुलियाकी मूर्त्ति अंकित कर यशस्वी हो गये हैं।

एक खंड हीरा काटनेमें प्रायः एक महीनेका और बड़े होने पर दो महीनेका समय लगता है। सुप्रसिद्ध पिट-डायमण्ड नामक हीरकखंड काटनेमें एक वर्षका समय लगा था।

हीरेको काटनेमें पालिश कभी होती है। हीरा काटते समय जो बुकनी निकलती है उसे सावधानीसे रखना होता है। पीछे उसको इस्पातके हामानदस्तामें डाल कर ऐसा चूर्ण किया जाता है, कि उसकी कणा तक देखनेमें नहीं आती। इसी प्रकारकी बुकनीसे हीरेमें पालिश करनी होती है।

हीरेका चूर्ण केवल पालिशके काममें ही व्यवहृत होता है सो नहीं। हीरेसे नाना प्रकारके छिद्र करनेके यन्त्र बनाये जाते हैं। काच काटने और इस्पातमें बारीक छेद करनेमें हीरकयन्त्रका व्यवहार होता है।

हीरा अत्यन्त कठिन पदार्थ है। एक टुकड़े लोहेके ऊपर हीरा रख कर यदि हथौड़ीसे पीटा जाय तो हथौड़ी खंड खंड हो जाती है और हीरा लोहेके खंडमें घुस जाता है। हीरेसे सभी प्रकारकी धातु खोदी और काटी जा सकता है, किन्तु ताम्रतालम धातुके ऊपर हीरेका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बहुत देर तक हीरकयंत्र यदि

तान्तालम् धातुके ऊपर काम करे तो हीरेके अगले भागका ही कुछ अंश खराब हो जाता है।

हीरक तडित् और उत्तापका अपरिचालक है, अत एव इसका एक पार्श्व यदि किसी तरह उत्तप्त और नष्ट हो जाय, तो इसके दूसरे पार्श्वका कुछ नुकसान नहीं होता।

हीरक अङ्गारके सिवा और कुछ भी नहीं है। स्वाभाविक उपायसे जब तरल लोहेमे कोयला मिलता है और क्रमागत उस पर दबाव पडता है, तब कोयला हीरेका आकार धारण करता है। पीछे जमीनके अंदरसे निकले हुए अग्न्युत्पातके साथ हीरकखण्ड अन्यान्य धातुओं और कीचड आदिमें मिल कर पृथ्वीके ऊपर लाया जाता है।

फरासी रसायनविद् मैसानने कृतिम उपायसे हीरा बनाया था। उन्होंने Silica या अन्य आवर्जनाविहीन विशुद्ध लोहेको वैद्युतिक अग्निकुण्डमें रख कर वैद्युतिक प्रकाश दिया था। उससे कुण्डका ताप ४००० सेण्टिग्रेडमें उठ आया और लोहा तरल मोम जैसा हो गया। पीछे उन्होंने उसमें शोधित कोयला डाला। कोयला भी उस तापसे लोहेके साथ गल गया। अनन्तर ठंढा कर जब उस पर दबाव डाला गया, तब कोयला दानेदार स्फटिकमें परिणत हुआ। उग्र लवणद्रावकसे परिष्कार करने पर हीरेके आकारका स्फटिक बन गया। वह स्वाभाविक हीरे जैसा स्वच्छ और वर्ण-रहित नहीं था, परन्तु स्वाभाविक हीरेके आपेक्षिक गुरुत्व (३·५)के समान इसका भी आपेक्षिक गुरुत्व ३·३से ३·५ तक हो गया।

अभी समस्त सभ्य जातियोंमें जिन सब उत्कृष्ट हीरेका अधिक आदर हो रहा है, उनमें भारतसे लाये गये हीरक ही सर्वश्रेष्ठ हैं। नीचे उन हीरोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

१ कोहिनूर—यह वजनमें ७९३ कराट था। १८५० ई०में जब यह भारतेश्वरी विक्टोरियाके हाथ आया, तब उसका वजन १८६ कराट हो गया था। इसकी ज्योति सबमें अधिक थी और १८५१ ई०को प्रदर्शनीमें इसका मूल्य १४ लाख रुपया निरूपित हुआ था।

२ ग्रेट मुगल—यह १६५० ई०में गोलकुंडाकी कोल्लूर खानमें मिला था। वजनमें ५८७॥० कराट था, पीछे काट कर १३४ कराट बनाया गया।

३ पिट या रिजेंट डायमण्ड—अपरिष्कृत अवस्थामें इसका वजन ४१० कराट था। गोलकुंडासे १३५ मील दूर पुटियाल नामक स्थानमें मिला था। जब अर्ल आव चाथमाके पितामह मि० टामस पिट मन्द्राजके फोर्ट सेण्ट जार्जके शासनकर्त्ता थे, उस समय (१७०१ ई०) उन्होंने १ लाख २५ हजार रुपयेमें इसे खरीदा था। पीछे प्रायः ५० हजार रुपये खर्च करके उसे नये ढंगसे कटवाया गया जिसमे उसका वजन १३७ कराट हो गया। उसके चूर्ण आदिको बेचनेसे पिटको ३५ हजार रुपये मिले थे। १७१७ ई०में ओर्लीनके ड्यूकने १३ लाख ५० हजार रुपयेमें इसे खरीदा। १म नेपोलियनने इस हीरकखण्डको अपनी तलवारकी मूठमें जड दिया था।

४ ओर्लोफ या अमष्टार्डम हीरक—इसका दूसरा नाम रूस डायमण्ड भी है। पुंडिचेरीका एक फरासी सैनिक यह किसी हिन्दू-देवमूर्तिकी आंखसे उखाड ले गया था। १७७२ ई०में यह ६ लाख रुपयेमें बिका। कुल रुपये एक साथ नहीं मिले थे. वार्षिक ४० हजार रुपये दे कर उसके मूल्य चुकानेकी शर्त्त थी। यह रूस-सम्राट्‌के राजदण्डमें जड़ा हुआ था।

५ नासिक डायमण्ड—यह वजनमें ८९॥।० कराट था। पीछे काट कर ७८॥० कराट किया गया। इसका मूल्य ३ लाख रुपया था।

६ निजाम—वजन ३४० कराट था। दुःखका विषय है, कि सिपाही विद्रोहके समय यह किसी अभावनीय कारणसे दो खड हो कर नष्ट हो गया।

७ पारस्यका शाह—अब्बास मिर्जाके पुत्र खुसरोजने यह रूस-सम्राट् निकोलसको उपहार दिया। इसका वजन ८६ कराट है। इसके ऊपर पारस्यके तीन राजाओंके नाम खुदे हुए हैं।

इसके सिवा इजिप्तका पाशा, मारम हीरा, सान्सी डायमण्ड, चार्ल्स वोलका हीरक, फ्लोरेण्टाइन ब्रिलियण्ट, ग्रागञ्जा-हीरक, पिगट हीरक, होप डायमण्ड, युजिन ब्रिलियण्ट, कम्बरलैण्ड डायमण्ड, ष्टार आव-साउथ, पोलरष्टार, ष्टुअर्ट डायमण्ड आदि हीरक वृहदाकार, मूल्यवान् और प्रसिद्ध हैं।

हीरकक्षेत्र—प्रभासखण्डवर्णित एक प्राचीन पुण्यस्थान।

हीरा (सं० स्त्री०) १ लक्ष्मी। २ तैलखुक। ३ पिपीलिका, च्युंटी। ४ काश्मरी।

हीरा (हिं० पु०) १ एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाईके लिये प्रसिद्ध है। विशेष विवरण हीरक शब्दमें देखो। २ बहुत ही अच्छा आदमी, नररत्न। ३ बहुत उत्तम वस्तु, बहुत बढ़िया या चोखी चीज। ४ दुबे भेड़की एक जाति।

हीराकसीस (हिं० पु०) लोहेका वह विकार जो गंधकके रासायनिक योगसे होता है और जो देखनेमें कुछ हरापन लिये मटमैले रंगका होता है। लोहेको यदि गंधकके तेजाबमें गलाया जाय, तो हीराकसीस निकल सकता है, परन्तु इस क्रियामें खर्च अधिक पड़ता है। खानके मैले लोहेको हवा और सीडमें छोड़ देनेसे भी कसीस निकलता है। हवा और सीडके प्रभावसे एक प्रकारका रस निकलता है जिसमें कसीस और गंधकका तेजाब दोनों रहते हैं। लोहचूरका थोड़ा योग कर देनेसे सबका हीरा कसीस हो जाता है। इसका व्यवहार स्याही, रंग आदि बनानेमें तथा औषधके लिये भी होता है।

हीराङ्ग (सं० पु०) इन्द्रका वज्र।

हीरादोखी (हिं० स्त्री०) विजयसालका गोंद जो दवाके काममें आता है।

हीरानखी (हिं० पु०) अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका बढ़िया धान। इसका चावल बहुत महीन और सफेद होता है।

हीरानन्द—१ एक संस्कृत ज्योतिर्विद्। इन्होंने ज्योतिःप्रकाशकी रचना की। २ रामकीर्त्तिमुकुन्दमालाटीकाके रचयिता।

हीरापुर—मध्यभारतके भूपाल एजेन्सीके अधीन एक छोटा ठाकुरी राज्य। यहांके ठाकुर होलकर, सिन्धिया और भूपालसे भी वृत्ति पाते हैं।

हीरामन (हिं० पु०) सूए या तोतेकी एक कल्पित जाति। इसका रंग सोनेके जैसा माना जाता है। इस प्रकारके तोतेका वर्णन कहानियोंमें बहुत आता है।

हील (सं० क्ली०) हि विस्मयं लातीति ला-क। रेतः, वीर्य।

हील (हिं० पु०) एक सदाबहार पेड़ जो भारतके पश्चिमी किनारे पर और सिंहलमें पाया जाता है। इससे एक प्रकारका लसीला गोंद निकलता है। यह गोंद बाहर भेजा जाता है। इस पेड़को 'अरदल' और 'गोरक' भी कहते हैं।

हीला (अ० पु०) १ बहाना, मिस। २ किसी बातकी सिद्धिके लिये निकला हुआ मार्ग, निमित्त।

हीलुक (सं० क्ली०) गौडीमद्य।

हीपोस्वर (सं० क्ली०) सामभेद।

हीस (हिं० पु०) प्रायः समस्त भारतमें मिलनेवाली एक प्रकारकी लता। यह गरमीमें फूलती और बरसातमें फलती है। इसकी पत्तियां और टहनियां हाथी बड़े चावसे खाते हैं।

हीही (हिं० स्त्री०) ही ही शब्द करके हंसनेकी क्रिया, तुच्छतापूर्ण हंसना।

हीहीकार (सं० पु०) हीही शब्द।

हु (सं० अ०) तन्त्रोक्त बीजमन्त्रविशेष।

हुं (हिं० अव्य०) १ एक शब्द जो किसी बातको सुननेवाला यह सूचित करनेके लिये बोलता है, कि हम सुन रहे हैं। २ स्वीकृतिसूचक शब्द, हां।

हुंकना (हिं० क्रि०) हुंकारना देखो।

हुंकरना (हिं० स्त्री०) हुंकारना देखो।

हुंकारना (हिं० क्रि०) १ ललकारना, डपटना। २ चिल्लाना, चिग्घाड़ना। ३ घोर शब्द करना, गर्जना।

हुंकारी (हिं० स्त्री०) १ 'हुं' करनेकी क्रिया। २ मानना या कबूल करना, हामी। ३ घुमावके साथ झुकी लकीर जो अंकके आगे रुपया या रकम सूचित करनेके लिये लगा दी जाती है, बिकारी।

हुंडा भाड़ा (हिं० पु०) महसूल, भाड़ा आदि सब कुछ देकर कहीं पर माल पहुंचानेका ठेका।

हुंडार (हिं० पु०) भेड़िया, वृक।

हुंडावन (हिं० स्त्री०) १ वह रकम जो हुंडी लिखनेके समय दस्तूरकी तरह पर काटी जाती है। २ हुंडीकी दर।

हुंडी (हिं० स्त्री०) १ निधिपत्र, चेक। २ उधार

रुपया देनेकी एक रीति जिसके अनुसार लेनेवालेको साल भरमें २०)का २५) या १५का २०) देना पडता है।

हुंडी वही (हिं० स्त्री०) वह किताव या वही जिसमें सव तरहको हुंडियोंकी नकल रहती है।

हुंडी वेंत (हिं० पु०) एक प्रकारका वेंत। इसे मयूरी वेंत भी कहते हैं।

हुंवा (हिं० पु०) समुद्रकी चढ़ती लहर।

हुंहुङ्कार (सं० पु०) हुं शब्द करके चीत्कार।

हुआना (हिं० क्रि०) हुआ हुआ करना, गीदड़ोंका वोलना।

हुक (अं० पु०) १ वंकिया, टेढी कील। २ अंकुसी, अंकुडी। ३ नावमें वह लकडी जिसमें डांडेको टहरा या फंसा कर चलाते हैं। (स्त्री०) ४ एक प्रकारका दर्द जो प्रायः पीठमें किसी स्थानकी नस पर होता है।

हुकना (हिं० पु०) १ एक पक्षी जो 'सोहन चिडिया'के नामसे प्रसिद्ध है। (क्रि०) २ विस्मृत होना, भूल जाना। ३ लक्ष्य भ्रष्ट होना, निशाना चुकना।

हुकर पुकर (अ० स्त्री०) अधीरता, घवराहट।

हुकारना (हि० क्रि०) हुंकारना देखो।

हुकुर हुकुर (हिं० स्त्री०) दुर्वलता, रोग आदिमें श्वास का स्पन्दन, जल्दी जल्दी सास चलनेकी धडकन।

हुकूमत (अ० स्त्री०) १ आधिपत्य, अधिकार। २ राज्य, शासन।

हुकेरि—वम्वई विभागके वेलगाम जिलान्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० १६° १३' उ० तथा देशा० ७४° ३६' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। शहर के वाहर दो गुम्वजदार मुसलमान कब्र हैं। उनमेंसे एकका संस्कार कर पान्थशाला वनाई गई है। गोकक-का विख्यात जलप्रपात यहासे १२ मील दूर पडता है। नलके द्वारा इस शहरके उत्तर पश्चिमके झरनेसे यहां परिष्कार जल लाया जाता है। मुसलमानी अमलसे ही जलकी ऐसी व्यवस्था चली आ रही है।

हुक्का (अ० पु०) १ तवाकूका धूंआ खींचनेके लिये विशेष रूपसे वना हुआ एक नल-यन्त्र। इसमें दो नलियां होती हैं, एक पानी भरे पेंदेसे ऊपरकी ओर खडी जाती है जिस पर तंवाकू सुलगानेकी चिलम वैठाई जाती है और दूसरी उसी पेंदेसे वगलकी ओर आडी या तिरछी जाती है जिसका छोर मुंहमें लगा कर पानीसे हो कर आता हुआ तंवाकूका धूआं खींचते हैं। २ दिशा जाननेका यन्त्र, कंपास।

हुक्का पानी (हिं० पु०) एक दूसरेके हाथसे हुक्का तंवाकू पीने और पानी पीनेका व्यवहार, आने जाने और खाने पीने आदिका सामाजिक व्यवहार।

हुक्काम (अ० पु०) अधिकारी वर्ग, वडे अफसर।

हुक्कू (हिं० पु०) एक जातिका वंदर।

हुक्म (अ० पु०) १ वडेका वचन जिसका पालन कर्त्तव्य हो, आज्ञा, आदेश। २ अनुमति, इजाजत। ३ शिक्षा, उपदेश। ४ ताशका एक रंग जिसमें काले रंगका पान वना रहता है। ५ अधिकार, शासन।

हुक्मचोल (हिं० स्त्री०) खजूरका गोंद।

हुक्मनामा (फा० पु०) वह कागज जिस पर कोई हुक्म लिखा गया हो, आज्ञा-पत्र।

हुक्मवरदार (फा० पु०) आज्ञानुवर्त्ती, आज्ञाकारी।

हुक्मावरदारी (फा० स्त्री०) १ आज्ञापालन। २ सेवा।

हुक्मी (अ० वि०) १ दूसरेकी आज्ञाके अनुसार ही काम करनेवाला, पराधीन। २ अवश्य कर्त्तव्य, जरूरी। ३ अव्यर्थ, अचूक। ४ अवश्य लक्ष्य पर पहुंचनेवाला, न खाली जानेवाला।

हुगरी—दाक्षिणात्यमें एक प्रसिद्ध नदी। यह महिसुरराज्य से निकल कर १२५ मीलका रास्ता तै करती हुई मन्द्राज विभागके वेल्लरी जिलेके हलकोटके पास तुङ्गभद्रासे मिल गई है। यह नदी वेदवती नामसे भी प्रसिद्ध है।

हुगली—वङ्गालके वर्द्धमान विभागका एक जिला। यह अक्षा० २२° ३६' से २३° १४' उ० तथा देशा० ८७° ३० से ८८° ३०' पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरमें वर्द्धमान जिला, पूरवमें भागीरथी नदी, दक्षिणमें हवडा जिला और पश्चिममें भी वर्द्धमान जिला है। भूपरिमाण १२२३ वर्गमील है। भागीरथीके पश्चिमी किनारे अवस्थित हुगली शहर इस जिलेका सदर है।

हुगली जिला समभूमि है, पर उत्तर पश्चिम ओरकी भूमि कुछ उन्नत हो गई है। पूरवकी ओर भागीरथी नदीके उसरी तरफका स्थानीय दृश्य वडा ही मनोरम है।

सौन्दर्यमें यह वङ्गदेशकी विशेषता है। इस जिलेकी प्रधान नदियोंके नाम हैं भागीरथी, दामोदर और रूपनारायण।

केवल दामोदर नद ही इस जिलेके मध्यसे वह गया है। पहले कलकत्तेसे ३६ मील उत्तर भागीरथीके साथ दामोदरका संयोग था, परन्तु अभी गति वदल जानेसे वह फलताके पास भागीरथीके साथ मिल गया है। पहले दामोदरका जिस ओर स्रोत वहता था अभी खेतीवारीके सुभीतेके लिये वहां नहर काटी गई है। नहरका नाम कानसोनार खाल है।

हुगली जिलेमें वहुत-सी झीलें हैं जिनमेंसे राजापुर, डानकुनी और सामतो झील ही मशहूर है।

हुगलीके इतिहासके साथ भारतवर्षका इतिहास संवध रखता है। हुगलीके प्रत्येक प्रधान शहरके साथ अनेक जातियोंका प्राचीन स्मृति जड़ी हुई है। हुगलीके पूरव नदीके पार्श्ववर्त्ती प्रत्येक ग्राम किसी न किसी विख्यात ऐतिहासिक घटनाके लिये भारत इतिहासमें प्रसिद्ध है। प्राचीन मुसलमान सम्राटोंके अमलमें सातगांव निम्नवङ्गका सवसे प्रधान वाणिज्य शासनकेन्द्र था परन्तु १५३७ ई०के वाद सरस्वती नदी सूखने लगी, उसके जलप्रवाहने भागीरथीका आश्रय लिया। इसके साथ साथ सातगांवकी प्राचीन समृद्धि भी जाती रही। कलकत्ता, पुर्त्तगीज, सप्तग्राम आदि शब्दोंमें विस्तृत विवरण देखो।

हुगलीमें अंगरेजोंके साथ वङ्गालके मुसलमान नवावकी पहले पहल मुठभेड़ हुई। यूरोपीय अन्यान्य जातियोंने वङ्गाल देशमें आ कर पहले हुगलीमें ही अपना अपना वाणिज्यकेन्द्र स्थापन किया। ओलन्दाज लोग १७वीं सदीमें चुंचड़ामें प्रतिष्ठित हुए। १८२५ ई०में जावाके कुछ अंशोंके वदलेमें चुंचड़ा अंगरेजोंको दे दिया गया। दिनेमारोंने भी श्रीरामपुरमें वाणिज्य उपनिवेश खोला था। परन्तु १८४५ ई०में दिनेमारोंके राजाके साथ जो संधि हुई उसके अनुसार उन लोगोंने अपना भारतीय अधिकार छोड़ दिया। १६७३ ई०को चन्दननगरमें फरासीसियोंका उपनिवेश स्थापित हुआ।

इस जिलेमें ८ शहर और २३८३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सवसे ज्यादा है। यहांसे चावल, दाल, रेशम, नील, जूट, अफीम रस्सी, सूती कपड़े, ईंटे, कपड़े और तरह तरहकी तरकारियोंकी रफ्तनी तथा मोटे चावल, नमक, वर्द्धमान और श्रीहट्टके चूने, तमाकू, कोयले, किरासन तेल, घी, मसाले, टिम्वर और विलायती सूत, रस्सी आदिकी आमदनी होती है। जिलेमें अभी २ शिल्प कालेज, १०० सिकेण्डरी, १३०० प्राइमरी और १५० स्पेशल स्कूल हैं। स्कूल और कालेजके अतिरिक्त १५ अस्पताल हैं जिनमेंसे ६में रोगी रखे जाते हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ५२'से २३° १४' ३० तथा देशा० ८७° ५८'से ८८° ३० पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४४२ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखसे ऊपर है। इसमें हुगली और चुंचड़ा नामक २ शहर और ६४२ ग्राम पड़ते हैं।

३ हुगली जिलेका सवसे वड़ा शहर। यह अक्षा० २२° ५५' ३० तथा देशा० ८८° २४' पू०के मध्य हुगली नदीके वाएं किनारे अवस्थित है। महम्मद महसीन नामक एक शिया श्रेणीके साधु मुसलमानके सत्कारमें वहुत रुपये खर्च कर यहांका इमामवाड़ा वनाया गया है। सप्तग्रामकी अवनतिके साथ पुर्त्तगीज वणिकोंके यत्नसे यह शहर वसाया गया। उन्होंने गोलाघाटमें एक दुर्ग वनाया। उसी दुर्गसे आधुनिक हुगली शहरका उद्भव हुआ है।

१६४० ई०में अंगरेज-डाक्टरने वाउटन सम्राट्की कन्याको एक कठिन रोगसे वचा दिया था। इस उपकारमें उन्हें स्वजातीय वाणिज्यकी सुविधाके लिये एक फर्मान मिला। इस फर्मानके अनुसार अंगरेजोंने पहले हुगलीमें वाणिज्यकी कोठी खोली।

आज भी हिन्दूमुसलमान वहुतसे संभ्रान्त लोग हुगली शहरमें रहते हैं। यहां अदालत और कमिश्नरके वास-भवन आदि हैं। हुगलीकी वड़ी इमारत वंगाल भरमें मशहूर है।

हुङ्कार (सं० पु०) १ ललकार, डपट। २ गर्जन, गरज। ३ चीत्कार, चिल्लाहट।

हुङ्कारतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

हुङ्कृत (सं० क्ली०) १ हुङ्कार। २ वन्यवराह शब्द।

(वि०) ३ हुं इस प्रकार मन्त्रोच्चारित। ४ हुं इस प्रकार शब्द द्वारा तिरस्कृत। ५ हुङ्कारविशिष्ट।

हुचकी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सुन्दर लता या बेल। इसके फूल ललाई लिये सफेद और सुगंधित होते हैं।

हुजरा—पंजाबके मोण्टगोमारी जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ३० ४४´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७३° ५२´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह एक प्राचीन दुर्गाश्रित शहर है। यहां सिख लोगोंके जो जागीरदार रहते हैं वे बाबा गुरु नानकके वंशधर हैं।

हुजूम (अ० पु०) भीड़, जमावड़ा।

हुजूर (अ० पु०) १ किसी बड़ेका सामीप्य, नजरका सामना। २ बादशाह या हाकिमका दरबार, कचहरी। ३ बहुत बड़े लोगोंके संबोधनका शब्द। ४ एक शब्द जिसके द्वारा अधीन कर्मचारी अपने बड़े अफसरको या नौकर अपने मालिकको संबोधन करते हैं।

हुजूरी (अ० स्त्री०) १ बड़ेका सामीप्य या समकक्षता, नजरका सामना। (पु०) २ खास सेवामें रहनेवाला नौकर। ३ दरबारी मुसाहब। (वि०) ४ सरकारी, हुजूरका।

हुज्जत (अ० स्त्री०) व्यर्थका तर्क, फजूलकी दलील। २ विवाद, झगड़ा।

हुज्जती (अ० वि०) हुज्जत करनेवाला, झगड़ालू।

हुड (सं० पु०) हुड-क्। १ मेष, मेढ़ा। २ एक प्रकारका तेज लोहेका शंकु या अस्त्र जो चोर आदिसे रक्षा पानेके लिये जमीनमें गाड़ दिया जाता है। ३ लगुड, लाठी। ४ सैन्याश्रयस्थान, बारक। ५ रथके ऊपर मलमूत्रत्याग करनेका स्थान।

हुड़कना (हिं० क्रि०) बच्चेका रो रो कर उसके लिये व्याकुलता करना जिससे वह बहुत हिला हो।

हुड़का (हिं० पु०) वह मानसिक व्यथा जो प्रायः अचानक किसी प्रिय व्यक्तिका वियोग होने पर उत्पन्न होती है।

हुड़काना (हिं० क्रि०) १ बहुत अधिक भयभीत और दुःखित करना। २ तरसाना, ललचाना।

हुड़दंगा (हिं० पु०) हल्ला गुल्ला और उछलकूद, उपद्रव।

हुडुक (सं० पु०) हुडुक इस प्रकारका अव्यक्त शब्द।

हुडुक (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत छोटा ढोल। इसे प्रायः कहार या धीमर बजाते हैं।

हुडुक्क (सं० पु०) १ एक प्रकारका बहुत छोटा ढोल, हुडुक नामका बाजा। २ दात्यूह पक्षी। ३ मदोन्मत्त पुरुष, मतवाला आदमी। ४ लोहेकी साम जड़ा हुआ डंडा, लोहबंद। ५ अर्गल, बेंबड़ा।

हुडुत् (सं० क्ली०) वृष शब्द, बैलका शब्द।

हुडुम्ब (सं० पु०) भृष्ट चिपिटक, भुना हुआ च्युंड़ा।

हुण्ड (सं० पु०) १ व्याघ्र, बाघ। २ ग्राम्य शूकर, सूअर। ३ मूर्ख, जडबुद्धि। ४ राक्षस। ५ अनाजकी बाल। ६ एक बर्बर जाति।

हुण्डन (सं० क्ली०) १ शिवके एक गणका नाम। २ स्तब्ध हो जाना, मारा जाना।

हुण्डा (सं० पु०) आगके दहकानेका शब्द।

हुण्डा (हिं० पु०) वह रुपया जो किसी किसी जातिमें वरपक्षसे कन्याके पिताको ब्याहके लिये दिया जाता है।

हुत (सं० त्रि०) हु-क्त। १ हवन करते समय अग्निमें डाला हुआ। (पु०) २ हवनकी वस्तु, हवनकी सामग्री। ३ शिवका एक नाम।

हुतभक्ष (सं० पु०) अग्नि, आग।

हुतभाग (सं० त्रि०) अग्निमें प्रक्षिप्त घृताशविशिष्ट।

हुतभुक् (सं० पु०) १ अग्नि, आग। २ चित्रक, चीतेका पेड़। ३ महादेव। ४ विष्णु।

हुतभुक्प्रिया (सं० स्त्री०) अग्निकी भार्या स्वाहा।

हुतभुग्ध्वज (सं० पु०) अग्निकी ध्वजा या चिह्न।

हुतभुज (सं० पु०) हुतभुक् देखो।

हुतवह (अ० पु०) अग्नि, आग।

हुतशेष (सं० पु०) हवन करनेसे बची हुई सामग्री।

हुतहव्यवाह (सं० पु०) अग्नि।

हुताग्नि (सं० पु०) १ वह जिसने हवन किया हो। २ अग्निहोत्री। ३ यज्ञ या हवनकी आग।

हुताश (सं० पु०) १ अग्नि, आग। २ भय, डर। ३ आयुर्वेदसंहिताकार अग्निवेश मुनि। ४ तीनकी संख्या। ५ चित्रक, चीतेका पेड़।

हुताशन (सं० पु०) अग्नि, आग। कोटिहोम स्थलमें अग्निका नाम हुताशन है।

'आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।"

(सुश्रुत चि० ३७ अ०)

हुताशनरस (सं० पु०) एक औषध। इसके सेवनसे शूल, अरुचि, विसूचिका, अजीर्ण, अग्निमान्द्य आदि रोग प्रशमित होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

हुताशवेश (सं० पु०) अग्निवेश।

हुताशशाला (सं० स्त्री०) अग्निशाला, अग्निहोमगृह।

हुताशपुत्र (सं० पु०) १ अग्निपुत्र। २ कंतु।

हुताशिन् (सं० त्रि०) १ होमघृतभुक्। (पु०) २ अग्नि।

हुति (सं० स्त्री०) हु क्तिन्। हवन।

हुतियन (हिं० पु०) सेमलका पेड़।

हुरकप (सं० पु०) एक दैत्यका नाम।

हुदहुद (अ० पु०) भारतवर्ष और वरमामें सब जगह मिलनेवाली एक चिड़िया। इसकी छाती और गरदन खैर रंगकी तथा चोटी और डैने काले और सफेद होते हैं। चोंच एक अंगुल लंबी होती है।

हुदारना (हिं० क्रि०) रस्सी पर लटकाना, टांगना।

हुदिकेरि—कुर्ग जिलान्तर्गत किग्गतुनाद तालुकका सदर। यह अक्षा० १२° ५´ उ० तथा देशा० ६७° पू०के मध्य कुर्गकी राजधानी मर्करासे २६ मील दूरमें अवस्थित है। यह खूब स्वास्थ्यकर स्थान है।

हुद्दा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

हुन (हिं० पु०) १ स्वर्णमुद्रा, अशरफी। २ सुवर्ण, सोना।

हुनना (हिं० क्रि०) १ आहुति देना, अग्निमें डालना। २ हवन करना।

हुनर (फा० पु०) १ कला, कारीगरी। २ गुण, करतब। ३ चतुराई, कौशल।

हुनरमंद (फा० वि०) निपुण, कला कुशल।

हुनरमंदी (फा० स्त्री०) निपुणता, कला कुशलता।

हुनश (फा० वि०) वह बंदर या भालू जो नाचना और खेल दिखाना सीख गया हो।

हुनिया (हिं० स्त्री०) भेड़ोंकी एक जाति जिसका ऊन अच्छा होता है।

हुन्न (हिं० पु०) हुन देखो।

हुब (अ० पु०) १ अनुराग, प्रेम। २ श्रद्धा। ३ उत्साह, उमंग।

हुबली—१ वम्बई विभागके धारवार जिलान्तर्गत एक महकमा। भूपरिमाण ३११ वर्गमील है। इसमें ७० ग्राम और १ शहर लगते हैं। यहां १ दीवानी और २ फौजदारी अदालत तथा २ थाना हैं।

२ उक्त महकमेका सदर। यह अक्षा० १५° २०´ उ० तथा देशा० ७१° १२´ पू०के मध्य धारवार शहरसे १३ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। हुबली शहर दक्षिण महाराष्ट्रकी रूईके व्यवसायके लिये विख्यात है। इसके सिवा यहां और भी कितनी वस्तुओंका व्यवसाय होता है।

हुम् (सं० अव्य०) १ स्मृति। २ अप्राकृत। ३ अर्थप्रश्न। ४ अभ्यनुज्ञा। ५ तर्कवितर्क।

हुमकना (हिं० क्रि०) १ उछलना, कूदना। २ पैरोंसे जोर लगाना, जमे हुए पैरसे ठेलना या धक्का पहुंचाना। ३ दबाने या इसी प्रकारका और कोई काम करनेके लिये जोर लगाना।

हुमगना (हिं० क्रि०) हुमकना देखो।

हुमा (फा० स्त्री०) एक कल्पित पक्षी। इसके संबंधमें प्रसिद्धि है, कि यह हड्डियां ही खाता है और जिसके ऊपर इसकी छाया पड़ जाय, वह बादशाह हो जाता है।

हुमायून्—प्रसिद्ध मुगल-सम्राट्, (१५३० १५५६ ई० सन्) मुगलराज्यके प्रतिष्ठाता वीरवर बाबरके बड़े लड़के। १५०८ ई०में अफगानिस्तानकी राजधानी काबुल शहरमें इनका जन्म हुआ। इनका असल नाम था नासिर उद्दीन महम्मद हुमायूं। कहते हैं, कि वीरवर बाबरने जिस दिन अपने पितृ-सिंहासन पर बैठ कर 'बादशाह'की पदवी पाई उसी शुभ दिन उनके प्रथम पुत्र हुमायून्का जन्म हुआ। शायद इसीसे बाबरने अपने पुत्रका 'हुमायून्' अर्थात् मङ्गलसूचक नाम रखा। हुमायून् अपने पिताके बहुत प्यारे थे।

१५३० ई०में ये पितृसिंहासन पर बैठे। सिंहासन पर बैठनेके बाद कुछ दिन इन्हें आत्मीय स्वजनोंके विद्रोहसे भारी कष्ट उठाना पड़ा था। इनके और भी तीन भाई थे, कामरान, हिन्दाल और सबसे छोटा असकरी।

करी। शाहजादा कामरान् वडा उच्चाभिलाषी था। उसने अफगानिस्तानमें अपना प्रभुत्व स्थापन किया। वावरने मृत्युकालमें हुमायूंको बुला कर कहा, 'वेटा! यदि मेरे मरने पर ईश्वर तुम्हींको मेरा उत्तराधिकारी वनावें, तो मृत्युशय्या पर मेरा तुमसे अनुरोध है, कि तुम अपने भाइयोंके प्रति दया रखना।' दयालु हुमायूनने उस पितृ वाक्यका अक्षरशः पालन किया। भाईके बुरे व्यवहार पर वे ज़रा भी नहीं उकताये, वरन् यह कह कर उन्होंने झगड़ा निवटा लिया, कि वे उसीको अफगानिस्तानका शासनकर्त्ता वनायेंगे। परन्तु इसमें उन्हें वड़ी हानि उठानी पड़ी थी। कामरानके साथ जो वहुत दिनोंसे अनवन चली आ रही थी, उसे मिटा कर उन्होंने हिन्दालको समूले प्रदेशका और असकरीको मेरठका शासनकर्त्ता वनाया। इतना करने पर भी हुमायून् घर झगड़ेकी आग बुझा न सके। भीतर ही भीतर इन्हें तख्त परसे उतारने अथवा इनकी जान लेनेका षड़यन्त्र चल रहा था। भाग्यवशतः यह वात हुमायून्को मालूम हो गई और उस धूर्तने भाग कर गुजरातके सुलतान वहादुर शाहका आश्रय लिया।

इस घटनाके कुछ दिन वाद दिल्लीके अफगानवंशीय अंतिम राजा इब्राहिमलोदीके चचा अलाउद्दीनने भी वहादुर शाहकी शरण ली।

हुमायून् वहादुरके इस व्यवहार पर वड़े विगड़े और उसका दमन करनेके लिये इन्होंने गुजरातकी यात्रा कर दी। इस यात्रामें जव वादशाही सेना चित्तौरदुर्गके पास पहुंची, उस समय वहादुर शाहसे हुमायून्को एक पत्र मिला। उस पत्रमें वहादुर शाहने हुमायून्को इस प्रकार लिखा था, 'थोड़े ही दिनोंसे मैंने चित्तौर दुर्गमें घेरा डाला है, और आशा है, कि मैं शीघ्र ही काफिरोंको परास्त कर मुसलमानोंका धर्मगौरव वढ़ा देंगे। अतः आप इस समय मेरे काममें वाधा डाल कर मुझे अपमानित न करें।' हुमायून् मुसलमान धर्मके कट्टर पक्षपाती थे और साथ साथ वीरपुरुष भी थे। उन्होंने उसी समय वहादुरकी वात मान ली। इसके वाद चित्तौर जीत कर जव वहादुर शाह अपने राज्यमें लौटा तव हुमायूंने फिरसे उसके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। गुजरात पहुंच कर हुमायून् प्रायः छः मास तक वहादुरके शिविरमें घेरा डाले थे। रसद घट जानेके कारण वहादुर शाह आत्मरक्षा न कर सका। एक दिन दो पहर रातको वह खेमेसे भाग निकला। उसके भागनेकी खवर पाते ही सारी सेना तितर वितर हो गई। हुमायूनने भी वहादुर शाहका पीछा किया। रथी खाँ नामक वहादुरके मंत्रीने आ कर वादशाहकी अधीनता स्वीकार कर ली। हुमायूनने उसके मुंहसे सुना, कि वहादुर शाहने मालवा प्रदेशके मन्दू नामक दुर्गमें आश्रय लिया है। यह सुनते ही वादशाहने वहांकी यात्रा कर दी और दुर्गको चारों ओरसे घेर लिया। वहादुर शाह वहाँसे भाग कर चम्पारण नामक दुर्गमें चला गया। गुजरात राज्यके मध्य वही प्रधान दुर्ग था। हुमायूनने उस दुर्भेद्य दुर्गको आसानीसे दखल कर लिया। इस विजयसे हुमायूंकी वड़ी प्रसिद्धि हो गई। उन्होंने गुजरात जीत कर भाई असकरीके हाथ गुजरातका शासनभार सौंपा और आप राजधानीको लौट आये। परन्तु उनके गुजरात छोड़नेके वाद ही मुगल कर्मचारी आपसके कलहसे इतने कमजोर हो रहे थे, कि वहादुर शाहने इसी समय लौट कर अपना राज्य सहजमें दखल कर लिया। इधर अफगान सरदार शेर खाने विहार प्रदेशका चारकुण्ड और रोहतास दुर्ग जीत कर वङ्गालकी प्रधान राजधानी गौड़ नगरमें घेरा डाला। यह संवाद पाते ही हुमायूनने १५३८ ई०में शेरखाके विरुद्धयात्रा कर दी। चुनार दुर्ग जीते जाने पर उस रथी खाने ३०० गोलन्दाज सेना चुन कर उन दुर्गवासियोंके हाथ काट डालनेका हुकुम दिया। परन्तु वादशाहने क्रोध प्रकट करते हुए कहा, कि ऐसा नीच व्यवहार निन्दाजनक है। इसलिये मैं ऐसा काम नहीं होने दूंगा। सम्राट् हुमायूंकी ऐसी सहृदयता हम कई जगह देख पाते हैं, इसलिये वे ऐतिहासिकोंके निकट दयालु हुमायून् नामसे परिचित हैं।

विख्यात चुनार दुर्ग दखल कर हुमायून वङ्गदेशकी ओर अग्रसर हुए। कुछ दिन वाद इन्हें खवर मिली कि इनका भाई शाहजादा हिन्दाल मंत्रियोंके उसकानेसे वागी हो गया है और विश्वस्त राजकर्मचारियोंको मार

कर अपने नाम पर खुतवा प्रचार किया है। इधर उनका मंझला भाई कामरान् भी वड़ी भारी सेना ले कर आगे वढ़ रहा था। अव हुमायून् भाइयोंके हठात् वागी हो जाने पर वड़े चिन्तित हुए और राजधानी लौट आनेका विचार करने लगे। शेर खाँने भी अच्छा मौका देख कर वादशाही सेना रोकने आया। वक्सर नामक स्थानमें मुठभेड़ हो गई। तीन मास वादशाही सेनाको वहां अपेक्षा करनी पड़ी थी। आखिर शेर खाँने वड़ी चालाकीसे संधिका प्रस्ताव उठाया। कुरान छू कर उसने शपथ खाई, 'मैं वादशाहके खुतवा और सिक्का प्रचारमें दस्तन्दाजी करना नहीं चाहता हूं, चाहता हूं केवल वङ्गाल और विहारका शासनकर्त्तृत्व।' वादशाह इस पर सहमत हो गये। परन्तु पीछे चतुर शेर मुगल सेनाओंको जहां असावधान पाता वहीं उन पर हमला कर तहस नहस कर डालता था। मुगल-सेनाको युद्धके लिये समय भी नहीं मिलने पाता था। गंगानदी पार करनेके लिये हुमायूंने पहले जो सव नावें संग्रह कर रखी थीं, शेरशाहकी सेनाने उनमेंसे अधिकांशको हस्तगत कर लिया। उस समय वादशाह कैसी दुरवस्थामें पड़ गये थे, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रायः वीस हजार सेनाकी नदीमें डूवनेसे जान चली गई थी। स्वयं वादशाह भी डूवने पर थे, पर भाग्यवशतः किसी भिस्तीवालेने आ कर उन्हें वचा लिया। किनारे लगने पर वादशाहने जव भिस्तीवालेसे उसका नाम पूछा, तव उसने निजाम वताया। वादशाहने प्रसन्न हो कर कहा, 'मैं उस साधु निजामउद्दीन अलीके नामकी तरह तुम्हारा नाम भी मशहूर करूंगा और तुम निश्चय ही मेरे सिंहासन पर वैठ सकते हो।' कहते हैं, कि वादशाहके राजधानी चले जाने पर वह भिस्तीवाला पुरस्कार पानेकी आशासे दिल्ली पहुंचा। तव वादशाहने दो घटेके लिये उसे सिंहासन पर वैठा कर अपना वचन पूरा किया। भिस्तीवालेने उस थोड़े समयमें ही सर्वेसर्वा हो कर अपने परिवारके भरणपोषणका अच्छा प्रवंध कर लिया था।

इस युद्धमें हुमायूनकी वुरी तरह हार हुई तथा अपमान भी पूरा हुआ था। इस अपमानसे उस समय भारतवासी समस्त मुगल जातियोंमें एक विशेष जातीय सहानुभूति देखी गई थी। शाहजादा कामरानने जव मुगल सेनाकी पराजयका हाल सुना, तव वह फौरन अलवरसे आगराको चल दिया। उसने समझा था, कि अफगान लोग क्रमशः दलवद्ध हो कर मुगलराज्यको तहस नहस करना चाहते हैं। इसलिये अव आत्मविरोधका समय नहीं है। हुमायूनके साथ उसने जो पहले दुर्व्यवहार किया था, उस पर वह लजाया और पछताने लगा। अफगानशक्तिके उच्छेदके लिये उसने कमर कस ली। केवल वही नहीं, मुगल सम्राट्की सम्मानरक्षाके लिये सभी मुगल तैयार हो गये।

इस प्रकार कुछ समय तक हुमायूनके सभी भाइयोंमें मेल वना रहा। शेर अफगानको सजा देनेके लिये अव सभी तैयार हो गये। शाहजादा कामरान्ने कहा, 'वादशाह राजधानीमें ही रहें और मुझे हुकुम दें, मैं ही सेना ले कर युद्धयात्रा करूं; शेर अफगानकी उपयुक्त सजाका हाल वादशाह मुझसे ही सुनेंगे।' इस पर वादशाह वोले, 'शेरने मुझको ही परास्त किया है। इसलिये मैं ही उसका प्रतिशोध लूंगा, तुम यहीं पर रहो।"

वक्सर युद्धके एक वर्ष वाद वादशाहने शेर खांके विरुद्ध फिरसे युद्धयात्रा कर दी। वादशाही सेनाको कन्नौज पहुंचने पर मालूम हुआ, कि शेर खां गङ्गाके दूसरे किनारे छावनी डाले हुए हैं। वादशाहने गङ्गा पार होनेके लिये अपनी सेनाओंको आज्ञा दे दी। तदनुसार वादशाही सेना गंगा नदी पार कर गई। वहां उन लोगोंने सामनेमें ही शेरखाँकी सेनाका खेमा पड़ा हुआ देखा। दो पक्षमेंसे किसीको भी पहले धावा वोल देनेका साहस नहीं हुआ। इस प्रकार एक मास वीत गया। एक दिन वादशाहने सुना, कि सुलतान मिर्जा महम्मद नामक उनका एक सेनापति शत्रुके साथ मिल गया है और कुछ सेनानायक भी उसका पदानुसरण कर रहे हैं। ऐसे संकट समयमें वादशाहने ऐसा कभी भी नहीं सोचा था, कि उनकी कुछ मुगल सेना ऐसी कृतघ्न विश्वासघातक हो जायेगी। वर्षाऋतुका आगमन हुआ। वादशाहने धावा वोल देनेकी आज्ञा दे दी, परन्तु मुगलोंके प्रति भाग्यलक्ष्मी अप्रसन्न थी। इस वार भी उनकी हार

हुई। मुगलसेना हार खा कर नदीमें कूद पड़ी। वादशाहका घोडा घायल हो कर मतवाला सा हो गया। पीछे कोई मुगल सैनिक लगाम पकड कर उसे गंगातट तक ले गया। वादशाह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये, क्या करना चाहिये, कुछ भी स्थिर नहीं कर सके। इसी समय एक हाथीको देख कर उन्होंने माहुतसे गंगा पार कर देने कहा, पर वह यह कह कर राजी नहीं हुआ, कि अभी हाथीकी जैसी अवस्था हो रही है, कि सवोंको प्राणसे हाथ धोना पडेगा। वादशाहके पास उस समय एक खोजा रहता था। उसने वादशाहके कानमें फुस फुसा कर कहा, 'इस माहुतका अभिप्राव खराव मालूम होता है, शत्रु के हाथ हम लोगोंको पकडवा देनेकी ही उसकी एकमात्र इच्छा है, इसलिये उसका शिर अभी काट लेना चाहिये।' वादशाहने कहा, कि ऐसा होनेसे हम लोगोंको नदी पार कौन करेगा? खोजा वोला, 'इसकी चिन्ता आप न करें, मैं हाथी चलाना अच्छी तरह जानता हूं।' अनन्तर वादशाहने इसी समय तलवारसे उस पर वार किया। माहुत घायल हो कर गंगामें धडामसे गिर पडा। पीछे खोजा हाथी पर चढ किसी तरह उसको किनारे लाया।

इधर शेरशाहका वल दिन-पर दिन वढता जा रहा था। उसने मौका देख कर वडे साहससे दिल्लीकी यात्रा कर दी। हुमायून् वचावका कोई उपाय न देख आगरा छोड देनेके लिये वाध्य हुए। आगरा छोड कर वे अपने भाई कामरानके पास लाहोर गये। परन्तु शाहजादा कामरान उस समय अपने स्वार्थके प्रति लक्ष्य करके वडा चिन्तित हो रहा था। उसे शेरशाहके विरुद्ध खडे होनेका साहस नहीं हुआ। केवल यही नहीं उसने शेरशाहसे मेल कर लिया और अपना पंजाव राज्य जिससे अक्षुण्ण रहे उसका उपाय कर वह स्वयं कावुल चल दिया। हुमायून् वचावका कोई रास्ता न देख सिन्धुप्रदेशको चल दिये। शेरशाहने इसी समय दिल्ली अधिकार कर पठान साम्राज्यको पुनः स्थापन किया।

प्रायः डेढ वर्ष हुमायूं इधर उधर भटकते रहे। आखिर वे मारवाड चले गये। राजा मालदेवने उन्हें आश्रय दिया सही, पर वे भीतर ही भीतर उन्हें पकडवा देनेकी साजिश कर रहे थे। हुमायूंको यह वात मालूम हो गई और वे दो पहर रातको चुपके अमरकोटकी ओर भाग चले। अमरकोट जाते समय राहमें उन्हें भारी कठिनाइयां झेलनी पडी थी। अनुचरोंके साथ मरुभूमि पार करते समय ये सवके सव प्यासके मारे छटपटा रहे थे। कोई तो पागल हो गया और कोई उसी समय कराल कालका शिकार वना। उसी दुःसह अवस्थामें फिर हुमायूनको मालूम हुआ, कि शत्रु-सेना उनका पीछा कर रही है और शीघ्र ही उन्हें शत्रु-के हाथ गिरना पडेगा। अभागे हुमायूनका होश हवास जाता रहा, परन्तु सौभाग्यवशतः शत्रु सेनाके उस स्थानसे वहुत दूर हट जाने पर इस वार उन्होंने रक्षा पाई। अव वे भागते भागते एक जलपूर्ण कूपके पास पहुंचे। उस समय उनकी अवस्था वर्णनातीत थी। वे उसी कूपके पास वैठ भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान्‌को धन्यवाद देने लगे। अनन्तर जो सव अनुचर उनके साथ आये थे, उनके लिये चमडेके थैलेमें जल भर कर उसी समय भेजवा दिये। इसके वादकी यात्रामें फिरसे जलका भारी कष्ट हुआ था। कुछ दिनों तक कहीं भी एक विन्दु जल नहीं मिला। चौथे दिन एक जगह फिरसे कुछ जलपूर्ण कूएं देखनेमें आये। परन्तु कूएं गहरे थे और जल निकालनेके उतने वरतन भी नहीं थे। इस कारण जल निकालनेमें कुछ विलम्ब होने लगा। ज्यों ही जल निकलता, त्यों ही सभी टूट पडते और झगडने लगते थे। इस खींचा तानीमें कितने वरतन डूव गये और कितने प्यासके मारे डूव मरे।

ऐसी शोचनीय अवस्था देख कर वादशाह एक दम अधीर हो उठे। उसी समय अमरकोटके राजाने अपने पुत्रको दूत वना कर वडे आदरसे उन्हें ले आने कहा। हुमायून् उनके आश्रयमें एक वर्ष तक रहे। अमरकोटके राजाने उन्हें सेनासे भी मदद पहुंचाई थी। वे उस सेनाको ले कर सिन्धु प्रदेश जीतनेके लिये गये। जव हुमायून उस युद्धयात्रामें निकले, उस समय उनकी प्रियतमा महिषी हामिदा गर्भवती थी। युद्धयात्रा करनेके दो

दिन बाद जब हुमायूं पुष्करिणीके किनारे खेमा डाले पड़े थे, उस समय उन्हें पुत्रका जन्मसंवाद मिला। यही पुत्र जगद्विख्यात अकबर था। यह आनन्द संवाद सुन कर सभी अमीर उमरा इकट्ठे हुए। हुमायूंने एक खण्ड कस्तूरी तोड़ कर उसके दाने सबोंको बांट दिये और उन लोगोंसे कहा, "मेरे पुत्रके जन्मोपलक्षमें आप लोगोंको उपहार देने योग्य वस्तु मेरे पास सिर्फ एक कस्तूरी रह गई है। इस कस्तूरीकी सुगंधने जिस प्रकार चारों ओर आमोदित कर दिया है, आशा करता हूं, कि मेरे पुत्रके यशःसौरभसे भी एक दिन सारी पृथिवी इसी प्रकार पुलकित हो जायेगी।"

परन्तु इस युद्धयात्रामें हुमायूंन् कृतकार्य न हो सके। अवस्थाके पलटनेसे उनके नितान्त आत्मीयगण भी पराये हो गये और नाना प्रकारके अन्तर्विद्रोहसे तंग आ कर हुमायून् कंधारको भाग गये। उस समय कंधार उनके छोटे भाई अस्करीके अधीन था। वह मझले भाई कामरान्के प्रतिनिधिरूपमें राज्यशासन करता था। आज उसीके दरवाजे पर उसके बड़े भाई भूतपूर्व भारतसम्राट् आश्रयकी आशासे बड़े दीन भावसे खड़े हैं। परन्तु एक तो आश्चर्य मनुष्यका हृदय है और उससे भी बढ़ कर आश्चर्य है मनुष्यका भाग्य परिवर्त्तन। अस्करी उन्हें आश्रय देनेसे बिलकुल इनकार चला गया। हुमायून्ने जब देखा, कि अफगानिस्तान भी उनके पक्षमें नहीं है, तब वे पारस्यको भाग गये। परन्तु जाते समय उन्होंने अपने प्रियतम पुत्र अकबरको चचाके आश्रयमें रख छोड़ा।

इस प्रकार हुमायून् जब राहकी धूल छान रहे थे, उस समय भारत-साम्राज्यमें बहुत हेरफेर हुआ। शेरशाह दिल्ली जीत कर भारतसम्राट् हुआ था, यह बात पहले ही लिख चुके हैं। परन्तु उसकी मृत्युके बाद शीघ्र ही उस विस्तृत साम्राज्यका पतन हुआ। शेरशाहके पुत्र सलीम शाहकी मृत्युके बाद अफगान सामन्तोंमें विरोध खड़ा हो गया। यह सुयोग पा कर हुमायून्ने फिर भारतवर्षमें प्रवेश किया। उन्होंने पहले ही पारस्यराजकी सहायतासे सैन्य संग्रह कर काबुल और कंधार अपने अधिकारमें कर लिया था। अभी सरहिन्दकी लड़ाईमें उन्होंने सिकन्दर सूरको परास्त कर १५५५ ई०में दिल्ली और आगरा फिरसे दखल किया। इन सब युद्धों में इन्होंने वीर बैराम खांसे खासी मदद पाई थी। यह कहना पड़ेगा, कि उसीकी सहायतासे हुमायून् फिरसे भारत साम्राज्य पानेमें समर्थ हुए थे। परन्तु सिकन्दर तब भी अपने विच्छिन्न सैन्यदलको फिरसे संग्रह कर युद्धकी तैयारी कर रहा था। हुमायूंने यह संवाद पा कर बैराम खांके अधीन शाहजादा अकबरको उसके दमनमें भेजा।

इसके कुछ दिन बाद ही एक दिन तिसरे पहरको बादशाह हुमायून् पाठागारकी छत पर हवा खाने गये। वहांसे सीढ़ी हो कर उतरते समय उन्हें आजानकी आवाज सुनाई दी। मुसलमान धर्मके नियमानुसार उसी समय वे सीढ़ी पर खड़े हो कर कलमा पढ़ने लगे। पीछे आजानकी आवाज बंद होने पर ज्यों ही वे खड़े होनेको हुए त्यों ही हाथमें की लाठी पिछल गई और वे लुढ़क कर नीचे गिर पड़े। उन्हें इतनी गहरी चोट लगी, कि उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। (१५५६ ई०) अकबर शब्दमें विशेष विवरण देखो।

हुमेल (अ० स्त्री०) अशर्फियों या रुपयोंको गूंथ कर बनी हुई एक प्रकारकी माला। इसे स्त्रियां पहनती हैं।

हुम्मा—सामभेद। (पञ्चविं० ब्रा०)

हुम्मा (हिं० पु०) लहरोंका उठना, बान।

हुरङ्ग—आसामके कछाड़ जिलेकी पूर्वी शैलमाला। यह शिलचरसे मणिपुर तक बराक नदीके उत्तरमें फैली हुई है।

हुरदंग (हिं० पु०) हुड़दंग देखो।

हुरमत (अ० स्त्री०) मर्यादा, इज्जत।

हुरहुर (हिं० पु०) हुलहुल देखो।

हुरहुरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

हुरुक (सं० पु०) निषाद और कवरी स्त्रीसे उत्पन्न एक संकर जाति।

हुरुट्टक (सं० पु०) हाथीका अंकुश।

हुरुमयी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका नृत्य।

हुर्रा (अं० पु०) एक प्रकारकी हर्षध्वनि।

हुल (सं० पु०) एक प्रकारका दो धारा छुरा।

हुलकना (हिं० क्रि०) उलटी करना, कै करना ।

हुलकी (हिं० स्त्री०) १ उलटी, वमन। २ हैजेकी वीमारी।

हुलना (हिं० क्रि०) लाठी आदिको ठेलना, रेलना।

हुलसना (हिं० क्रि०) १ आनन्दसे फूलना, खुशीसे भरना। २ उभरना, उठना। ३ उमडना, बढ़ना।

हुलसाना (हिं० क्रि०) उल्लासित करना, हर्षको उमंग उत्पन्न करना।

हुलसी (हिं० स्त्री०) १ आनन्द, उल्लास। २ किसी किसीके मतसे तुलसीदासजीकी माताका नाम।

हुलहुल (हिं० पु०) एक छोटा वरसाती पौधा। इसके कई भेद हैं। साधारण जातिके पौधेमें श्वेत पुष्प और मूंगकी तरह लंबी कलिया लगती हैं। कोई कोई ऐसा भी हुलहुल है जिसमें पीले, लाल और बैंगनी फूल लगते हैं। पत्ते गोल और फाकदार होते हैं जो दर्द दूर करने की औषध माने जाते हैं। कानके दर्दमें प्रायः इन पत्तोंका रस डाला जाता है। लोग पत्तोंका साग भी खाते हैं।

हुलहुला (हिं० पु०) १ अद्भुत वात। २ उपद्रव। ३ शोक। ४ मिथ्या अभियोग।

हुलहुली (सं० स्त्री०) स्त्रियोंके मङ्गलजनक मुखशब्द।

हुला (हिं० पु०) लाठीका छोर या नोक।

हुलाना (हिं० क्रि०) लाठी, भाले आदिको जोरसे ठेलना, पेलना।

हुलाल (हिं० स्त्री०) तरङ्ग, लहर।

हुलास (हिं० पु०) उल्लास, आनन्दकी उमंग। २ उत्साह, हौसला। ३ बढ़ना, उमगना। (स्त्री०) ४ सुंघनी।

हुलासदानी (हिं० स्त्री०) सुंघनीदानी, नसदानी।

हुलासी (हिं० वि०) १ आनन्दी। २ उत्साही, हौसलेवाला।

हुलिङ्ग (सं० पु०) मध्यदेशके अन्तर्गत एक प्रदेशका नाम।

हुलिया (अ० पु०) १ आकृति, शकल। २ किसी मनुष्यके रूपरंग आदिका विवरण, शकल सूरत और वदन परके निशान वगैरहका ब्योरा।

हुलु (सं० पु०) मेष, मेढा।

हुलूक (हिं० पु०) एक जातिका वंदर। यह वीस इक्कीस इञ्च लम्बा और रंग प्रायः सफेद होता है। यह आसामके जंगलोंमें झुंडमें रहता है और जल्दी पालतू हो जाता है।

हुलैया (हिं० स्त्री०) डूबनेके पहले नावका डगमगाना।

हुल्ल (सं० पु०) एक प्रकारका नृत्य।

हुल्लड (हिं० पु०) १ शोरगुल, हल्ला। २ उपद्रव, ऊधम। ३ आन्दोलन, हलचल। ४ दंगा, वलवा।

हुल्लास (हिं० पु०) चौपाई और त्रिभंगीके मेलसे वना हुआ एक छंद।

हुश् (हिं० अव्य०) एक निषेधवाचक शब्द।

हुशियारपुर—पंजावके छोटे लाटके शासनाधीन एक जिला और उसका प्रधान शहर। होशियारपुर देखो।

हुशकारना (हिं० क्रि०) हुश हुश शब्द करके कुत्तेको किसीकी ओर काटने आदिके लिये बढाना।

हुष्क (सं० स्त्री०) सम्राट् कनिष्कके पुत्र, हुविष्कका अपभ्रंश। इनके नाम पर काश्मीरमें हुष्कपुर वसाया गया जो अभी उष्कार कहलाता है।

हुसेन—रियाज-उस-सलिकीमके प्रणेता एक मुसलमान कवि। इनका असल नाम मुजफ्फर हुसेन था। पर लोग इन्हें हुसेन या साहिद ही कहा करते थे।

हुसेनअली खाँ- एक मुसलमान उमरा। ये मुगलसम्राट् आलमगीर वादशाहके अधीन सेनानायक थे। इनके पिताका नाम अलाहवर्दी खा था। दाक्षिणात्यमें विजापुर दुर्ग जीतनेके ठीक दूसरे ही दिन अर्थात् १६८६ ई०की ३री अक्टूवरको इनकी मृत्यु हुई।

हुसेन अली खाँ—एक अमीर-उल्-उमरा। ये तथा इनके भाई अवदुल्ला खाँ पैगम्बर महम्मदके वंशधर थे, इस कारण मुसलमान समाजमें इनका वडा आदर था।

मुगल सम्राट् वहादुरशाहके अधीन अवदुल्ला खाँ इलाहावादके और हुसेन अली विहारके शासनकर्त्ता थे। दोनों भाइयोंके उद्योग, कौशल और वलसे १७१३ ई०के जनवरी मासमें सम्राट् फर्रुखसियर दिल्लीके सिंहासन पर वैठे। मसनद पर वैठते ही उन्होंने अवदुल्लाको प्रधान मन्त्री और हुसेन अलीको अमीर उल उमराका पद प्रदान किया। परन्तु सम्राट् कुछ समय वाद ही दोनों भाइयोंका कुचक्र जान कर स्वाधीन होनेकी चेष्टा करने लगे। यह ले कर सम्राट्के साथ कुतुव-उल-मुल्क-

का मनमुटाव हो गया। उसीके फलसे फर्रुखशियर मारे गये।

सम्राट् महम्मदशाह दिल्लीके सिंहासन पर बैठते ही दोनों सैयद भाईके पंजेसे छुटकारा पाने और उनका काम तमाम करनेकी साजिश करने लगे। नये सम्राट्के हुकुमसे १७२० ई०की १८वीं सितम्बरको मीर हैदर खाने छिपके हुसेन अली खाको मार डाला। हुसेन अलीकी लाश अजमीरमें लाई और वहीं दफनाई गई।

हुसेन इमाम—पैगम्बर महम्मदके जमाई अलीके दूसरे लडके। ६२३ ई०के जनवरी मासमें मेदिना नगरमें इनका जन्म हुआ। अलीके वंशमें ये ३य इमाम कह कर मुसलमान-समाजमें परिचित थे। मुयावियाके लडके याजिद असल खलीफा न माने जानेके कारण इन्हें बाध्य हो कर मेदिना नगर छोड मक्का राजधानी भाग आना पडा। इस प्रकार छिपके भाग आने पर भी वे राजरोषसे न बच सके। याजिदके भेजे हुए सेनापति उबैदुल्ला इब्न जयादके हुकुमसे वे राहमें ही पकडे और मारे गये। (६८० ई०)

जब कयुफा नगरमें उबैदुल्लाके शिविरमें इमाम हुसेनका मुंड लाया गया था, तब उन्होंने उस मुंडको देख बडी घृणाके साथ उस पर लाठी जमाई थी। इसके बाद उनके हुकुमसे हुसेनके मुंडके साथ हुसेन परिवारको कैद कर दामास्कस नगरकी याजिद राजसभामें भेजा गया था।

जिस दिन इमाम हुसेनकी मृत्यु हुई वह दिन मुसलमानोंका एक पर्व दिन और जहा हुसेनकी शवदेह दफनाई गई, वह स्थान इस्लाम जगत्का एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसी दिन मुसलमानमात्र ही मुहर्रम पर्वोपलक्षमें सुशोभित ताजिये ले कर करबलामें दफनाने जाते हैं।

कयुफाके निकटवर्त्ती करबला नामक स्थानमें हुसेनकी लाश दफनाई गई थी। किसी किसीका कहना है, कि हुसेनका मुंड करबला नदीके किनारे ले जा कर याजिद-सेनादलने दफनाया था, परन्तु इसका आज तक कोई प्रमाण नहीं मिला है। पर हा, बयाइदवंशके प्रतिष्ठाता और प्रथम सुलतान हुसेन जहां मारे गये थे, वहा बहुत रुपये खर्च कर एक बडा मीनार बनाया गया। मुसलमान लोग उसे 'गुणवाज फइज' कहते हैं। आज भी मुसलमान लोग वहा जा कर शोक प्रकट करते और बडी भक्तिसे शिरनी आदि चढ़ाते हैं।

हुसेन-इबन-मुइन-उद्दीन मैबदी—एक इस्लाम धर्मग्रन्थके रचयिता। ये "फजालाह" उपाधिसे भूषित थे।

हुसेन उद्दीन हुसेन बिन अली—एक मुसलमान पण्डित। सुप्रसिद्ध बुर्हानउद्दीन अली इनके शिक्षा-गुरु थे। इन्होंने सबसे पहले निहाय नामक अरबी 'हिदाय-शाए'की टीका रच कर मुसलमान समाजमें ख्याति लाभ की।

हुसेन काशी—एक मुसलमान कवि। १५४४ ई०में ये विद्यमान थे।

हुसेन काश्मीरी—काश्मीरवासी एक मुसलमान ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने सुफीमतपोषक कुछ धर्मविषय ले कर 'हिदायत उल अमी' नामक ग्रन्थकी रचना की। ग्रन्थ पारसी भाषामें लिखा हुआ है।

हुसेन कुली खा—ढाकाके नवाब नोआजिस महम्मदके दीवान। ये बङ्गालके नवाब सिराज उद्दौलाके कोपमें पड कर मारे गये थे। सिराज उद्दौला देखो।

हुसेन खोनसारी—पारस्यवासी एक मुसलमान दार्शनिक। ये १७वीं सदीके शेष भागमें विद्यमान थे। तिहारणके निकटवर्त्ती खोनसार नगर इनका जन्मस्थान था।

हुसेन गजनवी—'किस्से पदुमावत्' नामक काव्यके प्रणेता। इन्होंने पदुमावतीका उपाख्यान पारसी भाषामें अनुवाद कर अच्छा नाम कमाया है।

हुसेन जलायर (सुलतान) बोगदाद नगरीके एक मुसलमान राजा। ये १३८२ ई०में अपने भाई सुलतान अहादके साथ युद्धमें मारे गये।

हुसेन दोस्त सम्भली (मीर)—एक मुसलमान कवि, सम्भलवासी आबुतालिबके पुत्र। इन्होंने 'तजकीरा हुसेनी' नामक कविजीवनी संग्रह कर प्रकाशित की। मुगल सम्राट् महम्मदके शासनकालमें (१७४८ ई०) ये मौजूद थे।

हुसेन नक्काशी (मुल्ला)—एक मुसलमान पण्डित। मुगल-सम्राट् अकबर बादशाहके अमलमें ये दिल्ली राजधानीमें रहते थे। इनकी रचित कविताएं सुन्दर और सरल

हैं । इसके सिवा चित्रविद्या और खुदाई-काममें ये बड़े निपुण थे। १५८१ ई०में इनकी मृत्यु हुई ।

हुसेन निजाम शाह १म—दाक्षिणात्यके निजामशाही वंशके एक मुसलमान राजा । निजामशाही वंश देखो ।

हुसेन निजामशाह—निजाम शाहीवंशके एक राजा ।

हुसेनपुर बहादुरपुर—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरपुर जिलेकी जनसाथ तहसीलके दो छोटे ग्राम । यहांके अधिवासी प्रधानतः चौहानवंशीय राजपूत हैं और उनकी अधीनस्थ प्रजा चमार जातिकी हैं ।

विख्यात सिपाहीविद्रोहके समय गूजरजातिके सेना दलने हुसेनपुर लूट कर ग्रामवासीका सर्वस्व हरण कर लिया । ग्रामवासी अब भी अपनी अवस्थाको सुधार नहीं सके हैं ।

हुसेन मार्वा (ख्वाजा)—पारस्यके मार्व प्रदेशवासी एक सुकवि । ये सम्राट् अकबरके समसामयिक थे । उक्त सम्राट्के द्वितीय पुत्र सुलतान शाह मुरादके जन्मोपलक्षमें इन्होंने १५१० ई०को खण्डकाव्यकी रचना की थी । उनके लिखे एक दीवान और पारसी भाषामें रचित 'सिंहासन बत्तीसी' नामक कहानी ग्रंथ मिलते हैं ।

हुसेन मिर्जा (सुलतान)—अमीर तैमुरके वंशधर और मिर्जा मनसुरके पुत्र । परन्तु लोग इन्हें अबुल गाजी बहादुर ही कहा करते थे । सुलतान आबू सैयद मिर्जाके मरने पर खुरासन राज्य अपनानेकी इच्छासे ये अपने आत्मीयवर्गके साथ षड्‌यन्त्र रचने लगे । १४६९ ई०में हिरात नगरमें राजसिंहासन पर बैठ कर इन्होंने सिंहासनके प्रतियोगियोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया । इन सब युद्धोंमें बार बार विजय होने तथा उज्बेक जातिको कब्जेमें लानेके कारण इन्हें गाजीकी उपाधि मिली थी । इनकी सभा सुविज्ञ पंडितोंसे परिपूर्ण रहती थी । खोरासनमें ३८ चान्द्र वर्ष ४ मास राज्य करनेके बाद १५०६ ई०में इनकी मृत्यु हुई ।

तुर्कभाषामें इनके लिखे दीवान और मलाजी-उल-इसाफ नामक एक प्रेमरसात्मक उपन्यास मिलते है । उस कवितामें इनका हुसेनी नाम आया है ।

हुसेन मैबाजी—साजनजल उल-आर्वा नामक काव्यसंग्रहके रचयिता । उक्त ग्रन्थमें इन्होंने पारसी और तुर्की कवियोंकी रचना उद्धृत की है ।

हुसेन लङ्गा (१म)—मूलतानके ३य राजा । १४७९ ई०में पिता कुतबुद्दीन महमूद लङ्गाके मरने पर ये सिंहासन पर बैठे । इन्होंने दिल्लीश्वर सिकन्दर लोदीके साथ मेल कर अपने राज्यकी नींवं मजबूत कर ली थी । १४९८ ई० (दूसरेके मतसे १५०२ ई०)में इनका देहान्त हुआ । पीछे इनके पोते महमूद खाँ लङ्गा सिंहासन पर बैठे ।

हुसेन लङ्गा (२य)—मूलतानके ५म और अंतिम राजा महमूद खाँ लङ्गाके पुत्र । १५२४ ई०में पिताकी मृत्युके बाद ये पितृसिंहासन पर बैठे ।

हुसेन वायज (मौलाना)—एक मुसलमान ग्रन्थकार । ये खोरासानपति सुलतान हुसेन मिर्जाके अधीन हिरातमें कर्मचारी नियुक्त थे । १५०५ ई०में इस राजपद पर नियुक्त रह कर ही इनकी मृत्यु हुई ।

ग्रन्थकार-रचित 'मवाहिब उलियात्' कुरान शास्त्रकी टीका है । यह ग्रंथ उन्हीके नामानुसार तफसीर हुसेनी नामसे मशहूर है । इसके सिवा इनके रचित और भी कितने ग्रन्थ मिलते हैं । जिनमेंसे रौजत उस सुहादा ग्रंथमें इसलामधर्मप्रवर्त्तक पैगम्बर महम्मदकी जीवन और चरित्र सम्बन्धी सभी घटनाओं तथा करबला-युद्धके आनुपूर्विक विवरणका उल्लेख है । १५०१ ई०में इनकी रचना सम्पूर्ण हुई । पीछे ग्रन्थकारने उसे राज्येश्वर सुलतान हुसेन मिर्जाके हाथ समर्पण किया ।

हुसेन बेग—बङ्गेश्वर साइस्ता खाँके अधीनस्थ एक नौसेनापति । इन्होंने १६६४ ई०में आराकानराजके विरुद्ध युद्धयात्रा कर मेघनाके मुहानास्थित बन्दरों और शणद्वीप पर अधिकार जमाया । इसके बाद ये चट्टग्रामके पुर्त्तगीजोंको भय दिखा कर अपने कब्जेमें लाये ।

चट्टग्राम देखो ।

हुसेन बिन् अलीम—नजहत्-उल् अर्वाह नामक ग्रन्थके रचयिता । ग्रंथकारने इस ग्रन्थमें सुफीमतावलम्बी सुप्रसिद्ध महात्माओंकी जीवनीसंक्रान्त अत्याश्चर्य घटनावलीको लिपिबद्ध किया है ।

हुसेन-बिन महम्मद—खजानत अल-मुफतिइन् नामक ग्रन्थके प्रणेता । १३३६ ई०में उक्त ग्रन्थ समाप्त हुआ । उसमें

इसलामधर्ममतके अनेक विषयोंकी मीमांसा है। भारतीय मुसलमान-सम्प्रदायका यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

हुसेन विन्-हसन् अल् हुसेनी—घोरराज्यवासी एक मुसलमान कवि। अरवी और पारसी भाषामें इनके रचित अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। १३१७ ई०को हीरात नगरमें इनकी मृत्यु हुई। कहते हैं, कि कवि हुसेन अपने पिता नजमउद्दीनके साथ भारतवर्षमें व्यापार करने आये। मूलतानमें सुप्रसिद्ध मुसलमानपीर शेख वहाउद्दीन् जकरियासे पितापुत्रने दीक्षा ग्रहण की।

हुसेन सब्जगडी—एक मुसलमान कवि। लताएफ वजाएफ और राहत-उल-आर्वा नामक ग्रन्थ इन्हींके वनाये हुए हैं। उक्त दोनों ग्रन्थ सुफीमतपोषक हैं तथा मुक्तिके उपाय और नैतिक जीवन गठन आदि विषयके आधार पर रचे गये हैं। ग्रन्थकार सवजगढ़ नामक देशके अधिवासी थे।

हुसेन शाह—वङ्गालके सुविख्यात पठान-राजा। ये अलाउद्दीन हुसेन शाह नामसे परिचित थे। वङ्गदेश देखो।

हुसेन शाह-शर्की (सुलतान)—जौनपुरके एक मुसलमान राजा। ये १४५२ ई०में अपने भाई महम्मदशाहकी मृत्युके वाद सिंहासन पर वैठे। राजसिंहासन पर वैठ कर इन्होंने दिल्लीश्वर वहलोल लोदीके विरुद्ध कई वार युद्ध किये थे। अन्तमें ये हार खा कर रणक्षेत्रसे पैदल भाग खड़े हुए। वहोललोदीने जौनपुर जीत कर अपने पुत्र वार्वक शाहको वहांका शासनकर्त्ता वनाया। इस समय उन्होंने पूर्व राजा हुसेन शाहके परिवारवर्गके भरण पोषणके लिये ५ लाख रुपये आयकी एक जागीर दी।

करीव १४८९ ई०में सुलतान वहलोल लोदीकी मृत्यु हुई। पीछे सिकन्दर लोदी सिंहासन पर वैठे। हुसेन शाहने उनके दूसरे भाई वार्वक शाहको दिल्ली सिंहासन पर दखल जमानेके लिये उभाडा। तदनुसार वार्वक शाह दलवलके साथ दिल्लीकी यात्रा कर दी। युद्धमें हार खा कर वे जौनपुर भाग जानेको वाध्य हुए।

वार्वक शाह राजधानी लौट कर भी सुखकी नींद न ले सके। दिल्लीश्वरने ससैन्य उनका पीछा कर जौनपुर अधिकार किया। अव हुसेन शाह अपने प्रतिपालककी दुर्गति देख अपने भावी कनिष्ठका अनुभव करने लगे। उन्होंने कोई उपाय न देख वङ्गालके अधीश्वर अलाउद्दीन पुरवीकी शरण ली। पुरवीने वड़े सम्मानसे आश्रय दे कर अपने वड़प्पनका परिचय दिया था। यहां १४९९ ई०में इनकी मृत्यु हुई। हुसेनशाहके साथ जौनपुरके शर्की वंशका लोप हुआ।

हुसेन शाह (सैयद)—एक मुसलमान ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने १८०० ई०में अमीर खुसरोका रचित हस्त-वहिस्त नामक ग्रन्थ 'हस्तगुल गस्त' नामसे पद्यमें भाषान्तरित किया। उस ग्रन्थमें वहरामघोर नामक किसी व्यक्तिकी जीवनीका उल्लेख है।

हुसेनी ब्राह्मण—उत्तर-पश्चिम और विहारवासी वर्णब्राह्मण विशेष। प्रवाद है, कि हुसेन नामक किसी मुसलमान साधु फकीरके शिष्य वन कर अथवा उनके गौरवका प्रचार कर ये लोग उन्हींके अनुसार हुसेनी ब्राह्मण कहलाने लगे। पंजावप्रदेशमें ये लोग मुसलमान ब्राह्मण कहलाते हैं। दिल्लीविभागमें ही प्रधानतः इनका वास है। वहां ये लोग हिन्दूसे हिन्दू देवदेवीके नाम पर और मुसलमानसे अल्लाके नाम पर दिये हुए उपहार ग्रहण करते हैं।

आजमगढ़ जिलेमें ये लोग निकृष्ट वर्णब्राह्मण समझे जाते हैं। वहां इनका दूसरा नाम भंडेरिया भी है। वम्वई विभागमें इस श्रेणीके ब्राह्मण भड्डो जातिकी पुरोहिताई करते हैं। डाक्टर विलसनने दाक्षिणात्यके निजामशाही राजवंशकी राजधानी अहमदनगरमें भी इनका चिरन्तन वास देख कर अनुमान किया है, कि वहुत दिनोंसे मुसलमानोंके पड़ोसी होनेके कारण ये लोग आधे मुसलमान हो गये हैं। विलसन साहवका यह अनुमान विलकुल ठीक है।

हुसैन (अ० पु०) मुहम्मद साहवके दामाद अलीके लड़के। ये करवलाके मैदानमें मारे गये थे और शीया मुसलमानोंके पूज्य हैं। मुहर्रम इन्हींके शोकमें मनाया जाता है। मुहर्रम देखो।

हुसैनी (अ० पु०) १ अंगूरकी एक जाति। २ फारस सङ्गीतके वारह मुकामोंमेंसे एक।

हुसैनी कान्हड़ा (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध शब्द लगते हैं।

हुस्न (अ० पु०) १ सौन्दर्य, सुन्दरता, अनूठापन।

हुस्नदान (हिं० पु०) पानदान, खासदान।

हुस्नपरस्त (फा० पु०) सौन्दर्योपासक, रूपका लोभी।

हुस्नपरस्ती (फा० स्त्री०) सौन्दर्योपासना, रूपका लोभ।

हुहव (सं० क्ली०) नरकभेद।

हुहु (सं० पु०) एक गन्धर्वका नाम।

हू (सं० अव्य०) १ आह्वान। २ अवज्ञा। ३ अहङ्कार। ४ शोक। ५ तन्त्रोक्त मन्त्रविशेष। पूजादि स्थलमें इस वीजमन्त्र द्वारा अवगुण्ठन करना होता है। (तन्त्रसार)

हूं (हिं० अव्य०) १ किसी प्रश्नके उत्तरमें स्वीकार-सूचक शब्द। २ समर्थनसूचक शब्द। ३ एक शब्द जिसके द्वारा सुननेवाला यह सूचित करता है, कि मैं कही जाती हुई बात या प्रसङ्ग ध्यानसे सुन रहा हूं। (सर्व०) ४ वर्त्तमान-कालिक क्रिया 'है'का उत्तम पुरुष एकवचनका रूप।

हूंकना (हिं० क्रि०) १ गाय या बछड़ेकी यादमें या और कोई दुःख सूचित करनेके लिये धीरे धीरे बोलना, हुंडकना। २ वीरोंका ललकारना या दपटना, हुंकार शब्द करना। ३ सिसक कर रोना, कोई बात याद करके रोना।

हूंठ (सं० त्रि०) साढ़े तीन।

हूंठा (हिं० पु०) साढ़े तीनका पहाड़ा।

हूंडा (हिं० स्त्री०) खेतोंकी सिंचाईमें किसानोंकी एक दूसरेको सहायता देनेकी रीति।

हूंस (हिं० स्त्री०) १ ईर्ष्या, डाह। २ नजर, टोक। ३ दूसरेकी कोई वस्तु देख कर उसे पानेके लिये दुःखी रहना। ४ फटकार, कोसना।

हूंसना (हिं० क्रि०) १ नजर लगाना। २ ईर्ष्यासे जलाना। ३ ललचाना। ४ फटकारना, कोसना। ५ रह रह कर चिढ़ना।

हूक (हिं० स्त्री०) १ हृदयकी पीड़ा, साल। २ पीड़ा, दर्द। ३ आशङ्का, खटका।

हूकना (हिं० क्रि०) १ दर्द करना, दुखना। २ पीड़ासे चौंक उठना।

हूङ्कार (सं० पु०) हुम् इस प्रकार भयानक शब्द, भीषण गर्जन।

हूचक (हिं० पु०) युद्ध।

हूठा (हिं० पु०) १ भद्दी या गंवारू चेष्टा। २ किसीको चिढ़ानेके लिये अंगूठा दिखानेकी अशिष्ट मुद्रा, ठेंगा।

हूड (हिं० वि०) १ अनगढ़, उजड्ड। २ असावधान, वेखवर। ३ गावदी, अनाड़ी। ४ हठी, जिद्दी।

हूड़ा (हिं० पु०) पश्चिमी घाटके पहाड़ोंसे ले कर कन्या-कुमारी तक होनेवाला एक प्रकारका बांस।

हूण (सं० पु०) १ देशभेद। वृहत्संहितामें लिखा है, कि यह देश उत्तर २४, २५ और २६ नक्षत्रमें अवस्थित है।

"माण्डव्यहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः।"

(वृहत्सं० १४।२७)

२ एक प्राचीन जाति। बहुतोंका विश्वास है, कि ये लोग असभ्य हैं। ये ही लोग ४थी सदीमें एशियासे दो दलोंमें विभक्त हो गये। एक दलने दानियुवप्रवाहित यूरोपमें जा वहांके अधिवासियोंको डरा कर विस्तृत देशमें अपना आधिपत्य फैलाया और दूसरा दल (५वीं सदीमें) भारतके उत्तर-पश्चिमप्रदेशसे होता हुआ शस्य-श्यामल भारतके समतल क्षेत्रमें पहुंचा था। उन लोगोंके प्रवल पराक्रमसे भारत-सम्राट्का आसन भी डगमगाने लगा था। इस प्रसङ्गको लक्ष्य कर बहुतेरे पुराविद् कहते हैं, कि भारतीय इतिहासमें जहां जहां 'हूण' या 'हून' शब्दका उल्लेख देखा जायेगा वही ५वीं सदीका है या उसके पीछेका। परन्तु हम लोग इस जातिको उतनी आधुनिक नहीं मानते। रामायण, महाभारत और पुराणोंमें हूणजातिका प्रसङ्ग है। सभी जगह भारत-सीमान्तवासी दुर्द्धर्ष क्षत्रिय जाति कह कर इनका वर्णन आया है। आधुनिक जटाधरके कोषमें लिखा है—

"श्वपाकस्तु तुरुष्कस्तु हूणो यवन इत्यपि।
लोकवाह्यस्तु यो वाजिगवाश्याचारवर्जितः।
म्लेच्छकिरातशवरपुलिन्दाद्यास्तु तद्भिदा।"

इत्यादि वचनोंसे हूण तुरुष्क और यवनकी तरह म्लेच्छजाति गिनी जाने पर भी राजपूतानेके ३६ राजपूत

कुलोंमें हूण भी लिया गया है। यहां तक, कि ११वीं सदीमें बहुत-सी शिलालिपियोंमें हूण जातिको असल क्षत्रिय कहा है और कलचूरी या चेदिवंशके साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध देखा जाता है।* बाणभट्टके हर्षचरितसे जाना जाता है, कि ७वीं सदीके प्रारम्भमें सम्राट् हर्षवर्द्धनके बड़े भाई राज्यवर्द्धनने हूणोंको परास्त करनेके लिये उत्तरापथ या हिमालयप्रदेशकी यात्रा की थी। तिब्बतकी शतद्रु नदी प्रवाहित अववाहिकामें हूणदेश या नारीखोरसुम नामक देश अवस्थित है। यहां हूणिया नामक एक बलिष्ठ और परिश्रमी जाति रहती है। इधर नेपाल और सिक्किममें लिम्बु नामक जो एक जाति देखी जाती है उस जातिके लोगोंमेंसे अधिकांश 'हुं' कहलाते हैं। प्रसिद्ध हुनगरि-पण्डित चसोमाद्-कोरसने लिखा है, कि उत्तरभारतमें उक्त हिमालयप्रदेश ही हूण जातिका आदि वासस्थान है तथा यहींसे पूर्वकालमें यह जाति हूणगरि देशमें जा बस गई थी। उन लोगोंके रहनेके बाद वह जनपद 'हूणगरि' कहलाया।

आरियन, ष्ट्राबो और टलेमीके वर्णनसे जाना जाता है, कि १ली सदीमें हूण लोग अफगानिस्तान और पञ्जाबमें बस गये थे। अफगानिस्तानका एक बहुफलभूषित पार्वत्य-राज्य आज भी हूनजा कहलाता है। हिन्दूकुश पर्वतकी उपत्यकाओंमेंसे इस जनपदकी ऊंचाई समुद्रपृष्ठसे ८४०० फुट है।

उक्त प्रमाणसे हमें मालूम होता है, कि हिमालयका पार्वत्य प्रदेश ही इस जातिका आदिवासस्थान है।

हूणदेश देखो।

अब प्रश्न उठता है, कि पाश्चात्य ऐतिहासिक गिबन, स्मिथ आदिके मतानुवर्ती हो हम लोग इस जातिको असभ्य मान सकते हैं या नहीं? छठी सदीके आरम्भमें उत्कीर्ण सागर जिलेके हूणपति तोरमाणके एरण-स्तम्भ और लवणशैल-मध्यवर्त्ती कुराग्रामसे आविष्कृत उनकी शिलालिपि तथा ग्वालियरसे आविष्कृत तोरमाणके पुत्र मिहिरकुलकी शिलालिपि पढनेसे जाना जाता है, कि वे लोग सौर और ब्राह्मणभक्त हिन्दू थे। शाकद्वीपियोंके विशेषत्व 'मिहिर' नामसे हूणराजवंश भी सुप्राचीन शाकजातिकी ही एक शाखा प्रतीत होता है। सच पूछिये तो शाक जातिकी पूर्वतन शाखा काबुलके कुषाणवंश हूण या Ephthalites लोगोंके हाथसे ही अपना राज्य खो बैठी थी। ४५५ ई०में गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तसे यद्यपि हूण लोग अच्छी तरह परास्त हुए, भारतवर्ष पर अपनी गोटी जमा न सके, फिर भी ४८५ ई०में पारस्यपति फिरोजका विनाश करके समस्त पारस्य और अफगानिस्तानमें इन लोगोंने अपना आधिपत्य फैला लिया था। पीछे दश वर्षके भीतर ही इन लोगोंने प्रथम गान्धार या पेशावर भूभाग दखल किया और अनुगाङ्गप्रदेशमें आ कर गुप्तसाम्राज्यका तहस नहस कर डाला। इस भारत अभियानके नेता ही उक्त हूणपति तोरमाण थे। पश्चिममें पारस्य, पूर्वमें चीन सीमा पर अवस्थित खोतान तथा दक्षिणमें गंगा और नर्मदा-प्रवाहित उत्तर और मध्यभारतको उनकी अथवा उनके पुत्र मिहिरकुलकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। पंजाबके शाकल या वर्त्तमान सियालकोट नामक स्थानमें उनकी प्रधान राजधानी थी। इसके सिवा वामियान, हिरात और बाल्खमें उनकी विभिन्न राजधानीका परिचय मिलता है। पचास वर्षसे ऊपर भारतवर्ष हूण लोगोंके शासनाधीन रहा। इस समय उत्तर भारतमें सभी जगह शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंकी तूती बोलती थी। यहां तक, कि बालादित्य और यशोधर्म-प्रमुख उत्तर भारतीय राजाओंकी चेष्टासे हूण साम्राज्य विलुप्त होने पर भी बालादित्य और परवर्त्ती गुप्तराजे शाकद्वीपियोंकी शासनभूमि पर हाथ न बढ़ा सके थे। यह बात देवोवरणार्क आदि स्थानोंसे आविष्कृत शिलालिपिसे जानी गई है। यूरोपमें गथ और भारतमें बौद्ध-लोगों पर हूणवंशने जो घोर अत्याचार किया था उसे देख कोई कोई इन्हें नरपिशाच समझते हैं। पर यदि सच पूछा जाय तो ये लोग असभ्य नरपिशाच नहीं थे। वैरका बदला चुकानेकी इच्छासे रणक्षेत्रमें उन्मत्त हो वे लोग बुरा वर्ताव कर गये हैं सही, पर दुर्द्धर्ष प्राचीन जातियोंमें तो यह प्रथा बड़े जोरोंसे जारी थी। ईसाई साधु कोसमस ५४७ ई०में पंजाब आ कर लिख गये हैं, कि श्वेत हूणराजके दो हजार फौजी हाथी

---

* Epigraphia Indica, Vol. II, 225

और उतने ही घुड़सवार थे। इस बड़ी सेनाकी सहायतासे वे भारतके सभी राजाओंसे कर वसूल कर भारतसम्राट् हुए थे। गुप्त सम्राटोंके इतिहास और चीनपरिव्राजकोंके भ्रमणवृत्तान्तसे जाना जाता है, कि मिहिरकुल बालादित्यके हाथसे पराजित और बन्दी हुए थे। बालादित्यकी माताने मिहिरकुलके अनुपम रूपलावण्य पर मुग्ध हो पुत्रसे उन्हें छोड़ देनेकी प्रार्थना की थी। इस पर बालादित्यने हूणपतिको कारागारसे मुक्त कर बड़े सम्मानके साथ उत्तरापथ भेज दिया। जिस समय वे गुप्तराजके हाथ बंदी थे, उस समय उनके छोटे भाईने शाकलका सिंहासन अधिकार कर लिया था। इसलिये मिहिरकुलको आत्मरक्षाके लिये काश्मीरमें आश्रय लेना पड़ा था। काश्मीरपतिने उनका बड़ा आदर किया, केवल यही नहीं, एक छोटे राज्यका उन्हें शासनकर्त्ता भी बना दिया। पर मिहिरकुल यह उपकार शीघ्र ही भूल गये। कुछ दिन बाद ही उन्होंने दलबल संग्रह कर आश्रयदाताको तख्त परसे उतार दिया और काश्मीर सिंहासन पर दखल जमाया। कुछ ही दिनोंके बाद इन्होंने गान्धार जीता और वहांके हूणपतिको सपरिवार विनष्ट कर पञ्चनदमें कदम बढ़ाया। यहां इन शिवोपासकने रुद्रमूर्त्तिसे हजारों शान्तशिष्ट बौद्धोंको यमपुर भेज कर और सैकड़ों बौद्धस्तूप तथा विहारको ढाह ढूह कर ब्राह्मणोंका हर्ष बढ़ाया। परन्तु इस अत्याचारका प्रतिफल इन्हें शीघ्र ही भोगना पड़ा। थोड़े ही समयके अन्दर इन्होंने बड़े कष्टसे प्राणत्याग किया।

मिहिरकुलप्रमुख जिन सब हूणोंने ब्राह्मणोंके प्रति अनुराग और बौद्धोंके प्रति विद्वेष दिखलाया था, ब्राह्मण समाजने उन्हें क्षत्रियश्रेणीभुक्त कर लिया था। उनके वंशधर आत्मीय स्वजनगण आज भी राजपूत समाजमें क्षत्रिय माने जाते हैं। राजपूतानेकी चम्बल नदीके किनारे अवस्थित प्राचीन बरोली शहरमें आज भी हूणराज प्रासादका खण्डहर देखनेमें आता है। इस स्थानके शिङ्गारचौरी नामक देवालयको बहुतेरे हूणराजपुत्रका विवाहस्थान बतलाते हैं। बहुतोंका विश्वास है, कि इसीके दूसरे किनारे मैंसरोर नामक शहरमें हूणपतिकी राजधानी थी। गुजरातके भाटग्रन्थमें लिखा है, कि १३वीं सदीमें हूण लोग गुजरातके किसी स्थानमें राज्य करते थे। यह जाति एकदम विलुप्त नहीं हुआ है। अभी वे दूसरी राजपूतशाखामें मिल गये है। महात्मा टाड साहबने माही नदीके किनारे बड़ी हीनावस्थामें कुछ हूणोंको देखा था। हूणजातिके उक्त परिचयसे हम इन्हें असभ्य जाति नहीं कह सकते। पहले ही लिखा जा चुका है, कि ६ठी सदीमें यह जाति पंजाबमें विद्यमान थी। १ली सदीको चीनभाषामें अनुवादित ललितविस्तरमें हूणलिपिका उल्लेख है। ललितविस्तरके मतसे बुद्धदेवने इस हूणलिपिको सीखा था। इस सुप्राचीन लिपि द्वारा भी हम हूणको असभ्य जाति कहनेको तैयार नहीं। अध्यापक लासेनका कहना है, कि ईसा जन्मके १५० वर्ष पहले मध्य एशियाके इलि नामक प्रदेशमें सुतातार लोग युए-चि या श्वेत हूणके हाथसे पराजित हुए थे। सु तातार लोग शाकवंशीय और श्वेतहूण लोग तोचारिवंशीय थे। मुसलमानी अमलमें पूर्वोक्त हूणज्ञा आदि स्थानवासी इस जातिके जिन लोगोंने मुसलमानी धर्म और मुसलमानी आचार व्यवहार ग्रहण किया था अथवा हिमालयप्रदेशमें असभ्य जातिके संश्रवसे जो लोग हीनाचारी हो गये हैं, जटाधरप्रमुख ब्राह्मणकोषकारोंने उन्हींको गोमांस खानेवाला म्लेच्छ कहा है। हूणसम्राट् तोरमाण और मिहिरकुलकी बहुत-सी मुद्रायें आविष्कृत हुई हैं। दाक्षिणात्यमें बहुत पहलेसे जो हूण या होनमुद्रा प्रचलित है, कोई कोई अनुमान करते हैं, कि उसे पहले हूणसम्राटोंने ही चलाया। परन्तु शाहकोट और चीनोवट आदि स्थानोंसे जो सब प्राचीन हूणमुद्रा आविष्कृत हुई है, उनके साथ दाक्षिणात्यमें प्रचलित हूणमुद्रा बहुत कम मिलती जुलती है। हून देखो।

हूणगरि (हंगेरी) Hungary—यूरोपका एक राज्य। दानियूब नदी द्वारा यह देश ऊर्द्ध्व और निम्न हूणगरि इन दो भागोंमें विभक्त है। इसमें भी फिर ४८ प्रदेश हैं। यहांके भाषातत्त्वविद् लोग अनुमान करते हैं, कि हिमालयसे रूसराज्यके ओकटस्क तथा लापलैण्ड तकके अधिवासी जो जो भाषा व्यवहार करते हैं, उसका मूल

तातार भाषा है। हूणगिरि भाषा भी उसीके अन्तर्गत है। यूरोपमें हूण जातिके प्रभाव विस्तार और हूणगरि राज्यकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें जो इतिहास मिला है वह इस प्रकार है—

हिउङ्गणु नामक चीन इतिहासमें जिस शक्तिशाली जातिका उल्लेख मिलता है, शायद हूण उसीकी एक शाखा है। ४थी सदीमें इन लोगोंने यूरोप पर आक्रमण किया था। ये लोग पहले चीन प्राचीरके पाससे ले कर कास्पियनसागर तक एक प्रबल शक्तिसम्पन्न जातिरूपमें रहते थे। परन्तु अन्तमें अराजकतासे जब लोगोंकी एकता और जातीय दृढ़ता शिथिल हो गई, तब इनकी एक शाखाने भाग कर ओग्ल नदीके पास उपनिवेश बसाया। ४थी सदीमें इन लोगोंने बलमीरके अधीन यूरोप पर आक्रमण कर दिया था। जिन सब दुर्द्धर्ष जातियोंने रोमसाम्राज्यके पतनमें सहायता पहुंचाई थी, हूण लोग उन्हींमेंसे एक थे। अष्ट्रगथोंका राज्य आक्रमण कर हूण लोगोंने उनके राजाको बार बार युद्धमें परास्त किया और अन्तमें उन्हें मार डाला। इसके बाद इन लोगोंने भिसिगथोंको परास्त किया। सम्राट् भालेवसने भिसिगथ लोगोंको थ्रेसमें रहनेका अधिकार दिया। ५० वर्ष तक रोमसाम्राज्यके विरुद्ध लड़नेसे जब हूणोंका जी ऊब आया, तब वे दानियुबके उत्तरस्थित जातियोंको काबूमें लाने लगे। इस समय, यहां तक कि इन लोगोंने रोमकोंको अन्यान्य जातियोंके विरुद्ध मदद पहुंचाई थी। परन्तु अन्तमें रोमकोंके व्यवहारसे क्रुद्ध हो कर हूण लोग उनके विरुद्ध खड़े हो गये। इस समय प्रसिद्ध वीर आटिला हूणोंके राजा हुए। उन्होंने रोमकोंके साथ मेल कर लिया। इस समय उन्होंने अपना राज्य स्काइथिया और पारस्य तक फैला लिया था। एक रोमक विसपकी विश्वासघातकता पर क्रुद्ध हो आटिलाने पूर्वरोमकसाम्राज्यके विरुद्ध यात्रा कर दी। उन्होंने दक्षिणमें थर्मोपिली, शालिपली और कुस्तुनतुनिया तकके सभी स्थान जीत लिये और अन्तमें युद्धव्ययके क्षतिपूरणस्वरूप मोटी रकम ऐंठ कर घर लौटे। ४५१ ई०में उन्होंने पश्चिमकी ओर युद्धयात्रा की और वहीं वे प्रसिद्ध शालोक्षेत्रमें कोमिस द्वारा परास्त हुए। इटलीकी चढ़ाईमें वे आगिलिया और भिनिसियाको तहस नहस कर अन्तमें पोप ल्युसे मिले और बादमें वहांसे पानोनियाको लौट गये। ४८१ ई०में वहीं पर उनकी मृत्यु हुई। मृत्युके साथ ही साथ उनका बड़ा साम्राज्य अधःपतनको प्राप्त हुआ। उनके पुत्र आपसमें लड़ झगड़ कर यादवोंकी तरह ध्वंस होने लगे। नेटाद नदीके किनारे एक घमसान लड़ाई छिड़ी जिसमें ३० हजार हूण और आटिलाके बड़े लड़के मारे गये। इसके बाद हूण लोग विच्छिन्न हो कर पूर्व यूरोपके भिन्न भिन्न देशमें दल बांध रहने लगे। एक दलने छोटे स्काइदिया और दूसरेने सर्विया तथा बुलगेरियाको अधिकार किया। प्रधान शाखा ओरल नदीके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंमें अर्थात् अपने आदिम देशमें जा कर बस गई थी। परवर्त्ती कालमें यूरोपके इतिहासमें हूण लोग बुलगेरीय कहलाते थे। इन लोगोंने दो शाखामें विभक्त हो फिर पूर्व रोमसाम्राज्य पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। परन्तु अन्तमें वे लोग अरबोंसे परास्त हुए। ६३० ई०में कोरतके अधीन इन लोगोंने फिर स्वाधीन हो कर सम्राट् हिराक्लियससे मेल कर लिया। लेकिन उनकी मृत्युके बाद यह राज्य उनके पांच पुत्रोंमें बंट गया।

इस हूणजातिकी वासभूमि ही हूणगरि कहलाती है। पहले इस साम्राज्यका भूपरिमाण १०६२१६ वर्गमील था, महासमरके बाद अभी केवल ३५१८३ वर्गमील रह गया है। १९२० ई०की भर्साई संधिके बाद इस विस्तीर्ण साम्राज्यका अधिकांश जेकोश्लोभकिया, रोमानिया, युगोश्लाभिया और अष्ट्रियाके अन्तर्गत हुआ। वर्त्तमान कालमें इसकी सीमा इस प्रकार है,—उत्तरमें दानियुब, पूर्वमें पेजोनी, पूर्व और दक्षिणमें आलफोल्ड है। १९१० ई० तक इसकी जनसंख्या करीब २१ लाख थी, पर महासमरके बाद सिर्फ १० लाख रह गई है। इस राज्यके अधिकांश लोग रोमन कैथलिक धर्मावलम्बी हैं।

पहले पाननीयने, पीछे हूण, गथ, लम्बार्ड और अवारियोंने हूणगरिको अधिकार किया था। आखिर एशियासे मागियर नामक एक प्रबल जातिने आ कर यह देश दखल किया। १०वीं सदीमें इन लोगोंने यीशुका धर्म अवलम्बन किया था। मागियर दलपति आरपादने

पहले पहल हूणगरि जीता था। उनके पुत्र गेइसाने ईसाधर्म ग्रहण किया। सेण्टष्टिफेनने ही पहले हूणगरिके अधिवासियोंमें खृष्टीय धर्म फैलाया था। उन्होंने ड्यूकको उपाधि परित्याग कर राजाकी उपाधि ग्रहण की और समतलप्रदेशमें अपनी गोटी अच्छी तरह जमाई।

हूणगरिके सम्भ्रान्त लोग अपने राजाकी अप्रतिहत क्षमताके विरोधी थे। राजाकी सहायतासे वे ही लोग राज्यशासन करते थे। जनसाधारणको कोई क्षमता न थी, वे इस अभिजात संप्रदायकी गुलाम-प्रजा स्वरूप थे।

नेप्लसके २य चार्ल्सके साथ हूणगरिकी राजकुमारीका विवाह हो जानेसे हूणगरिका इतिहास इटलीके साथ मिल गया। जब हूणगरिके राजकुमार आण्ड्रूने नेपल्सको रानी जोआनासे विवाह किया, तब नेपल्सके सिंहासन पर आण्ड्रू ही बैठे। परन्तु जोआनाके साथ उनकी नहीं पटती थी, इस कारण रानीने उन्हें मार डाला। भ्रातृहत्याकी प्रतिहिंसा लेनेके लिये हूणगरिके राजा लुई जोआनाके विरुद्ध दलबलके साथ इटली जा धमके। परन्तु हूणगरिमें गोलमाल देख उन्हें अपना देश लौट आना पड़ा। लुईकी कन्यासे सिजिसमण्डने विवाह किया था। जब लुई अपुत्रक अवस्थामें मरे, तब सिजिसमण्ड हूणगरिके राजा हुए। सिजिसमण्डने अन्तमें अधिकारशून्य गौरव-युक्त सम्राट्का पद पाया था। हूणगरिकी राजकुमारीके मरनेके पीछे जब सिजिसमण्डने दूसरा विवाह किया, तब उनका हूणगरिका अधिकार अक्षुण्ण रह गया। यहां तक कि उन्होंने अपनी दूसरी स्त्रीकी संतान और जमाई अलवर्टको हूणगरिका सिंहासन दे दिया था। जब अलवर्टकी मृत्यु हुई उस समय रानी गर्भवती थी। हूणगरिके अभिजात वर्ग अपने राज्यमें अष्ट्रीयाराज-परिवारकी प्रधानता पर जलते थे, इस कारण उन लोगोंने पोलण्डके राजा उलाडिसलसको अपने यहां बुलाया। अब उलाडिसलस हूणगरिके राजा हुए। इस समय २य अमुरथके अधीन हूणगरिके सीमान्त पर धावा शुरू हो गया था। उलाडिसलस राणाके युद्धमें पराजित और निहत हुए। पीछे अभिजातवर्गने अलवर्टके छोटे लड़केको राजा बनाया। राज्यशासनका भार उस देशके सुयोग्य हुनियाडिसके हाथ सौंपा गया।

जब द्वितीय महम्मद कुस्तुनतुनियानोपल जीतनेके तीन वर्ष बाद दानियुबके तटस्थित प्रसिद्ध दुर्ग बेलग्रेड जीतनेकी कोशिश कर रहे थे, उसी समय हुनियाडिसने उन्हें परास्त किया। इस युद्धजयके कारण समस्त यूरोपको इस वीरकी कृतज्ञता स्वीकार करनी पड़ी थी। क्योंकि, इस युद्धमें यदि २य महम्मदकी जीत होती, तो समूचा यूरोप मुसलमान राजाके हाथ आ जाता। हुनियाडिस इस युद्धके बाद ही इस लोकसे चल बसे। राजा लाडिसलस भी अधिक दिन जीवित न रहे। अब न्यायतः इस राज्यके अधिकारी अष्ट्रियाके राजा ३य फ्रेडरिक हुए, परन्तु हूणगरिके लोगोंकी उन पर उतनी श्रद्धा न थी। इस कारण उन लोगोंने मिल कर हुनियाडिसकी कृतज्ञताका स्मरण करते हुए उनके सुयोग्य पुत्र माथियसको राजसिंहासन पर बैठाया। माथियसने ३० वर्ष तक राज्य किया था। मुसलमान लोग कई बार उनसे परास्त हुए थे। १४९१ ई०में प्रेसबुर्गकी सन्धिशर्तोंके अनुसार हूणगरिने राजवंशके अवसानके बाद हूणगरि अष्ट्रियाराज्यमें मिला दिया।

अष्ट्रिया देखो।

हूणदेश—हिमालय-शैलमालाके मध्य चीन-अधिकारभुक्त तिब्बतका एक अंश। इसका दूसरा नाम नारी-खोरसुम है। यह शतद्रु नदीके ऊपर अववाहिका और कमलानदीके शिरोभाग तक विस्तृत है। इस स्थानके नामकरणके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न पाश्चात्य पण्डितोंने भिन्न भिन्न मत प्रकट किया है। विलसन साहबके मतसे हूनका अर्थ तुषार है, अर्थात् बर्फसे ढका हुआ देश होनेके कारण हूणदेश नाम पड़ा है। कप्तान ग्राची साहबके मतसे महाभारत और पुराणोक्त हूण जातिका देश होनेके कारण इसका हूणदेश नाम हुआ है। हूणगरिके पण्डित कोरसने भी यही मत समर्थन किया है। उनका कहना है, कि यही स्थान उन लोगोंके पूर्वपुरुषोंकी आदि वासभूमि है। रायल साहबके मतसे हूणका अर्थ स्वर्ण है, स्वर्ण उत्पन्न करनेवाली भूमि होनेके कारण हूणदेश नाम हुआ है। यहांके अधिवासी अभी हूणिया कहलाते हैं।

हूणिया लोग साधारणतः भ्रमणशील हैं। बहुतेरे गाय, भेड़, बकरे आदि पालते हैं। इनका सरल और मृदु स्वभाव है। इन लोगोंमें एक स्त्री अनेक स्वामी ग्रहण कर सकती है। इनका आचार व्यवहार बहुत कुछ लादकवासी भोटोंसे मिलता जुलता है। ये लोग चाय और सत्तू खा कर जीवनधारण करते हैं। प्रत्येक आदमी प्रायः ३ वर्षका खाद्य संग्रह कर रखता है। इनका ग्राम तंबू खेमाके सिवा और कुछ भी नहीं है। वृटिशभारतसे हूणदेश जानेमें पांच गिरिसङ्कट पड़ते हैं, वे सब संकट प्रायः बर्फसे ढके रहते हैं। केवल ज्यैष्ठसे आश्विन तक यहां सौदागरी माल आ जा सकता है। इस समय भी लासावासीको चीन-राजपुरुषसे पास लेना पड़ता है, नहीं तो कोई भी आ जा नहीं सकता। गारतोकसे १०० मील उत्तरपूर्व हूणदेशके थोकजलङ्ग नामक भूभागके पास सोना मिलता है। सर्पण नामक एक स्वर्णाध्यक्षकी देखरेखमें यहां सोना धुलाईका काम चलता है। प्रत्येक खानसे उन्हें वर्षमें २५ औंस सोना मिलता है। यहांका बुकनी सोना डेढ़ भर १६ रु०में मिलता है। तिब्बतकी राजधानी लासा नगरोमें ही इसकी खपत अधिक है। हूणिया लोग मानससरोवरमें जा कर भी सोना सग्रह करते हैं।

हूणलिपि (सं० पु०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख है।

हूत (सं० त्रि०) ह्वे-क्त, सम्प्रसारणं। आहूत, जिसे बुलाया गया हो।

हूति (सं० स्त्री०) आह्वान, बुलाना।

हूदा (हिं० पु०) हूल देखो।

हून (सं० पु०) १ म्लेच्छ आचारवर्जित म्लेच्छ जातिविशेष। २ [मान्द्राज प्रदेशमें प्रचलित एक प्रकारकी प्राचीन स्वर्णमुद्रा। यह वजनमें ५० ग्रेन होती है। एक एकका मूल्य ३॥०) रु० होता है। अङ्गरेज लोग इसीको 'पागोडा' कहते थे।

हूनिया (हिं० स्त्री०) तिब्बतके पश्चिम भागमें मिलनेवाली एक प्रकारकी भेंड।

हूब (हिं० स्त्री०) हुब्ब देखो।

हूबहू (अ० वि०) ज्योंका त्यों, ठीक वैसा ही।

हूम् (सं० अव्य०) १ प्रश्न। २ वितर्क। ३ सम्मति। ४ क्रोध। ५ भय। ६ निन्दा। ७ अवज्ञा।

हूय (सं० पु०) आह्वान, आवाहन।

हूर (अ० स्त्री०) मुसलमानोंके स्वर्गकी अप्सरा।

हूरव (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

हूरहूण (सं० पु०) १ देशविशेष। २ हूणोंकी एक शाखा जिसने यूरोपमें जा कर हलचल मचाई थी।

हूराहूरी (सं० स्त्री०) एक त्योहार या उत्सव जो दिवालीके तीसरे दिन होता है।

हूर्च्छन (सं० क्ली०) हूर्च्छ भावे ल्युट्। कौटिल्य, कुटिलता।

हूल (हिं० स्त्री०) १ लासा लगा कर चिड़िया फंसानेका बांस। २ हूक, शूल। ३ भाले, डंडे, छुरे आदिकी नोक या सिरेको जोरसे ठेलने अथवा भोंकनेकी क्रिया। (स्त्री०) ४ कोलाहल, हल्ला। ५ हर्षध्वनि, आनन्दका शब्द। ६ फटकार, ललकार। ७ आनन्द, खुशी।

हूलना (हिं० क्रि०) १ सिरे या फलको जोरसे ठेलना या धंसाना, गोदना। २ शूल उत्पन्न करना।

हूला (हिं० पु०) शस्त्र आदि हूलनेकी क्रिया या भाव।

हूश (हिं० वि०) १ असभ्य, जङ्गली। २ अशिष्ट, बेहूदा।

हूह (हिं० स्त्री०) युद्धनाद, कोलाहल।

हूहू (सं० पु०) गन्धर्वविशेष।

हूहू (हिं० पु०) अग्निके जलनेका शब्द, धायं धायं।

हृच्छय (सं० पु०) १ कामदेव। (त्रि०) २ हृदयशायी।

हृच्छूल (सं० क्ली०) हृदयजात शूलरोग। हृदय, पार्श्व और वस्ति आदि स्थानोंमें शूलरोग होता है।

वायु, कफ और पित्त द्वारा अवरुद्ध तथा रस द्वारा वर्द्धित हो कर उच्छ्वासका अवरोधक हृदयदेशमें शूलरोग पैदा करता है। यही शूलरोग हृच्छूल कहलाता है। यह शूल अत्यन्त यन्त्रणादायक है। गरुड़पुराणके १८९वें अध्यायमें इसकी चिकित्साका विषय लिखा है।

हृच्छोक (सं० पु०) हृदयका शोक।

हृच्छोष (सं० पु०) हृदयके अन्तर्निहित शोथ, हृदयके भीतरकी सूजन।

हृज्ज (सं० त्रि०) हृदयजात, जो हृदयसे उत्पन्न हो।

हृणिया (सं० स्त्री०) हृणीया, निन्दा, तिरस्कार।

हृणीया (सं० स्त्री०) निन्दा।

हृत (सं० स्त्री०) १ हृदय, वक्षःस्थल। (त्रि०) २ हरणकारी, लेने या चुरानेवाला।

हृत (सं० त्रि०) हृ-क्त। १ जिसे ले गये हों, पहुंचाया हुआ। २ हरण किया हुआ, लिया हुआ।

हृति (सं० स्त्री०) हृ-क्तिन्। १ हरण, ले जाना। २ नाश। ३ लूट।

हृत्कम्प (सं० पु०) १ हृदयकम्पन, दिलकी धड़कन। २ अत्यन्त भय, जीका दहलना।

हृत्ताप (सं० पु०) हृदयस्य तापः। हृदयका उत्ताप।

हृत्पङ्कज (सं० क्लीं०) हृदयस्थित पद्म।

हृत्पिण्ड (सं० पु०) हृदयका कोश या थैली, कलेजा।

हृत्पीडन (सं० क्लीं०) हृदयदेशका पीडन, छातीका दर्द।

हृत्पीडा (सं० स्त्री०) हृद्रोग, वक्षःस्थलकी पीडा।

हृत्पुण्डरीक (सं० क्लीं०) हृत्पद्म, हृदयरूप पद्म।

हृत्पुष्कर (सं० क्लीं०) हृदयरूप पद्म।

हृत्प्रतिष्ठ (सं० त्रि०) हृदयस्थित। (शुक्लयजु० ३४।६)

हृत्प्रिय (सं० पु०) हृदयका प्रिय, दिली दोस्त।

हृत्स्तम्भ (सं० पु०) हृदयस्तम्भन।

हृद् (सं० क्लीं०) १ हृदय। २ मन।

हृदंसनि (सं० त्रि०) हृदयका संभक्ता।

हृदय (सं० क्लीं०) १ वक्षःस्थल, चेतनास्थान। सुश्रुतमें लिखा है, कि हृदय अधोमुख पद्मकी तरह अवस्थित है। यह पद्म जब खिलता है, तब जीव जग उठता है और जब तक नहीं खिलता तब तक निद्राके वशीभूत रहता है, हृदय ही चेतनास्थान है। प्राणवहा धमनियां इसीको आश्रय किये हुए हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि हृदय अर्थात् वक्ष चतुर्थ अङ्ग है। इस अङ्गमें पुरुष और स्त्री दोनोंके ही दो दो स्तन रहते हैं। परन्तु नारियोंके स्तन जवानीमें मोटे होते हैं। गर्भवती और प्रसूता स्त्रियोंके स्तन दूधसे भरे होते हैं। इसी वक्षःस्थलमें हृदय अवस्थित है। अतएव यह वक्षका एक उपाङ्ग है। यह उपाङ्ग अधोमुख रह कर जाग्रत अवस्थामें पद्मकी तरह प्रकाशित और निद्रित अवस्थामें मुद्रित रहता है। यह जीवोंका उत्कृष्ट चेतनास्थान है, इस कारण यह तमोगुण द्वारा अभिव्याप्त होनेसे प्राणी निद्राभिभूत होते हैं। हृदयको उत्कृष्ट-चेतनाका स्थान कहनेका तात्पर्य यह कि समूचा शरीर चेतनास्थान होने पर भी हृदय ही सर्वप्रधान है। क्योंकि, इसमें उपघातसे जीवोंकी मृत्यु होती है।

इस हृदयमें दश धमनियां हैं। सभी धमनियां महामूला और महाफला हैं। छः अङ्ग अर्थात् दो हाथ, दो पैर, मस्तक, मध्यदेह और ज्ञान; दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, घ्राण और रसना ये पञ्चेन्द्रिय; रूप, स्पर्श, शब्द, गंध और रस ये पञ्च इन्द्रियार्थ; सहन, आत्मा और मनोविषय, ये सभी हृदय-संस्थित हैं। जिस प्रकार घरके बोम बगें छत, छौनी आदिके आश्रय हैं, उसी प्रकार हृदय भी षडङ्गादि पदार्थोंका अवलम्बन है। हृदय आहत होनेसे मूर्च्छा आती है, हृदय भिन्न होनेसे मृत्यु होती है, क्योंकि जीवात्मा स्पर्शज्ञान हैं, अर्थात् जो स्पर्शन द्वारा समस्त ज्ञेय वस्तु जानते हैं और शरीर धारण करनेके कारण धारिक कहलाते हैं वही जीवात्मा हृदयमें अवस्थित हैं।

जीवात्मा शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें भी हैं। परन्तु वह शरीर धारणमें या ज्ञानोत्पत्ति विषयमें प्रधान नहीं है। क्योंकि, उन सब स्थानोंके उपघातसे भी शरीरधारण और ज्ञानोत्पत्ति देखी जाती है। परन्तु हृदयके उपघातसे शरीररक्षा और ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती। अतएव इससे साबित हुआ, कि हृदय ही जीवात्माका प्रधान आश्रय है।

फिर श्रेष्ठ ओजः पदार्थ भी हृदयाश्रित है तथा चैतन्य भी हृदयमें अवस्थित है। इस प्रकार महत्‌गुणविशिष्ट होनेके कारण हृदयका महत् और अर्थ नाम पड़ा है। हृदय ही इन धमनियोंका मूल होनेके कारण महामूल है और हृदयकी धमनियां शरीरके सभी स्थानोंमें ओजको पहुंचाती हैं। ओजःपदार्थ द्वारा प्राणी जीवित रहते और उसके नहीं रहनेसे मृत्युमुखमें पतित होते हैं। इत्यादि रूपमें ओजोवहन करनेके कारण इसका महाफला नाम पड़ा है। (चरक, सूत्रस्था० ३ अ०)

तन्त्रसारमें षट्चक्रभेद-स्थलमें अनाहत नामक बारह दलका एक पद्म है और उस पद्मके बारह दलोंमें क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ये बारह अक्षर हैं।

हृदयका शुभाशुभ लक्षण—समोन्नत, मांसल और पृथु अर्थात् विस्तृत हृदय शुभजनक तथा खड़े रोएंवाला और शिराल अर्थात् नसीला हृदय अशुभ माना गया है। (गरुड़पु० ६६ अ०)

२ अन्तःकरणका रागात्मक अंग ; प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकारोंका स्थान। ३ अन्तःकरण, मन। ४ विवेकबुद्धि, अन्तरात्मा।

५ किसी वस्तुका सारभाग। ६ तत्त्व, सारांश। ७ गुह्य बात, गूढ़ रहस्य। ८ अत्यन्त प्रिय व्यक्ति, प्राणाधार।

हृदयक्रम (सं० पु०) हृदयकी क्रान्ति।

हृदयग्रन्थि (सं० पु०) हृदयका बन्धन।

हृदयग्रह (सं० पु०) हृदयका शूल या ऐंठन, कलेजा फड़कनेका रोग।

हृदयग्राह (सं० पु०) मनोहर, सुन्दर।

हृदयग्राही (सं० त्रि०) १ मनको मोहित करनेवाला। २ रुचिकर, भानेवाला।

हृदयङ्गम (सं० क्ली०) १ युक्तियुक्त वाक्य। (त्रि०) २ हृदयगत, मनमें बैठा हुआ, जिसका सम्यक् बोध हो गया हो। ३ उपयुक्त, लायक। ४ मनोहर, सुन्दर।

हृदयचौर (सं० पु०) मनको मोहनेवाला।

हृदयच्छिद् (सं० त्रि०) हृदयच्छेदकारी, हृदयविदारक।

हृदयज (सं० त्रि०) हृदयसे उत्पन्न, जो अन्तःकरणसे पैदा हुआ हो।

हृदयज्ञ (सं० त्रि०) हृदयगत भावसे जो अवगत हों।

हृदयदाहिन् (सं० त्रि०) हृदयका दाहजनक, हृदयपीड़क।

हृदयनगर—मध्यप्रदेशके मण्डला जिलेका एक बड़ा गांव। प्रायः १६०४ ई०में राजा हृदय शाहने यह नगर बसाया। यहां बंजार नदीके किनारे प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है। इस मेलेमें नाना प्रकारकी वस्तु बिकनेको आती हैं।

हृदयनाथ शर्मन्—मिथिलावासी एक विख्यात स्मार्त्त।

हृदयनारायणदेव—जटादुर्गवासी एक सामन्तराज। इन्होंने 'हृदयप्रकाश' नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

हृदयनिकेत (सं० पु०) कामदेव, मनसिज।

हृदयपीड़ा (सं० स्त्री०) हृदयकी पीड़ा, हृद्रोग।

हृदयपुण्डरीक (सं० क्ली०) हृत्पद्म।

हृदयपुरुष (सं० पु०) हृदयका स्पन्दन या धड़कन।

हृदयप्रमाथी (सं० त्रि०) १ मनको क्षुब्ध या चंचल करनेवाला। २ मन मोहनेवाला।

हृदयप्रिय (सं० त्रि०) अतिशय प्रिय, अत्यन्त प्यारा।

हृदयराम—ईशावास्योपनिषद्वृत्तिका नामक ईशोपनिषद्भाष्यके रचयिता।

हृदयराममिश्र—रसरत्नाकर-भाष्यके रचयिता।

हृदयरोग (सं० पु०) हृद्रोग, हृदयकी पीड़ा।

हृदयवत् (सं० त्रि०) हृदयालु, सहृदय।

हृदयवल्लभ (सं० पु०) प्रेमपात्र, प्रियतम।

हृदयवान् (हिं० वि०) १ जिसके मनमें प्रेम, करुण आदि कोमल भाव उत्पन्न हों, सहृदय। २ भावुक, रसिक।

हृदय-विदारक (सं० त्रि०) १ अत्यन्त शोक उत्पन्न करनेवाला। २ अत्यन्त करुणा या दया उत्पन्न करनेवाला।

हृदयवृत्ति (सं० स्त्री०) हृदयकी वृत्ति, अन्तःकरणकी वृत्ति।

हृदयवेधी (सं० त्रि०) १ मनको अत्यन्त मोहित करनेवाला। २ अत्यन्त शोक उत्पन्न करनेवाला। ३ बहुत अप्रिय या बुरा लगनेवाला।

हृदयव्याधि (सं० पु०) हृदयपीड़ा, हृदयका रोग।

हृदयशाह—बुन्देला अधिपति छत्रशालके पुत्र। इन्होंने अपने नाम पर प्रायः १६४४ ई०को हृदयनगर बसाया। १७०३ ई०में इन्होंने गढ़ाकोट अधिकार किया। गढ़ाकोट और छत्रशाल देखो। आप अनेक हिन्दी कवियोंके प्रतिपालक थे।

हृदयशूल (सं० क्ली०) हृच्छूल। शूलरोग देखो।

हृदयशोक (सं० पु०) हृच्छोक, हृदयका शोक।

हृदयसंघट्ट (सं० पु०) हृदयकी गतिका रुक जाना, दिल एकबारगी बेकाम हो जाना।

हृदयसन्धि (सं० पु०) हृदयगत सन्धि।

हृदयस्थ (सं० त्रि०) हृदयस्थित, जो हृदयमें रहता हो।

हृदयस्थान (सं० क्ली०) वक्षःस्थल। पर्याय—क्रोड, उरः, वक्षः, वत्स।

हृदयस्पर्शी (सं० त्रि०) १ हृदय पर प्रभाव डालनेवाला, दिल पर असर करनेवाला। २ चित्तको द्रवीभूत करनेवाला, जिससे मनमें दया या करुणा हो।

हृदयहारी (सं० त्रि०) मन मोहनेवाला, जीको लुभानेवाला।

हृदयानन्द विद्यालङ्कार—ज्योतिःसागरसंग्रहके रचयिता।

हृदयाभरण—एक संस्कृत पण्डित, कालिदासके पुत्र, देवदास और शङ्करके भाई। इन्होंने गीतगोविन्दतिलकोत्तम नामक गीतगोविन्दटीकाकी रचना की।

हृदयाराम—श्रौतसिद्धान्तके रचयिता।

हृदयालु (सं० त्रि०) हृदय (हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्। पा ५।२।१२२) इति काशिकोक्तेरालुः। १ सहृदय, भावुक। २ सुशील।

हृदयिक (सं० त्रि०) हृदयालु, सहृदय।

हृदयेश (सं० पु०) १ भर्त्ता, स्वामी। २ प्रेमपात्र, प्यारा।

हृदयेश्वर (सं० पु०) हृदयस्य ईश्वरः। पति, स्वामी।

हृदयेशा (सं० स्त्री०) भार्या, पत्नी।

हृदयोन्मादिनी (सं० त्रि०) १ हृदयको उन्मत्त या पागल करनेवाली। २ मनको मोहनेवाली। (स्त्री०) ३ सङ्गीतमें एक श्रुति।

हृदयोपश (सं० पु०) हृदयस्थित मांस।

हृदय्य (सं० त्रि०) हृदयभव। जो हृदयमें हो।

हृदावर्त्त (सं० पु०) हृदयस्थित आवर्त्त, हृदयकी भौंरी।

हृदि (सं० क्ली०) हृद्, हृदय। (ऋक् ६।५३।६)

हृदिक (सं० पु०) कृतवर्माके पिता। (भारत)

हृदिका (सं० स्त्री०) कृपाचार्यकी माता।

हृदिकासुत (सं० पु०) हृदिकाके पुत्र कृपाचार्य।

हृदिनी (सं० स्त्री०) ह्रदिनी, नदी।

हृदिशय (सं० त्रि०) हृदयमें शयनकारी।

हृदिस्पृश (सं० त्रि०) मनोहर, मनोरम।

हृदिस्पृश (सं० त्रि०) हृद्य, मनोहर।

हृदीक (सं० पु०) कृतवर्माके पिता।

हृदुत्क्लेद (सं० पु०) हृदयका उत्क्लेद। (सुश्रुत)

हृद्ग (सं० त्रि०) हृद्गत, हृदयमें जानेवाला।

हृद्गत (सं० त्रि०) १ आन्तरिक, मनका। २ समझ या ध्यानमें आया हुआ, मनमें बैठा हुआ। ३ प्रिय, रुचिकर।

हृद्गद (सं० पु०) हृत्पीड़ा, हृद्रोग।

हृद्गोल (सं० पु०) पर्वतविशेष।

हृद्गोलीय (सं० पु०) गिर्यादिक्रमसे हृद्गोलपर्वतनिवासी।

हृद्ग्रन्थ (सं० पु०) हृद्व्रण, विद्रधि रोग।

हृद्ग्रन्थि (सं० पु०) विद्रधिरोग।

हृद्ग्रह (सं० पु०) हृत्पीड़ा।

हृद्दाह (सं० पु०) हृदयका दाह, हृदयकी ज्वाला।

हृद्द्वार (सं० क्ली०) हृदयरूप द्वार।

हृद्वाली (सं० स्त्री०) हितावल्ली लता।

हृद्धित (सं० त्रि०) हृदयका हितकर।

हृद्भेद (सं० क्ली०) तन्त्रविशेष।

हृद्य (सं० पु०) १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ जीरक, जीरा। ३ वशकृद् वेदमन्त्र। ४ कपित्थ, कैथ। ५ दधि, दही। ६ मधुक, महुएकी शराब। (त्रि०) ७ हृदयका, भीतरी। ८ हृदयको रुचनेवाला, अच्छा लगनेवाला। ९ सुन्दर, सुहावना।

हृद्यगन्ध (सं० क्ली०) क्षुद्र जीरक, सफेद जीरा। २ सौवर्चल लवण, सोचर नमक। ३ विल्व वृक्ष, बेलका पेड़।

हृद्यगन्धा (सं० स्त्री०) १ जातीपुष्प लता। २ अजमोदा।

हृद्यगन्धि (सं० क्ली०) क्षुद्र जीरक, सफेद जीरा।

हृद्यवर्ग (सं० पु०) महाकषाय वर्गभेद। यह वर्ग, जैसे—आम, आमड़ा, अनार और खट्टा नीबू, ये सब कसैली वस्तु हृदयकी हितकर मानी गई है।

हृद्यता (सं० स्त्री०) प्रणय, प्रेम, सद्भाव।

हृद्यांशु (सं० पु०) चन्द्रमा।

हृद्या (सं० स्त्री०) १ वृद्धि नामक ओषधि। २ सल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़। ३ नागवल्ली, पान। ४ जीरक वृक्ष, जीरा। ५ शतपत्रीपुष्प, एक प्रकारका गुलाब। ६ जटामांसी। ७ छागी, बकरी।

हृद्रुज (सं० स्त्री०) हृदयकी पीड़ा, हृद्रोग।

हृद्रोग (सं० पु०) हृदयपीड़ा, हृदयका रोग।

अत्यन्त उष्ण द्रव्यसेवन, अति गुरुपाक तथा कषाय और अत्यन्त तिक्तरसभोजन, अत्यन्त परिश्रम, वक्षःस्थलमें आघात प्राप्ति, पहलेका खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह जीर्ण नहीं होने पर भी पुनर्वार भोजन, अध्यशन, मलमूत्रका वेगधारण तथा अत्यन्त चिन्ता, इन सब कारणोंसे हृद्रोग उत्पन्न होता है। सभी समय छातीमें दर्द होना और उसका धड़धड़ाना, इस रोगका साधारण लक्षण है। पूर्वोक्त कारणोंसे सभी दोष दूषित हो कर हृदयमें पहुंचते हैं जिससे रस दूषित हो जाता है। रसके दूषित होनेसे हृदयमें तरह तरहकी वेदना उत्पन्न होती है, इसीसे इसको हृद्रोग कहते हैं। यह रोग पांच प्रकारका है—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज और कृमिज।

इस रोगमें हृदयमें तीव्र वेदना, सूई चुभने-सी यातना, कण्डू, वमनवेग, मुखसे कफस्राव, शूल, हृदयस्थ रसका उद्गीरण, अंधकारदर्शन, अरुचि, दोनों चक्षुकी श्याववर्णता और सूजन, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। हृद्रोगमें क्लान्तिबोध, देहकी अवसन्नता, भ्रम और शोष ये सब उपद्रव होते हैं। यह रोग होने पर बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करनी होती है। नहीं तो इसमें मृत्यु होनेकी संभावना है। त्रिदोषज और कृमिज हृद्रोग ही विशेष कष्टसाध्य है।

अर्जुनवृक्षके छिलकेका चूर्ण घी, दूध अथवा गुड़की चाशनीके साथ पान करनेसे हृद्रोग शीघ्र ही प्रशमित होता है। हरें, वच, रास्ना, पीपल, सोंठ, कचूर और पुष्करमूल इनका चूर्ण समान भागमें ले कर उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे यह रोग दूर होता है।

जो वायुप्रधान हृद्रोगी है उसे तेल और सेंधा नमकके साथ दशमूलके काढ़ेमें फलका चूर्ण मिला कर उसीसे वमन करावे। अचिरजात हृद्रोगमें लङ्घन करना कर्त्तव्य है। परन्तु वायुकी अधिक प्रबलता रहनेसे लङ्घन न करे। इस रोगमें विरेचनकी भी विधि है।

पैत्तिक हृद्रोगमें गंभारीके फल और मुलेठीको जलमें सिद्ध कर उसमें मधु, चीनी और गुड़ डाल दे। पीछे उसमें मैनफलका चूर्ण मिला कर रोगीको वमन करावे। इसके बाद मधुर द्रव्यके साथ सिद्धघृत कषाय और पित्तज्वरोक्त सभी औषधोंका इसमें प्रयोग करना उचित है। इस रोगमें शीतल प्रलेप और विरेचन दिया जाता है।

कफज हृद्रोगमें वच और नीमकी छालका काढ़ा पिला कर रोगीको वमन करावे। इसमें पिप्पल्यादि चूर्णका प्रयोग किया जा सकता है। सान्निपातिक हृद्रोगमें पहले लङ्घन बताया है। इसमें तीनों दोषोंके शान्तिकर अन्नपानादि प्रदान तथा दोषविशेषमें प्रबलता, हीनता या मध्यावस्थाका विचार कर यथाविहित चिकित्सा करनी होती है। कुटका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे हृद्रोग दूर होता है। गेहूंका चूर्ण एक भाग, अर्जुनकी छालका चूर्ण १ भाग, गुड़ २ भाग, इन्हें एक साथ मिलावे। पीछे उसमें थोड़ा तिलतेल और घी तथा थोड़ा जल मिला कर पिलानेसे हृद्रोग आदि नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है।

कृमिज हृद्रोगमें पहले तीन दिन दही और तिलपिष्टक मिला हुआ स्निग्ध मांसान्न भोजन करा कर चातुर्जातादि द्वारा सुगन्धित किया हुआ सेंधव, जीरा, चीनी और अधिक विडङ्गविशिष्ट विरेचक पान करावें। इसके बाद धान्याम्ल अनुपान करना कर्त्तव्य है। विडङ्ग कुट चूर्णके साथ गोमूत्र पीनेसे सभी कृमि गिर पड़ते हैं। अनन्तर विडङ्गयुक्त यवान्न सेवन करना उचित है। हरीतकी ५०, सचललवण २ पल, इन दोनोंके साथ घृतपाक कर सेवन करनेसे यह रोग शीघ्र दूर होता है। इसके सिवा श्वदंष्ट्राद्यघृत, बलाद्यघृत, अर्जुनघृत, ककुभादि चूर्ण, कल्याणसुन्दररस, चिन्तामणिरस, हृदयार्णवरस, विश्वेश्वररस आदि औषध इस रोगमें हितकर है। (भैषज्यरत्ना० हृद्रोगाधि०)

वृहच्छागलाद्यघृत आदि भी इस रोगके लिये विशेष उपकारी है।

रूक्ष या अन्यान्य वायुवर्द्धक द्रव्यभोजन, उपवास, परिश्रम, रात्रिजागरण, अग्नि या आतपसेवन और मैथुन इस रोगमें विशेष अनिष्टजनक है।

हृद्रोगवैरी (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष।

हृद्वण्टक (सं० पु०) हृदो वण्टकः। जठर, आमाशय।

हृद्बोध (सं० पु०) विशेषरूप अवगति, अच्छी तरह जानकार।

हृद्व्रण (सं० पु०) विद्रधिरोग, हृदयमें व्रण।

हृन्मन्त्र (सं० पु०) मन्त्रभेद।

हृन्मोह (सं० पु०) हृदयका मोह।

हृल्लक्ष्मी (सं० स्त्री०) क्षुद्रतुलसी।

हृल्लास (सं० पु०) १ उपस्थित वमनकी तरह उत्क्लेश। २ हिक्कारोग। हिक्का देखो।

हृल्लासक (सं० पु०) हृल्लास।

हृल्लेख (सं० पु०) १ ज्ञान। २ तर्क। ३ बाह्यसुख। ४ वासना।

हृल्लेखा (सं० स्त्री०) उत्सुकता, आकुल इच्छा।

हृषि (सं० स्त्री०) १ हर्ष, आनन्द। २ कांति, चमक। ३ झूठा आदमी।

हृषित (सं० त्रि०) १ विस्मृत। २ प्रीत। ३ प्रहत। ४ हृष्टरोम, पुलकित। ५ प्रणत। ६ वर्मित।

हृषी (सं० पु०) अग्नि और सोम।

हृषीक (सं० क्ली०) विषयग्राहक चक्षुरादि इन्द्रिय।

हृषीकनाथ (सं० पु०) विष्णु।

हृषीकेश (सं० पु०) १ विष्णु। शङ्कराचार्यका कहना है, कि क्षेत्रज्ञ या परमात्मरूपमें वे इन्द्रियके अधिपति हैं या सभी इन्द्रियां उनके वशमें हैं, इसीसे उनका हृषीकेश नाम पड़ा है। २ श्रीकृष्ण। ३ पूसका महीना। ४ हरिद्वारके पास एक तीर्थस्थान। यह हिमालयकी एक एक ऊंची चोटी पर अवस्थित है। यह वैष्णवोंका एक प्रधान पुण्यतीर्थ है।

हृषीकेश्वर (सं० पु०) कृष्ण, विष्णु।

हृषीवत् (सं० त्रि०) हर्षयुक्त, प्रसन्न।

हृषु (सं० त्रि०) १ हर्षित होनेवाला, प्रसन्न। २ झूठ बोलनेवाला। (पु०) ३ अग्नि। ४ सूर्य। ५ चन्द्रमा।

हृष्ट (सं० त्रि०) १ आनन्दयुक्त, हर्षित। २ रोमाञ्चित, पुलकित। ३ प्रहसित। ४ विस्मित। ५ प्रतिहत।

हृष्टपुष्ट (सं० त्रि०) मोटा ताजा, तगड़ा।

हृष्टमानस (सं० त्रि०) हृष्टचित्त, प्रसन्न।

हृष्टरोमन् (सं० त्रि०) रोमाञ्चित, पुलकित।

हृष्टवृक (सं० पु०) हिरण्याक्ष दैत्यके नौ पुत्रोंमेंसे एक।

हृष्टि (सं० स्त्री०) हृष-क्तिन्। १ प्रसन्नता, हर्ष। २ मान, गर्वसे फूलना, इतराना।

हृष्टयोनि (सं० पु०) एक प्रकारका नपुंसक, ईर्ष्याक नपुंसक।

हृष्यका (सं० स्त्री०) सङ्गीतमें एक मूर्छना जिसका स्वर ग्राम इस प्रकार है—प ध नि स रे ग म। ध नि स रे ग।

हे (सं० अव्य०) सम्बोधनका शब्द; पुकारनेमें नाम लेनेके पहले कहा जानेवाला शब्द।

हेउंती (हिं० स्त्री०) देशावरी रुई।

हेंहें (हिं० पु०) १ धीरेसे हंसनेका शब्द। २ हीनतासूचक शब्द, गिड़गिड़ानेकी आवाज।

हेंगा (हिं० पु०) जुते हुए खेतकी मिट्टी बराबर करनेका पाटा, मैड़ा।

हेकटैथस—सुप्राचीन ग्रीक ऐतिहासिक। इन्होंने ही अपने इतिहासमें सबसे पहले भारतवर्षका उल्लेख किया है।

हेकड़ (हिं० वि०) १ हृष्टपुष्ट, मजबूत। २ अक्खड़, उजड्ड। ३ तौलमें पूरा, जो वमनमें दबता न हो। ४ प्रचण्ड, प्रबल।

हेकड़ी (हिं० स्त्री०) १ उग्रता, अक्खड़पन। २ बलात्कार, जबरदस्ती।

हेक्का (सं० स्त्री०) हिक्का, हिचकी।

हेठ (हिं० पु०) बाधा, पीड़ा।

हेड (अं० पु०) ऊंचा अफसर, प्रधान।

हेड क्वार्टर (अं० पु०) १ वह स्थान या मुकाम जहां सेनाका प्रधान रहता हो। २ वह स्थान जहां कोई मुख्यतः रहता या कारोबार करता हो, सदर। ३ किसी सरकार या अधिकारका प्रधान स्थान।

हेडिंग (अं० स्त्री०) वह शब्द या वाक्य जो विषयके परिचयके लिये किसी समाचार, लेख या प्रबंधके ऊपर दिया जाय, शीर्षक।

हेडज (सं० पु०) क्रोध, गुस्सा।

हेडम्ब—बङ्गालके पूर्वप्रान्तमें अवस्थित एक देश। अभी यह कछाड़ नामसे मशहूर है। भविष्यब्रह्मखण्ड और देशावलिविवृतिके मतानुसार यह स्थान श्रीहट्टके उत्तरमें

अवस्थित है। रणचण्डी देवीके मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

हेडस (सं० क्ली०) क्रोध, गुस्सा। (ऋक् १।२४।१४)

हेडा (हिं० पु०) मांस, गोश्त।

हेटावुक (सं० पु०) अश्वविक्रयकारी, घोडा वेचनेवाला।

हेडी (हिं० स्त्री०) चौपायोंका समूह जिसे वनजारे विक्रीके लिये ले कर चलते हैं। (पु०) २ व्याध, शिकारी।

हेट्टु शङ्करिहर—शिवाद्वैतसिद्धान्तप्रकाशिकाके रचयिता।

हेति (सं० स्त्री०) १ अस्त्र, हथियार। २ सूर्यकिरण। ३ अग्निशिखा, आगकी लपट। ४ शिखा, चोटी। ५ तेज। ६ साधन। ७ वज्र, भाला। ८ धनुषकी टंकोर। ९ यन्त्र, औजार। १० अंकुर, अंखुआ। (पु०) ११ प्रथम राक्षस राजा जो मधुमास या चैत्रमें सूर्यके रथ पर रहता है। यह प्रहेतिका भाई और विद्युत्केशका पिता कहा गया है। १२ एक असुरका नाम।

हेतिक (सं० पु०) हेति स्वार्थे कन्। हेति देखो।

हेतिमत् (सं० त्रि०) हेतियुक्त, अस्त्रविशिष्ट।

हेतु (सं० पु०) हि (कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च। उण् १।७३) इति तु। १ कारण, वीज, मूल। २ प्रयोजन। ३ न्यायके मतसे व्याप्यज्ञापक, वह जिससे व्याप्य पदार्थका ज्ञान होता है। नव्य न्यायमें हेतु, साध्य और पक्षकी ही विशेष आलोचना है। किसी विषयका अनुमान करनेमें हेतुका प्रयोजन होता है, विना हेतुके कोई भी विषय प्रमाणित नहीं होता। 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' धूमहेतु पर्वत वह्निमान् है, पर्वत पर धूम देख कर वह्निका अनुमान होता है, अतएव पर्वतको वह्निमान् प्रमाणित करनेमें धूम हेतु द्वारा ही वह प्रमाणित होता है। जिस किसी विषयका अनुमान करना होता है, उसमें हेतुकी आवश्यकता है। यह हेतु फिर सत् और असत्के भेदसे दो प्रकारका है। सत् हेतुके द्वारा ही अनुमान होता है, जिस हेतु द्वारा अनुमान साधित होता है, उसे असत् हेतु कहते हैं।

हेतुका दूसरा नाम लिङ्ग है। क्योंकि, उससे साध्य लिङ्गित अर्थात् ज्ञात होता है। पक्षमें हेतु रहता है। उस हेतु द्वारा साध्यका अनुमान होता है। जिससे साध्यका अनुमान होता है उसका नाम पक्ष है। पर्वत पर वह्निका अनुमान होनेके कारण पर्वत पक्ष है। सिद्धि अर्थात् साध्य निश्चयका अभाव पक्षता है। अनुमितिके पहले पर्वत पर वह्निका निश्चय नहीं होता। इस लिये पर्वत पर पक्षता है। सिद्धि अर्थात् साध्य निश्चय रहने पर भी साधनकी इच्छा या अनुमितिकी इच्छा होनेसे अनुमिति हो सकती है।

कोई विषय प्रमाणित करनेमें उसका हेतु दिखलाना आवश्यक है। विना हेतु दिखलाये कोई भी विषय प्रमाणित नहीं होता। यथार्थमें जो हेतु होगा, वह निःसन्देह रूप साध्य प्रमाणसे कुज्झटिका धूमकी तरह दिखाई देता है। अतएव यह देखनेसे क्या समुद्रमें वह्निका अनुमान होगा? नहीं, कभी नहीं होगा। क्योंकि, कुज्झटिका हेतुकी तरह प्रतीयमान होने पर भी यथार्थमें वह हेतु नहीं है। दुष्ट हेतु या हेत्वाभास है, इसलिये ऐसे हेतुस्थलमें साध्यका प्रमाण नहीं होगा।

(वैशेषिक और न्यायद०) प्रमाण देखो।

चरकके विमानस्थानमें लिखा है, कि प्रतिज्ञाकी उपलब्धि कारण ही हेतु है अर्थात् जिसके द्वारा प्रतिज्ञाकी उपलब्धि होती है उसीको हेतु कहते हैं। साध्यनिर्देशका नाम प्रतिज्ञा है। यह हेतु चार प्रकारका है, प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य और उपमान। इन चारों हेतु द्वारा जो उपलब्ध होता है उसे तत्त्व कहते हैं।

४ व्याकरणशास्त्रमें लिखा है, 'षष्ठी हेतुप्रयोगः' हेतु शब्दके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति होती है। ५ तैजस धातु विशेष।

हेतुक (सं० पु०) १ कारण। (त्रि०) २ कारणसंबंधी।

हेतुभेद (सं० पु०) ज्योतिषमें ग्रहयुद्धका एक भेद।

हेतुमान् (हिं० वि०) १ जिसका कुछ हेतु या कारण हो। (पु०) २ वह जिसका कुछ कारण हो, कार्य।

हेतुरूपक (सं० क्ली०) रूपक अलङ्कारविशेष। जहां प्रकृत विषय अर्थात् वर्णनीय विषयमें गाम्भीर्यादि हेतु द्वारा आरोप होता है, वहां हेतु रूपक होगा।

हेतुवाद (सं० पु०) हेतोर्वादः। १ हेतुकथन, तर्कविद्या। २ कुतर्क, नास्तिकता।

हेतुवादिक (स ० लि०) हेतुवादी।

हेतुवादिन् (सं० लि०) हेतु' वदति वद-णिनि। १ तार्किक।, दलील करनेवाला। २ कुतर्की, नास्तिक।

हेतुविद्या (स' ० स्त्री०) तर्क विद्या, हेतुशास्त्र।

हेतुशास्त्र (स' ० क्ली०) तर्कशास्त्र।

हेतुहिल (स' ० पु०) एक बहुत बडी स'ख्या।

हेतुहेतुमद्भाव (स' ० पु०) कार्यकारणभाव, कारण और कार्यका स'व'ध।

हेतुहेतुमद्भूतकाल (स' ० पु०) व्याकरणमें क्रियाके भूतकालका एक भेद। इसमें ऐसी दो बातोंका न होना सूचित होता है जिनमें दूसरी पहली पर निर्भर होती है। जैसे,—यदि तुम ध्यान लगा कर पढ़ते, तो परीक्षामें अवश्य उत्तीर्ण होते।

हेतूत्प्रेक्षा (स' ० स्त्री०) उत्प्रेक्षालङ्कार। जहा हेतु द्वारा उत्प्रेक्षा होती है, वहां यह अलङ्कार होता है।

उत्प्रेक्षा देखो।

हेतूपमा (स' ० स्त्री०) उपमालङ्कारविशेष। जहा हेतु द्वारा उपमा होती है, वहा यह अलङ्कार हुआ करता है।

हेत्वन्तर (स' ० क्ली०) प्रकृति हेतुमें वाच्यविकार, हेतुकथन। (चरक, वि० ८ अ०)

हेत्वपह्नुति (स' ० स्त्री०) वह अपह्नुति अलकार जिसमें प्रकृतके निषेधका कुछ कारण भी दिया जाय।

हेत्वाभास (स' ० पु०) हेतुदोष। जो यथार्थमें हेतु नहीं है, फिर भी हेतुकी तरह प्रतीत होता है उसे हेत्वाभास कहते है। न्यायदर्शनमें हेत्वाभास पाच प्रकारका कहा है, अनैकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित और कालात्ययोपदिष्ट। साधारण, असाधारण और अनुपस'हारीभेदसे अनैकान्तिक हेत्वाभास भी तीन प्रकारका है। जो कुछ कुछ हेतुकी तरह मालूम होता है अर्थात् पहले हेतुके जैसा प्रतीत होता है, पर यथार्थमें हेतु नहीं' है उसीको हेत्वाभास कहते हैं। गौतमने न्यायदर्शनमें इस हेत्वाभासके पांच नाम बताये हैं, यथा—सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरण, सम, साध्यसम, अतीत काल या कालातीत। सव्यभिचारका दूसरा नाम अनैकान्तिक है। (भाषापरिच्छेद)

कणाद वैशेषिकदर्शनमें हेत्वाभासको तीन प्रकारका बताया है, अप्रसिद्ध, असन् और सन्दिग्ध। जिस हेतुकी प्रसिद्धि नहीं है, उसका नाम अप्रसिद्ध है। जो हेतु पक्षमें या साध्यके अधिकरणमें नहीं' रहता, उसका नाम असन् है। इसका दूसरा नाम विरुद्ध भी है। साध्यके साथ जिस हेतुकी व्याप्ति नहीं' है, साध्याभावके साथ व्याप्ति है, वही हेतु विरुद्ध है। अतएव यह अप्रसिद्धके अन्तर्गत है। जो हेतु पक्षमें विद्यमान नहीं' रहता, वह असन् है। 'ह्रदो द्रव्य' धूमात्' यहां धूम रूप हेतु ह्रदरूप पक्षमें विद्यमान है, इसलिये वह असन् है।

विषाणित्व हेतु करके गोत्वसाधन करनेमें विषाणित्व हेतु सन्दिग्ध या अनैकान्तिक है। क्योंकि, गोत्वसाध्य, विषाणित्व हेतु है। गोपशुके जिस प्रकार विषाण है, महिषादिके भी उसी प्रकार श्रृङ्ग हैं, अतएव विषाणित्व हेतु गोत्वरूप साध्यके अधिकरण गो पशुमें हैं, इससे साध्यके साथ सम्बन्ध है। साध्यगोत्वके अभावका अधिकरण महिषादिमें है, इस कारण साध्यभावके साथ भी सम्बन्ध है। अतः विषाणित्व हेतु अनैकान्तिक है। विषाणित्व इस हेतु द्वारा गोत्वका निश्चय नहीं' हो सकता, गोत्वमें सन्देह मात्र हो सकता है, इस कारण वह हेतु सन्दिग्ध है। ये सब हेत्वाभास वैशेषिक मत-सिद्ध हैं'। इन सब हेतु द्वारा साध्यका निश्चय नहीं' होता, इससे ये सब हेतु दुष्ट हेतु हैं।

चरक विमानस्थानके ८वें' अध्यायमें भी हेत्वाभासका विशेष विवरण लिखा है।

हेनजादा—ब्रह्मदेशमें इरावती विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १७' २०'से १८' ३१' उ० तथा देशा० ९४' ४८'से ९५' ४७' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २८७० वर्गमील है। इसके उत्तरमें प्रोम जिला, पूर्वमें इरावती नदी, दक्षिणमें थरावदी और बेसिन जिला तथा पश्चिममें आराकन-योमा शैलमाला है। यह जिला पश्चिममें इरावतीसे ले कर एक विस्तृत समभूमि है। मध्य और दक्षिण पूर्वांशको छोड़ समूचा जिला एक बाधसे घिरा हुआ है। आराकान पर्वतमाला

ही इस जिलेका प्रधान शैल है। मायानङ्गके पास इस शैलमालाकी ऊंचाई समुद्रकी तहसे ४००३ फुट है। इसका ढालुवा भाग गहरा और घने जङ्गलसे ढका है। इरावती नदी उत्तरसे दक्षिणकी ओर जिलेके बीचसे हो कर बह गई है।

इस जिलेमें ५ शहर और २३४३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५ लाखके करीब है। वर्मीकी संख्या सैकड़े पीछे ८७ है। यहांकी प्रधान उपज धान है। जिले भरमें अभी ४ स्पेशल, २५ सिकेण्ड्री, ३०० प्राइमरी और ५०० एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ५ अस्पताल और १ चिकित्सालय है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १७° ३६´ से तथा देशा० ९५° ३०´ पू०के मध्य इरावतीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या २१ हजारके लगभग है। १८७४ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। यहां एक ऐङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल तथा अन्यान्य स्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक म्युनिसिपल अस्पताल है जिसमें २० रोगी रखे जाते हैं।

हेम (सं० क्ली०) हि-मन्। १ सुवर्ण, सोना। २ माषक परिमाण, एक माशेकी तौल। ३ कृष्णवर्णाश्व, बादामी रंगका घोड़ा। ४ बुद्धका एक नाम। ५ स्वर्णपिण्ड, सोनेका टुकड़ा। ६ हिम, पाला। ७ ययातिवंशज रुषद्रथके पुत्रका नाम। (विष्णुपु० ४।१८।१) ८ बुधग्रह।

हेमक (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) २ सुवर्णयुक्त। ३ सुवर्णनिर्मित, सोनेका।

हेमकक्षा (सं० त्रि०) स्वर्णयुक्त कक्ष।

हेमकन्दल (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

हेमकमल (सं० क्ली०) सुवर्णकमल, स्वर्णपद्म।

हेमकर (सं० पु०) १ शिव। २ सूर्य।

हेमकर्त्तृ (सं० पु०) सुवर्णकार, सुनार।

हेमकान्ति (सं० स्त्री०) १ दारुहरिद्रा, वन-हलदी। २ आंबा हलदी। ३ सुवर्णकी कान्ति। (त्रि०) ४ स्वर्णद्युति, सोनेके समान कान्तिवाला।

हेमकार (सं० पु०) हेमकर्त्ता, स्वर्णकार, सुनार।

हेमकिञ्जल्क (सं० क्ली०) नागकेशरपुष्प।

हेमकूट (सं० पु०) हिमालयके उत्तरका एक पर्वत। यह किंपुरुषवर्ष और भारतवर्षकी सीमा पर स्थित है। इसकी लम्बाई नव्वे हजार योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है। (भागवत ५।१६ अ०)

हेमकूट्य (सं० पु०) जनपदविशेष। बृहत्संहिताके कूर्मविभागस्थलमें लिखा है, कि अग्निकोणमें कोशल, कलिङ्ग, श्मश्रुधर और हेमकूट्य आदि देश अश्लेषादि तीन नक्षत्रमें अवस्थित हैं। (बृहत्सं १४ अ०)

हेमकृष्टि (सं० स्त्री०) स्वर्णाकर्षणयोग्य। (रस० चि० ३अ०)

हेमकेतकी (सं० स्त्री०) स्वर्णकेतकी।

हेमकेली (सं० पु०) अग्नि, आग।

हेमकेश (सं० पु०) शिव, महादेव।

हेमक्षीरी (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, सोनाखिरनी। इसके मूलको चोक कहते हैं।

हेमगन्धिनी (सं० स्त्री०) रेणुका नामक गन्धद्रव्य।

हेमगर्भ (सं० त्रि०) १ जिसके बीचमें सुवर्ण हो। आद्यश्राद्धमें तिलदानस्थलमें हेमगर्भ तिल दान करना होता है। (पु०) २ उत्तर दिशाका एक पर्वत।

हेमगर्भपोट्टली (सं० स्त्री०) यक्ष्मरोगकी एक औषध।

हेमगिरि (सं० पु०) १ सुमेरुपर्वत। २ नैरृतकोणस्थित देशभेद। (बृहत्सं० १४।१६)

हेमगुह (सं० पु०) असुरभेद। (भारत)

हेमगौर (सं० पु०) १ किङ्किरात वृक्ष। (त्रि०) २ स्वर्णवत् गौरवर्णयुक्त।

हेमगौराङ्ग (सं० त्रि०) स्वर्ण तुल्य गौरवर्णाङ्गविशिष्ट।

हेमघन (सं० पु०) सीसा धातु।

हेमघ्नी (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

हेमचन्द्र—१ दाक्षिणात्यवासी एक सुप्रसिद्ध जैन पण्डित। ये हेमचन्द्राचार्य और हेमाचार्य नामसे जनसाधारणमें परिचित थे। गुजरातके सुविख्यात चौलुक्यराज सिद्धराज और कुमारपालके मन्त्रिरूप तथा राजनैतिक विषयमें भी इन्होंने विशेष पाण्डित्य दिखा कर यश उपार्जन किया था।

दाक्षिणात्यके अर्द्धाप्त (अहमदाबाद) प्रदेशके अन्तर्गत धन्धुक नगरमें चाचिग नामक एक व्यवसायी रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम पाहिनी था। पाहिनीने १०८९ ई०की कार्त्तिकी पूर्णिमाको एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रका नाम चाङ्गोदेव रखा गया।

जब बालक चाङ्गोदेवने आठवें वर्षमें कदम बढाया तब चाचिगने कुलप्रथानुसार उसे दीक्षा दी। दीक्षित पुत्रका नाम सोमचन्द्र रखा गया। शास्त्रानुशीलन करते करते उनकी बुद्धि बहुत प्रखर हो गई और ज्ञानज्योति दिन पर दिन बढ़ने लगी। यह देख कर प्रसिद्ध जैनाचार्य देवचन्द्रने उनका नाम बदल कर हेमचन्द्र रखा। तभीसे चाङ्गोदेव हेमचन्द्र नामसे ही प्रसिद्ध हुए। १११० ई०में हेमचन्द्रने इक्कीसवें वर्षमें पदार्पण किया। इस समय वे शास्त्रों और सिद्धान्तोंमें पारदर्शी हो गये। देवमूर्त्तिस्वरूप देवचन्द्रने उन्हें सूरिकी उपाधि दे कर उनके ज्ञानकी मर्यादा रखी।

इस समय एक दिन हेमचन्द्रके साथ संयोगवशतः चौलुक्यराज सिद्धराजकी भेंट हुई। हेमचन्द्रके वाक्यालाप पर मुग्ध हो राजाने उन्हें एक सुपण्डित समझा और उनका अच्छा सम्मान भी किया। अपने ज्ञान और बुद्धिके बल वे जैनधर्मके कट्टर पक्षपाती हो गये। वे शास्त्रकी मर्यादा-रक्षा कर जैन धर्माचारोंका बडी श्रद्धासे प्रतिपादन करते थे। इस विषयमें उनके साथ जैनमतविरोधी महाराज सिद्धराजका विरोध खडा हो गया। राजाको जब मालूम हुआ, कि हेमचन्द्र राजानुग्रहके भिखारी नहीं है, अपने धर्म पर एकदम अटल हैं तब उनके प्रति जो बुरा बर्त्ताव किया था, उस पर उन्हें बडा पछतावा हुआ। इस प्रकार आत्मग्लानि होनेसे राजाने हेमचन्द्रसे क्षमा मागी।

अनन्तर एक दिन राजा सिद्धराज हेमचन्द्रको ले कर सोमनाथपाटनमें गये। यहा आ कर उन्होंने एक नये उपायसे लिङ्गपूजा की। सिद्धराजके राज्यकालमें हेमचन्द्रने राजाका नाम जोड कर 'सिद्ध हेमचन्द्र' नामक एक व्याकरण तथा उसके सूत्र और वृत्तिकी रचना की। उस व्याकरणमें राजाका कोई विशेष उल्लेख नहीं रहनेसे सभाके पण्डितोंने इसका प्रतिवाद किया। इस पर हेमचन्द्रने, प्रति परिच्छेदके अन्तमें राजाका गुणगरिमाज्ञापक एक एक श्लोक रच डाला। इसी समय वे 'हैमी नाममाला' या 'अभिधानचिन्तामणि अनेकार्थ नाममाला'की रचना कर जनसाधारणमें प्रसिद्ध हो गये। इसके बाद ही इन्होंने व्याकरणमें सोलाङ्किवंशके इतिहासकी शिक्षा देनेके लिये 'द्व्याश्रयकोष' नामक एक ग्रन्थकी रचना की थी।

राजा कुमारपालने सिंहासन पर बैठ कर प्रसिद्ध पण्डित हेमचन्द्रसूरिको बड़े सम्मानसे राजसभामें आसन प्रदान किया था। स्वयं राजा कुमारपालने उनसे दीक्षा ली थी। तभीसे राजधर्मके साथ उनका सम्बन्ध बढ़ गया और सभी विषयोंमें उन्होंने अधिक प्रधानता लाभ की।

जब हेमचन्द्रके पाण्डित्य पर राजा कुमारपाल आकृष्ट हो रहे थे, तब एक दिन राजाने पण्डितवरसे पूछा 'मैं एक महान् धर्मकीर्त्ति स्थापन करना चाहता हूं, कृपया बतावें, कि कौन काम करनेसे मेरी पुण्यकीर्त्ति अक्षय होगी?' हेमचन्द्रने बड़े उत्साहसे जवाब दिया 'महाराज! सोमनाथ-मन्दिरका जीर्णोद्धार करना एक बडा काम है, आप उसका सम्पादन करके पुण्य और यश लूटे।' इस प्रकार हेमचन्द्र राजाके चित्त पर धीरे धीरे दखल जमाने लगे। मन्दिरका संस्कारकार्य्य समाप्त होने पर उन्होंने राजाको 'अहिंसा' व्रतमें दीक्षित किया। अनन्तर सभाके अन्यान्य ब्राह्मण और राजपुरोहित हिंसाप्रणोदित हो हेमाचार्य्यके अधःपतनका उपाय सोचने लगे।

इस समय एक सुयोग उपस्थित हुआ। सोमनाथ मन्दिरका पुनर्संस्कार होनेके बाद राजा उसे देखने और देवमूर्त्तिकी अभिषेकक्रिया पर्य्यवेक्षण करने स्वय सोमनाथ जानेका विचार करने लगे। ब्राह्मणोंने राजाका क्रोध बढानेके लिये झूठमूठ उनसे कहा, 'हेमाचार्य्य सोमनाथ जाना नहीं चाहते हैं।' यह सुन कर राजा अवाक् हो रहे। उन्होंने स्वयं हेमाचार्य्यको वहां जानेके लिये निमन्त्रण भेजा। हेमचन्द्रने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, पर कहला भेजा, कि वे संन्यासी हैं, पैदल चलना ही उनका कर्त्तव्य है, राहमें गिर्नारका दर्शन करते हुए वे शीघ्र ही सोमनाथ-मन्दिरमें राजासे मिलेंगे। तदनुसार राजा सोमनाथ गये और कुछ दिन रहनेके बाद भी जब हेमाचार्य्य नहीं आये, तब वे उनका संवाद पानेके लिये बडे उत्सुक होने लगे। इसी समय ब्राह्मणोंसे किसीने आ कर उनका मृत्यु-संवाद सुनाया। किसीने यह भी कहा, कि जैन लोग शिवपूजा नहीं करते, इसीलिये कोई

हीला लगा कर हेमाचार्य यहां नहीं आये, कहीं दूसरी जगह चले गये होंगे। इस प्रकार जब वे लोग हेमाचार्यके विरुद्ध राजाके कान भर रहे थे, उसी समय हेमचन्द्र वहां पहुंच गये। उन्होंने देवमूर्त्तिके सामने खड़े हो कर निम्नोक्त श्लोकसे भगवानूको प्रणाम किया—

"भवजोवाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णु वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥
यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया-तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते॥"

राजा कुमारपाल हेमचन्द्रको इस प्रकार महेश्वरकी आराधना करते देख मुग्ध हो रहे। उनकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने राजप्रासादोंकी हिन्दू-देवमूर्त्तियोंके मध्य शान्तिनाथ तीर्थङ्करकी प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित की। राजाका चित्त हेमचन्द्रके प्रति धीरे धीरे आकृष्ट हो रहा था। अन्तमें उन्हींके उपदेश और प्रार्थनानुसार राजाने सबोंके सामने प्रकाश्य भावमें जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण की।

अनन्तर राजाने फरमान निकाला, कि उनके राज्यमें कोई भी जीव-हिंसा नहीं कर सकता। जो इस प्रकार अवैधभावमें पशुहिंसा करेंगे उन्हें राजदण्ड मिलेगा। अनहिलवाडके एक बनियेने एक यूक (चीलर)को मारा था, इस कारण उसकी अतुल धनसम्पत्ति ले कर राजाने युका-विहारकी प्रतिष्ठा की थी। यथार्थमें इसी समय गुर्जरप्रदेशमें ब्राह्मण्यधर्मका विलोप हुआ और जैनधर्मकी प्रधानता स्थापित हुई।

कुमारपालके राज्यकालमें हेमचन्द्रने संस्कृत और प्राकृतमें कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे। उनमेंसे अध्यात्मोपनिषद् या योगसूत्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, परिशिष्टपर्व, प्राकृतशब्दानुशासन, द्व्याश्रय (दैयाशराय), छन्दोनुशासन, लिङ्गानुशासन, देशी नाममाला और अलङ्कारचूड़ामणि प्रधान हैं। ११७२ ई०को ८४ वर्षकी उमरमें हेमचन्द्रका तिरोभाव हुआ। उनका देह-संस्कार हो जाने पर कुमारपालने गुरुदेवके प्रति अत्यन्त भक्ति दिखला कर उस चिताभस्मको कपालमें लगाया। पीछे राजाके अनुचर और अन्यान्य लोग वहां आ कर चिता भस्म लेने लगे। देखते देखते उस जगह एक बड़ा सा गड्ढा बन गया। उसका नाम 'हेमखाद' रखा गया।

इन्होंने जो अभिधान प्रणयन किया है, वह भी हेमचन्द्र नामसे प्रसिद्ध है।

हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय—एक प्रसिद्ध और श्रेष्ठ बंगाली कवि। १२४५ बङ्गाब्दकी ६ठी वैशाखको हुगली जिलेके गुलिटा ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पिता कैलासचंद्रके पुत्रके पढाने लिखानेकी ओर उतना ध्यान नहीं था।

६ष्ठ वर्ष बीतने पर मामा इन्हें कलकत्तेके खिदिरपुरमें ले आये और हिन्दूकालेजमें भर्त्ती करा दिया। हेमचन्द्रने हिन्दूकालेजमें जुनियर परीक्षा दे कर वृत्ति पाई। १८५८ ई०में इन्होंने सिनियर और एफ० ए० तथा १८६२ ई०में बी० एल० परीक्षा पास की। इसके बाद वे हवड़ा और श्रीरामपुरमें मुन्शफके पद पर नियुक्त हुए। इसी समय इनके पिताका देहान्त हुआ। कुछ दिन पीछे वे कलकत्ता भवानीपुरमें विवाह कर खिदिरपुरमें चिरस्थायी भावसे रहने लगे।

मुन्शफका काम शुरू करनेके एक मास बाद गवर्मेण्टने इन्हें दूर देशान्तर जानेका हुकुम दिया। परन्तु स्नेहमयी मातामहीने इन्हें दूर देश जानेसे रोका। अतः मुन्शफके कामसे इन्हें इस्तीफा देना पड़ा। तभीसे स्वाधीनचेता हेमचन्द्रने वकालती पकड़ी।

कुछ समय बाद ये 'गवर्मेण्ट सिनियर 'प्लीडर'के पद पर चुने गये। इसी समयसे इनके कवित्वका विकाश आरम्भ हुआ है।

१८६१ ई०को हिन्दू कालेजमें पढ़ते ही समय हेमचन्द्रकी प्रवृत्ति कविता लिखनेकी ओर झुकी थी। वह प्रतिभा दिन पर दिन बढ़ती चली गई। इसके कुछ समय बाद ही उनकी 'चिन्तातरङ्गिणी' प्रकाशित हुई। इसकी भाषा सरल और प्राञ्जल तथा शान्तिरसपूर्ण थी। यह पुस्तक विश्वविद्यालयकी प्रथम परीक्षाकी पाठ्यरूपमें निर्वाचित हुई। १८७२ ई०में इनकी कवित्व-प्रतिभाकी ज्योति 'भारतसङ्गीत' में खूब चमक उठी थी। १२७२ बङ्गाब्दकी २१वीं वैशाखको इनका द्वितीय ग्रन्थ 'वीरबाहुकाव्य' प्रकाशित हुआ। इसके कुछ समय बाद ही कवितावलीका विकाश हुआ। इस कवितावलीमें इनके भारतसङ्गीत फिरसे छापे गये।

अनन्तर 'आशाकानन', 'छायामयी', 'दशमहाविद्या' आदिका प्रचार हुआ। इसके बाद ही इनकी काव्यकलाका कीर्त्तिस्तम्भ और वङ्गसाहित्यभण्डारको उज्ज्वलरत्न 'वृत्रसंहार' मुद्रित हुआ। कहीं कहीं वृत्रसंहारका कवित्वविकाश प्रसिद्ध कवि मधुसूदनके मेघनादवधकी उक्तिसे श्रेष्ठ है। 'चित्तविकाश' कविवरकी अन्तिम कीर्त्ति है। यह अन्धावस्थामें काशीधाममें रहते समय लिखा गया था।

हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय।

उपार्जित धनका यथेच्छव्यवहार करके बुढ़ापेमें इन्हें भारी अर्थकष्ट हुआ था। इस समय दैव विड़म्बनासे ये अंधे हो गये, इस कारण कविका अंतिम जीवन बड़ा ही कष्टमय हो उठा। जिन्होंने वकालतीके समय बहुत रुपये कमाये, उन्हींको आज गवर्मेण्टकी ओरसे सिर्फ २५)रु० मासिक वृत्ति मिलने लगी। १३१० वङ्गाब्दकी ११वीं जेठ (१९०३ ई० मईमास)में इनका देहान्त हुआ।

हेमचूर्ण (सं० क्ली०) सोनेकी बुकनी।

हेमज (सं० पु०) वङ्ग, रांगा।

हेमजीवन्ती (सं० स्त्री०) पीत जीवन्ती, स्वर्णजीवंती।

हेमज्वाल (सं० पु०) हेमवर्णा ज्वाला यस्य। अग्नि, आग। (शब्दमाला)

हेमज्वालालङ्कृत (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

हेमतरु (सं० पु०) धुस्तूर, धतूरा।

हेमतार (सं० क्ली०) तुत्थ, तूतिया।

हेमतारक (सं० त्रि०) तुच्छ, नीच।

हेमताल (सं० पु०) जनपदविशेष। बृहत्संहितामें लिखा है, कि यह जनपद उत्तरको ओर २४, २५ और २६ नक्षत्रमें अवस्थित है। (बृहत्सं० १४।२८)

हेमतुला (सं० स्त्री०) तौलमें किसीके बराबर सोनेका दान, सोनेका तुलादान।

हेमदत्ता (सं० स्त्री०) अप्सराभेद। (हरिवंश)

हेमदीनार (सं० पु०) स्वर्णमुद्रा, अशरफी।

हेमदुग्ध (सं०) उडुम्बर वृक्ष, यज्ञडुमर, गूलर।

हेमदुग्धक (सं० पु०) १ उडुम्बर वृक्ष, गुलरका पेड। (त्रि०) २ पीतवर्ण क्षीरयुक्त, जिसमें पीला दूध हो।

हेमदुग्धा (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी।

हेमदुग्धिन् (सं० पु०) यज्ञोडुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़।

हेमदुग्धी (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी।

हेमधन्वा (सं० पु०) ग्यारहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

हेमधान्यक (सं० पु०) १ तीन रत्तीकी तौल। २ तिलका पौधा।

हेमन् (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (रघु० ३।१०) २ धुस्तूर, धतूरा। ३ केशर। ४ हिम, पाला। (पु०) ५ बुधग्रह।

हेमनाथरस (सं० पु०) प्रमेह और बहुमूत्ररोगकी एक उत्कृष्ट औषध। (भैषज्यरत्ना० सोमरोगाधि०)

हेमनाभि (सं० पु०) स्वर्णनाभि, वह रथ जिसका धूरा सोनेका हो।

हेमनेत्र (सं० पु०) यक्ष। (भारत सभाप०)

हेमन्त (सं० पु० क्ली०) ऋतुविशेष, 'अगहन और पूसके महीने। पर्याय—हैमन, उष्मासह, शरदन्त, हिमागम।

हेमन्त ऋतु स्निग्ध और शीतल है। इस समय प्रायः सभी द्रव्य मधुरभावापन्न तथा प्राणियोंका जठरानल प्रदीप्त रहता है। इस ऋतुमें पित्तका उपशम

तथा वायु और कफ कुपित होता है। अतएव इस ऋतुमें ऐसी वस्तुका खाना उचित है जो वायु और कफको रोक सके।

इस ऋतुमें एक पहरके भीतर भोजन, अम्ल द्रव्य, मधुर द्रव्य, लवण रसयुक्त द्रव्यभोजन, तैलादि अभ्यङ्ग, रौद्र-सेवन, व्यायाम, गोधूम, इक्षु विकृति, शालितण्डुल, माषकलाय, मांस, पिष्टान्न, नये चावलका भात, तिल, मृगनाभि, गुग्गुल, कुंकुम, अगुरु, शौचादि क्रियामें उष्ण जल, स्निग्ध द्रव्य, स्त्रीसंसर्ग तथा गुरु और उष्ण अर्थात् पशमादि निर्मित वस्त्र, ये सब द्रव्य हितकर हैं। (भावप्र०) हेमन्त कालमें जो जाड़ेसे बचनेके लिये अग्निदान करते हैं उन्हें श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है।

हेमन्तनाथ (सं० पु०) कपित्थ, कैथ।

हेमपर्वत (सं० पु०) १ सुमेरु पर्वत। (हलायुध) २ दानके लिये सोनेकी राशि।

हेमपिङ्गल (सं० त्रि०) स्वर्णाभ पिङ्गलवर्णयुक्त।

हेमपुष्कर (सं० क्ली०) हेमपद्म, हेमकमल।

हेमपुष्प (सं० क्ली०) १ अशोकपुष्प। २ जवापुष्प। ३ अशोक। ४ नागकेशर। ५ अमलतास, गिरमाला। ६ चम्पक, चंपा।

हेमपुष्पक (सं० पु०) १ चम्पक वृक्ष, चंपेका पेड़। २ लोध्र, लोध।

हेमपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ स्वर्णयूथिका, सोनजुही। २ गुडहर।

हेमपुष्पी (सं० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ स्वर्णजीवनी। ३ इन्द्रवारुणी, ग्वाल ककड़ी। ४ स्वर्णुली, अमलतास। ५ मुषली, मूसली कंद। ६ कण्टकारी, भटकटैया।

हेमप्रभ (सं० त्रि०) सुवर्ण सदृश प्रभाविशिष्ट।

हेमप्रभ सूरि—एक विख्यात जैन ज्योतिर्विद्, देवेन्द्रसूरिके शिष्य। इन्होंने त्रैलोक्यप्रकाश और लग्नशास्त्र प्रणयन किये।

हेमप्रभा (सं० स्त्री०) विद्याधरी।

हेमफला (सं० स्त्री०) स्वर्णकदली, एक प्रकारका केला।

हेममय (सं० त्रि०) १ हेमस्वरूप। २ सुवर्णमय। ३ सुवर्ण निर्मित।

हेममाला (सं० स्त्री०) १ यमपत्नी। २ सोनेकी माला। ३ स्वर्णस्रज्, सोनेका हार।

हेममालिन् (सं० पु०) १ सूर्य। २ एक राक्षस जो खरका सेनापति था। (रामायण ३।४०।२०) (त्रि०) ३ सुवर्णमालाविशिष्ट, सुवर्णहारयुक्त।

हेममित्र (सं० क्ली०) स्फटिकारी, फिटकरी।

हेमयूथिका (सं० स्त्री०) स्वर्णयूथिका, सोनजुही।

हेमरागिणी (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

हेमरेणु (सं० पु० स्त्री०) स्वर्णरेणु, सोनेकी धूल।

हेमल (सं० पु०) १ स्वर्णकार, सोनार। २ कृकलास, गिरगिट। ३ प्रस्तरभेद, कसौटी। ४ मधुरनिष्पाव।

हेमलता (सं० स्त्री०) १ स्वर्णजीवन्ती। २ सोमलता। ३ ब्राह्मीशाक।

हेमलम्ब (सं० पु०) षष्टिसंवत्सरविशेष। वृहस्पतिकी गतिके अनुसार सप्तम पितृयुगके प्रथमवर्षका नाम हेमलम्ब है। यह वर्ष अशुभ है। इस वर्षमें ईतिभय और अत्यन्त वारिवर्षण होता है। (वृहत्सं० ८।३९ ४०)

हेमवत् (सं० त्रि०) हेमविशिष्ट, सुवर्णयुक्त।

हेमवती (सं० स्त्री०) १ स्वर्णजीवन्ती। २ वचा। स्वर्णक्षीरिणी।

हेमवर्ण (सं० पु०) १ गरुड़के पुत्र। २ बुद्धभेद। (त्रि०) ३ सुवर्ण सदृश वर्णविशिष्ट, सुनहरा।

हेमवर्णवती (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा।

हेमवल (सं० क्ली०) मौक्तिक, मोती।

हेमवल्ली (सं० स्त्री०) स्वर्णजीवन्ती, पीली जीवन्ती।

हेमव्याकरण (सं० क्ली०) जैनाचार्य हेमचंद्ररचित एक व्याकरण। हेमचन्द्र देखो।

हेमशङ्ख (सं० पु०) विष्णु।

हेमशिखा (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, भरभांड।

हेमशीत (सं० क्ली०) स्वर्णक्षीरी, भरभांड।

हेमशृङ्ग (सं० पु०) विष्णु।

हेमसागर (सं० पु०) पञ्जाबके पहाड़ोंमें आपे आप उगनेवाला एक पौधा। यह बगीचोंमें लगाया जाता है। इसे 'ज़खम हयात' भी कहते हैं।

हेमसार (सं० क्ली०) तुत्थ, तूतिया।

हेमसावर्णि (सं० पु०) मनुभेद।

हेमसिंह (सं० पु०) स्वर्णसिंहासन, सोनेका तख्त।

हेमसिंह—भविष्यब्रह्मखण्डवर्णित वर्द्धमानके एक राजा।

हेमसुता (सं० स्त्री०) पार्वती, दुर्गा।

हेमसूत्रक (सं० क्लो०) हारविशेष।

हेमसूरि (सं० पु०) हेमचन्द्र, अभिधानचिंतामणिके प्रणेता।

हेमहंसगणि—एक जैन पण्डित, रत्नशेखरके शिष्य। इन्होंने १४५८ ई०में उदयप्रभरचित आरम्भसिद्धिके ऊपर सुधी शृङ्गारवार्त्तिक नामक टीका लिखी है।

हेमहस्तिरथ (सं० पु०) महादानविशेष। इसमें सोनेका हाथी और रथ बना कर दान करना होता है। यह दान महापुण्यजनक है। हेमाद्रिके दानखण्ड और मत्स्यपुराणके २८२वें अध्यायमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

हेमा (सं० स्त्री०) १ अप्सराभेद। रामायणके किष्किन्ध्याकाण्ड ५१वें अध्यायमें इस अप्सराका विवरण लिखा है। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ३ स्वर्णजीवंती।

हेमाङ्ग (सं० पु०) १ गरुड़। २ सिंह। ३ सुमेरु। ४ ब्रह्मा। ५ चम्पक वृक्ष। ६ विष्णु। ७ सुवर्णमय शरीर। (त्रि०) ८ सुवर्णमय शरीरयुक्त।

हेमाङ्गद (सं० पु०) १ वसुदेवके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।४।४८) २ कलिङ्ग देशके एक राजाका नाम। ३ वह जो सोनेका बिजायठ पहने हो।

हेमाचल (सं० पु०) सुमेरु पर्वत।

हेमाड़पन्त—दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध महापुरुष। कब किस समय ये विद्यमान थे, उसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु आज भी उनका कीर्त्तिकलाप दाक्षिणात्यमें कई जगह टूटी फूटी हालतमें पड़ा देख पड़ता है। उनके यत्न और बहु व्ययसे जो सब पत्थरके मन्दिर और सीढ़ी लगे हुए तालाब बनाये गये थे, वे दाक्षिणात्यमें मुसलमान अभ्युदयके पहलेके हैं। उन सब मन्दिरोंकी शिलालिपिमें करीब १२५० ई०के समकालवर्त्ती अक्षर अंकित रहनेसे मालूम होता है, कि उक्त महापुरुष उस समय विद्यमान थे।

दाक्षिणात्यमें इस बातकी प्रसिद्धि है, कि द्वापरयुगमें हेमाडपन्त नामक एक प्रसिद्ध आयुर्वेदवित् रहते थे। उन्होंने लंकापति रावणके भाई विभीषणको रोगमुक्त कर बड़ा नाम कमाया था। उन्होंने ही उक्त राक्षसराजसे कुछ मयशिल्प जाननेवाले स्थपतिके लिये प्रार्थना की थी। राक्षसराज विभीषणने उनकी प्रार्थना पूरी की। पीछे हेमाडपन्तने उन शिल्पियोंके द्वारा दक्षिण भारतमें बहुतसे मन्दिर और सोपान लगे हुए कूप बनवाये। उन मन्दिरों या कूपोंकी गंथाईमें किसी प्रकारका मसाला नहीं लगाया गया है। इतिहास और किंवदन्तीमें वे सब ध्वस्त निदर्शन हेमाडपन्तकी कीर्त्ति कह कर प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिकयुगमें एक दूसरे हेमाडपन्तका अभ्युदय हुआ। यह एक विख्यात लेखक, मन्दिरनिर्माता और देवगिरिके यादववंशीय राजा रामचन्द्र देवके (१२७१ १३०८ ई०) प्रधान मन्त्री थे। बहुतेरे इस हेमाडपन्तको राजमन्त्री हेमाद्रिका नामान्तर बतलाते हैं। हेमाद्रि सर्वशास्त्रवित् महापण्डित और धर्मशील थे। उनके लिये जनसाधारणकी भलाईके लिये तालाब खुदवाना और धर्मके लिये मन्दिर बनवाना कुछ भी असम्भव नहीं है। जो हो, हेमाडपन्तकी कीर्त्तियोंमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें जो सब अक्षर खोदित देखे जाते हैं उनसे अनुमान किया जाता है, कि वे सभी महामतस्वी और प्रभूत शक्तिशाली महामन्त्री हेमाद्रिके ही समयसे आरम्भ हुए हैं। वे रामचन्द्रके परवर्त्ती यादवराजके शासनकालमें भी (१२६०-१३१८ ई०) राजामात्यपद पर प्रतिष्ठित थे। अतएव शिलालिपिके प्रमाणसे यदि हेमाद्रि और हेमाड़पन्तको एक व्यक्ति माना जाय, तो कोई आपत्ति नहीं। दाक्षिणात्यभूमके उत्तर बिना मसाले आदिके मेलसे पत्थरके जो सब मकान और मन्दिरादि प्राचीन हिन्दूप्रधानताके समय बनाये गये थे, वे सभी हेमाडपन्तकी कीर्त्ति माने जाते हैं। कनाड़ीभाषाप्रचलित देशभागमें हेमाड़पन्त जक्कनाचार्य्य नामसे परिचित थे। उस देशमें मुसलमानोंके पहले जिन सब हिन्दूस्थापत्यके निदर्शन विद्यमान हैं, वही जक्कनाचार्य्यकी कीर्त्ति समझे जाते हैं। हेमाद्रि देखो।

हेमाण्ड (सं० क्ली०) सुवर्णाण्ड, सुनहरा अंडा।

हेमाद्रि (सं० पु०) १ सुमेरुपर्वत। २ एक असाधारण

पण्डित। ये देवगिरिके यादववंशीय राजा जैत्रपालके पुत्र महादेव (१२६०-१२७१ ई०)के आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे। पीछे इन्होंने अपने शिक्षागुणसे तथा राज्येश्वर महादेवकी अनुकम्पासे श्रीकरणाधिपका (Chief Secretary) पद पाया था। धीरे धीरे वे उक्त राजाके प्रधान मन्त्री हो गये। ये वत्सगोत्रीय ब्राह्मण कामदेवके पुत्र थे। इनके पितामहका नाम वासुदेव और प्रपितामहका नाम वामन था।

१२७१ ई०में महादेवके स्वर्गवासी होने पर उनके लड़के आमनको राज्यच्युत कर राजा कृष्णके पुत्र रामचन्द्रने देवगिरिका सिंहासन अपनाया। रामचन्द्रके राज्यकालमें भी (१२७१-१३०९ ई०) हेमाद्रिने पूर्ववत् पद-मर्यादाको अक्षुण्ण रख राज-कार्य चलाया था।

राजनैतिक नाना विषयोंमें उलझे रहने पर भी ये देश और समाजकी भलाईके लिये कुछ ग्रंथ लिख कर प्रत्येक हिन्दूके निकट धन्यवादार्ह हो गये हैं। उनके रचित ग्रंथोंमें चतुर्वर्गचिंतामणि सर्वश्रेष्ठ है और उसे स्मृतिसागरका सारोद्धार कहने भी कोई अत्युक्ति नहीं। ऐसा विराट स्मृतिसार संस्कृत साहित्यमें बहुत कम है। उक्त ग्रंथका परिशेषखण्ड ही व्यवस्थाशास्त्रका सार-सङ्कलन है। इस अंशसे कालनिर्णय, कालनिर्णय-संक्षेप, तिथिनिर्णय, दानवाक्यावली, पर्जन्यप्रयोग, प्रतिष्ठा और लक्षणसमुच्चय नामक कुछ खंड पुस्तिका भी मिलती है। उनके व्रतखण्डके अन्तर्गत शान्ति, पौष्टिक और हेमाद्रि-निबंध (हेमाद्रीय) नामक दीधिति भी जनसाधारणमें विशेष परिचित है। दाक्षिणात्यके हिन्दूमात्र ही उन सब ग्रंथोंके निर्दिष्ट तत्त्ववाक्यानुसार जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं।

हेमाद्रि रचित 'आयुर्वेद-रसायन' वाग्भट महात्मा कृत अष्टाङ्गहृदयकी एक टीका तथा उनकी कैवल्यदीपिका वोपदेव-विरचित मुक्ताफलकी टीका है। शेषोक्त ग्रंथमें इन्होंने वैष्णवधर्मके सारसत्यकी व्याख्या की है। मुक्ताफलकार वोपदेव ही सुप्रसिद्ध मुग्धबोधव्याकरणके रचयिता थे। हेमाद्रि इन वोपदेवके भी प्रतिपालक माने जाते हैं।

ऊपर कहे गये ग्रंथोंको छोड़ हेमाद्रि-विरचित दे राज प्रशस्ति भी मिलती है। इनमें उन्होंने अपनी कविता और ऐतिहासिकताका यथेष्ट परिचय दिया है। हम उन प्रशस्तियोंसे देवगिरिके यादवराजवंशके और भी कितने राजाओंके नाम पाते हैं।

हेमाद्रिका (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, भरभांड।

हेमाद्रिजरण (सं० पु०) स्वर्णक्षीरी। स्वर्णक्षीरी देखो।

हेमाभ (सं० त्रि०) सुवर्णके सदृश आभाविशिष्ट।

हेमाम्बुज (सं० क्ली०) हेमपद्म, सुवर्णपद्म।

हेमाम्भोज (सं० क्ली०) सुवर्णपद्म।

हेमाल (सं० पु०) एक राग जो दीपकका पुत्र कहा जाता है।

हेमावती—कावेरी नदीकी एक उपनदी। यह कदूर जिलेमें जावलीसे निकल कर हासन जिलेमें बह गई है और प्रायः १२० मीलका रास्ता तै करनेके बाद तिप्पुरके पास कावेरीसे मिली है। नरूलेशपुरमें हेमावतीके ऊपर एक लोहेका पुल है।

हेमाह्व (सं० पु०) १ वनचम्पक, वनचंपा। २ धुस्तूर, धतूरा।

हेमाह्वा (सं० स्त्री०) १ स्वर्णजीवन्ती, पीली जीवन्ती। २ स्वर्णक्षीरी। ३ स्वर्णचम्पक।

हेमियानी (फा० स्त्री०) रुपया पैसा रखनेकी जालीदार लम्बी थैली जो कमरमें बांधी जाती है।

हेम्नन् (सं० पु०) बुधग्रह।

हेम्ना (सं० स्त्री०) संकीर्ण रागका एक भेद।

हेम्यावत् (सं० त्रि०) सुवर्णनिर्मित कक्ष्यायुक्त।

हेय (सं० त्रि०) हा (अचो यत्। पा ३।१।९७) इति यत् (ईद्यति। पा ६।४।६५°) इति आत ईत्। १ त्याज्य, छोड़ने योग्य। सांख्यदर्शनमें हेय, हान, हेयहेतु और हानोपाय ये चार विषय प्रतिपादित हुए हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकारके दुःख हेय अर्थात् छोड़ने लायक हैं। प्रकृति-पुरुषके संयोग द्वारा अविवेक ही हेयहेतु है। जब तक अविवेक रहता है, तब तक दुःख रहेगा। सांख्यदर्शन शब्द देखो।

हेयर (डेभिड)—एक उदार-हृदय अङ्गरेज। इन्होंने बङ्गालमें आ कर अशिक्षित बङ्गवासीको अङ्गरेजी शिक्षा

देनेमें बड़ा प्रयत्न किया था। इन्हींके अथक परिश्रमसे कलकत्ता महानगरीमें हिन्दूकालेज स्थापित हुआ जिससे बङ्गालमें अङ्गरेजी शिक्षा फैल गई। आज भी प्रेसिडेन्सी कालेजके मैदानमें डेभिड हेयरकी प्रतिमूर्त्ति विद्यमान है। उक्त कालेजसे सटा हुआ हेयर स्कूल उन्हींके सम्मानार्थ स्थापित हुआ है।

वङ्गदेश देखो।

हेर (सं० त्रि०) हि-रन्। १ मुकुटभेद, किरीट। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ आसुरीमाया।

हेरक (सं० पु०) १ चर, दूत। २ शिवानुचरभेद।

हेरना-फेरना (हिं० क्रि०) १ इधरका उधर करना। २ परिवर्त्तन करना, अदल बदल करना।

हेरफेर (हिं० पु०) १ चक्कर, घुमाव। २ वचनकी वक्रता, बातका आडंबर। ३ अदल बदल, उलट-पलट। ४ कुटिलयुक्ति, दांव पेच। ५ अन्तर, फर्क।

हेरम्ब (सं० पु०) १ गणेश। २ महिष, भैंसा। ३ धीरोद्धत नायक। ४ बुद्धविशेष। पर्याय—हेरुक, चक्रसम्बर, देव, वज्रकपाली, निशुम्भी, शशिशेखर, वज्रटीक। ५ तन्त्रसारमें हेरम्बगणेशके पूजायंत्र और मन्त्र आदिका विशेष विवरण लिखा है। ध्यान इस प्रकार है—

"मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दमसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभं।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां।
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखकं दोर्भिर्दधानं भजे॥"

हेरम्बक (सं० पु०) जनपदविशेष। (भारत सभाप०)

हेरम्बजननी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

हेरम्बसेन (सं० पु०) गूढ़बोध नामक वैद्यक ग्रन्थकार।

हेरम्बहट्ट (सं० पु०) दक्षिणदेशमें अवस्थित एक नगर।

हेरवा (हिं० पु०) तलाश, खोज।

हेरवाना (हिं० क्रि०) ढुंढ़वाना, तलाश कराना।

हेराना (हिं० क्रि०) १ खो जाना, न जाने क्या होना। २ अभाव हो जाना, न रह जाना। ३ नष्ट हो जाना, लापता होना। ४ फीका पड़ जाना, मंद पड़ जाना। ५ आत्मविस्मृत होना, अपनी सुध-बुध भूलना, लीन होना।

हेराफेरी (हिं० स्त्री०) १ हेरफेर, अदल बदल। २ यहांकी चीज वहां होना, इधरका उधर होना या करना।

हेरिक (सं० पु०) गुप्तचर, भेद लेनेवाला दूत।

हेरियाना (हिं० क्रि०) जहाजके अगले पालोंकी रस्सियां तान कर बांधना, हेरिया मारना।

हेरुक (सं० पु०) हि-उक-रुट्च। १ बुद्धभेद। २ महाकालगण। ३ शिवलिङ्गविशेष। ४ गणेश।

हेल (हिं० पु०) १ घनिष्ठता, मेलजोल। यह शब्द अकेले नहीं आता, मेलके साथ आता है। २ कीचड़ गोबर आदि। ३ गोबरका खेप। ४ मैला, गलीज़। ५ घृणा, घिन।

हेलञ्ची (सं० स्त्री०) हिलमोचिका, हेलञ्च नामका साग।

हेलन (सं० पु०) १ अवहेला, अवज्ञा करना, परवा न करना। २ अपराध, कसूर। ३ क्रीड़ा करना, केलि करना। ४ अवनति, नमन।

हेलना (हिं० क्रि०) १ क्रीड़ा करना, केलि करना। २ विनोद करना, हंसी ठट्ठा करना। ३ खेल समझना, परवा न करना। ४ तुच्छ समझना, अवज्ञा करना। ५ ध्यान न देना, परवा न करना। ६ प्रवेश करना, पैठना। ७ तैरना।

हेलमेल (हिं० पु०) १ मिलने जुलने, आने जाने, साथ बैठने आदिका सम्बन्ध; मित्रता। २ सङ्ग, साथ। ३ परिचय।

हेलया (सं० क्रि०) १ खेल ही खेलमें। २ सहजमें।

हेला (सं० स्त्री०) १ स्त्रियोंका शृंगारभावजनित क्रियाविशेष, संयोगके समय स्त्रियोंकी मनोहर चेष्टा। विलासादि स्त्रियोंके स्वाभाविक दश अलङ्कार हैं। इनमेंसे हाव, भाव और हेला ये तीन अङ्गज तथा शोभादि ७ प्रयत्नसाध्य हैं। सत्त्व देहमें अवस्थित है। इस सत्त्वसे भाव और हाव हुआ करता है। पीछे हावसे हेला होती है। २ अवज्ञा, तिरस्कार। ३ ध्यान देना, बेपरवाई। ४ क्रीड़ा, खेल। ५ शृङ्गारचेष्टा, प्रेमकी क्रीड़ा। ६ ज्योत्स्ना, चांदनी।

हेला (हिं० पु०) १ पुकार, चिल्लाहट। २ आक्रमण,

चडाई। ३ ठेलनेकी क्रिया या भाव। ४ मैला साफ करनेवाला, गलीज उठानेवाला। ५ उतना बोझ जितना एक बार टोकरे या नाव, गाडी आदिमें ले जा सके, खेप। ६ वारी, पारी।

हेलान (हिं० पु०) डांडेको नाव पर रखना।

हेलाराज (सं० पु०) १ एक प्राचीन काश्मीर ऐतिहासिक। २ एक प्रसिद्ध वैयाकरण, भूतिराजके एक पुत्र। इन्होंने 'वाक्यपदीयप्रकीर्णप्रकाश' की रचना की।

हेलाल (अ० पु०) १ दूजका चाँद। २ बंधी हुई पगडीकी वह उठी ऐंठन जो सामने माथेके ऊपर पडती है, बत्तीसी।

हेलाव—बम्बईप्रदेशके विजापुर और उसके आसपासकी अन्यान्य जिलावासी निम्न जातिविशेष। इन लोगोंका कहना है, कि इनका पूर्वपुरुष लंगड़ा था। लिङ्गायत धर्मप्रवर्त्तक बसवका कृपापात्र होनेके कारण सभी उसका आदर करते थे। पंगुके वंशधर होनेके कारण लोग इन्हें पांगाल कहते हैं।

ये लोग मराठी और कनाडी-भाषामें बोलचाल करते हैं। सभी गाय, भैंस और बैल आदि पालते हैं। तबाकू, गांजा, भंग आदि मादक द्रव्य भी ये लोग सेवन करते हैं। शराब पीने और मांस खाने पर भी ये गलेमें लिङ्ग धारण करते देखे जाते हैं।

रावणेश्वर और यल्लमा इनके कुलदेवता हैं। ब्राह्मणोंके प्रति इनकी यथेष्ट भक्ति है, परन्तु यजनादि कार्यों में ये कभी भी ब्राह्मणको नियुक्त नहीं करते। यहां तक, कि इस जातिका गुरु होता ही नहीं। ये लोग सिर्फ हिन्दूके पर्वदिनमें भिक्षा नहीं मांगते। श्रावणमासके प्रति सोमवारको ये एकाहारी रहते हैं तथा शिवरात्रिको पूर्णोपवासी रह कर देवाराधना करते हैं।

इन लोगोंमें बाल्यविवाह और विधवाविवाह प्रचलित है। बहुतेरे अवस्थानुसार एकसे अधिक विवाह कर सकते हैं। विवाहकालमें वरका पिता कन्याके कपालमें सिन्दूर लगाता है और कन्यापिताके उसे खिला देने पर विवाह सिद्ध होता है।

ये लोग शवदेहको मिट्टीमें गाडते हैं। तीसरे दिन मृतका रिश्तेदार एक छोटे मिट्टीके बरतनमें दूध और गुड़के मेलसे पिण्ड बना कर कब्र पर रखता है। पांचवें दिन गोबरसे घर और आंगन लीप पोत कर रातको ज्ञातिभोज देते हैं। इनमें कोई भी दलपति नहीं है। आपसमें पंचायत करके सामाजिक व्यापार निबटाते हैं। इन लोगोंकी सामाजिक अवस्था बहुत खराब है। अपने अपने लडकोंको पढानेकी ओर इन लोगोंका ध्यान बिलकुल नहीं है।

हेलावत् ((सं० त्रि०) हेलायुक्त, अवहेलाविशिष्ट।

हेलावुक (सं० पु०) अश्वविक्रयी, घोडा बेचनेवाला।

हेलि (सं० पु०) हिलति हिल (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४'११७) इति इन्। १ सूर्य। २ आलिङ्गन। ३ हेला, अवज्ञा।

हेलियोपोलिस (या सूर्यपुर)—एक प्राचीन देश जो अक्षा० ३४' १´ ३०´ उ० तथा देशा० ३६' ११´ पू०के मध्य दमस्कससे ४३ मील उत्तर पश्चिम अन्तिलिबानस पर्वतके ढालू देश पर अवस्थित है। बाइबिलमें यह बालिथ नामसे मशहूर है। अभी इसे बालबेक कहते हैं। यहां अति प्राचीन सूर्यमन्दिर रहनेसे ग्रीक ऐतिहासिकोंने हेलियोपोलिस या सूर्यके मन्दिर नामसे इसका उल्लेख किया है। कब यह नगरी बसाई गई, मालूम नहीं। ७४८ ई०में मुसलमानोंने यह स्थान आक्रमण किया। १४०० ई०में तैमुर यहांका सर्वस्व लूट ले गया। तभीसे इस स्थानकी समृद्धि बिलकुल जाती रही। अभी यहां किसान अरबजातिका वास है। वर्त्तमान शहरके पश्चिम प्रान्तमें सुप्राचीन सूर्यमन्दिर तथा अन्यान्य प्राचीन अट्टालिकाओंका भग्नावशेष दिखाई देता है।

हेलिक (सं० पु०) हेलि स्वार्थे कन्। हेलि देखो।

हेलितव्य (सं० त्रि०) अवहेलाके योग्य, फटकारके लायक।

हेलिन (हिं० स्त्री०) गलीज उठानेवाली, मेहतरानी।

हेली (हिं० स्त्री०) सहेली, सखी।

हेलुवा (हिं० पु०) पानीमें खडे हो कर एक दूसरेके ऊपर पानीका हिलोरा या छींटा मारनेका खेल।

हेलमन्द—उत्तर पश्चिम सीमान्तमें प्रवाहित एक पहाडी नदी। यह पघमान पर्वतके पश्चिम ढालूदेशमें फजिल्बाज नामक स्थानसे अक्षा० ३४' ४०´ उ० तथा देशा० ६८' २´ पू०के मध्य निकली है और दक्षिणपश्चिममें

प्रायः ७०० मीलका रास्ता तै कर सिस्तान-झीलमें गिरी है। पार होनेके लिये इसमें १४ जगह घाट हैं। नदीमें ष्टीमर भी आ जा सकता है। दोनों किनारा उर्वरा और सुन्दर वनराजिशोभित है। एक समय इसके किनारे वहुतसे लोगोंका वास था। पारसिकोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थ वन्दीदादमें यह स्थान 'हेतुमत्' और पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके निकट Etymander नामसे प्रसिद्ध है। इसका तीरवर्त्ती स्थान निरापद नहीं समझ कर अभी कितने स्थान जनशून्य और अरण्यमें परिणत हो गये हैं।

हेवज्र (सं० पु०) वौद्धदेवभेद।

हेवली—वम्बई-विभागके धारवार जिलेके अधीन एक शहर। यह अक्षा० १५° २८′ ५०″ उ० तथा देशा० ७२° १०′ पू०के मध्य विस्तृत है। यह शहर एक ऊंची जमीनके ऊपर वसा हुआ है। यहां एक पुराने किलेका खंडहर देख पडता है।

हेप (सं० क्ली०) घोड़ेका हिनहिनाना।

हेपक्रतु (सं० क्ली०) हेषारव, घोड़ेकी हिनहिनाहट।

हेपस् (सं० क्ली०) शब्दकारिणी हेति, वह हथियार जिसके चलते समय शब्द निकलता है।

हेपस्वत् (सं० त्रि०) शब्दयुक्त, शब्दविशिष्ट।

हेषा (सं० स्त्री०) अश्वध्वनि, घोड़ेकी हिनहिनाहट।

हेपिन् (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

हेष्टिंस (वारेन)—भारतवर्षके प्रथम गवर्नर जनरल। उस्टरसायरके अन्तर्गत डेलिस्फोर्डके हेष्टिंसवंश इङ्गलैण्डके राजा १म चार्ल्सके समय राजभक्तिके लिये प्रसिद्ध थे। चार्ल्सके साथ जब प्रजा लोगोंका युद्ध छिडा, तब इन लोगोंने चार्ल्सका पक्ष लिया था, इससे उन्हें गहरी हानि उठानी पडी थी। आखिर जब युद्धमें चार्ल्सकी हार हुई और प्रजाके विचारसे उनका शिर काट डाला गया, तब जीवनरक्षाके लिये ये लोग अपनी अपनी सम्पत्ति विजेता Commonwealth को दे देने वाध्य हुए। हेष्टिंसने इसी वंशमें १७३२ ई०को जन्म ग्रहण किया था। इनके जन्मके तीसरे वर्ष इनकी माताका देहान्त हुआ। पिता शीघ्र ही दूसरा व्याह कर अमेरिका चले गये। कुछ दिन वाद वहां उनकी भी मृत्यु हुई। थोडी उमरमें ही हेष्टिंस पितृ-मातृ-हीन हो गये। इनके लालन पालनका भार इनके पितामहके हाथ सौंपा गया। पढने लिखनेमें इनकी बुद्धि बड़ी तेज थी। इनके चचा इन्हें लंडन ले गये और वहीं ईटन स्कूलमें भर्त्ती कराया। इस छोटी सी उमरमें इनकी असाधारण बुद्धि देख सभी चकित हो गये। चचाके मरने पर इन्हें पढ़ना लिखना छोड देना पड़ा। अब ये इष्ट इण्डिया कम्पनीके अधीन एक किरानीका पद ग्रहण कर अठारह वर्षकी उमरमें १७५० ई०को वङ्गदेश आये। दो वर्ष यह काम करनेके वाद ये क्लाइवके अधीन पलासीकी लडाईमें गये और वहां अपनी वीरता दिखा कर उनके प्रेमपात्र वन गये। हेष्टिंसके साहस, कष्टसहिष्णुता और प्रत्युत्पन्नमतित्वकी यह पहली परीक्षा थी। इस समय इन्होंने कप्तान कैम्वेलकी विधवा स्त्रीसे विवाह किया। कुछ दिन वाद स्त्रीका भी देहान्त हो गया।

हेष्टिंस कुछ समय कम्पनीके एजेण्ट स्वरूप मुर्शिदावादमें थे। पीछे ये Bengal Council के सदस्य पद पर नियुक्त हुए। १३ वर्ष भारतवर्षमें कम्पनीके अधीन काम कर १७६४ ई०में ये विलायत लौटे। वहां इन्होंने अपने आत्मीय स्वजनके प्रतिपालनकी व्यवस्था की। परन्तु इस समय ये स्वयं अर्थ कष्ट पा रहे थे। लार्ड क्लाइवकी सहायतासे इन्होंने मन्द्राज कौंसिलमें द्वितीय सदस्यका पद पा कर १७६९ ई०में फिर भारतवर्षकी यात्रा कर दी।

राहमें ये वारन इम्होफकी पत्नीके रूप पर मुग्ध हो गये और पीछे उसके स्वामीकी अनुमति ले कर उससे विवाह कर लिया। कहते हैं, कि वारन इम्होफको पत्नीके वदलेमें हेष्टिंससे वहुत रुपये मिले थे। जर्मनीकी अदालतमें विवाहभङ्गका आदेश पा कर Baron Imhoff स्वदेश लौट गये। हेष्टिंसने जो परायी पत्नीको अपनी पत्नी वना लिया था, यह उनके जीवनमें एक वडा कलंक लग गया है।

इस समय वङ्गालके राजस्व विभागकी सर्वेसर्वा इष्ट-इण्डिया कम्पनी थी। परन्तु देशके शासन और शान्तिरक्षाका भार देशी लोगोंके ही हाथ था। दो भिन्न देशीय लोगोंके हाथ इस प्रकार दो तरहकी शासन-

व्यवस्थासे सारा देश अत्याचार और उत्पीड़नसे हाहाकार कर रहा था। इङ्गलैण्डके डिरेक्टरोंने वारेनहेष्टिंसको बङ्गालका गवर्नर बना कर इस प्रकार अराजकताको दूर करना चाहा। १७७२ ई०में हेष्टिंसने सभापतिका पद ग्रहण किया। इन्होंने बङ्गदेशके राजस्वके उगाहनेका सुप्रबंध कर महम्मद रेजा खाँ और राजा सिताब रायको हटा दिया।

इस समय कम्पनी पर १६० लाख पौंड कर्ज था। इतना भारी कर्ज चुकानेके लिये हेष्टिंसको कुछ असदुपायका अवलम्बन करना पड़ा था। पहले कोरा और इलाहाबाद ये दोनों जिले दिल्लीके सम्राट्ने कम्पनीको दे दिये थे। इसके बदले कम्पनी प्रति वर्ष २६ लाख रुपया देनेको राजी थी, पर पूर्वोक्त दोनों जिले सम्राट्ने फिर मराठोंको दे दिये। इस कारण वारेन हेष्टिंसने अयोध्याके वजीरकी सलाह ले कर खजाना भेजना बंद कर दिया। इसके बदले वे दोनों जिले वजीरको दे कर इन्होंने ५० लाख पौंड नकद उनसे ऐंठ लिये। इस प्रकार कम्पनीका ऋण चुकानेके लिये हेष्टिंसको नाना प्रकारके अन्याय कार्य करने पड़े थे। अयोध्याके वजीरने ४० लाख रुपये दे कर हेष्टिंसकी सहायता खरीद ली। हाफिज रहमत खाँने युद्धके खर्चके अलावा यह रुपया अयोध्याके नवाबको देना चाहा था। क्योंकि, वे उनकी सहायतासे रोहिलखण्ड पर अधिकार जमाना चाहते थे। हेष्टिंस अयोध्याके वजीरकी सहायतासे कम्पनीका सेनादल भेजनेको राजी हुए। उनके जीवनमें यह भी एक महाकलंक है। क्योंकि, रोहिलागण अंगरेजोंके महाबंधु और विश्वासी मित्र थे। ऐसी विश्वासघातकता पर लोगोंको उन पर संदेह होने लगा।

हाफिज रहमत खाँ देखो।

इस प्रकार असदुपायसे हेष्टिंसने कम्पनीका बड़ा कर्ज चुका दिया। केवल चुका ही नहीं दिया, वरन् काफी रुपये भी जमा कर लिये। इस कारण पीछे जब सदस्यगण कलकत्ता आये, तब इनके विरुद्ध खड़ा होनेका किसीको साहस नहीं हुआ। पर हाँ, सदस्योंमेंसे कोई भी पीछे हटनेवाले नहीं थे। चार सदस्योंमेंसे क्लेभरिं, फ्रान्सिस और मोनसन ये तीनों ही इनकी राजनीतिके विरोधी थे। उन लोगोंने आते ही सुजाउद्दौलाके पुत्र आसफउद्दौलाके साथ हेष्टिंसकी जो संधि हुई थी उसे बदल दिया और एक नई संधि कर ली। इलाहाबाद और कोरा जिला जो बेचा गया था, उसमें कोई हेर फेर नहीं किया गया। वजीरको कहा गया, कि वे कम्पनीकी सेनाओंका वेतन और बाकी रुपया चुका दें। ये सब काम बिना हेष्टिंसकी सलाहके किये गये।

इधर दाक्षिणात्यमें मराठोंके बीच गोलमाल खड़ा हो गया। मधुरावकी मृत्युके बाद उनके भाई नारायण राव पेशवा हुए। परंतु १७७३ ई०में उनके विरुद्ध जो षड्यंत्र रचा गया था उसीसे उनके प्राण गये। महाराष्ट्र देखो। कहते हैं, कि इस षड्यंत्रमें रघुनाथ भी शामिल थे। लेकिन पेशवाकी मृत्युके बाद शासनकार्यका प्रबंध नानाफड़नवीसके हाथ रहा। क्योंकि इस समय नारायण रावकी स्त्री गर्भवती थी। सन्तान होनेके पहले पेशवापद न्यायतः रघुनाथके ऊपर सौंपा नहीं जा सकता था। रघुनाथने इस प्रकार व्यर्थमनोरथ हो बम्बई सरकारसे सहायता मागी। बम्बई सरकार सालसेट और अन्यान्य निकटवर्ती स्थान ले कर रघुनाथको मदद देने तैयार हो गई। परन्तु सिन्दे और होलकर ये दोनों ही महाराष्ट्रराज फड़नवीसके पक्षमें थे। रघुनाथने बम्बई भाग कर अङ्गरेजोंके साथ सूरतमें संधि कर ली। इस संधि-शर्त्तके अनुसार वे नगद रुपये और राज्यका कुछ अंश छोड़ देनेको राजी हुए। वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें तीन हजार सेनासे मदद पहुंचानेको बाध्य हुई। यद्यपि बम्बईका गवर्नर यह संधि करके अपनी न्याय्य क्षमताकी सीमासे बहुत बढ़ गये थे, तथापि हेष्टिंसको बाध्य हो कर मराठोंके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत होना पड़ा। क्योंकि युद्धजयके पहले पीछे हटनेसे कोई लाभकी संभावना न थी। परन्तु कौंसिलके अन्यान्य सदस्यगण मराठोंके साथ युद्ध ठानना नहीं चाहते थे। उन लोगोंके इच्छानुसार पूना गवर्मेण्टके साथ वृटिश गवर्मेण्टने पुरन्दरमें संधि कर ली। इस संधि पर बम्बई सरकार और हेष्टिंस दोनों ही कौंसिलके सदस्यों पर बड़े बिगड़े। आखिर डिरेक्टरोंने सूरतकी संधि मंजूर कर हेष्टिंसके मानसंभ्रमकी रक्षा की।

हेष्टिंसके सौभाग्यवशतः उनके प्रतिद्वन्द्वी फ्लेमरिं और मोनसन इस लोकसे चल बसे । अब हेष्टिंस बेरोकटोक अपना रोबदाब चलाने लगे। अमेरिकामें वृटिश उपनिवेशोंने जब ग्रेट वृटेनके विरुद्ध अपनी स्वाधीनता घोषित की, तब फरासी लोगोंने भी उन्हें साथ दिया। इधर पूनाके महाराष्ट्रपति फरासी साहाय्य की प्रत्याशा कर रहे थे, पर हेष्टिंसके भेजे हुए सेनापति गोडर्डने मराठोंको परास्त किया।

इधर महाराष्ट्रीय गोलमाल की सुविधा पा कर हैदर अली अपना राज्य बढ़ा रहा था। उधर फरासी और अङ्गरेजोंके बीच जब युद्ध चल रहा था, तब वे मोरिससमें फरासी गवर्मेण्टके साथ पत्र व्यवहार कर रहे थे। इस पर हेष्टिंसने भारतवर्षमें फरासीके अधिकृत स्थानोंको दखल करना शुरू कर दिया। जब अङ्गरेज लोग माही पर अधिकार कर बैठे, तब हैदरअलीने अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। युद्धमें अङ्गरेजोंकी ही जीत हुई। पीछे हैदरअलीके लड़केने उनसे संधि कर ली। इस संधिके अनुसार दोनो पक्षको अपना अपना अधिकार मिल गया।

हेष्टिंस केवल वृटिश साम्राज्यको फैलाना ही चाहते थे सो नहीं, साम्राज्यको दृढ़ शासनसे बांधनेके लिये उनकी प्रबल इच्छा थी। इनके शासनकालमें केवल वाराणसी जिलेमें वृटिश गवर्मेण्टको युद्ध चलाना पड़ा था। युद्धमें जीत होने पर भी इन्होंने राज्य फैलानेका लोभ छोड़ा नहीं था। हेष्टिंस १७७२ ई०से १७७४ ई० तक बंगालके गवर्नर थे। इस समय इनका शासन अप्रतिहत था, परंतु लार्ड नार्थका Regulation act जब जारी हुआ और उस नियमके अनुसार कौंसिलके चार सदस्य बङ्गाल आये, तबसे ही वे अपने शासन-कार्यमें बाधा पाने लगे। १७७६ ई०में मोनसनकी मृत्यु पर्यान्त हेष्टिंसको समस्त शासनकार्यमें पद पद पर बाधा मिलती गई। परंतु उनकी मृत्युके बाद ये ही सर्वेसर्वा हो गये।

नन्दकुमारके साथ हेष्टिंसका जो विवाद चला था, वह किसीसे भी छिपा नहीं है। नन्दकुमार देखो।

काशीके महाराज चैतसिंहको हेष्टिंसने जो रुपयेके कारण नाकोदम किया था, वह भी बहुतोंको मालूम है। महाराजके बार बार क्षमा प्रार्थनाके बाद हेष्टिंसने उन्हें क्षमा तो कर दिया, पर वे अपना कुल धनरत्न ले कर बुंदेलखण्ड भाग जानेको बाध्य हुए। कर्नल पोपहमने उन्हें एक युद्धमें परास्त कर विजयगढ तथा ५० लाख रुपया नगद ले लिया। गवर्नर जनरलने भ्रमवशतः जो एक पत्र लिखा था, उसके फलसे ५० लाख रुपये पोपहमकी सेनाओंके बीच बांट दिये गये। चेतसिंह आजीवन ग्वालियरमें रहे थे। उनके भतीजे प्रतिवर्ष ४० लाख रुपया राजस्व देना अंगीकार कर काशीके राजा हुए। काशी देखो।

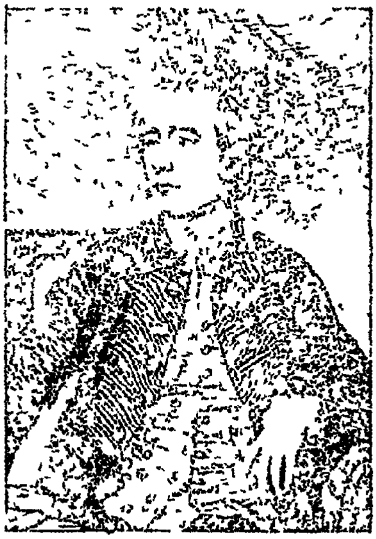

हेष्टिंस (वारेन)

वारेन हेष्टिंस १७८५ ई०में माकफार्सन साहबके हाथ शासनभार सौंप विलायत लौटे। वहां प्रसिद्ध वाग्मी और राजनीतिज्ञ बार्क, फान्सिस और प्रथित नामा लेखक सेरिडनने पार्लियामेण्ट महासभामें उन पर अभियोग लगाया। रोहिलोंके विरुद्ध युद्ध, नन्दकुमारकी फांसी, काशीके राजाको रुपयेके लिये कष्ट देना और अर्थगृध्नु देवीसिंहप्रमुख अत्याचारियोंको नियुक्त कर भारतवर्षमें अंगरेजोंका नाम कलङ्कित करना, ये ही सब अभियोग मनोपियोंने हेष्टिंस पर लगाये। यद्यपि वर्षों विचार करनेके बाद वे निर्दोष प्रमाणित हुए, तथापि अंगरेज समाजकी श्रद्धा और सम्मान उनके भाग्यसे जाता रहा। क्या सचमुच वारेन हेष्टिंस दोषी थे? जिन सब अंगरेजोंने भारतवर्षमें वृटिशशासनको चलाया

था, उन सबोंको थोड़े बहुत असदुपाय और निष्ठुरताका साहाय्य लेना पड़ा था। हेष्टिंसके नाम जो सब अभियोग लगाये गये थे, वे सभी यदि सत्य हों, तो भी ऐसा कदापि नहीं कह सकते, कि उनका चरित्र बिलकुल कलङ्कमय था। कम्पनीका ऋण चुका देनेके लिये ही उन्हें इन सब प्रवंचना और निष्ठुरताका आश्रय लेना पड़ा था। इन्होंने निजी स्वार्थके लिये ऐसा किया था, सो नहीं। उनमें यदि एक महादोष था भी तो सिर्फ यही कि वे घोर प्रतिहिंसापरायण थे। नन्दकुमारकी फासीसे हमे उसका पता चलता है। नन्दकुमार देखो। मुसलमानोंके बीच उच्च शिक्षा फैलानेके लिये इन्होंने मदरसा खोला और हिन्दू पण्डितोंका उत्साह बढ़ानेके लिये टोलमें भी काफी रुपया दिया। हिन्दुशास्त्रानुसार हिन्दुओंके सामाजिक झगड़ेका सम्यक् विचार करनेके लिये इन्होंने उस समयके प्रधान प्रधान स्मार्त्तोंकी सहायतासे 'विवादार्णवसेतु' नामक एक निबंध प्रकाशित किया था। स्मृति देखो। भारतीय विद्याका भी वे यथेष्ट गौरव करते थे। विलकिन्स साहबकी गीताके अनुवाद पर इन्होंने जो गवेषणापूर्ण भूमिका लिखी है, उसीसे भारतीय आर्यशास्त्रके ऊपर इनके प्रगाढ़ अनुरागका परिचय मिलता है।

अभियोगसे मुक्त होनेमें हेष्टिंसके बहुत रुपये खर्च हुए थे, इस कारण इन्हें अन्तमे ऋणग्रस्त होना पड़ा था। आखिर कम्पनीने इन्हें वार्षिक ४००० पौंड वृत्ति तथा ऋण चुकानेके लिये ५०००० पौण्ड विना सूदके कर्ज दे कर इनकी रक्षा की। हेष्टिंसने यह सहायता पा कर अपने पूर्वपुरुषके वासस्थान डेलिसफोर्डमें सम्पत्ति खरीदी और वहां वे रहने लगे। १८१८ ई०की २२वीं अगस्तको ८६ वर्षकी आयुमें वे इस लोकसे चल बसे।

हेष्टिंस—मार्किस आव हेष्टिंस अथवा लार्ड मायरा (G. A. Francis, Lord Rawdon and Earl of Moira, K. G.) भारतवर्षके एक गवर्नर जेनरल। इनका जन्म आइरिस बैरन् (Baron) वंशमें हुआ था। अमेरिकाकी स्वाधीनता ले कर जो युद्ध हुआ था उसमें १७७३ ई०को ये अंगरेजोंकी ओरसे लड़े थे। इङ्गलैण्डमें प्रधान सेनापतिरूपमें रहते समय १८०४ ई०को लाउडनकी काउण्टेसके साथ इनका विवाह हुआ। उसीकी कन्या सुकवि फ्लोरा हेष्टिंस थी। १८१३ ई०को चौथी अक्तूबरको कलकत्ता आ कर इन्होंने लार्ड मिण्टोसे भारतके गवर्नर-जेनरलका पद ग्रहण किया। लार्ड मिण्टोकी निरपेक्ष नीतिको (Non-interference policy) भारतीय राजाओंने कापुरुषता और अक्षमताका नामान्तर समझ लिया था। इस कारण मध्यप्रदेशके राजे उद्धत और विद्रोही हो गये थे। विशेषतः सिंदेराज सैन्यसंग्रह कर रहे थे।

इधर उत्तरमें गुर्खा लोग भारतवर्ष पर आक्रमण करने लगे। लार्ड मिण्टोके अमलमें उन लोगोंने बुतवाल और शिवराजको अधिकार कर लिया था। लार्ड मिण्टोने सेना भेज कर बुतवालका उद्धार किया। लार्ड मायरा इस समय अयोध्याप्रदेशमें भ्रमण कर रहे थे। अयोध्याके नवाबने उनके व्यवहार पर प्रसन्न हो उन्हें दश लाख पौण्डसे सहायता पहुंचाई थी।

गुर्खा-युद्धमें अङ्गरेज लोग एकसे अधिक बार परास्त हुए थे। कर्नेल निकोल और जेनरल अक्टरलोनीके वीरत्व और युद्धकौशलसे आखिर गुर्खा लोग परास्त और संधि करनेको बाध्य हुए। इधर पेशवा २य बाजीराव अङ्गरेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्र रच रहे थे। सैन्य संग्रह आदि द्वारा वे अङ्गरेजोंका संदेह और भी बढाने लगे। इस समय सुयोग्य और प्रसिद्ध भारत-इतिहास-लेखक मनष्टुआर्ट एलफिन्स्टन बम्बईके गवर्नर थे। उन्होंने गवर्नर जेनरलके पास पेशवाकी शिकायत की। शीघ्र ही एक नई संधि की गई जिसमें गवर्नर जेनरलने पेशवाको जब्त कर लिया।

इस समय लार्ड कैनिङ्ग कम्पनीके बोर्डके सभापति थे। उन्होंने देखा, कि भारतवर्षमें कम्पनीका प्रभाव अक्षुण्ण रखनेमें अंगरेजोंको निरपेक्ष नीतिका त्याग करना होगा। उन्होंने गवर्नर जेनरल हेष्टिंसको वृटिशका नाम रखनेके लिये युद्ध ठान देनेका हुकुम दे दिया। इस समय पिण्डारियोंके अत्याचारसे सारे देशमें हाहाकार मच रहा था। जब अंगरेजोंके मित्र नागपुरके राजा पिण्डारियोंके द्वारा आक्रान्त हुए, तब बड़े लाट हेष्टिंसने स्वयं युद्ध ठान दिया। पिण्डारी-दलपति अमीर खा

परास्त हुआ और हेष्टिंसने उसे एक राज्य दे देना चाहा। एक संधि की गई जिसमें शर्त यह ठहरी, कि अमीर खांकी सारी सेना अङ्गरेज-सैन्यभुक्त होगी। अमीर खांको वाध्य हो कर यह सन्धि स्वीकार करनी पड़ी।

इस समय पेशवा भीतर ही भीतर नई संधि ले कर आनाकानी कर रहे थे। अंतमें युद्ध छिड़ ही गया और किरकीकी लड़ाईमें महाराष्ट्रसेना परास्त हो कर भाग चली। पेशवाका कुल राज्य बम्बई गवर्मेण्टके शासनाधीन हुआ।

होलकरके साथ जो युद्ध हुआ वह हेष्टिंसके शासनकालकी अन्यतम घटना है। होलकरकी सेनाने हार खा कर अङ्गरेजोंसे मेल कर लिया। हेष्टिंसके शासन गुणसे पिंडारियोंको उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। अमीर खांने भी हेष्टिंसकी प्रस्तावित संधिको स्वीकार कर लिया। हेष्टिंसकी शासननीतिके गुणसे मध्यप्रदेशमें गोलमाल खड़ा हुआ। पेशवाने अङ्गरेजोंके हाथ आत्म-समर्पण किया। उनकी वृत्तिकी व्यवस्था कर दी गई। अप्पा साहब पेशवाके साथ मिल गये। उन्होंने पिंडारीदलपति चीतूका भी साथ दिया था। परंतु जब उन्होंने देखा, कि इससे कोई फल होनेकी नहीं, तब वे अङ्गरेजोंकी सलाह ले कर जोधपुर राजाके आश्रयमें रहने लगे। महाराष्ट्र और नागपुर देखो।

हेष्टिंसके शासनकौशलसे कम्पनीका राजस्व ६ करोड़ रुपया बढ़ गया था। वे दीवानी, फौजदारी और सामरिक आदि विभागोंमें साधारण उन्नतिजनक बहुतसे कानून निकाल गये हैं। माउण्ट स्टुआर्ट एलफिनस्टन, सर टामस-मनरो, सर जान मालकम, सर डेभिड अक्टरलोनी आदि अङ्गरेजपुङ्गवोंकी मंत्रणासे भी उन्हें अनेक समय मदद मिली थी। नेपालका युद्ध शेष होने पर ये अर्लकी उपाधिसे भूषित हुए तथा पिण्डारी दस्युदलनके बाद कम्पनीसे इन्हें ६० हजार पौंड पारितोषिक मिला। पामर कम्पनीके साथ मनोमालिन्य हो जानेके कारण पीछे कहीं वे डिरेक्टरोंकी तीव्र समालोचनाके पात्र भी न बन जांय, इस आशंकासे इन्होंने बड़े लाटका पद त्याग दिया। इसके लिये पीछे डिरेक्टरोंने भी सचमुच दुःख प्रकट किया था। १८२१ ई०में पद-त्याग पत्र विलायत भेजने पर भी १८२३ ई०की १ली जनवरी तक इन्हें भारतवर्षमें रहना पड़ा था। विलायत लौटने पर सबोंने बड़े आदरसे इन्हें ग्रहण किया। पीछे अर्लसे इनकी उपाधि मार्किस कर दी गई। कोर्ट आव डिरेक्टरोंने इनके पुत्र अर्ल आव रोडनको सम्मानसूचक २० हजार पौंड उपहार दिये थे। १८२६ ई०को मार्क्विस आव हेष्टिंसका देहांत हुआ।

हेथरतो—छोटा नागपुरके करैया नामक करदराज्यकी सबसे बड़ी नदी। यह सोनाहाटसे निकल कर दक्षिण-करैया राज्य होती हुई मध्यप्रदेशमे बिलासपुरके पाससे बह गई है।

हेहे (सं० अव्य०) सम्बोधनसूचक शब्द।

हेहै (सं० अव्य०) १ सम्बोधन। २ हूति।

हैं (हिं० अव्य०) १ एक आश्चर्य-सूचक शब्द। २ एक निषेध या असम्मतिसूचक शब्द। (क्रि० अ०) ३ सत्तार्थक क्रिया 'होना'के वर्त्तमान रूप 'है' का बहुवचन।

हैंगिंग लैंप (अं० पु०) छतमें लटकानेका लैंप।

हैंडबैग (अं० पु०) चमड़ेका छोटा बकस या लंबोतरा थैला जिसे सफरमें हाथमें रखते हैं।

हैंडिल (अं० पु०) दस्ता, मुठिया।

हैंस (हिं० स्त्री०) एक छोटा पौधा। इसकी जड़ जहरीले फोड़ों पर जलानेके लिये घिस कर लगाई जाती है।

है (सं० अव्य०) १ सम्बोधन। २ आह्वान।

है (हिं० क्रि०) 'होना'का वर्त्तमान कालिक एकवचन रूप।

हैकल (हिं० स्त्री०) १ घोड़ोंके गलेमें पहनानेका एक गहना। २ चौकोर या पानके जैसे दानोंकी एक प्रकारकी माला जो गलेमें पहनी जाती है। इसे हुमेल भी कहते हैं।

हैङ्गुल (सं० त्रि०) हिंगुल सम्बन्धी, ईंगुरका।

हैजम (हिं० स्त्री०) १ सेनाकी पंक्ति। २ खड्ग, तलवार।

हैजा (अ० पु०) दस्त और कै की बीमारी जो मरी या संक्रामक रूपमें फैलती है। संक्रामक देखो।

हैट (अं० पु०) छज्जेदार अंगरेजी टोपी जिससे धूपका बचाव होता है।

हैटा (हिं० पु०) एक प्रकारका अंगूर।

हैड़म्ब—भविष्यब्रह्मखण्डवर्णित एक देश। कछाड़। हेडम्ब देखो। देशावलिविवृतिके मतसे यह अङ्गदेशके अन्तर्गत चम्पाके निकटवर्त्ती 'हेडम्बविषय' नामसे पुकारा जाता है। यहां घटोत्कच राज्य करते थे।

हैड़िम्ब (सं० त्रि०) हिडिम्बा-अण्। १ हिडिम्बासम्बन्धीय। २ हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कच।

हैडिम्बि (सं० पु०) हिडिम्बाका अपत्य, घटोत्कच।

हैतनाम (सं० पु०) हितनामके गोत्रापत्य।

हैतुक (सं० त्रि०) १ सद्युक्तिव्यवहारी, जो अच्छे शब्दका व्यवहार करता हो। २ जिसका कोई हेतु हो, जो किसी हेतु या उद्देश्यसे किया जाय। ३ अवलम्बित, निर्भर। (पु०) ४ हेतु द्वारा सत्कर्ममें सन्देहकर्त्ता, नास्तिक। मनुटीकामें कुल्लूकने लिखा है, कि जो वेदविरोधी तर्क करते हैं, उन्हींका नाम हैतुक है। मनुके मतानुसार ऐसे वेदविरोधी तर्क करनेवालोंके साथ बातचीत तक भी नहीं करनी चाहिये। (४।३०) ५ तार्किक, तर्क करनेवाला। ६ कुतर्की। ७ मीमांसाका मत माननेवाला।

हैदर अली—महिसुरके राज्यापहारक एक मुसलमान अधिपति। यह पहले महिसुरके हिन्दूराजके अधीन काम करते थे, पीछे अपने मालिकको तख्त परसे उतार राजा बन बैठे।

हैदर अलीके प्रपितामह महम्मद बहलोल पंजाबसे आ कर दाक्षिणात्यके कुलबर्गा नामक स्थानमें बस गये। उनके दो पुत्र थे, महम्मद अली और महम्मद ओअली। दोनों भाई महिसुरके शिरा नामक स्थानमें आ कर राजस्व उगाहनेका काम करते थे। यहीं पर १७०२ ई०को महम्मद अलीके पुत्र और हैदर अलीके पिता फते महम्मदका जन्म हुआ। यथासमय फतेमहम्मदके भी दो पुत्र हुए, शाहबाज और हैदर। जब शाहबाजकी उमर ९ और हैदरकी ७ वर्ष थी तब ही युद्धक्षेत्रमें फते महम्मदका प्राणान्त हुआ। हैदर लिखना पढ़ना नहीं जानते थे, साहसिकता और शक्तिमत्ताके गुणसे चढ़ती जवानीमें ही इन्होंने सेनाविभागमें प्रवेश किया। पीछे देवनहल्ली-युद्धमें बड़ी वीरता दिखानेके कारण ५०मे २०० पदातिकके पद पर इनकी तरक्की हुई। महिसुरके नंजराज और देवराज जिन सब लड़ाइयोंमें लिप्त थे, उन्हीं सब लड़ाइयोंमें हैदरने रणनैपुण्यका परिचय दिया था। जब कर्णाटकका आधिपत्य ले कर चाद साहब और महम्मद अलीके बीच आग धधक रही थी, उसी समय (१७६१ ई०में) हैदर अलीने महिसुर-शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली। महिसुरपतिको ३ लाख पगोडा आयकी जागीर ले कर ही संतुष्ट रहना पड़ा। १७६३ ई०में हैदरने वेदनुर जीत कर प्रायः १२ करोड़ रुपये पेंठ लिये। नंजराजके निःसन्तान मरने पर हैदरने चमराज नामक उनके दूरसम्पर्कीय एक व्यक्तिको राजाका उत्तराधिकारी चुना।

इधर मराठोंने हैदर अलीके शासनभुक्त अनेक स्थान दखल कर लिये। इन्होंने निजाम अलीके साथ मेल कर अंगरेजोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। १७६७ ई०के अगस्त मासमें पहले चङ्गमा नामक स्थानमें और पीछे त्रिनूकमाली नामक स्थानमें दोनों ही अंगरेजोंके हाथसे परास्त हुए। परन्तु हैदर कब रुकनेवाले थे, वे फिर बड़ी भारी तैयारी करके अंगरेजोंका दमन करनेके लिये मन्द्राजके पास आ धमके। ४थी अप्रिलको उनके साथ अंगरेजराजपुरुषोंने मेल कर लिया। १७७२ ई०में उन्होंने कुर्ग प्रदेश जीता। मराठोंने हैदरके जो सब प्रदेश दखल कर लिये थे, १७७३ और १७७४ ई०के मध्य एक एक कर उन्होंने कुल प्रदेशोंका उद्धार किया। १७७४ ई०में उन्होंने बेलारी पर धावा बोल दिया। १७७६ ई०में उनके प्रबल प्रतापसे मुरारी रावका प्रभुत्व और सवनूरकी स्वाधीनता जाती रही। १७८० ई०की २१वीं जुलाईको हैदरने कर्णाटक दखल किया और उसी साल पोर्टो नोवोको लूटा तथा अर्काटमें घेरा डाला। १०वीं सितम्बरको पेरम्बकम् नामक स्थानमें इन्होंने कर्नल बेली द्वारा परिचालित अंगरेजोंकी एक बड़ी सेनाको बुरी तरह परास्त किया। पीछे जब हैदर अली ५ दुर्गमें घेरा डाले हुए थे उसी समय अंगरेजी सेनानायक कूटने कड्डलौर अधिकार कर एक भीषण युद्धमें हैदरकी दुर्द्धर्ष सेनाको हराया। इससे हैदरको त्रिचोनपली और उनके लड़के

टीपूको वन्दिवास जीतनेकी आशा छोड़ देनी पड़ी। पहले पल्लिलूर और पीछे २७वीं सितम्बर (१७८१ ई०)-को शोलिङ्गगढ़में अंगरेजवीर कूटके साथ हैदरका जो युद्ध हुआ उसमें हैदरने बुरी तरह हार खा कर घेरा उठा लिया। १७८२ ई०की ७वीं दिसम्बरको ८० वर्षकी उमरमें अर्काटके निकटवर्त्ती चित्तूर नामक स्थानमें उनकी मृत्यु हुई। टीपूके नहीं आने तक उनका मृत्युसंवाद छिपा रखा गया था। हैदरने प्रायः ३० वर्ष राज्यशासन किया था। उनके मृत्युकालमें एक लाख सुशिक्षित सेना और खजानेमें ५ करोड नगद रुपये मौजूद थे। पीछे उनके प्रिय पुत्र टीपू सुलतान राज्याधिकारी हुए। श्रीरङ्गपत्तनमें हैदरकी लाश दफनाई गई। उनकी कब्रके ऊपर एक सुन्दर गुम्बज बनाया गया है।

हैदरगढ़—१ अयोध्याके बड़वांकी जिलेकी एक तहसील। इसके उत्तरमें बड़वांकी तथा रामसनेही तहसील; पूर्वमें मुसाफिरखाना और दक्षिणमें रायबरेलीके अन्तर्गत महाराजगञ्ज तहसील है।

२ उक्त हैदरगढ तहसीलका एक परगना। भूपरिमाण १०३ वर्गमील है। इसमें ११७ ग्राम लगते हैं। राजपूत वंशीय अमेथियागण इस स्थानके स्वत्वाधिकारी हैं।

३ बड़वांकी जिलेका एक शहर। यह जिलेके सदरसे २५ मील पूर्वमें अवस्थित है। नवाब आसफ उद्दौलाके मन्त्री अमीरउद्दौला हैदरबेग खाने इस शहरको बसाया।

हैदरगढ—दक्षिण कनाडाके अन्तर्गत एक पहाड़ी रास्ता।

हैदर मालिक—काश्मीरके एक अच्छे इतिहास-प्रणेता। इनकी उपाधि रायसुल मुलुक चाघताई थी। १६१६ ई०में ये जहांगीरके साथ काश्मीर गये थे।

हैदर मिर्जा—महम्मद हुसेनका लड़का। इसकी स्त्री बाबरकी नजदीकी रिश्तेदार थी। सम्राट हुमायूनके भाई कामरान मिर्जाके अधीन यह पहले पहल काम करता था। पीछे यह किसी कारणवश नाराज हो हुमायूनके यहां नौकरी करने लगा। यह हुमायूंका दाहिना हाथ था। १५४० ई०में हुमायूंने इसे काश्मीर जीतनेके लिये भेजा था। थोड़े ही समयके अन्दर इसने काश्मीर पर दखल जमा लिया।

शेरशाहने जब हुमायूनको भारतवर्षसे भगा दिया, तब हैदर काश्मीरका राजा हुआ। पीछे इसने निम्न तिब्बत जीत कर अपने राज्यकी सीमा बढ़ाई। इसने प्रायः दश वर्ष राज्य किया था। १५५१ ई०में रातके समय किसीने इसकी छावनीमें तीर फेंका और उसीसे इसके प्राणपखेरू उड़ गये।

हैदराबाद—भारतके वृटिश गवर्मेण्टके अधीन सबसे बड़ा करद और मित्र राज्य। यह उत्तरमें बेरार, पूर्वमें मध्यप्रदेश, पश्चिममें बम्बई और दक्षिणमें मन्द्राज प्रदेश तक फैला हुआ है। मोटामोटी तौरसे यदि देखा जाय, तो यह राज्य चतुर्भुजाकृति है। उत्तर, पूर्व और दक्षिण तक इसका जो व्यास है वही केवल ४२० मील है। भारतवर्षके मध्य यह विस्तृत प्रदेश अक्षा० १५° १०′ से २०° ४०′ उ० तथा देशा० ७४° ४०′ से ८१° ३५′ पू०के मध्य फैला हुआ है। भूपरिमाण ८२६९८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बेरार और मध्यप्रदेश, दक्षिणमें कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदी, पश्चिममें अहमद नगर, शोलापुर, बीजापुर और धारवार जिला तथा पूर्वमें वर्द्धा और गोदावरी नदी एवं मन्द्राजका कृष्णा जिला है। इसका क्षेत्रफल मन्द्राजप्रदेशके समान है। यह राज्य कुल ५ विभागों और १० जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक विभागमें ३ या ४ जिला है।

यह राज्य एक विस्तृत मालभूमि है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १२५० फुट है। हैदराबाद शहरके पास जो गोलकुंडा दुर्ग है वही प्रायः २५०० फुट ऊंचा होगा।

इस राज्यका सबसे बड़ा पर्वत बालाघाट-गिरिमाला है। पूर्वमें बिलोली तालुकसे पश्चिममें अष्टि तालुक तक इसकी विस्तृति है। यहां सह्याद्रिकी लम्बाई प्रायः २५० मील है। यह इन्दोरसे ले कर बेरारको चीरता फाड़ता हुआ हैदराबादमें आ कर खतम हुआ है। इसकी एक शाखा हैदराबादसे खान्देशमें चली गई है। इस शाखाका एक बड़ा अंश अजण्टाघाट कहलाता है।

हैदराबादमें बहुत-सी नदी, खाल और दिग्गी हैं।

यहाकी अधिकांश जमीनमें वालू और पत्थर मिलता है, इस कारण फसल वहुत कम लगती है। वेनगंगाके साथ जहां वर्द्धा मिली है, वहा तीन कोयलेकी खान है। इन कोयलेकी खानोंसे जो कोयला निकलता है वह रानीगंजके कोयलेसे वहुत खराव है। इसके पास ही लोहेकी खान भी है।

कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदी द्वारा हैदरावादकी दक्षिणी सीमा निर्द्धारित हुई है। यहाकी आवहवा अच्छी है। राजपूतानेकी तरह अनुर्वर भूमि यहा नहीं होनेके कारण ग्रीष्मकालमें लू नहीं चलती। इस राज्यमें जहां वालू-पत्थर अधिक है वहां प्रायः आँखका रोग देखा जाता है। यहांके कूओंका जल फीका अस्वास्थ्यकर होता है, पर पुष्करिणी और झरनोंका जल साधारणतः अच्छा है।

औसतसे यहांका वृष्टिपात २८से ३२ इञ्चसे अधिक नहीं है। मौसुमके समय जेठसे आसिनके महीने तक यहां वर्षा होती है।

यहांकी मिट्टी साधारणतः उर्वरा है। परन्तु जहा छिछला झील है वह स्थान खेतीवारीके विलकुल लायक नहीं है। इसके सिवा और सभी जमीनको यहांकी भाषामें 'लाल जमीन' कहते हैं। यहांकी 'रेगड' जमीन सवसे अच्छी है। ऐसी जमीनका रकवा वहुत कम है, परन्तु जो कुछ है भी, उसमें अच्छी फसल लगती है। विशेषतः रूईकी खेतीके लिये यह सवसे अच्छी है। इसके सिवा 'तालावकी जमीन' है जिसकी मिट्टी एकदम काली होती है।

यहां ताड़ और खजूरके पेड वहुत लगते हैं। उनके रससे एक प्रकारकी शराव वनाई जाती है। यहां नारियलका पेड वहुत कम उगता है। आम और इमलीका पेड़ गाव-गावमें देखा जाता है। रूई, नील, ईख आदिकी यहां अच्छी खेती होती है।

यहाके जंगलमें एक प्रकारके कोडेसे टसर और मधुमक्खीके छत्तेसे मधु संग्रह किया जाता है। कहनेका तात्पर्य्य यह, कि हैदरावाद वाणिज्योपयोगी स्थान है। यहांसे रूई, सरसों, तीसी, कपड़े, चमड़े, धातव पदार्थ तथा खेतीवारीके सामानोंकी रफतनी होती है। वाणिज्यके अन्यान्य द्रव्योंमें विदरका वरतन, कलई किया हुआ धातव पदार्थ, औरङ्गावादका किंखाव और कागजपुर ग्रामका कागज मशहूर है।

विदर जिलेके मलेगांव नामक एक ग्राममें एक वडा मेला लगता है जिसमें केवल घोडे विकते हैं। हैदरावाद राजधानीके पास भी घोडे विकनेका एक वाजार है।

मुगलसम्राट् औरङ्गजेवके विख्यात सेनापति आसफजा निजामवंशके प्रवर्त्तक थे। दिल्लीकी सभामें जिस प्रकार युद्धविजयी कह कर इनकी प्रसिद्धि थी, उसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्रमें यह कूटतान्त्रिक समझे जाते थे। १७१० ई०में सम्राट्ने उन्हें निजाम उलमुल्क की उपाधि दे कर दाक्षिणात्य भेजा। यह उपाधि अन्तमें उनकी वंशगत हो गई। निजाम देखो। मुगल साम्राज्य इस समय घर-झगडेसे रसातल जा रहा था, उधर फिर मराठाके गौरव-रवि धीरे धीरे उदय हो रहे थे। यह सुयोग पा कर आसफजाने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। ये मुगल-वादशाहके विरुद्ध खडे हो कर कामयाव हो गये थे सही, पर अश्वारोही मराठोंको परास्त करना उनके लिये टेढी खीर थी। जो हो, १७४८ ई०में उनके मरने पर राज्यमें शान्ति विराजने लगी।

हैदरावादका सिंहासन ले कर आसफजाके वंशधरोंमें विवाद खडा हो गया। जव आसफजाकी मृत्यु हुई, तव उनके दूसरे लडके नासिरजङ्गने धनागार अधिकार कर सिंहासनको दखल किया। परन्तु आसफजाके नाती मुजफ्फर जङ्गने यह कह कर राज्यका दावा किया कि उनके मातामह उन्हींको सिंहासन दे गये हैं। इस सूत्रसे फरासी और अंगरेज वणिकोंने अपना अपना मतलव गांठना चाहा। अंगरेजोंने नासिर जंगका और फरासियोंने मुजफ्फर जङ्गका पक्ष लिया। परन्तु मुजफ्फर जङ्गके कर्मचारियोंके साथ फरासी सेनापतिका मनमुटाव हो जानेसे फरासी सेनाने युद्ध करना नहीं चाहा। अतएव मुजफ्फर जङ्ग नासिरके हाथ वन्दी हुए। परन्तु नासिरके कर्मचारियोंने भी षड्यन्त्र रच कर नासिरका काम तमाम किया। इसके वाद मुजफ्फर दाक्षिणात्यके सूवादार वनाये गये, परन्तु उनकी शासनशक्ति वहुत समय तक फरासी सेनापति डुपलेके

ही हाथ रही। कुछ पठान-दलपतियोंके साथ मुजफ्फरका जो युद्ध हुआ उसीमें वे मारे गये। फरासियोंने मुजफ्फर जङ्गके पुत्रका दावा अग्राह्य कर नासिरके एक भाई सलावत् जङ्गको निजामके पद पर अधिष्ठित किया। परन्तु आसफजाके बड़े लड़के गाजीउद्दीनने सिंहासनका दावा ले कर अपने छोटे भाईके साथ विवाद ठान दिया। गाजी उद्दीन् शीघ्र ही मारे गये। मराठोंने गाजी उद्दीनका पक्ष लिया था। वे लोग युद्धमें हार खा कर संधि करनेको राजी हुए। इस समय फरासी और अंगरेज दाक्षिणात्यमें अपना अपना प्रभुत्व ले कर लड़ रहे थे। फरासी लोग जब क्लाइवसे परास्त हो कर सलावत् जंगको मदद न पहुंचा सके तब निजामने अंगरेजोंसे सन्धि कर ली।

सन्धि शर्त्तके अनुसार सलावत्ने इस बातको कबूल किया, कि वे फरासियोंको अपने यहांसे हटा देंगे और उनसे कोई संबन्ध न रखेंगे। परन्तु उनके भाई निजाम अली उन्हें राज्यच्युत कर स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर बैठे। उनकी निष्ठुरता, अत्याचार और कर्णाट लूटनेके कारण अन्तमें उनके मित्र अंगरेजोंको भी उनके विरुद्ध हथियार उठाना पड़ा था। जो हो, वे अंगरेजी सेनाकी सहायता पा कर कर्णाटसे वापस आये। अंगरेज लोग उनके साथ हमेशा सद्भाव रखना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने फरासीके बदलेमें निजामसे ही उत्तरसरकार प्राप्त किया था। १७६६ ई०में जो संधि हुई उसमें शर्त्त यह थी, कि अंगरेज प्रयोजन पड़ने पर निजामको सेनासे सहायता पहुंचायेंगे और जिस वर्ष उन्हें सहायताका प्रयोजन न होगा उस वर्ष वे निजामको ६ लाख रुपये देंगे। इसके बदलेमें निजामने उक्त जमींदारीका उपस्वत्व अंगरेजोंको दे दिया। सन्धि-शर्त्तके अनुसार जब हैदर अलीके विरुद्ध बृटिशसैन्यकी सहायताका प्रयोजन हुआ, तब बृटिश सरकारने कुछ भी सहायता नहीं पहुंचाई। पर निजामने ही अन्तमें हैदर अलीका साथ दिया। जो हो, थोड़े ही दिनोंके बीच निजाम अलीने फिरसे अंगरेजोंके साथ एक और संधि कर ली। इस समय सलावत् जङ्गके मरने पर उत्तर सरकार अंगरेजोंके अधिकारमें आया।

अंगरेज गवर्मेण्टके साथ टीपूका युद्ध चलते समय अंगरेज गवर्मेण्ट, निजाम और पेशवामें संधि हो गई थी। जब टीपू युद्धमें हार खा कर अपने राज्यका अर्द्धांश खो बैठे तब निजामको बड़ा हिस्सा मिला था। इसके बाद जब निजामके साथ मराठोंका युद्ध छिड़ा, तब निजामने संधि-शर्त्तके अनुसार उस समयके गवर्नर सर जान सोरसे सहायता माग भेजी। पर मराठोंके साथ अंगरेजोंकी संधि हो चुकी थी, इस कारण सर जान सोरने इस काममें मध्यस्थ होनेके सिवा और कोई मदद पहुंचाना नहीं चाहा। इसके फलसे निजामके साथ बृटिश गवर्मेण्टका मनमुटाव हो गया। जब अर्ल आव मोर्निङ्गटन (मार्क्विस आव वेलेस्ली) बड़े लाट हुए, तब निजामने उनके पास अपना दुखड़ा रोया। इसके फलसे उन्होंने निजामके साहाय्यकारी सैन्यदलकी संख्या बढ़ा दी और उन लोगोंको खर्चा वर्चाके लिये वार्षिक २४१७१० पौण्ड रुपया स्थिर कर दिया। अंगरेजोंने जब श्रीरंगपत्तन पर अधिकार किया और टीपूकी मृत्युके बाद जब महिसुरराज्य अंगरेजमित्रोंके बीच बाट दिया गया, तब निजामको भी एक बड़ा हिस्सा मिला। १७८० ई०में साहाय्यकारी सैन्य संख्या बढ़ा दी गई और रुपयेके बदलेमें गवर्मेण्टको राज्यका बहुत कुछ हिस्सा दे देना पड़ा।

१८०३ ई०में निजाम अलीकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के सिकन्दर शाह गद्दी पर बैठे। १८२२ ई०में उनके साथ अंगरेजोंकी एक संधि हुई। इस संधिके अनुसार अंगरेजोंने उनसे चौथ लेना बंद कर दिया। १८२१ ई०में सिकन्दर शाहका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के नासिरउद्दौला सिंहासनके उत्तराधिकारी हुए। नासिरउद्दौला भी २८ वर्ष राज्य करनेके बाद कराल कालके शिकार बने। अब उनके लड़के अफजल-उद्दौलाने १८५७ ई०में सिंहासनको सुशोभित किया। इन्हींके समय इतिहास-प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोहकी आग धधकी। वह आग हैदराबाद तक भी फैल गई थी। निजाम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। किसीने अंगरेजोंका पक्ष और किसीने विद्रोहियोंका पक्ष लेनेकी सलाह दी।

आखिर अफजलउद्दौलाने प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे अंगरेजोंको खासा मदद पहुंचाई। गदरके बाद वृटिश गवर्मेंटने कृतज्ञता स्वरूप निजामके साथ एक संधि कर ली और उन्हें १८६१ ई०में G. C. S. I.की उपाधिसे भूषित किया। १८६९ ई०में अफजल उद्दौला की मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के मीर महबूब अली खां बहादुर गद्दी पर बैठे। १८८४ ई०में लार्ड रीपनने उन्हें राजटीका पहनाया। कुछ वर्ष बाद कर्जनने २५ लाख रुपया वार्षिक खजाना दे कर बरार प्रदेश अंगरेजी राज्यमें मिला लिया। यही उनके समयकी प्रधान घटना है।

वर्त्तमान नवाबका पूरा नाम है एच, इ, एच, आसफ-जाह मुजफ्फरुल-ममालिक निजाम-उल-मुल्क निजाम उद्दौला नवाब मीर सर उसमान अली खां बहादुर फतेहजङ्ग, जी, सी, एस, आई।

इस राज्यमें ७६ शहर और २० हजारसे ऊपर ग्राम लगते हैं। जनसंख्या करोड़के लगभग है। यहांकी भाषा हिन्दी, तेलगू और कनाड़ी है। निजामकी वार्षिक आय चार करोड़ रुपया है। यहां जो सिक्का चलता है उसका नाम 'हाली सिक्का' है। राज्यमें करीब ३० हजार फौज तथा बहुतसे स्कूल कालेज और अस्पताल हैं।

२ हैदराबाद राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० १७° २२´ उ० तथा देशा० ७८° ४७´ पू०के मध्य मूसी नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ५ लाखके लगभग है। समुद्रकी तहसे यह शहर प्रायः १७०० फुट ऊंचा है। इसकी परिधि प्रायः ६ मील है और एक दीवारसे शहर घिरा हुआ है। इस शहरमें जैसे विभिन्न जातिके लोग देखे जाते हैं, मालूम होता है, कि भारतके और किसी भी शहरमें वैसे नहीं देखे जाते। यहां अरब, सिद्दी, रोहिला, मराठा, तुर्क, सिख, पारसिक, बोखारीय, मन्द्राजी आदि भारतवर्षके तथा अन्यान्य देशोंके लोग देखे जाते हैं।

हैदराबादके चारों ओरका दृश्य बड़ा ही मनोरम है। कुछ मीलकी दूरी पर एक हृद है। उस हृदसे हैदराबाद-शहरमें जलका प्रबंध किया गया है।

हैदराबाद मुसलमानप्रधान शहर है। यहां बहुत-सी मसजिदें देखनेमें आती है। वे सब मसजिदे नाना प्रकारके कारुकार्य्य मण्डित गुम्बजों द्वारा शोभा दे रही हैं। यहांकी जुम्मा मसजिद मक्काकी मसजिदके ढंग पर बनाई गई है। 'चारमिनार' नामक विश्वविद्यालयका प्रासाद यहांका एक उल्लेखयोग्य स्थान है।

मूसीके उत्तर हैदराबादसे सटा हुआ एक बड़ा ग्राम है। उस ग्रामको लोग बेगम-बाजार कहते हैं। इससे जो शुल्क उगाहा जाता है वह निजामकी प्रधान बेगमको मिलता है। इस बेगमबाजारमें वृटिश रेसिडेण्टका प्रासाद है। राजप्रासाद और रेसिडेण्टप्रासादके बीचमें एक पुल है। रेसिडेण्टका मकान केवल देशी शिल्पियोंका बनाया हुआ है। हैदराबादके प्रधान मन्त्रीका प्रासाद 'बारहदुआरी' सबसे सुन्दर और देखने लायक है।

गोलकुण्डा राज्यके प्रतिष्ठाता सुलतान कुलीकुतबशाहसे नीचे पांचवीं पीढ़ीमें कुतबशाह महम्मद कुलीने १५८९ ई०में इस शहरको बसाया। नदीकी सुविधा नहीं रहनेके कारण महम्मद गोलकुण्डाका त्याग कर यहीं पर राजधानी उठा लाये। प्राचीन राजधानीसे ७ मील दूर मूसी नदीके ऊपर भागमती नामक उनकी एक रानीके नाम पर भागनगर बसाया गया। परन्तु उस रानीकी मृत्यु हो जानेके बाद भागनगर ही हैदराबाद कहलाने लगा। १५८९ ई०से गोलकुण्डा और हैदराबादका एक ही इतिहास चलता है।

महम्मदकुलीके लड़के सुलतान अब्दुल्लां कुतब शाहके राज्यकालमें हैदराबादमें पहले पहल मुगलोंका संस्रव हुआ। औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद उनके पुत्रोंमें सिंहासन ले कर तकरार खड़ा हुआ। जब जहान्दार शाह और उनके भतीजे फरुखसियरमें युद्ध चल रहा था, तब चिङ्गलीज खा नामक एक सम्भ्रान्त वंशीय मुसलमानने फरुखसियरकी बड़ी मदद की थी। फरुखसियर जब सम्राट् हुए, तब उन्होंने चिङ्गलीज खांको 'निजाम उल् मुल्क आसफजा' की उपाधि दी।

जब दिल्लीमें सैयद लोग रफिउद्दौला और पीछे महम्मद शाहको सम्राट् बना कर प्रतिदिन अपना अपना प्रभुत्व फैला रहे थे, तब आसफजा और सादत खां

दोनोंने मिल कर सैयद दो भाइयोंमेंसे एकको छिपके मार डाला और दूसरेको युद्धमें परास्त किया। १७२२ ई०में आसफजाने दिल्ली आ कर वहां वजीरका पद पाया। परन्तु उन्होंने दिल्लीमें वजीर होनेकी अपेक्षा सुदूर दाक्षिणात्यमें एक राज्य प्रतिष्ठित कर वहां शासन करना ही अधिक सम्मानजनक समझा। इस कारण एक दल सेना ले कर उन्होंने दाक्षिणात्यकी यात्रा कर दी। वहां सम्राट्के प्रतिनिधि मुबारिज खांने सम्राट्की गुप्त मन्त्रणासे उन्हें रोका। पर आसफजा युद्धमें मुबारिज खांको परास्त कर हैदराबाद पर अधिकार कर बैठे। अब सम्राट्ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो आसफजाको ही हैदराबादका निजाम स्वीकार किया। आसफजा ही दाक्षिणात्यमें निजामवंशके प्रतिष्ठाता हैं। उनके वंशधर वृटिश गवमेंटके मित्र राजरूपमें आज भी सम्मान राज्य करते हैं। निजाम देखो।

शहरमें बड़ी बड़ी इमारत, तीन कालेज, बहुतसे मिडिल और वर्नाक्युलर स्कूल, एक बड़ा रोमन कैथलिक चर्च और अफजल ब्रिजके पास अफजलजङ्ग अस्पताल है।

हैदराबाद—सिन्धुप्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २४°१३´से २७° १४´ उ० तथा देशा० ६७° ५२´से ६९° २२´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८२९१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें खैरपुर राज्य, पूर्वमें थर और पार्कर जिला, दक्षिणमें कोरि नदी तथा पश्चिममें सिन्धुनदी और कराची जिला है।

इस जिलेकी लंबाई २१६ मील और चौड़ाई ४८ मील है। सिन्धुनदके किनारे यह जिला पहले उर्वर और पीछे अनुर्वर बलुई मरुभूमि द्वारा आवृत है। सिन्धु शब्दमें इसका इतिहास लिखा जा चुका है।

सिन्धु देखो।

इस जिलेमें ७ शहर और १४४६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखके करीब है। सैकड़े पीछे ९१ आदमीको भाषा सिंधी है। अधिवासियोंमें मुसलमानकी ही संख्या ज्यादा है। यहांकी प्रधान उपज जुआर, बाजरा, गेहूं, धान, रूई और तेलहन है। विद्याशिक्षामें यह जिला इस प्रदेशके चौबीस जिलोंमें इक्कीसवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर ५ हाई स्कूल, १० मिडिल स्कूल, ३२५ प्राइमरी स्कूल, ३ ट्रेनिङ्ग स्कूल और ४ स्पेशल स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १७ चिकित्सालय, १ सिविल अस्पताल और १ जनाना-अस्पताल है। सर कावसजी जहांगीरके नाम पर एक कुष्ठाश्रम भी खोला गया है। भारतवर्षके शीत-प्रधान अन्यान्य स्थानोंकी तुलनामें यहांकी आबहवा अच्छी है।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २५° १०´ से २५° ३३´ उ० तथा देशा० ६८° २०´से ६८° ४५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३९८ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें हैदराबाद नामक १ शहर और १०० ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २५° २३´ उ० तथा देशा० ६८° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या करीब ७० हजार है। १७६८ ई०में गुलामशाह कल्होराने यह शहर बसाया। इस शहरमें ४ हाई स्कूल, १ ट्रेनिंग कालेज, १ जनाना ट्रेनिंग कालेज, १ सूतिका स्कूल, १ काश्तकार स्कूल, १ इञ्जिनियरिङ्ग क्लास और १ मेडिकल स्कूल हैं। इसके अलावा एक सिविल अस्पताल और एक चिकित्सालय भी है।

हैन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास, तकड़ी।

हैनाड—सह्याद्रिखण्डवर्णित एक देश। (२।८।४३)

हैफ (अ० अव्य०) खेद या शोकसूचक शब्द, अफसोस।

हैबत (अ० स्त्री०) भय, त्रास।

हैबतनाक (अ० वि०) भयानक, डरावना।

हैम (सं० क्ली०) १ प्रातर्हिमोद्भव जल, सवेरेका ओसका पानी। (पु०) २ भूनिम्ब, चिरायता। ३ सुवर्णका विकार। ४ शिव। ५ पर्वतविशेष, हिमालय। ६ पाला। ७ ओस। (त्रि०) ८ सुवर्णमय, सोनेका। ९ सुनहरे रंगका। १० हिमसंबंधी, पालेका। ११ जाड़ेका, जाड़ेमें होनेवाला।

हैमकूट (सं० पु०) हेमकूट पर्वतके पासका एक देश।

हैमगिरिक (सं० पु०) हैमकूट देखो।

हैमचन्द्रि (सं० पु०) हेमचन्द्रका गोत्रापत्य।

हैमन (सं० पु० क्ली०) हेमन्त एव इति (सर्वत्राण् च तलोपश्च। पा ४।३।२२) इति स्वार्थे अण् तलोपश्च।

१ हेमन्त ऋतु । (त्रि०) २ स्वर्णजात, सोनेका। ३ हिमजात, बर्फका। ४ हेमन्त भव, हेमन्त ऋतुमें होनेवाला। (पु०) ५ मार्गशीर्षमास, अगहनका महीना। ६ हिमकालोद्भव षष्टिकधान्य, हिमकाल या अगहनके महीनेमें होनेवाला साठी धान।

हैमना (सं० त्रि०) १ शीतकालका, जाड़ेका। (पु०) २ पूसका महीना। ३ साठी धान।

हैमन्त (सं० पु० क्ली०) हेमन्त (सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्। पा ४।३।१६) इति अण्। १ हेमंत ऋतु। (त्रि०) २ हेमन्त सम्बंधी।

हैमन्तिक (सं० क्ली०) शालिधान्य, आमन धान।

हैममुद्रिक (सं० त्रि०) स्वर्णमुद्रिकाविशिष्ट।

हैमल (सं० पु० क्ली०) हिमल अण्। हेमन्त ऋतु।

हैमवत (सं० क्ली०) १ भारतवर्ष। २ हिमालयका निवासी। ३ एक प्रकारका विष। ४ एक राक्षसका नाम। ५ एक सम्प्रदायका नाम। ६ मुक्ता, मोती। (त्रि०) ७ हिमालय सम्बन्धी, हिमालयका। ८ हिमालयजात, हिमालय पर होनेवाला।

हैमवती (सं० स्त्री०) १ हिमवत्की कन्या, पार्वती, उमा। २ हरीतकी, हर्रे। ३ स्वर्णक्षीरी। ४ श्वेत वचा, सफेद फूलकी वच। हिमवतः इति (प्रभवति। पा ४।३।८३) इत्यण्। ५ गङ्गा। ६ रेणुका नामक गंध द्रव्य। ७ कपिलद्राक्षा, एक प्रकारकी दाख। ८ अतसी, तीसी। ९ हरिद्रा, हलदी। १० पीतदुग्ध सेहुण्ड, थूहर। ११ क्षीरिणी, खिरनी।

हैमवर्चि (सं० पु०) हेमवर्चसके गोत्रापत्य।

हैमा (सं० स्त्री०) १ पीतयूथिका, सोन जुही। २ पीत चम्पक, जर्द चमेली।

हैमी (सं० स्त्री०) १ पीत यूथिका, सोनजुही। २ केतकी। (त्रि०) ३ सोनेकी बनी, सोनेकी।

हैयङ्गव (सं० क्ली०) हैयङ्गवीन देखो।

हैयङ्गवीन (सं० क्ली०) ह्यो गोदोहस्य विकार इति (हैयङ्गवीनं संज्ञाया। पा ५।२।२३) इति खञ्, ह्यङ्गादेशश्च। सद्यो गोदोहोद्भव घृत, एक दिन पहलेके दूधके मक्खनसे बनाया हुआ घी। यह घी सर्वश्रेष्ठ और अत्युत्कृष्ट गुणयुक्त है। घृत शब्द देखो।

हैरण्य (सं० त्रि०) हिरण्य अण्। १ हिरण्य सम्बन्धीय, सोनेका। २ सोना उत्पन्न करनेवाला।

हैरण्यक (सं० त्रि०) १ हिरण्य, सोनेका। (पु०) २ स्वर्णकार, सोनार।

हैरण्यगर्भ (सं० पु०) १ मनुभेद। (मनु १।१९५) २ हिरण्यगर्भ मनुके अपत्य।

हैरण्यनाभ (सं० पु०) हिरण्यनाभके गोत्रापत्य।

हैरण्यवासस् (सं० त्रि०) स्वर्णवस्त्रयुक्त।

हैरण्यबाहेय (सं० पु०) हिरण्यबाहुके गोत्रापत्य।

हैरण्यस्तूप (सं० त्रि०) हिरण्यस्तूपके गोत्रापत्य, वैदिक ऋषिविशेष।

हैरण्यिक (सं० त्रि०) १ सुवर्णसम्बन्धीय। (पु०) २ स्वर्णकार, सोनार।

हैरण्यवती (सं० स्त्री०) नदीभेद, गण्डकी, हिरण नदी।

हैरत (अ० स्त्री०) १ आश्चर्य, अचरज। २ एक मुकाम या फारसी रागका पुत्र।

हैरम्ब (सं० त्रि०) हेरम्ब अण्। १ हेरम्बसम्बन्धीय, गणेश सम्बन्धीय। (पु०) २ गणेशका उपासक सम्प्रदाय, गाणपत्य।

हैरान (अ० वि०) १ आश्चर्यसे स्तब्ध। २ व्यग्र, परेशान।

हैरिक (सं० पु०) हेरं आसुरीमायां जानातीति ठक्। चौर, चोर।

हैवान (अ० पु०) १ पशु, जानवर। २ जड मनुष्य, बेवकूफ।

हैवानी (अ० वि०) १ पशुका। २ पशुके करने योग्य।

हैसियत (अ० स्त्री०) १ योग्यता, शक्ति। २ आर्थिक दशा, वित्त। ३ मूल्य, कीमत। ४ श्रेणी, दरजा। ५ मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा। ६ धन, दौलत।

हैहय (सं० पु०) १ हैहयवंशी कार्त्तवीर्य्य, सहस्रार्जुन। २ पश्चिम दिशाका एक पर्वत। ३ एक क्षत्रियवंश। हैहयराजवंश देखो। ४ देशभेद, एक मुल्कका नाम।

हैहयराजवंश—इतिहासप्रसिद्ध एक राजवंश। हैहयसे इस वंशकी प्रतिष्ठा हुई है। पुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि राजा हैहय यदुके पुत्र और महाराज नहुषके पौत्र थे।

हैहय लोगोंने आगे चल कर कब और किस तरह दक्षिणभारतमें अपनी धाक जमाई उसका ठीक और आनुपूर्विक विवरण इतिहासमें नहीं मिलता। शिलालिपि आदिके आनुषङ्गिक प्रमाणमें हैहयवंशका जो संक्षिप्त परिचय है उससे जाना जाता है, कि क्षत्रपशक्तिको विलोप करनेवाले महाक्षत्रपने ईश्वरदत्त त्रैकूटमें राजधानी बसाई। करीब २५० ई०में उन्होंने क्षत्रपगर्व बहुत कुछ चूर्ण किया था तथा उस समय उनके नामकी १म और २य वर्षकी मुद्रा प्रचलित थी। अतएव कोङ्कण विजयके बाद उन्होंने जो त्रैकूटक अब्द प्रचार किया था, वह २४८ ई०से ही आरम्भ हुआ। इसके बाद ही कलचूरीय चेदी सम्वत् नामसे इसकी प्रसिद्धि हुई है।

वीरदामके पुत्र रुद्रदामके शासनकालमें क्षत्रपोंने फिरसे अपना खोया हुआ राज्य अधिकार कर त्रैकूटकोंको राज्यसे निकाल भगाया। वे लोग कोई उपाय न देख मध्यभारत भाग गये और वहां हैहय या कलचूडी नामसे प्रसिद्ध हुए। इसके बाद क्षत्रप प्रभावका एकदम पतन होने पर त्रैकूटकोंने पुनः त्रिकूट राजधानी पर अधिकार जमाया। हम ४५६ ई०में त्रैकूटकराज दहसेनको सिंहासन पर अधिष्ठित पाते हैं।

अनन्तर ५६७ ई०में पूर्वचालुक्यवंशीय १म पुलकेशीके पुत्र मङ्गलीशके विजयप्रसङ्गमें कलचूरिराज बुद्धराजकी पराजयकी बात लिखी है। शिलालिपिसे यह भी जाना जाता है, कि पश्चिम चालुक्यवंशीय १म विक्रमादित्यके पुत्र विनयादित्य सत्याश्रयने अपने शासनकालके ११वें से १४वें वर्षके भीतर पल्लव, हैहय आदि जातियोंको परास्त किया था। उसी वंशके राजा २य विक्रमादित्य सत्याश्रयने चेदिराजकन्या लोकमहादेवी और त्रैलोक्य महादेवीका पाणिग्रहण किया (७३३ ई०)। परवर्ती राष्ट्रकूटराजे भी हैहयराजकुमारियोंका पाणिग्रहण कर उन लोगोंके साथ सम्बन्ध जोड गये हैं।

आगे चल कर हैहय लोग कलचुडि या कुलचूरि कहलाने लगे। वे लोग चेदी नामक देशमें राज्य करते थे। वह चेदीराज्य वर्त्तमान जब्बलपुरके आस पासके स्थान ले कर संगठित था। उस समय हैहयराज चेदी या कलचूडिया राज कहलाते थे। पीछे जब इस वंशकी एक शाखाने कल्याणदेशमें जा कर राज्य फैलाया, तब ही से 'कल्याणके कलचूरिराज' नामका आरम्भ हुआ।

कल्याणपति विज्जलकी उपाधि 'कालञ्जरपुरवराधीश्वर' थी। कालञ्जरमें प्राचीन चेदिराजाओंका एक जबरदस्त किला था। मालूम होता है, कि इसी समय कालञ्जर उनकी राजधानीरूपमें समझा जाता था। परन्तु यथार्थमें त्रिपुर (वर्त्तमान तेवुर) नामक स्थानमें ही उनके प्रासाद आदि थे। कल्याणपतिके ऐसी उपाधि धारण करनेसे ही जाना जाता है, कि उन्होंने पूर्वतन हैहय या कलचुडिवंशकी मर्यादारक्षाके लिये 'कालञ्जरपुराधीश्वर' उपाधिको गौरवके साथ धारण कर अपने वंशको गौरवान्वित किया था।

कृष्ण ही कल्याणके कलचूरिवंशके प्रतिष्ठाता थे। बेलगामकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि चेदिकुलके कृष्ण और यदुकुलके भगवान् श्रीकृष्ण दोनों एक-से थे और लोग उन्हें विष्णुका अवतार मानते थे। कृष्णके पुत्र जोगम, जोगमके पुत्र परमर्दी और यही परमर्दी विज्जलके पिता थे। ३य सोमेश्वरके पुत्र राजा जगदेकमल्लके राज्यकालमें विज्जल 'महामण्डलेश्वर' थे। उन्होंने कल्याणके राजा ३य तैलको बड़े कौशलसे राज्यच्युत कर धीरे धीरे उपाधिके साथ कल्याणका चालुक्यसिंहासन अधिकार किया था। परन्तु कुछ समय बाद ही राज्यमें एक धर्मविप्लव खडा हो गया। इस विप्लवसे उन्हें सपरिवार राज्यभ्रष्ट होना पड़ा था।

लिङ्गायत-धर्मप्रवर्त्तक वसव इस विद्रोहके प्रधान नेता थे। वसवके मामा और ससुर बलदेव महाराज विज्जलके प्रधान मन्त्री थे। बलदेवकी मृत्युके बाद विज्जलने वसवको ही मन्त्री बनाया। वसव लिङ्गायत मतका प्रचार करनेके लिये खजाना खाली कर रहे थे, यह सुन कर राजाने उन्हें दंड देना चाहा। वसव भाग गये। राजाने उनका पीछा किया, पर राहमें ही वसवके शिष्योंने उन्हें परास्त किया। राजाको बाध्य हो कर उन्हें मन्त्री बनाना पड़ा, पर दोनोंमें पटती नहीं थी। कुछ समय बाद षड़यन्त्र करके वसवने राजाका काम तमाम किया।

इस घटनाका वर्णन वसवपुराणमें भक्तलिङ्गायतकी

लेखकोंसे जिस भावमें किया गया है, विज्जलरायचरितके रचयिता जैनकविकी रचनामें कुछ और तरहसे देखा जाता है। वसवपुराणमें लिखा है, कि राजा विज्जलने हल्लेयग और मधुवेय्य नामक दो लिङ्गायत साधुओंको दुर्जन जान कर उनकी आंखें निकाल लीं। इस पर वसव बड़े बिगड़े और उनके हुक्मसे उनके प्रियशिष्य जगद्देवने अनुचरके साथ राजसभामें जा कर राजाको मार डाला। अनन्तर वसवके शापसे कल्याणनगरीमें घोर राष्ट्रविप्लव फैल गया। अधिवासी लोग आपसमें ही मार काट करने लगे।

जैनलेखकका उपाख्यान कुछ और तरहसे है। राजा विज्जलने शिलाहारवंशीय सामन्तराज २य भोजको काबूमें लानेके लिये कोल्हापुरकी ओर युद्धयात्रा कर दी। कुछ दिन बाद स्वराज्य लौटते समय वे भीमा नदीके किनारे खेमा डाल कर विश्राम करने लगे। राजा स्वयं जैनधर्मानुरक्त थे, पर उनके मन्त्री वसव लिङ्गायत थे। वसव जब अपने मालिकको स्वमतमें लाख चेष्टा करने पर भी नहीं ला सके, तब उन्होंने उनका प्राण लेनेका संकल्प किया। इस उद्देशसे उन्होंने भीमानदीके किनारे अवस्थित राजाके पास अपने एक विश्वस्त जङ्गम अनुचरको जैनपुरोहितरूपमें सजा कर भेजा। छद्मवेशी जैनपुरोहितने राजाको कुछ विषैले फल भेंटमें दिये। जैनधर्म पर विश्वास रखनेवाले राजा पुरोहितके दिये हुए उपहार पर जरा भी संदेह न कर फल ले लिये। परन्तु ज्यों ही वे उस सुपक्व फलको सूंघनेके लिये नाकके पास लाये, त्यों ही उनका होश हवाश जाता रहा।

यह संवाद बिजलीकी तरह सेनेमें फैल गया। राजपुत्र इम्मड़ि विज्जल और अन्यान्य आत्मीयवर्ग राजाकी सेवा शुश्रूषाके लिये वहां आये। बहुत चेष्टा करनेके बाद कुछ समयके लिये उनकी मूर्च्छा दूर हुई। इस समय उन्होंने पुत्रको बुला कर कहा, 'दुरात्मा वसवने विषैला फल भेज कर बड़े कौशलसे मेरी जान ले ली। बेटा! तुम इसका बदला अवश्य लेना।' इतना कहते न न कहते राजा फिर मूर्च्छित हो पड़े, उनके प्राण पखेरू उड़ गये। पिताका श्राद्ध आदि कर चुकनेके बाद युवराज वसवको दण्ड देने चले। वसवने मालवाके उपकूलस्थ उलवी नामक स्थानमें जा कर आश्रय लिया। परन्तु वहां भी वे निश्चिन्त न हो सके। राजसेनाने शीघ्र ही जा कर उलवीनगरको घेर लिया। वसवने कुएं-में कूद कर मान रक्षा की। उनकी स्त्री नीलम्माने विष खा कर सांसारिक ज्वालासे छुटकारा पाया। अनन्तर छेन्नवसवने राजद्वारमें आ कर प्राणभिक्षा मांगी। राजाने उन्हें माफ कर दिया।

११६७ ई०में विज्जलकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के सोम (नामान्तर सोविदेव या सोमेश्वर) सिंहासन पर बैठे। राजा सोमने अपनी स्त्री वावलदेवीके-लिये १०९६ शकके जय-वर्षमें कार्त्तिकी शुक्ला द्वादशीके दिन ब्राह्मणोंको तथा सोमेश्वरदेवके पूजोपलक्षमें भूमि दान की थी। ११०० शकमें राजा सोमेश्वरका शासनकाल शेष हुआ। पीछे उनके भाई सङ्कमने कुछ समय स्वाधीनभावसे और कुछ समय अपने भाई आहवमल्लके साथ मिल कर राज्य किया। ११०३ और ११०४ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें दोनों भाइयोंका शासनकाल लिखा है। इस अंतिम शकमें ही चालुक्यराज ४र्थ सोमेश्वरने कलचूरिराजवंशके पंजेसे अपने पूर्वपुरुषोंके खोये हुए राज्यका कुछ अंश उद्धार किया। उधर उत्तरके यादवराजोंने भी बचा खुचा अंश अधिकार कर लिया। इस समय सिङ्घण नाम मात्रके राजा थे तथा उन्हींके समयसे कलचूरिवंशका विलोप हुआ।

हम शिलालिपिसे तीन विभिन्न हैहय या कलचूरिवंशका शासनप्रभाव नाना स्थानोंमें विस्तृत देखते हैं। उन तीनोंमें चेदीका राजवंश ही आदि मूल और अत्यन्त प्रभावशाली थे। कल्याण और रतनपुरके राजवंश उनके शाखामात्र थे। जनसाधारणकी सुविधाके लिये उक्त राजाओंकी तालिका नीचे लिपिबद्ध की गई है—

चेदिके कलचूरिराजगण

१ कृष्णवर्ण
२ शङ्करगण
३ बुद्धराज २रेके पुत्र—५८० ई०

* * * *

४ कोक्कल्ल १म	८७५ ई०
५ मुग्धतुङ्ग प्रसिद्ध धवल	४थेके पुत्र—९००
६ बालहर्ष	५वेंके पुत्र
७ केयूरवर्ष युवराजदेव	५वेंके पुत्र—९२५
८ लक्ष्मणराज	७वेंके पुत्र—९५०
९ शङ्करगणदेव	८वेंके पुत्र—९७०
१० युवराजदेव २य	८वेंके पुत्र—९७५
११ कोक्कल्लदेव २य	१०वेंके पुत्र—१०००
१२ गाङ्गेयदेव विक्रमादित्य	११वेंके पुत्र—१०३८
१३ कर्णदेव	१२वेंके पुत्र—१०४२
१४ यशःकर्णदेव	१३वेंके पुत्र—११५२
१५ गयकर्ण देव	१४वेंके पुत्र—११५१
१६ नरसिंहदेव	१५वेंके पुत्र—११५५
१७ जयसिंहदेव	१५वेंके पुत्र—११७७
१८ विजयसिंहदेव	१७वेंके पुत्र—११८०

कल्याणके कलचुरिराजगण

१ जोगम	
२ पेर्माड़ी (परमर्द्दी)	१लेके पुत्र—११२८ ई०
३ त्रिभुवनमल्ल-विज्जल	२रेके पुत्र—११५५
४ सोमेश्वर या सोविदेव	३रेके पुत्र—११६८
५ निःशङ्कमल्ल सङ्कम	,, ११७८
६ वीरनारायण आहवमल्ल	,, ११८०
७ सिङ्घण	,, ११८३

रत्नपुरके कलचुरिराजगण

१ कलिङ्गराज—चेदीश्वर कोक्कल्लके वंशधर। किसी किसी शिलालिपिमें इनका पुत्रके रूपमें और किसीमें पुत्रके वंशावतंशरूपमें वर्णन है। इन्होंने दक्षिण-कोशलके अन्तर्गत तुम्माननगरमें राजधानी बसाई।

२ कमल — १लेके पुत्र

३ रत्नराज रत्नदेव १म या रत्नेश—२रेके पुत्र, रत्नपुरके प्रतिष्ठाता।

४ पृथ्वीदेव १म या पृथ्वीश — ३रेके पुत्र।

५ जाजल्लदेव — ४थेके पुत्र—१११४ ई०।

६ रत्नदेव २य—५वेंके पुत्र, कलिङ्गराज चोड़गङ्गके विजेता

७ पृथ्वीदेव २य — ६ठेके पुत्र—११४५

८ जाजल्लदेव २य — ७वेंके पुत्र—११६८

९ रत्नदेव ३य — ८वेंके पुत्र—११८१

१० पृथ्वीदेव ३य — ९वेंके पुत्र—११९०

कलचुरि, कल्याण, चेदी और रत्नपुर शब्द देखो।

९७३ से ११८८ ई०के मध्यवर्त्ती समयमें चालुक्य और कलचुरिराजाओंके यत्नसे दक्षिण भारतवासीका धर्म प्रभाव और सामाजिक अवस्था नष्ट हो कर नये भावका उदय हो रहा था। राजा त्रिभुवनमल्ल और २य विक्रमादित्यके शासनकालमें १०१७ शकको १४ वैश्यवणिक्ने एक बौद्धविहार तथा धारवाड़ जिलेके धर्मवोलल (वर्त्तमान दम्बोल) नगरमें एक देवमन्दिर बनवाया। १०१२ शकमें कोल्हापुरके शिलाहारपतिने एक दिग्गी खुदवा कर उसके किनारे शिव, बुद्ध और अर्हन्तमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की। इस समय नवोद्यमसे लिङ्गायत धर्मका अभ्युदय होनेके कारण जैनधर्म लोप हो गया। बहुतसे जैनमन्दिरोंकी जिनमूर्त्ति दूर फेंक दी गई और उसके स्थानमें हिन्दू-देवदेवीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई।

हैहयवंशी—युक्तप्रदेशके बलिया जिलेकी एक राजपूत-शाखा। इस शाखाके लोग हयवंश भी कहलाते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि यह राजपूतशाखा चन्द्रवंशसे उत्पन्न हुई है और सारे जिलेमें इनका बड़ा सम्मान है।

किंवदन्ती है, कि नर्मदा उपत्यकाकी माहिष्मतीपुरीमें चन्द्रवंशकी एक राजधानी थी। हैहयवंशीय राजा सहस्रार्जुन उस पुरी और वहांके राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। पीछे इस वंशके ५२वें राजाने वंशपरम्परासे मध्यप्रदेशका रतनपुर सिंहासन अलंकृत किया था। एक समय दाक्षिणात्यभुवनमें हैहयवंशका यश और प्रताप खूब फैल गया था। बलियाके हयवंशी राजपूत अपनेको रतनपुर राजवंशसे उत्पन्न बतलाते हैं। करीब ८५० ई०में रतनपुरराजवंशके चन्द्रगोत नामक कोई कनिष्ठ राजकुमार उत्तर भारतमें तीर्थपर्यटनको निकले और सारण जिलेके गङ्गातीरवर्त्ती मांझा नगरमें बस गये। अनन्तर उन्होंने स्थानीय चेरो नामक असभ्य जातिको युद्धमें परास्त कर आसपासके स्थानोंको दखल कर लिया। उनके वंशधर दो सदी तक मांझामें रह कर गंगाके दक्षिणी किनारे विहिया नामक स्थानमें

प्रतिष्ठित हुए। यहां भी वे लोग पांच सदी तक वास कर और पीछे चेरोंको पुनः परास्त कर अपने काबूमें लाये थे। इस समय उन लोगोंका बलवीर्य अक्षुण्ण और अप्रतिहत था।

१५२८ ई०के लगभग हैहयराज भोपत (भूपति) देव अथवा उनके इकलौते लड़केने मोहिनी नामकी एक ब्राह्मणकन्याका सतीत्व नष्ट किया। वह कन्या हैहय वंशके पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुई थी। उसके रूप-लावण्य पर आकृष्ट हो राजकुमारने बलपूर्वक उसे अपहरण कर अपनी पापप्रवृत्तिको चरितार्थ किया।

ब्राह्मण-कुमारी इस अपमान और आत्मग्लानिके मारे आगमें जल मरी। मृत्युकालमें उसने शाप दिया शीघ्र ही हैहयवंशकी कीर्त्ति और प्रभाव विलुप्त हो जायेगा और उसके वंशधर मानसिक कष्टसे जीवन बितायेंगे।' ब्राह्मणकन्याका वाक्य निष्फल नहीं हुआ। थोड़े ही समयमें हैहयवंशका अवश्यम्भावी अधःपतन शुरू हुआ। सामनेमें बड़ी बड़ी मुसीबतें देख इन लोगोंने शीघ्र ही उस अभिशप्त विहिया नगरीका परित्याग किया और गङ्गा पार कर वे सबके सब बलिया परगने चले गये। यहां कुछ दिन 'गंगाघाट' नामक स्थानमें रहनेके बाद वे हल्दी नामक स्थानमें गये और वहीं स्थायीरूपसे रहने लगे। आज भी हैहयवंशीय राजे इस हल्दीमें आ कर ही राजोपाधि ग्रहण करते हैं।

वर्त्तमान विहिया रेलस्टेशनके समीपवर्त्ती एक बड़े पीपल पेड़के नीचे मोहिनी ब्राह्मणीकी समाधि अवस्थित है। स्थानीय रमणियां उस समाधि-स्थलमें आ कर मोहिनीको सती और देवीकी अंशसंभूता जान कर उसकी पूजा करती हैं। मोहिनीके शाप देनेके बाद फिर कोई भी हैहयवंशधरको विहिया जानेका साहस नहीं करते। यहां तक कि, वे लोग विहियामें अपनेके पूर्वपुरुषोंके प्रतिष्ठित दुर्गका खंडहर भी देखनेको नहीं जाते। उनका रूप रंग देख कर कोई कोई पाश्चात्य जातितत्त्वविद् उन्हें तामिल जातिके बतलाते हैं। परंतु पुराणवर्णित हैहय जातिके साथ उन लोगोंका संबंध स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं देखी जाती।

पुराण पढ़नेसे हमें पता चलता है, कि हैहय लोगोंने यदुवंशीय तालजङ्घोंके साथ मिल कर बाहुराजको परास्त किया था, पीछे वे लोग राजा सगरसे परास्त हुए। महामति कर्नल टाडकी उक्तिसे हमें मालूम होता है, कि बुन्देलखण्डके अन्तर्गत सहजपुरकी उपत्यकामें हैहयवंशकी एक शाखा विद्यमान है। उन लोगोंकी संख्या थोड़ी होने पर भी वे पूर्वपुरुषोंकी गाथाधारासे अवगत हैं और युद्धविग्रहमें बहुत कुछ प्रसिद्धि लाभ कर चुके हैं।

दाक्षिणात्यके प्रतिष्ठाशाली हैहयवंशका उत्तर भारतवर्षमें आना और उपनिवेश बसाना असम्भव नहीं है। ऊपर कही गई किंवदन्ती या वंशाख्यायिकाके मूलमें और कोई सत्यता नहीं रहने पर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि यह हैहयवंश दक्षिण भारतसे उत्तरमें आ कर बस गये हैं तथा आगे चल कर उन्होंने दक्षिण भारतमें सुपरिचित स्वजाति और ज्ञातिवर्गकी गौरव कहानीको विस्मृति जलमें डुबा दिया है। राजस्थान वर्णित हैहयवंशके परिचयसे उत्तर भारतमें दूसरी हैहय शाखाकी विद्यमानता प्रमाणित होती है।

हिया, होए, हि, एहको, है, एहहा और हून आदि चीन तातारवासी दुर्द्धर्ष जातिके नामके साथ हैहय शब्दका शब्दसादृश्य देख कर अध्यापक विलसनने कहा है, कि हैहय लोग शायद राजपूतोंकी तरह मध्य-एशियासे भारतवर्षमें आये हैं तथा वे ऊपर कही गई तुर्कजाति मेंसे एक हैं। दुःखका विषय है, कि इस मतको हम लोग समीचीन नहीं मान सकते।

हैहयसंवत्—हैहय या चेदिराजवंशका चलाया हुआ सम्वत्भेद। इसे कलचूरि संवत् भी कहते हैं। डाक्टर कीलहोर्णने प्रमाणित किया है, कि २४८ ई०की ५वीं सितम्बरसे इस अब्दका आरम्भ है।

हैहै (हिं० अव्य०) हाय, अफसोस।

होंठ (हिं० पु०) ओष्ठ।

होंठल (हिं० वि०) मोटे होंठोंवाला।

होंठी (हिं० स्त्री०) १ किनारा, बारी। २ छोटा टुकड़ा।

हो (सं० पु०) पुकारनेका शब्द या सम्बोधन। २ आह्वान। ३ विस्मय।

हो (लड़का कोल)—सिंहभूम जिलावासी कोलजातिकी

एक शाखा। हो शायद संथाल और मुंडाभाषाके होरो शब्दका अपभ्रंश है। इस शब्दसे मनुष्यका बोध होता है। हो जाति कई गोत्रोंमें विभक्त है। सगोत्रमें विवाह नहीं हो सकता। इसके अलावा मातृसम्पर्कीय नजदीकी रिश्तेदारसे विवाह करनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं।

ये लोग अपनेको मुंडा बतलाते हैं। छोटानागपुर इनका आदिम वासस्थान है। शायद ये लोग कोल लोगोंकी ही एक शाखा है। सामाजिक हिसाबसे होगण स्वातन्त्र्यप्रिय हैं। ये लोग किसी दूसरी जातिमें मिलना नहीं चाहते। यहां तक, कि आस पासमें विदेशियोंका बस जाना उन्हें मालूम होता है।

ये लोग एक अद्भुत सृष्टितत्त्व पर विश्वास करते हैं। बहुतोंका ख्याल है, कि ओटबेराम और सिंबोङ्गाको किसीने भी सृष्टि नहीं की। वे आपसे आप उत्पन्न हुए हैं। सिंबोङ्गाने ही आदमानव और मिट्टी पहाड़, जड़ आदिकी सृष्टि की। पीछे घास और वृक्षसे पृथ्वी ढक दी गई। जब कुल मनुष्यको आराम मिल गया, तब सिंगबोङ्गाने एक बालक और बालिकाकी सृष्टि कर उन्हें एक गह्वरमें रख दिया।

ये दोनों इतने सरल और अनभिज्ञ थे, कि सङ्गमकी बिलकुल इच्छा न थी। अतः सिंबोङ्गाने अपना अपना उद्देश व्यर्थ होता देख दोनोंको धानका मद व्यवहार करना सिखाया। उसे पीनेसे दोनोंको कामका उदय हुआ। इस आदि जनक जननीसे १२ कन्या और १२ पुत्र उत्पन्न हुए। इसके बाद सिंबोङ्गाने एक भोजकी तैयारी की जिसमें बारह भाइयोंको एक एक बहन दे दी। इस प्रकार जब बारह जोड़े हुए, तब उन्होंने भोजमें जो सब वस्तु तैयार हुई थी उनमेंसे मनमुआफिक उठा लेने उन लोगोंसे कहा। पहले और दूसरे जोड़ेने भैंस और बैलका मांस लिया। उसी जोड़ेसे हो और भुमिजकी उत्पत्ति हुई। जिन्होंने शाकसब्जी ली, वे ही ब्राह्मण और क्षत्रियके आदि जनक जननी हुए। भुंइया लोगोंके आदि पिताने शामुक और संथालोंके पूर्वपुरुषने सूअरका मांस पसन्द किया था। इसी प्रकार मानवसाधारणकी समस्त जातिकी उत्पत्ति हुई। मद्यपान करना भगवान्का आदेश है, ऐसा समझ कर सभी होलोग खूब शराब पीते हैं।

ये लोग अन्यान्य अनार्यजातिसे बढ़ कर देखनेमें सुन्दर हैं। किसी किसीके मुंहकी गठन और लावण्य आर्यों सा है। स्त्रियोंमें सुन्दरीकी संख्या भी कम नहीं है। पुरुष अनेक समय नंगे रहते हैं, स्त्रियां साधारणतः कमरमें एक कपड़ा लपेट कर चलती फिरती हैं। केवल चाईबासा आदि शहरोंमें सुसभ्यकी तरह पोशाक पहनती हैं।

जब बच्चा जन्म लेता है, तब मातापिताको बीसी अर्थात् अशौच होता है। इस समय स्वामी स्त्रीको अपने हाथसे रसोई कर खिलाता है।

प्रत्येक ग्राममें अनेक अविवाहिता वृद्धा स्त्री हैं। उसका कारण यह है, कि कन्याका बाप वरके पिता आदिसे बहुत रुपया मांगता है, पर वे लोग इतना रुपया दे कर विवाह करना नहीं चाहते। इसके फलसे कितनी वृद्धा स्त्रियां आजीवन कुमारी ही रह जाती हैं। ऐसी अवस्थामें उनका व्यभिचारिणी होना असम्भव नहीं है। इन लोगोंकी विवाह-विधिमें कोई मन्त्रपाठ नहीं है। वर अपने बरतनमें मदिरा ढाल कर कन्याको देता है, कन्या उसमेंसे कुछ पी कर वरको लौटा देती है। यही हुई इन लोगोंकी विवाह पद्धति।

ये लोग तीर धनुष चलानेमें बड़े सिद्धहस्त, व्यायाममें पटु और साधारणतः कृषिकर्मोपजीवी होते हैं। इन लोगोंका माघपर्व प्रधान उत्सव है। माघमासमें जब इन लोगोंका घर अनाजसे भरा रहता है, तब ये लोग खूब आमोद प्रमोद मनाते हैं। मृतदेहका ये लोग यथेष्ट सम्मान करना जानते हैं। इनकी मृतदेह-सत्कारकी प्रथा बहुत कुछ खासिया और गारो लोगोंसी है। शवदाह प्रथा ही प्रचलित देखी जाती है।

अभी इन लोगोंमें धर्ममतकी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। वे अभी जिस धर्ममत पर विश्वास करते हैं, वह या तो हिन्दूपुराणसे या ईसाई पादरियोंके मुखसे निकली हुई बाइबिलसे लिया गया है। कोल शब्द देखो।

होइ-होइ—चीनसाम्राज्यमें औपनिवेशिक एक मुसलमान जाति। युनन प्रदेशमें मुगल राजवंशके जमाने मुसल-

मानोंने उइगुर-होइ-होइकी उपाधि पाई थी। आगे चल कर यह संक्षेप 'होइ-होइ' शब्द चीन देशकी सभी मुसलमान जातियोंके ऊपर आरोपित हुआ और इससे एक स्वतन्त्र जाति समझी जाने लगी। चीन और मंचू लोग अभी वाणिज्य व्यवसायके लिये चीन राज्यमें अधिष्ठित मुसलमान मात्रको ही इसी नामसे पुकारते हैं।

होइ-किं—बौद्ध धर्मावलम्बी एक चीन-परिव्राजक। ये सुप्रसिद्ध परिव्राजक फाहियान तथा अन्यान्य चीनवासियोंके साथ ३९९-४०० ई०में खोतान (यु-इन्) नगरमें पहुंचे। इसके बाद फा-हियानके त्सु-बो, यु-होइ और त्सुलिङ्ग पर्वत लांघ कर किएच्छ (वर्त्तमान लादक) प्रदेश आने पर होइ किं दूसरे रास्तेसे तातार राज्य और काबुलके बीचसे होते हुए उनसे जा मिले। किएच्छसे दोनों परिव्राजक एक मास पश्चिमकी ओर चल कर थो-ली नामक स्थानमें पहुंचे थे। अनन्तर वे लोग भारतवर्षके नाना स्थानों तथा सिंहलद्वीपके अनेक बौद्ध तीर्थों, मठों और संघारामादिके दर्शन करते हुए नावसे जव द्वीप गये। वहांसे उन लोगोंने फिर स्वदेशकी यात्रा की थी। फाहियान उस समय भारतवर्षमें बौद्ध धर्मका प्रभाव और वैष्णव धर्मका अभ्युत्थान देख कर उसे अपनी फो किउ-कि नामक भ्रमण-विवरणीमें लिपिबद्ध कर गये हैं। फाहियान देखो।

होई (हिं० स्त्री०) दीवालीके आठ दिन पहले होनेवाला एक पूजन या त्योहार। इसमें ऐसी दो स्त्रियोंकी कथा कही जाती है जिनमेंसे एकको संतान होती ही नहीं थी और दूसरीकी संतान हो हो कर मर जाती थी।

होगल (सं० पु०) तृणविशेष, एक प्रकारकी नरसल।

होगला (हि० पु०) होगल देखो।

होजन (हिं० पु०) एक प्रकारका हाशिया या किनारा जो कपड़ोंमें बनाया जाता है।

होटल (अं० पु०) वह स्थान जहां मूल्य ले कर लोगोंके भोजन और ठहरनेका प्रबंध होता है।

होड (सं० पु०) १ नौकाविशेष, तरेंदा। २ गौडदेशीय श्रोत्रीय ब्राह्मणविशेषकी उपाधि। ३ बङ्गालकी एक कायस्थ उपाधि।

होड़ (हिं० स्त्री०) १ शर्त, बाजी। २ एक दूसरेसे बढ़ जानेका प्रयत्न, स्पर्द्धा। ३ जिद, हठ। ४ समान होनेका प्रयास, बराबरी।

होडाबादी (हिं० स्त्री०) होड़ा-होड़ी।

होडाहोड़ी (हिं० स्त्री०) १ चढ़ा ऊपरी, दूसरेके बराबर होने या दूसरेसे बढ़ जानेका प्रयत्न। २ शर्त, बाजी।

होड्र (सं० पु०) चौर, चोर।

होढ़ (सं० त्रि०) चुराया हुआ, चोरीका।

होतब (हिं० पु०) होनहार, होनेवाला।

होतव्य (हिं० पु०) भवितव्य, होनेवाला।

होतव्यता (हिं० स्त्री०) भवितव्यता, होनेवाली बात।

होता (हिं० पु०) होतृ देखो।

होतृ (सं० पु०) जुहोतीति हु-(नप्तृनेष्टृत्वष्ट्रहोत्रिति। उण् २।९६) इति तृण् निपातितश्च। १ ऋग्वेदवेत्ता। २ होमकर्त्ता, मन्त्र पढ़ कर अग्निकुंडमें हवनकी सामग्री डालनेवाला। यह चार प्रधान ऋत्विजोंमें है जो ऋग्वेदके मन्त्र पढ़ता और देवताओंका आह्वान करता है। इसके तीन पुरुष या सहायक होते हैं—मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत्। ३ पुरोहित, यज्ञादिस्थलमें ऋक्प्रयोक्ता। ४ यष्टा, यजमान। (त्रि०) ५ यज्ञकर्त्ता।

होतृक (सं० पु०) होता।

होतृचमस (सं० पु०) होताका चमस, होमका उपयुक्त चमस।

होतृजप (सं० पु०) होताका जप।

होतृमत् (सं० त्रि०) ऋषियुक्त। (ऋक् १०।४१।२)

होतृवूर्य्य (सं० क्ली०) होतृवरणक योग्य कर्म, यज्ञ।

होतृवेद (सं० पु०) यज्ञ। (ऐत० ब्रा० ६।१)

होतृसदन (सं० क्ली०) यज्ञवेदी, वह स्थान जहां होता बैठ कर होम करते हैं।

होतॄकार (सं० पु०) होताकी माता। व्याकरणके सन्धिसूत्रमें लिखा है, कि होतृ लृ-कारके स्थानमें ऋकार और लृकारमें सन्धि हो कर दीर्घ ॠकार हो 'होतॄकार' यह पद बना।

होत्र (सं० क्ली०) हूयते इति (हु याम्याश्रु भसिभ्यस्त्रन्। उण् ४।१६७) इति त्रन्। १ हविः। २ होम।

होत्रक (सं० पु०) १ होता। (क्ली०) २ होम।

होत्रवह (सं० त्रि०) यज्ञवोढ़ा। (ऋक् ५।२६।७)

होत्रवाहन (सं० पु०) हव्यवाहन, अग्नि।

होत्रा (सं० स्त्री०) हु-त्रन्-टाप्। १ स्तुति। २ आहूयमान देवता। (ऋक् २।१८।८)

होत्राविद् (सं० त्रि०) होम या सप्तहोत्रकवेत्ता।

होत्राशसिन् (सं० पु०) होमसूचक, वह कार्य्य जो होता करते हैं।

होत्रिन् (सं० पु०) होत्रं विद्यते अस्य इति इन्। होता।

होत्रिय (सं० त्रि०) होतृसम्बन्धी, होताका स्वभूतचमस।

होत्री (सं० स्त्री०) हु तृच्-ङीष्। यजमानरूपा शिवकी एक मूर्त्ति।

होत्रीय (सं० क्ली०) १ हविर्गेह। (त्रि०) २ होत्रसम्बन्धी।

होदाल—पंजाबके गुरगांव जिलेके अधीन एक वाणिज्यप्रधान शहर। यह अक्षा० २७° ५३´ उ० तथा देशा० ७७° २३´ पू० दिल्ली और आगरा जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। भरतपुरके जाटराज सूरजमलका होदालके साथ वैवाहिक सम्बन्ध था। उन्हींके समय यहां बहुतसे प्रासाद और हर्म्य बनाये गये थे; परन्तु अभी वहां लोकसमागमके बदले वानर समागम होता है और वे सब बड़ी बड़ी इमारतें खंडहरमें पड़ी हैं। केवल एक चौकोन सीढ़ी लगी हुई पुष्करिणीका सौन्दर्य्य ही अभी अक्षुण्ण है। मराठोंके समय होदालमें फरासी और बायेनकी जागीर थी। पीछे लार्ड लेकने जब उन्हें परास्त किया, तब उन्होंने १८०३ ई०में यह महम्मद खाँको जागीरसूत्रमें दे दिया। उनकी मृत्युके बाद १८१३ ई०में यह बृटिशराजके दखलमें आया। यहा सराय, स्कूल, डाकघर, अस्पताल और थाना हैं।

होनहार (हिं० वि०) १ भावी, जो होनेको है। २ अच्छे लक्षणोंवाला, जिसमें भावी उन्नतिके चिह्न हो। (पु०) ३ वह बात जो होनेको हो, भवितव्यता।

होना (हिं० क्रि०) १ अस्तित्व रखना, उपस्थित या मौजूद रहना। २ विकार-सूचक क्रिया, एक रूपसे दूसरे रूपमें आना। ३ साधित किया जाना, भुगतना। ४ निर्माण किया जाना, बनाना। ५ घटनासूचक क्रिया, कोई बात या संयोग आ पडना। ६ किसी रोग, व्याधि, अस्वस्थता, प्रेतबाधा आदिका आना, किसी मर्ज या बीमारीका घेरना। ७ प्रभाव या गुण दिखाई पड़ना, असर देखनेमें आना। ८ उद्भव पाना, जनमना। ९ बीतना, गुजरना। १० प्रयोजन या कार्य्य सधना, काम निकलना। ११ परिणाम निकलना, फल देखनेमें आना। १२ क्षति आना, हानि पहुंचना।

होनावर—१ बम्बई प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° ५३´ से १४° २६´ उ० तथा देशा० ७४° २६´ से ७४° ४७´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। इसमें होनावर और भाटकल नामक २ शहर और १५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। गरसोप्पा नदी इस तालुकसे होती हुई पूरबसे पश्चिमकी ओर चली गई है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर और बन्दर। यह अक्षा० १४° १७´ उ० तथा देशा० ७४° २७´ पू०, कारवारसे ५० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां गेरसोप्पा या शिरावती नदी आ कर समुद्रमें मिल गई है। यहाकी आबादी ७ हजारके लगभग है। बहुत पहलेसे यह स्थान समुद्रबन्दर और वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है। १३वीं सदीके शेष भागमें पहले अबुल फेदा, पीछे इबन् बतूता इस स्थानका अच्छी तरह उल्लेख कर गये हैं। उस समय यहां बहुतसे धनी लोग रहते थे। १६वीं सदीमें चावलके व्यवसायके लिये इस स्थानकी बड़ी प्रसिद्धि थी, इस कारण दूर दूर देशसे नाव जहाज यहां आते थे। १५०५ ई०में पुर्त्तगीजोंने यहां दुर्ग बनाया। पुर्त्तगीज देखो। पुर्त्तगीज प्रभाव विलुप्त होने पर यह स्थान वेदनूरके राजाके अधिकारमें आया था। पीछे हैदर अलीने इसे दखल किया। १७९९ ई०में टीपू सुलतानकी पराजयके बाद यह स्थान बृटिश अधिकारभुक्त हुआ है।

शहरमें एक सब-जजकी अदालत, एक अस्पताल, एक मिडिल स्कूल तथा चार अन्यान्य स्कूल हैं।

होनी (हिं० स्त्री०) १ उत्पत्ति, पैदाइश। २ वृत्तान्त, हाल। ३ भावी, होनेवाली बात या घटना। ४ वह बात जिसका होना संभव हो, हो सकनेवाली बात।

होवर (हिं० पु०) सोहन चिड़ियाका एक भेद, तिल्लर।

होम (सं० पु०) हवनमिति (अर्त्तिस्तुसुहुस्विति। उणा० १।१३९) इति मन्। १ देवताओंके उद्देशसे अग्निमें घृत, जौ आदि डालना, आहुति देनेका कर्म। यज्ञादिमें विधिपूर्वक अग्नि जला कर जो घृतादिकी आहुति दी जाती है उसे होम कहते हैं। यह पञ्च महायज्ञके अन्तर्गत एक यज्ञ है। शास्त्रमें लिखा है, कि द्विजातियोंको प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।

सभी दिन होम किया जा सकता है और यह प्रति दिनका कर्त्तव्य है। पञ्च महायज्ञके मध्य देवताके उद्देशसे होम करनेका नाम दैवयज्ञ है। (मनु ३।७०)

विधिपूर्वक अध्ययन और अध्यापनका नाम ब्रह्म यज्ञ, अन्नादि या उदक द्वारा पितृलोकके तर्पण करनेका नाम पितृयज्ञ और होमका नाम दैवयज्ञ है। जो गृहस्थ प्रति दिन पञ्च महायज्ञका अनुष्ठान करते हैं तथा एक दिन भी उसे नहीं छोड़ते वे पञ्चसूनाजनित पापसे छुटकारा पाते हैं। (मनु ३।७५-६)

होम ही इस जगत्की रक्षा और स्थितिका मूल है। होमका सम्यक् अनुष्ठान नहीं करनेसे वृष्टि नहीं होती। वृष्टि नहीं होनेसे शस्य उत्पन्न नहीं होता, शस्यके उत्पन्न नहीं होनेसे प्रजा उत्पन्न नहीं होती। इस कारण जगत् धीरे धीरे ध्वंसको प्राप्त होता है। अतः होम ही चराचर जगत्स्थितिका मूल है।

प्रतिदिन होमजन्य संस्कृत अग्निमें पक्व अन्न द्वारा वक्ष्यमाण प्रणालीके अनुसार निम्नोक्त देवताओंका होम करे।

'अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा, कुह्वै स्वाहा, अनुमत्यै स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इत्यादि प्रकारसे होम करे। इनका होम अन्न द्वारा करना होता है। इसके बाद प्रति देवताका हविसे होम करके पूर्वादि दिक्क्रमसे दक्षिणावर्त्तमें सभी ओर इन्द्रादि देवताओंके उद्देशसे होम करना होता है। (मनु ३।८४)

साग्निक ब्राह्मण ही सायंप्रातर्होम करेंगे। जो सब ब्राह्मण निरग्निक हैं उन्हें यह होम करनेका अधिकार नहीं है।

इस नित्यहोमके अतिरिक्त विवाहादिसंस्कार, दुर्गोत्सवादि पूजा, व्रतप्रतिष्ठादि कर्म और वृषोत्सर्ग आदिमें जो होम होता है उसे नैमित्तिक होम कहते हैं। निमित्तवशतः होमानुष्ठान होनेके कारण इसका नैमित्तिक नाम पड़ा है। यह नैमित्तिक होम तान्त्रिक और वैदिकके भेदसे दो प्रकारका है। कालीपूजा, जगद्धात्री पूजा, दीक्षाकर्म आदि जो सब तन्त्रोक्त कर्म हैं उनमें तन्त्रोक्त होम करना होता है, इस कारण उन्हें तान्त्रिक होम कहते हैं। तन्त्रोक्त कार्यको छोड़ कर संस्कारादि कार्यमें वैदिक होम होता है। वैदिक होममें साम, ऋक् और यजुः इन तीन वेदोंकी सामान्य कुशण्डिकाके नियमानुसार कुशण्डिका कर होम करना होता है।

सभी कार्योंके होमके लिये ही कुशण्डिका करनी होती है, इस कारण उसका सामान्य कुशण्डिका नाम पड़ा है। यह वेदभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है।

कुशण्डिका शब्द देखो।

यह वैदिक होम यथाविधान अग्नि स्थापन कर करना होता है। किस किस होममें अग्निका क्या क्या नाम होता है उसका विषय रघुनन्दनने संस्कारतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

लौकिक कार्यमें अग्निका नाम पावक, गर्भाधानमें मारुत, पुंसवनमें चन्द्रमा, शुङ्गाकर्ममें शोभन, सीमन्तोन्नयनमें मङ्गल, जातकर्ममें प्रगल्भ, अन्नप्राशनमें शुचि, चूड़ाकर्ममें सत्य, उपनयनमें समुद्भव, गोदान संस्कारमें सूर्य, केशान्तमें अग्नि, विसर्गमें वैश्वानर, विवाहमें योजक, चतुर्थी होममें शिखी, धृतिहोममें अग्नि, प्रायश्चित्त होममें विधु, पाकयज्ञमें साहस, लक्षहोममें वह्नि, कोटिहोममें हुताशन, पूर्णाहुतिमें मृड, शान्तिकर्ममें वरद, पौष्टिककर्म अर्थात् दुर्गोत्सवादि कर्ममें बलद, अभिचार कर्ममें क्रोध, कोष्ठमें जठर तथा अमृतभक्षणमें क्रव्याद, ये सब नाम होंगे। होमके समय अग्निका नामकरण, आवाहन और पूजन करके होम करना होता है। यथा—'अग्ने त्वममुकनामासि' इस प्रकार अग्निका नामकरण कर पद्धतिके अनुसार ध्यानादि करके पूजा करे। प्रज्वलित अग्निमें होम करना उचित है। अप्रज्वलित अग्निमें होम करनेसे होमका फल नहीं होता। होमकालमें घृतके साथ जौ तिल आदि

मिला कर होम करना होता है। भिन्न भिन्न कार्योंमें होमका समिध भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। परन्तु सामान्य कुशण्डिका स्थलमें यज्ञडूमरके समिधसे होम किया जाता है। होमके शेषमें होमवैगुण्यका नाश करनेके लिये प्रायश्चित्त होम करना कर्त्तव्य है। महाव्याहृति द्वारा प्रायश्चित्त होम करना आवश्यक है। चरुहोमस्थलमें सामान्य कुशण्डिका करते करते उखलीमें मूसलसे धान कूट कर सूपसे फटक ले। पीछे उस चावलको दूधमें डाल होमाग्निमें पाक करे। जब चावल अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब उसे उतार ले। उसी चरु द्वारा विधि पूर्वक होम करना होता है। चरु द्वारा होम और चरुपाक करनेकी प्रणाली पद्धतिमें सविस्तार लिखी है, विस्तार हो जानेके भयसे उसका विवरण यहां नहीं दिया गया। होमकी अन्तिम पूर्णाहुति दे कर होम शेष करना होता है। वेदी पर बैठ कर होम करनेका विधान है। परन्तु पूर्णाहुति देनेके समय उठ कर आहुति देना आवश्यक है। इस समय यजमान यदि स्वयं होम न करके प्रतिनिधि द्वारा करावे, तो उसे प्रतिनिधिका स्कन्धदेश स्पर्श करना पड़ेगा।

होमके शेषमें पूर्णपात्र होतृदक्षिणा देनी होती है। अष्टमुष्टि अर्थात् आठ मुट्ठी चावलका एक कुंचि, ८ कुंचिका एक पुष्कल और ४ पुष्कलका एक पूर्णपात्र होता है। इतना ही चावल और तदुपयोगी उपकरण देना होता है। अथवा बहुभोक्ताकी जिससे अच्छी तरह तृप्ति हो उतनी ही वस्तु द्वारा पूर्णपात्र करे।

इसके बाद 'अग्ने त्वं समुद्रं गच्छ' यह कह कर दधि द्वारा अग्निका विसर्जन तथा 'पृथ्वि त्वं शीतला भव' इससे जल द्वारा पृथिवीको शीतल करे। होमके शेषमें हुतशेष भस्म द्वारा तिलक लगानेका विधान है।

तान्त्रिक होमस्थलमें नित्य और नैमित्तिक दो प्रकारके होम हैं। इनमेंसे प्रतिदिन जो होम किया जाता है उसे नित्य होम और दीक्षाकर्म तथा पूजादि निमित्तवशतः जो होम किया जाता है उसे नैमित्तिक होम कहते हैं। तन्त्रसारमें इस होमका विशेष विवरण लिखा है।

साधक यदि प्रतिदिन नित्यहोमका अनुष्ठान करे, तो उसे सर्वार्थकी सिद्धि होती है। साधक जिस देवताका उपासक है, उसी देवताके उद्देशसे होम करे। पूजा, तर्पण, और होम ये तीनों ही साधकके अभीष्ट फलप्रद हैं। पहले देवताकी पूजा, पीछे तर्पण और होम करनेका विधान है। यह नित्यहोम करनेमें पहले बालूसे चौकोन मण्डल बना कर उसमें तीन रेखा अंकित करे। उन तीन रेखाओंको अर्घोदक द्वारा प्रोक्षण कर विधिपूर्वक अग्नि लावे और 'क्रव्यादेभ्यो नमः' यह पढ़ कर अग्निस्थापन करे। इसके बाद जिस देवताका होम होगा, उसी देवताका मूलमन्त्र उच्चारण कर कुण्ड, स्थण्डिल या भूमि पर अग्नि प्रज्वलित करे। 'भूः भुवः स्वः' इन तीन व्याहृति द्वारा अग्निको प्रज्वलित करना होता है तथा 'भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा' इन तीन मन्त्र द्वारा अग्निमें घृताहुति देना उचित है। इसके बाद षडङ्ग द्वारा आहुति दे कर जिस जिस देवताका होम होगा, उस उस देवताकी पूजा करके मूलमन्त्रसे १६ बार आहुति प्रदान करे। इसके बाद इन्दुमण्डलमें होम विसर्जन करना होता है। इसी प्रणालीसे नित्य होम किया जाता है।

संक्षेपहोम—साधक नैमित्तिक पूजादि स्थलमें यदि वृहद्धोम न कर सके, तो संक्षेपमें होम करे। इस होमका विधान इस प्रकार है। बालुकामण्डलमें देवता भेदसे उस देवताका चक्र अंकित करके पूर्व और उत्तर ओर तीन तीन रेखा खींचे। अनन्तर जिस देवताका होम होगा, उस देवताके मूलमन्त्रमें स्थण्डिल अवलोकन, 'फट्' मन्त्रसे ताड़ण और मूलमन्त्रसे प्रोक्षण करके हुं इस मन्त्रसे अभ्युक्षण करे। इस प्रकार स्थण्डिल संस्कृत होता है। स्थण्डिल संस्कार हो जाने पर मूलमन्त्रका उच्चारण करके 'कुण्डाय नमः' यह पढ़ कर कुण्डपूजा करे। पहले जो उत्तर और पूर्वकी ओर तीन रेखा खींची गई थीं, उन रेखाओंके पूरबकी ओर 'ओं मुकुन्दाय नमः ओं ईशानाय नमः, ओं पुरन्दराय नमः' यह पढ कर उनकी पूजा करे। अनन्तर उत्तर ओरकी तीन रेखाकी 'ओं ब्रह्मणे नमः, ओं वैवस्वताय नमः, ओं इन्दवे नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है। यह होमकी साधारण विधि है। सुन्दरीपक्षमें कुछ विशेषता है। उन्हें परतारी मन्त्रसे अर्थात् 'ऐं ह्रीं श्रीं ऐं'

क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये।

होमवेदी पर पहले षट्कोण, उसके बाहर वृत्त और वृत्तके बाहरमें चार द्वारवाला चौकोन घर बना कर उसमें पुष्पाञ्जलि द्वारा देवताकी पूजा करे। पहले प्रणव द्वारा अभ्युक्षण और मूलमन्त्र द्वारा पुष्पाञ्जलि देनी होगी। होम-वेदीके अग्नि आदि कोणोंमें निम्नोक्त देवताओंकी पूजा करना उचित है। ओं धर्माय नमः, ओं ज्ञानाय नमः, ओं वैराग्याय नमः, ओं ऐश्वर्याय नमः', पूर्वादि ओर 'ओं अधर्माय नमः, ओं अज्ञानाय नमः, ओं अवैराग्याय नमः, ओं अनैश्वर्याय नमः' इस प्रकार होमवेदीके कोण और दिशाओंकी पूजा करके वेदीके मध्यमें पूजा करे। ओं अनन्ताय नमः, ओं पद्माय नमः, ओं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोड़शकलात्मने नमः, वं वह्निमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, इस प्रकार पूजा करके वेदीमें जो अष्टदल पद्म अङ्कित किये गये हैं, उनके केशरके पूर्वादि ओर तथा मध्यमें निम्नोक्त प्रकारसे पूजा करनेका विधान है। ओं पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, ओं अरुणायै नमः, ओं कृष्णायै नमः, ओं धूम्रायै नमः, ओं तीव्रायै नमः, ओं स्फुलिङ्गिन्यै नमः, ओं रुचिरायै नमः, ओं ज्वालिन्यै नमः वं वह्न्यासनाय नमः। इस प्रकार पूजा करके अग्निका ध्यान करे। ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"वागीश्वरीमृतुस्नाता नीलेन्दीवरलोचना।
वागीश्वरेण संयुक्ता क्रीड़ाभावसमन्विताम्॥"

यह ध्यान करके "ओं ह्रीं वागीश्वराय नमः, ओं ह्रीं वागीश्वर्य्यैः नमः" इस मन्त्रसे पञ्चोपचारमें पूजा करे। इस प्रकार पूजा करके सूर्य्यकान्तादि मणिसम्भूत या श्रोत्रियगृहमें स्थित अग्नि लावे। होमाग्निमें विशेष विधान यह है, कि कोई अग्नि ला कर उसमें होम नहीं करे, करनेसे होमका फल नहीं होता। पाषाणजात, अरणिजात, अरण्यस्थ या वेदविद् ब्राह्मणगृहस्थित अग्नि विशुद्ध है। वही विशुद्ध अग्नि ले कर उसमें होम करना उचित है।

वह्नि लाते समय सुन्दरी पक्षमें कुछ विशेषता है। उन्हें 'कामेश्वराय नमः' कह कर पूजा करनी होती है। इसका विशेष विवरण तन्त्रसारमें लिखा है।

"अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनं।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखं॥"

इस मन्त्रसे अभ्युपस्थापन करके निम्नोक्त मन्त्र अग्निकी पूजा करना आवश्यक है। 'ओं अग्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः, ओं सहस्राचिषे हृदयाय नमः' ओं अग्निषडङ्गेभ्यो नमः, ओं अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्त्तिभ्यो नमः, तद्बाह्ये ओं ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यो नमः, तद्बहिः ओं पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः, तद्बाह्ये ओं इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः, तद्बाह्ये ओं वज्राद्यस्त्रेभ्यो नमः' इस प्रकार पूजा करे। पीछे जिस पात्रमें घृत रहेगा, उस पात्रमें प्रादेश परिमाणका दो कुशपत्र रख कर घृतको तीन भाग करके इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना रूपमें उसका स्मरण करे। पीछे स्रुव द्वारा दक्षिण भागसे आज्य ग्रहण कर 'ओं अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निके दक्षिण नेत्रमें आहुति तथा उसके वाम भागसे आज्य ले कर 'ओं सोमाय स्वाहा' मन्त्रसे वा नेत्रमें आहुति तथा मध्य भागसे आज्य ले कर ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा इस मन्त्रसे अग्निके ललाटनेत्रमें आहुति दे। पुनर्वार उस पात्रके दक्षिण ओरसे ओं नमः, इस मन्त्रसे घृत ले कर ओं अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा, इस मन्त्रसे अग्निमुखमें होम करे। इसके बाद महाव्याहृति होम करे। 'ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा, ओं वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस मन्त्रसे तीन बार आहुति दे।

उक्त प्रकारसे सभी आहुति दे कर अग्निमें जिस देवताके उद्देशसे होम होगा, उस देवताके मूलमन्त्र द्वारा पीठ पूर्वक देवताकी पूजा और होम करे। इसके बाद मूलदेवताकी पूजा करके केवल घृत द्वारा मूलदेवताके उद्देशसे मूलमन्त्र द्वारा पचास बार आहुति दे। इस प्रकार आहुति दी जाने पर वह्नि और देवताका एक साथ स्मरण करना होता है। इस प्रकार स्मरण करके मूलमन्त्र द्वारा फिर ग्यारह बार आहुति दे। यह आहुति देनेके बाद होमका सङ्कल्प करना होता है। जिस देवताका जो समिध कहा गया है, उसीसे साधारणतः उस देवताका होम करना उचित है। तान्त्रिक कार्य्यमें बिल्व पत्र द्वारा होम

होता है। जितने विल्वपत्र द्वारा होम होगा उतने विल्वपत्रके संख्यानुसार संकल्प कर लेना होता है। घीके साथ तिल मिला लेना आवश्यक है। जिस देवताका होम होगा, उस देवताके मूलमन्त्र द्वारा तथा अन्तमें स्वाहा जोड़ कर निर्दिष्ट संख्यक विल्वपत्र द्वारा होम करे। उसकी संख्या ८, १८, १०८,१००८ आदि होती है। पर जिसकी जैसी शक्ति है, उसे उसी शक्तिके अनुसार होम करना उचित है। जिस विल्वपत्र द्वारा होम किया जाता है, वह कटा, फटा और कीड़ों का खाया न होना चाहिये। वह परिष्कार परिच्छन्न और तीन पत्तोंवाला होगा। तन्त्रसारमें वृहद्‌होमपद्धति विशद भावमें लिखी है। साधारणतः संक्षेपहोम द्वारा ही काम चलता है।

जहा घृत द्वारा होम होता है, वहां प्रत्येक आहुतिमें दो तोला करके घृत देना आवश्यक है। दुग्ध होम, पञ्च गव्य होम, मधु होम और दुग्धान्न होममें ये सब वस्तु प्रति आहुतिमें दो तोला करके देनी होती है। दधि होममें हस्त कोष परिमाण दधि ले कर होम करना उचित है। लाज, पृथुक और शक्तु होममें एक मुट्ठी, गुड़ और शर्करा होममें चार तोला, इक्षु होममें एक पर्व ; पत्र, पुष्प और पिष्टक होममें एक एक द्वारा आहुति देनी होती है। कदलीफल और नागरङ्ग होममें भी एक एक आहुति देना कर्त्तव्य है। मातुलुङ्ग होममें एकका चौथाई भाग, पनस होममें दशवां भाग, नारिकेल होममें आठवां भाग, विल्वहोममें तीसरा भाग, कपित्थ होममें दो भागमें एक भाग, ककड़ी होममें तीसरा भाग तथा अन्यान्य फलहोममें एक एकको आहुति देनी होती है।

समिध् होममें दशांगुल परिमाण समिध् द्वारा, दूर्वा होममें तीन दूर्वा द्वारा, गुड़ूची होममें चार उंगली भर, गुड़ूचीखण्ड द्वारा तथा धान्य, मूंग, उड़द और यव होममें एक एक मुट्ठी ले कर प्रत्येक बार आहुति देनी होती है। तण्डुलहोममें एक मुट्ठीका दशांश, कोद्रव, गोधूम और रक्तशालि होममें एक मुट्ठी, तिल और सर्षप होममें गण्डूष प्रमाण, लवणहोममें दो तोला, मरिच होममें २० मरिच द्वारा, गुग्गुल और बदरी होनमे बदरी प्रमाण ; चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुङ्कुम होममें इमलीकी गुठलीके समान ले कर होम करे। होमकी वस्तु ऊपर कहे गये परिमाणमें ले कर होम करना होता है। इससे कम या वेशी करना उचित नहीं।

द्रव्यविशेष द्वारा होमकालमें अग्निका विभिन्न रूपमें ध्यान करना होता हैं। समिध द्वारा होमकालमें अग्निदेवको अवस्थित कर, आज्यहोममें सुला कर तथा अन्यान्य द्रव्य द्वारा होम करनेमें बैठा कर, उनकी चिन्ता करनी होती है। सभी होममें अग्निके मुंहमें आहुति देना आवश्यक है। होमकालमें यदि अग्निके कानमें आहुति दी जाय, तो होमकर्त्ताको व्याधि, नेत्रहोममें अन्धता, नासिकाहोममें मनःकष्ट तथा मस्तक पर आहुति देनेसे धनक्षय होता है। अग्निका जो भाग काष्ठमय होगा वही भाग अग्निका कर्ण, इसी प्रकार धूममय भाग नासिका, जिस भागमें अल्पज्वलन होता है, वह भाग चक्षु, जिस भागमें अङ्गार रहता है वह भाग मस्तक तथा जिस भागमें समुज्ज्वल शिखा रहती है, वही भाग अग्निकी जिह्वा है। होमके समय प्रज्वलित शिखा भागमें होम करना उचित है।

होमकालमें अग्निके वर्ण और गंधादि द्वारा शुभाशुभका निरूपण करना होता है। होमकालमें अग्निका वर्ण सुवर्ण, सिन्दूर, बालार्क अथवा मधुकी तरह होनेसे, नागकेशर, चम्पक, पुन्नाग, पाटल, यूथिका, पद्म, इन्दीवर, कल्हार, घृत अथवा गुग्गलकी सी गंध होनेसे तथा शिखा दक्षिणावर्त्त, कम्पविहीन और छत्राकृति होनेसे यजमानका शुभ होता है। होमाग्निका धूम कुन्दपुष्प और इन्दुवत् धवल होनेसे शुभ होता है। कृष्णवर्ण होनेसे यजमानको अशुभ, अग्निका वर्ण शुभ्र होनेसे राज्यविनाश और होमकालमें अग्निसे काक या गर्दभकी तरह शब्द होनेसे जानना चाहिये, कि यजमानका अनिष्ट होगा। अग्निसे दुर्गन्ध निकलने पर यजमानको दुःख होता है। अग्निकी शिखा छिन्न या वृत्ताकार होनेसे यजमानका धनक्षय और मृत्यु, अग्निका धूम शुकपक्षीके पंख या कबूतरके रंग जैसा होनेसे यजमानके घोड़े, गाय-बैल आदि विनष्ट होते हैं। होमकालमें यदि ये सब दोष देखे जांय, तो उसका प्रतिविधान करना आवश्यक है। इसके

प्रतिविधानके लिये मूलमन्त्रसे २५ बार आहुति देनी चाहिये।

२ एक प्रकारका मन्त्रपूर्वक दान जो श्राद्धके समय किया जाता है। श्राद्धकालमें अन्नदानके पहले यह होम करना होता है। चावलमें घी मिला कर उस चावलसे श्राद्धमें जो ब्राह्मण आमन्त्रण किया जाता है या कुशका जो ब्राह्मण बनाया जाता है उसके आगे होनेवाले श्राद्ध को होम कहते हैं। श्राद्ध शब्द देखो।

होमकाष्ठी (सं० स्त्री०) यज्ञकी अग्नि दहकानेकी फुंकनी।

होमकुण्ड (सं० क्ली०) होमस्य कुण्ड। वह कुंड या गड्ढा जिसमें होम किया जाता है। तन्त्रशास्त्रमें लिखा है, कि याग, यज्ञ और देवपूजादि स्थलमें पहले वेदी बनानी होती है। इसी वेदीके ऊपर कुण्ड बना कर होम करनेका विधान है। मण्डप बनानेमें पहले जमीनकी परीक्षा कर लेना आवश्यक है। मण्डप शब्द देखो। यथा-विधान मण्डप बना कर वेदिकाके बहिर्भागकी भूमिको तीन भागोंमें विभक्त करे। मध्य भागमें सर्वतोभद्रादि मण्डल बना कर उसके आठ ओर ८ प्रकारके कुण्ड बनाने होते हैं। चतुरस्रकुण्ड, योनिकुण्ड, अर्द्धचन्द्रकुण्ड, त्र्यस्रकुण्ड, वर्त्तुलकुण्ड, षड़स्रकुण्ड, पद्मकुण्ड और अष्टास्रकुण्ड यही आठ प्रकारके कुण्ड कहे गये हैं. इनके अलावा ईशानकोण और पूर्वकी ओर आचार्यकुण्ड बनाना होता है।

इन सब कुंडोंमें चतुरस्रकुण्ड सर्वकार्यसिद्धिप्रद, योनिकुण्ड पुत्रप्रद, अर्द्धचन्द्रकुण्ड शुभकर और त्र्यस्रकुण्ड शत्रुनाशक माना गया है। शान्तिकर्ममें वर्त्तुलकुण्ड, छेदनकार्यमें षडस्र और मारणकार्यमें पद्मकुण्ड प्रशस्त है। अष्टास्रकुण्ड वृष्टिप्रद और रोगनाशक है। शान्ति, पुष्टि और आरोग्यसाधन कर्ममें चतुरस्रकुण्ड, आकर्षण कर्ममें त्रिकोणकुण्ड, उच्चाटन और मारण कर्ममें वर्त्तुलकुण्ड शुभ है। पुष्टिकर्ममें उत्तरकी ओर, शांतिकर्ममें पश्चिमकी ओर, उच्चाटनमें वायुकोणमें और मारणकार्यमें पद्मकुण्ड प्रशस्त है। किसी किसीके मतसे ब्राह्मण चतुरस्रकुण्ड, क्षत्रिय वर्त्तुल, वैश्य अर्द्धचन्द्राकृति और शूद्र त्रिकोण कुण्ड बना कर उसमें होम करे। किसी किसीका कहना है कि चतुरस्रकुण्ड सभी वर्णोंके सभी कार्यों में शुभ है।

कहीं कहीं ताम्रनिर्मित कुण्डमें होम करते देखा जाता है। परन्तु ताम्रकुण्डमें होम करनेका कोई विधान देखनेमें नहीं आता। होमीय ताम्रकुण्ड प्रायः चतुरस्र या चौकोन हुआ करता है।

हाथ भर लंबी चौड़ी जमीनमें सूता गिरा कर सम चतुरस्रकुण्ड बनावे। इसी कुण्डको चतुरस्रकुण्ड कहते हैं। अन्यान्य कुण्डोंके लक्षण और विशेष विवरण तन्त्रसारमें लिखे हैं।

साधारणतः देखा जाता है, कि होमकुण्ड बना कर होम कार्य नहीं होता। वेदी या भूमिके ऊपर चतुरस्र, त्र्यस्र आदि अंकन कर उसीके ऊपर होम किया जाता है।

होमतुरङ्ग (सं० पु०) यज्ञीयाश्व, अश्वमेध यज्ञका घोड़ा।

होमदुह (सं० त्रि०) १ होमार्थ दुग्धदोहनकारी, होमके लिये दूध दूहनेवाला। २ होममें देने योग्य दुधारिन गाय।

होमधान्य (सं० क्ली०) तिल। घृतके साथ तिल मिला कर होम करना होता है।

होमधूम (सं० पु०) होमीयाग्नि-धूम। शास्त्रमें लिखा है, कि यह शरीरमें लगनेसे शरीर पवित्र होता है।

होमधेनु (सं० स्त्री०) होमसाधन धेनु, वह गाय जिसके घीसे होम होता है।

होमन् (सं० क्ली०) होम।

होमना (हिं० क्रि०) १ देवताके उद्देशसे अग्निमें डालना, हवन करना। २ उत्सर्ग करना, छोड़ देना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना।

होमभस्म (सं० क्ली०) हुत द्रव्यजात भस्म। होममें जिन सबकी आहुति दी जाती है, उनके भस्म होनेसे जो चूर्ण बन जाता है उसीको होमभस्म कहते हैं। यह होम भस्म अत्यन्त पवित्र है। इस होमभस्म द्वारा तिलक लगाना होता है। त्रिपुण्ड्रकादि स्थलमें होमभस्म द्वारा ही करना होता है। इस होमभस्मको विभूति भी कहते हैं।

होमर—पाश्चात्य जगत्‌में सुपरिचित ग्रीक महाकवि। ग्रीस राज्यके सात नगर महाकविके जन्मस्थान बताये जाते हैं, इससे लोग उन सातोंका बड़ा सम्मान करते हैं। कहते हैं, कि ये स्मर्णा-नगरनिवासिनी पितृमातृ-हीना एक कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। मेलिस

नदीके किनारे उनका मकान था। इस कारण माताने पुत्रका नाम मेलिसिगेनिस रखा था। फिमियस नामक एक व्यक्ति उस नगरमें सङ्गीत-विद्यालय खोल कर लड़कोंको काव्य और साहित्य पढ़ाते थे। उन्होंने मेलिसिगेनिसकी माताके रूप पर आकृष्ट हो कर उससे फिर विवाह कर लिया और महाकवि होमरको दत्तक ले कर अपना उत्तराधिकारी बनाया।

फिमियसकी मृत्युके बाद होमर सङ्गीत-विद्यालयके अध्यक्ष और अध्यापक हुए। इस समय उनके हृदयमें 'इलियड' रचनाकी वासना जाग उठी। उस ग्रन्थमें लोकचरित्रका पूर्ण चित्र प्रतिफलित करनेकी इच्छासे वे देशाटनको निकले। पीछे स्वदेश लौटने पर स्मिर्णावासीने उनके प्रति दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। प्रतिवासी द्वारा इस प्रकार सताये जाने पर वे जन्मभूमिको छोड़ किओस नगर चले गये। यहां भी उन्होंने विद्यालय खोल कर लोगोंको सङ्गीत और काव्य सिखाया था। बुढ़ापा आने पर ही वे अंधे हुए और इसी कारण उन्हें भारी दारिद्र्यदुःख भोग करना पड़ा था। महाकवि अन्तिम जीवनमें स्वरचित कीर्त्तिगाथा गान करते हुए नगर नगरमें भिक्षार्थ घुमते फिरते थे। साइक्लेडिशके अन्तर्गत आइअस नामक एक छोटे द्वीपमें इनका देहान्त हुआ। इलियड ग्रन्थमें आगामेमननके प्रति आकिलिसका प्रतिहिंसा ग्रहण, ट्रायनगरके अवरोधमें ग्रीकोंकी दुर्गति, आकिलिस द्वारा हेक्टरवध आदि विवरण चौबीसवें सर्गमें लिखा हुआ है।

होमरका दूसरा ग्रन्थ 'ओडेसी' है। इस महाकाव्यमें ग्रीकवीर इउलिसका ट्रायसे स्वदेशकी ओर इथाका-यात्राका विवरण है। इस ग्रन्थमें बहुतसे अभिनव, विचित्र और अनैसर्गिक घटनावली भी चित्रित हुई है। इलियड-वर्णित हेलना-हरणवृत्तान्त भारतीय महाकवि वाल्मीकि-विरचित रामायणके सीताहरण-प्रसङ्गके साथ मिलता जुलता है।

इसके सिवा 'वाघट्राकोर्मियो माकिया' या भेक-मूषिकयुद्ध नामक एक दूसरा काव्य भी इनका रचा हुआ मिलता है। इनके रचे हुए बहुतसे स्तोत्रगीत भी पाये जाते है।

होमरका आदि काव्य आइओनिय भाषामें रचा गया। पीछे उनका प्रायः सभी सभ्य यूरोपीय भाषामें अनुवाद हुआ है। पाश्चात्य जगत्‌वासी इन्हींको पाश्चात्य साहित्यके आदिकवि मानते हैं।

होमवत् (सं० त्रि०) होमयुक्त, होम करानेवाला, साग्निक ब्राह्मण।

होमाग्नि (सं० पु०) यज्ञवह्नि, होमकी आग। होमाग्नि विशेष पवित्र है, इसलिये इस अग्निमें कोई अपवित्र वस्तु नहीं जलानी चाहिये। होमाग्नि बुझाना भी मना है। होम समाप्त होने पर वह अग्नि आपे आप बुझ जायेगी।

होमि (सं० पु०) १ अग्नि, आग। २ घृत, घी। ३ जल, पानी।

होमिन् (सं० पु०) १ होमकर्त्ता। जुहोतीति हु (उत्पुकद्विहोमिनः। उण् ३।८४) इति मिनि निपातितश्च। २ यजमान।

होमियोपैथिक (अं० वि०) १ चिकित्साकी होमियोपैथी नामक पद्धतिके अनुसार। २ होमियोपैथीके अनुसार चिकित्सा करनेवाला।

होमियोपैथी (अं० स्त्री०) पाश्चात्य चिकित्साका एक सिद्धान्त या विधान जो हालमें निकाला गया है। इसमें विषोंकी अल्पसे अल्प मात्रा द्वारा रोग दूर किये जाते हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार कोई रोग उसी द्रव्यसे दूर होता है जिसके खानेसे स्वस्थ मनुष्यमें उस रोगके समान लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें संखिया, कुचला आदि अनेक विषोंको स्पिरिटमें डाल कर उनकी मात्राको निरन्तर हलकी करते जाते हैं।

होमीय (सं० त्रि०) होम सम्बन्धीय, होमका।

होम्य (सं० क्ली०) १ घृत, घी। २ होमीय द्रव्य मात्र।

होर (हिं० वि०) ठहरा हुआ, चलनेसे रुका हुआ।

होरमा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास या चारा, सांवक।

होरसा (हिं० पु०) पत्थरकी गोल छोटी चौकी जिस पर चन्दन घिसते या रोटी बेलते हैं, चौका।

होरा (सं० स्त्री०) १ ज्योतिषोक्त लग्न। २ एक राशि या लग्नका आधा भाग। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि राशि-

के दो भागमेंसे एक भागका नाम होरा है। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये छः विषम राशिके हैं। इन छः विषम राशिके प्रथमार्द्धके पति रवि और द्वितीयार्द्धके पति चन्द्रमा हैं। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छः समराशि हैं। इन समराशियोंके प्रथमार्द्धके अधिपति चन्द्रमा और द्वितीयार्द्धके रवि हैं। षड्वर्गगणनास्थलमें राशि, होरा, द्रेकाण, त्रिंशांश आदि स्थिर कर फल निरूपण करना होता है। एक उदाहरण दिया जाता है—मेष राशि या लग्नका परिमाण ४।८।१६ (चार दण्ड, आठ पल और सोलह विपल) है, इस राशिको आधा करनेसे २।४।८ (दो दण्ड, चार पल और आठ विपल) होता है। अतएव २ दण्ड, ४ पल और ८ विपलकी एक होरा हुई। मेष विषम राशि है, इसलिये विषम राशिके प्रथमाधिपतिके अधिपति सूर्य हैं; जातकका यदि उसके प्रथमार्द्धमें जन्म हो, तो जानना चाहिये, कि सूर्याकी होरामें उसने जन्म लिया है तथा अन्तिमकी होरामें होनेसे चन्द्रमाकी होरा होती है। इसी प्रकार सम और विषम राशिकी होरा तथा उसका अधिपति स्थिर करना होता है।

३ होराज्ञापक शास्त्रभेद, होराशास्त्र। यह ज्योतिषग्रन्थ है। ४ एक अहोरात्रका २४वां भाग, ढाई घड़ीका समय। इसी शब्दसे अङ्गरेजी Hour हुआ है। ५ पिपीलिका, च्युंटी।

होरिल (हिं० पु०) नवजात बालक, नया पैदा लड़का।

होरिल मिश्र—एक प्रसिद्ध स्मार्त्त पण्डित। इन्होंने परमेश्वरीदासाब्धि या स्मृतिसंग्रहकी रचना की।

होरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बड़ी नाव जो जहाजों परका माल लादने और उतारनेके काममें आती है।

होल (हिं० पु०) पश्चिमी एशियासे आया हुआ एक पौधा। यह घोड़ों और चौपायोंके चारेके लिये लगाया जाता है।

होलक (सं० पु०) आगमें भुनी हुई चने, मटर आदिकी हरी फलियां, होरा। यह कुछ वायुजनक तथा मेद, कफ और मिलित त्रिदोषका शान्तिकारक है।

होलकर—इन्दोर-राजधानीमें सुप्रतिष्ठित एक मराठा राजवंश। इस राजवंशके आदिपुरुष दक्षिण-भारतमें प्रवाहित नीरानदीतटवर्त्ती हल नामक ग्राममें रहते थे। गोचारण और कृषिकर्म ही उनकी उपजीविका थी। हल नामक ग्राममें रहनेके कारण वे लोग आगे चल कर हलकर या होलकर कहलाये।

इस कृषकवंशके कुण्डजी होलकरके पुत्ररूपमें होलकरकुलोज्ज्वल मलहाररावने जन्मग्रहण किया। (करीब १६९३ ई०)

बचपनसे ही मलहारकी निर्भीकता और साहसिकताका यथेष्ट प्रमाण पाया गया था। जब ये बड़े हुए, तब घृणित गोचारणवृत्ति छोड़ कर महाराष्ट्रीय सरदार कदम बन्दके अधीन सैनिकका काम करने लगे। यह सेनाविभागमें विशेष पारदर्शिता और सुख्याति लाभ कर १७२४ ई०में ये पेशवा बाजीरावके अधीन ५ सौ सेनानायकके पद पर नियुक्त हुए। यहां उनकी प्रतिभा दिनों-दिन चमकने लगी। १७२८ ई०में वे मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। यहीं पर १७६६ ई०को उनकी मृत्यु हुई। मलहाररावने विख्यात पानीपतकी लड़ाईमें उपस्थित रह कर अपनी आंखोंसे महाराष्ट्रशक्तिका अधःपतन देखा था। यहा उतना क्षतिग्रस्त न हो कर वे रणक्षेत्रसे अपने सेनादलको निरापद स्थानमें ले गये। इस युद्धमें माधोजी सिन्देके सेनादलको बुरी तरह हार हुई थी। मलहारराव देखो।

मल्हार रावकी मृत्युके बाद उनके पौत्र मालीराव मालवके सिंहासन पर बैठे। राज्यारोहणके नौ मास बाद मालीराव उन्मादरोगसे आक्रान्त हो इस लोकसे चल बसे। राज्यका कोई उत्तराधिकारी न रहनेके कारण मालीरावकी माता प्रथितयशा अहल्याबाईने अपने श्वशुरके अधिकृत राज्यका शासनभार अपने हाथ लिया। वे मलहाररावके अधीनस्थ तुकोजी होलकर नामक एक विश्वस्त कर्मचारीके ऊपर अपने सेनादलका परिचालनभार सौंप कर निश्चिन्त हुईं।

तुकोजी मल्हाररावके स्वजातिमात्र थे। उन दोनोंमें कोई सम्पर्क नहीं था, परन्तु तुकोजी सरदारने बड़ी विश्वस्तताके साथ उन पर जो कार्य सौंपा गया था, चलाया था। १७९५ ई०में अहल्याबाईकी मृत्यु हुई और तुकोजी होलकरने शासनभार ग्रहण किया। दुःखका

विषय है, कि उनके भाग्यमें भी राज्यसुख अधिक दिन बदा न था। उनकी मृत्युके बाद आपसकी लड़ाईसे होलकरशक्ति नष्ट हो गई। १८वीं सदीके शेष भागमें जो घर झगड़ा शुरू हुआ उसने सारे महाराष्ट्र समाजमें फैल कर महाराष्ट्रशक्तिको एकदम सामर्थ्यहीन बना दिया। अहल्यावाई और तुकोजी होलकर देखो।

इस समय तुकोजीके दूसरे पुत्र यशोवन्तराव अपने भुजबलसे राज्यमें शांति स्थापन करनेकी कोशिश कर रहे थे। १८०२ ई०में उन्होंने अपनी सेनावाहिनी ले कर सिन्दे और पेशवाकी परिचालित मराठा सेना पर हमला कर दिया और उन्हें परास्त कर मार भगाया। अनंतर उन्होंने पेशवाको अपनी मुट्ठीमें करके सारी महाराष्ट्रशक्तिको एकके अधीन रखनेका इरादा किया, परन्तु इस समय पेशवाके साथ अङ्गरेज गवर्मेण्टकी 'वसई-सन्धि' हो गई थी। उसके अनुसार यशोवन्तरावको फिर पेशवाके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस नहीं हुआ।

१८०३ ई०में सिन्देराज और वरारके राजा मिल कर अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हो गये। यशोवंतराव होलकरने प्रतिज्ञा की थी, कि युद्धकालमें वे उन लोगोंके साथ मिल कर अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्ध करेंगे। परंतु जब युद्ध छिड़ गया, तब वे अपनी स्वभावसिद्ध कूटराजनैतिक बुद्धिके वशवर्त्ती हो रणक्षेत्रमें नहीं उतरे। वरन् वे अपना मतलब गांठनेके लिये अपनी सेना ले कर अलग हो खड़े रहे। उनका उद्देश्य था, कि यदि इस युद्धमें प्रभावशाली महाराष्ट्रशक्तिका विलोप हो जाय, तो विना विघ्नवाधाके उनकी धाक महाराष्ट्र समाजके ऊपर जम सकती है।

परंतु उनका यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। अङ्गरेजों और सिन्देराजके बीच सूर्जी अञ्जनगाममें संधि हो गई। होलकरने जब देखा, कि उस संधिके बल उनका प्रभाव भी सीमाबद्ध हुआ है, तब वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। कुछ समय बाद वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्ध करके दलबलके साथ परास्त हुए तथा उनकी सारी सेना तितर वितर हो गई।

वलवान् शत्रुके सामने होलकर बहुत देर खड़ा न रह सके और वे शतद्रु प्रवाहित प्रदेशमें भाग गये। अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने उन्हें पकड़नेके लिये कोशिश की, पर वे पकड़ न सके। यहां आ कर यशोवन्त राव सिख-लोगोंके साथ मिल गये तथा उन्हें अंगरेजोंके विरुद्ध उसकाने लगे। दुःखका विषय है, कि इसमें वे कामयाब न हो सके। १८०५ ई०की २४वीं दिसम्बरको उन्हें बाध्य हो कर अंगरेजोंके अनुकूल एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। इस घटनाकी आलोचना करनेसे उनका दिमाग खराब हो गया और वे उन्मादरोग-ग्रस्त हो पड़े। इसी हालतमें १८११ ई०को उनका देहान्त हुआ।

यशोवन्तके मलहार राव होलकर नामक एक अवैध पत्नीसे उत्पन्न पुत्र था। मृत्यु-कालमें वह बालक नाबालिग रहनेके कारण उनकी माता तुलसीवाईने स्वयं शासन-भार अपने हाथ लिया। राजा बालक था और राज्य चलानेवाली रानी थी, इसलिये राज्यमें अशान्ति फैल गई। राज्यके नाना स्थानोंमें भी सामन्तोंका राष्ट्रविप्लव आरम्भ हो गया। इसके फलसे होलकरके अधिकृत अनेक देश हाथसे जाते रहे। षडयन्त्रकारियोंने छिपके आ कर तुलसीवाईको बड़ी निष्ठुरतासे मार डाला।

१८१८ ई०की ६ठी जनवरीको माहिदपुरके युद्धमें होलकरकी सेना सम्पूर्णरूपसे परास्त हुई। उसके साथ मन्दशोरकी प्रस्तावित संधि शर्त्तके अनुसार उदयपुर जयपुर आदि राजपूत राजाओंको होलकरके शासनसे मुक्त कर अंगरेजोंके अधीन लाया गया तथा कोटाके राजा जालिमसिंहने होलकरके अधिकृत चार जिले खजाना दे कर बंदोबस्त कर लिये। इस प्रकार सतपुरा शैलमालाके दक्षिण और उक्त शैलके मध्यवर्त्ती भूभागमें होलकरके अधिकृत स्थान दूसरोंके हाथ चले गये। जो कुछ होलकरके पास बच गया, वह भी अंगरेजगवर्मेण्टकी देखरेखमें रहा।

१८३३ ई०के अक्तूबर मासमें २८ वर्षकी उमरमें मलहार राव होलकर विना कोई सन्तान छोड़े इस लोकसे चल बसे। पीछे मलहारकी विधवा पत्नी और माताने मार्त्तण्ड राव नामक एक ३।४ वर्षके स्वजातीय बालक-

को गोद लिया। १८३४ ई०की १३वीं जनवरीको वही बालक गद्दी पर बैठाया गया। मलहार रावकी माताने यही सोच कर एक छोटे बच्चेको गद्दी पर बैठाया था, कि यह बहुत दिनों तक अपने हाथमें राज कार्य चला सकेगी। परन्तु उसका यह काम लोगोंको पसन्द नहीं आया। राज्यके पदस्थ और संभ्रान्त व्यक्तियोंने मृत राजा के ज्ञातिभ्राता हरि राव होलकरको सिंहासन पर बैठाना चाहा। इसके पहले ही राजनैतिक सुव्यवस्थाके लिये १८१९ ई०में हरिराव होलकरको कारागारमें बंद रखा गया था। राज्यके सम्भ्रान्त व्यक्तियों तथा उनके अनुगत हिताकांक्षियोंने मिल कर १८३४ ई०को २री फरवरी की रातको बलपूर्वक हरिरावको कारामुक्त किया। पीछे प्रजामण्डली और सेना-दलके आग्रहसे वे ही राजा मनोनीत हुए।

राजपद कौन पावेगा, इस विषयकी मीमांसा करनेके लिये अंगरेज गवर्मेण्टने बीचमें पड़ना नहीं चाहा। फलतः दोनों ही दल अपनी अपनी शक्तिके अनुसार अपनी अपनी धाक जमाने लग गये। इस राष्ट्रविप्लवसे राज्य भरमें घोर अराजकता फैल गई।

अन्तमें मार्त्तण्ड रावके पक्षवालोंकी हार हुई। मार्त्तण्ड राव राज्यसे निकाल भगाये गये। उनके सिंहासनका दावा छोड़ देने पर दूसरे पक्षने उन्हें मासिक ५ सौ रुपयेकी वृत्ति स्थिर कर दी। १८३५ ई०की ८वीं सितम्बरको विपक्षियोंने नये महराज और उनके मन्त्रीको मार डालनेकी इच्छासे राजप्रासाद पर पुनः आक्रमण कर दिया। उन लोगोंका यह षड़यन्त्र पहलेसे ही मालूम था, इस कारण वे लोग आक्रमणकारी आततायियोंको दलबलके साथ संहार करनेमें समर्थ हुए।

१८४९ ई०में पूना शहरमें अपुत्रक मार्त्तण्ड राव होलकरका देहान्त हुआ। इसके बादसे ही विप्लवका अवसान हुआ। १८३१ ई०में जब हरिरावको मारनेके लिये षड़यन्त्रकारी अग्रसर हुए, तब उनकी ओरसे अंगरेज गवर्मेण्टसे सहायता मांगी गई थी, परन्तु अंगरेज गवर्मेण्टने पहलेकी शर्तके अनुसार आभ्यन्तरिक विषयमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहा।

१८४१ ई०में महाराज हरिरावने खण्डेराव नामक एक तेरह वर्षके बालकको अपना उत्तराधिकारी बनाया। १८४३ ई०को २४वीं अक्तूबरको उनकी मृत्यु हुई। १८४४ ई०के फरवरी मासमें बालक-राज खण्डेराव भी इस लोकसे चल बसे। उनके अविवाहित और अपुत्रक अवस्थामें परलोकवासी होने पर राजप्रतिनिधि सर राबर्ट् हमिलटनने भाउ होलकरके छोटे लड़केको तुकोजी राव होलकर नाम दे कर सिंहासन पर अभिषिक्त किया। इस समय अंगरेज गवर्मेण्टने N L AAO, ॥ संख्यक पत्र द्वारा सूचित किया कि तुकोजी राव इस पत्रके मर्मानुसार राज्यशासन करेंगे तथा वह पत्र सनदके समान समझा जायेगा।

नये राजा तुकाजी राव होलकरने १८३२ ई०में जन्म ग्रहण किया। १८४३ ई०में अंगरेजोंने उनके पक्षमें खड़े हो कर उन्हें सिंहासन पर बैठाया। १८५२ ई०में राजा तुकोजी बालिग हुए। राज्यशासन कार्यमें उनकी विशेष दक्षता और प्रजाके हितसाधनमें उनकी ऐकान्तिक कर्त्तव्यनिष्ठा देख कर अंगरेजोंने उनके हाथ राज्य भार सौंपा। अब वे इधर उधर पड़े हुए छोटे छोटे राज्योंको एक सीमामें लानेकी कोशिश करने लगे। उनके जमानेमें होलकरराजका अधिकार ८०७५ वर्ग मील स्थान तक फैल गया था। अङ्गरेजराजने उन्हें गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी थी।

होलकर कुलकेतु यशोवन्त रावने एक समय सारी महाराष्ट्र शक्तिका अधिनायकत्व ग्रहण करनेकी इच्छासे अपने सैन्यबलकी वृद्धि की। इस समय उनके प्रायः लाखसे अधिक वेतनभोगी पदातिक और ६० हजार घुड़सवार सेना थी। १३० बड़ी बड़ी कमान रणक्षेत्रमें उन्हें मदद पहुंचाती थी। इसके सिवा चांदोर और गलितगढ़ नामक दो दुर्भेद्य दुर्ग उनके अधिकारमें रहनेसे उनकी राजशक्ति और भी बढ़ चली थी। क्योंकि उस समय होलकरका मुकाबला करनेवाला कोई भी नजर नहीं आता था। १८०४ ई०के फरवरीसे ले कर १८०५ ई०की २री अप्रिल तक अंगरेज सेनापति तथा देशी अन्यान्य राजे उनके विरुद्ध रणक्षेत्रमें लड़े हुए थे, परन्तु दुःखका विषय है, कि कोई भी उनकी इस विपुल बलशाली सेनावाहिनीके सामने ठहर न सके।

अभी इन्दौर नगरमें वर्त्तमान होलकरपति श्रीमान् महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई श्री यशोवंत राव होलकर वहादुरके ५२५० पदातिक, ३३०० अश्वारोही, ३४० कमानवाही सेना और २४ कमान हैं।

महाराष्ट्र देखो।

होला (सं० स्त्री०) १ होलीका त्योहार। (पु०) २ सिखोंकी होली जो होलीके दूसरे दिन होती है। ३ आगमें भुनी हुई हरे चने या मटरकी कलियां। ४ चनेका हरा दाना।

होलाक (सं०पु०) स्वेद विशेष। आगकी गरमी पहुंचा कर पसीना लानेकी एक क्रिया।

चरकके सूत्रस्थानमें लिखा है, कि जिस पुरुषको स्वेद देना होगा, उस पुरुषकी शय्याके बराबर गाय या गदहे आदिकी विष्ठाकी एक धीतिका (सूखे और कच्चे गोवर आदिका वना हुआ लंबा गोल अग्न्याश्रय, वनावे। जव यह अच्छी तरह जल जायेगा धूआँ कुछ भी नहीं निकलेगा, तव उसके ऊपर खाट, पलंग आदि रख कर जिस पुरुषको स्वेद देना होगा उसे सुलावे। सुलानेके पहले उसका शरीर तेल आदिसे लिप्त और कपड़ेसे ढका होना चाहिये। इस प्रकार सुला कर जो स्वेद दिया जाता है उसीका नाम होलाकस्वेद है। यह उत्तम सुखजनक स्वेद है। स्वेद देखो।

होलाका (सं० स्त्री०) १ वसन्तोत्सव, होलीका त्योहार। २ फाल्गुनी पौर्णमासी। इस तिथिमें होलिको आचरण करना होता है, इसीलिये इसका नाम होलिका हुआ है। यह पूर्णिमा तिथि सायाह्नव्यापिनी होनेसे उसी दिन इसका अनुष्ठान करना उचित है। उस दिन सायंकालमें पूजादि तथा पूर्वाह्न कालमें गौ आदिकी क्रीड़ा करे।

युक्तप्रदेशमें यह उत्सव विशेषरूपसे प्रचलित है। वहां इस पूर्णिमाके दिन भगवान् श्रीकृष्णके उद्देशसे दोलयात्रा होती है। दोलयात्रा शब्द देखो।

होलाकाधिकरण (सं० क्ली०) जैमिन्युक्त अधिकरणभेद। जैमिनिके प्रथमाध्यायके द्वितीय पादमें यह अधिकरण न्याय दिखलाया गया है।

होलाष्टक (सं० पु०) होलीके पहलेके आठ दिन जिनमें विवाहकृत्य नहीं किया जाता।

होलिका (सं० स्त्री०) १ होलीका त्योहार। २ लकड़ी घास फूल आदिका वह ढेर जो होलीके दिन जलाया जाता है। ३ एक राक्षसीका नाम।

होली (हिं० स्त्री०) १ हिन्दुओंका एक बड़ा त्योहार। विशेष विवरण दोलयात्रा शब्दमें देखो। २ एक प्रकारका गीत जो होलीके उत्सवमें गाया जाता है। ३ लकड़ी घास फूस आदिका ढेर जो होलीके दिन जलाया जाता है। ४ एक कंटीला झाड़ या पौधा।

होल्डर (अं० पु०) अङ्गरेजी कलमका वह हिस्सा जो हाथसे पकड़ा जाता है और जिसमें लिखनेकी निव या जीभ खोंसी जाती है।

होल्दना (हिं० क्रि०) धानके खेतमें घास पात दूर करनेके लिये हल चलाना।

होश (फा० पु०) १ वोध या ज्ञानकी वृत्ति, संज्ञा, चेतना। २ स्मरण, सुध। ३ बुद्धि, अक्ल।

होशमन्द (फा० पु०) बुद्धिमान, समझदार।

होशियार (फा० वि०) १ बुद्धिमान्, समझदार। २ दक्ष निपुण। ३ सचेत, सावधान। ४ जिसने होश सभाला हो, सयाना। ५ चालाक, धूर्त्त।

होशियारपुर—पंजावके जालंधर दोआवका एक जिला। यह अक्षा० ३०° ५९′ से ३२° ५′ उ० तथा देशा० ७५° ३०′ से ७६° ३८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २२४४ वर्गमील है। इसके उत्तर-पूर्वमें कांगड़ा जिला तथा विलासपुर, उत्तर पश्चिममें वितस्ता नदी और गुरुदासपुर जिला, दक्षिण पश्चिममें जालन्धर जिला और कपूरथला राज्य एवं दक्षिणमें शतद्रु नदी और अम्बाला जिला है। जिलेका सदर होशियारपुर है।

यह जिला पहाड़ी भूमि तथा समभूमिमें विभक्त है। दोनोंका रकवा समान होगा। शिवालिक पर्वत इस जिलेकी प्रधान शैलमाला है। दक्षिणांशमें यह पहाड़ क्रमशः वालू पहाड़के छोटे छोटे पहाड़ोंसे क्रमशः ऊंची नीची मालभूमिमें मिल गया है। यह ऊंची भूमि खेतीवारीके लायक विलकुल नहीं है। शतद्रुके पास इस पर्वतमालाका मध्यवर्त्ती स्थान ऊसर है, इस लिये वहां अच्छी फसल नहीं लगती है।

मुसलमानी आगमनके पहले यह जिला कतोचवंशीय

जालन्धरराजके अधीन था। जब यह राजपूतवंश अनेक शाखाओंमें विभक्त हो गया, तब होशियारपुर कतोचवंशी यशवान द्वारा और दितारपुर इसी राजवंशकी दूसरी शाखा द्वारा शासित होता था। मुसलमानोंके आगमनके बाद भी यहां उन लोगोंका शासन अव्याहत था। १७५९ ई०से सिख लोग होशियारपुर जिला जीतनेके लिये सेना भेजने लगे। अन्तमें पंजाब केशरी रणजित् सिंहने इस पर दखल जमा ही लिया। इस जिलेका अधिकांश स्थान ही उनके अधीनस्थ छोटी छोटी जागीरोंमें विभक्त हो गया था।

१८४६ ई०में सिख-युद्धका अवसान होने पर यह जिला वृटिश गवर्मेण्टके दखलमें आया। दितारपुर और यशवानके राज्यच्युत राजाओंको गवर्मेण्टकी ओरसे मासिक वृत्ति मिलने लगी, परन्तु इस पर संतुष्ट न हो कर उन लोगोंने गवर्मेण्टके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। युद्धमें वे सहजमें परास्त हुए। दितारपुरके राजा जगत्सिंहका ३० वर्ष गवर्मेण्टकी वृत्ति भोगनेके बाद वाराणसीमें देहान्त हुआ। यशवानके राजा उमेदसिंहको भी वृत्ति मिली थी। परन्तु जब महारानी विक्टोरियाने भारतवर्षका शासनभार ग्रहण किया, तब उमेदसिंहके प्रपौत्रको पूर्ण जागीर मिली।

इस जिलेमें १२ शहर और २११७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २ हजारसे ऊपर है। अधिवासियोंमेंसे अधिकांश जाट हैं। मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पीछे ३२ और सिख लोगोंकी ८ है। यहांकी भाषा पंजाबी है। विद्याशिक्षामें इस प्रान्तके २८ जिलोंमें इस जिलेका स्थान बारहवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर १५ सिकेण्ड्री, १५० प्राइमरी, ८० एलिमेण्ट्री, ३ ऐङ्गलोवर्नाक्युलर हाई स्कूल, १ वर्नाक्युलर हाई स्कूल और ८ मिडिलस्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक सिविल अस्पताल और १५ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१° २१′से ३१° ५०′ उ० तथा देशा० ७५° ४०′से ७६° ७′ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०८ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखके करीब है। इसमें होशियारपुर नामक एक शहर और करीब ५०० सौ ग्राम लगते हैं।

३ होशियारपुर जिलेका सदर और शासनकेन्द्र। यह अक्षा० ३१° ३२′ उ० तथा देशा० ७५° ५२′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २० हजारके लगभग है। शायद १४वीं सदीमें यह शहर बसाया गया है। १८०९ ई०में रणजित्सिंहने इसे दखल कर यहां सेनानिवास स्थापित किया था। वृटिश गवर्मेण्टने जब यह जिला वृटिश राज्यमें मिला लिया तब उस सेनानिवासमें उन्होंने कुछ सेना रखी थी। इसके बाद यह छोड़ दिया गया। शहरमें ३ हाई स्कूल और एक सिविल अस्पताल है।

होशियारी (फा० स्त्री०) १ समझदारी, बुद्धिमानी। २ दक्षता, निपुणता। ३ युक्ति, कौशल।

होसकोट—१ बङ्गलूर जिलेके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १२° ५१′से १३° १५′ उ० तथा देशा० ७७° ३८′से ७७° ५९′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २७२ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारके करीब है। इसमें २ शहर और ३६५ ग्राम लगते हैं।

२ बङ्गलूर जिलेका एक शहर और होसकोट तालुकका सदर। यह अक्षा० १३° ४′ उ० तथा देशा० ७७° ४८′ पू०के मध्य पिनाकिनी नदीके बाएं किनारे बङ्गलूर शहरसे १८ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहांके सरदारने १५९५ ई०में इस नगरको बसाया। यहां एक बड़ा तालाब है। वर्षमें दो बार मेला लगता है। प्रत्येक मेलेमें प्रायः ५००० आदमी इकट्ठे होते हैं। १७६१ ई०में होसकोट हैदरअलीके यत्नसे महिसुर राज्यमें मिलाया गया।

होसगद्दी—मन्द्राज विभागके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत एक गिरिसङ्कट। यह अक्षा० १३° ४०′ उ० तथा देशा० ७५° १′ पू०के मध्य वेदनूर तथा मालवाके उपकूल-पथ पर अवस्थित है। टीपू सुलतानके साथ जब युद्ध चल रहा था उस समय यह गिरिसङ्कट अनेक बार काममें आया था।

होसङ्गाबाद—मध्यप्रदेशके नर्मदा विभागका जिला। यह अक्षा० २१° ५३′से २२° ५९′ उ० तथा देशा० ७६° ४७′से ७८° ४४′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६७६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें भूपाल और सिन्दे राज्य, दक्षिणमें पश्चिम बेरार, बेतुल और छिन्दवाड़ा प्रदेश,

पूर्वमें नरसिंहपुर और पश्चिममें निमार जिला है। जिलेकी उत्तरी सीमामें नर्मदा नदी बहती है। यह नदी भूपाल, सिन्देराज्य और होलकर राज्यसे इस जिलेके पृथक् करती है।

इस जिलेका इतिहास महाराष्ट्र आक्रमणके पहलेका कुछ भी मालूम नहीं। मण्डलाके राजवंशसे यहांके चार गोड राजाओंने अपनी उपाधि ली थी। होसङ्गाबादका पूर्वांश इन्हीं लोगोंके अधीन था। मुगल-सम्राट् अकबरके समय हण्डिया होसङ्गाबादका एक सरकार समझा जाता था। परन्तु जिलेका पूर्वांश अकबरके समयमे देशी स्वाधीन गोंडराजे शासन करते थे। १७२० ई०में भूपाल-राजवंशके प्रतिष्ठाताने होसङ्गाबाद शहर अधिकार कर सिवनीसे तारा तकका भूभाग इसमें मिला दिया। १७४२ ई०में बालाजी बाजी राव यह उपत्यका अतिक्रम कर मण्डला पर चढ़ाई करने समय हण्डिया परगनेको अपने अधिकारमें लाये। आठ वर्षके बाद नागपुरके महाराष्ट्रराज रघुजी भोंसलेने भूपाल राज्यको छोड बाकी समूचे जिले पर दखल जमाया। इस समयसे तीन राजपरिवार इस जिलेके विभिन्न स्थानका शासन करने लगे। १७९५ ई०में भोंसलोंके साथ भूपालके राजाओंका विवाद खड़ा हुआ। भोसलोने होसङ्गाबाद दखल किया। परन्तु अन्तमें उनलोगोंने जो राज्य बडे कष्टसे पाया था, वह भूपाल-राजके षड़यन्त्रसे जाता रहा। भूपालके राजा महम्मद और भोंसलोमें जब विवाद चल रहा था, उस समय इस जिलेमें जो अत्याचार हुआ था, वह अकथनीय है। प्रजा घर-द्वार छोड कर भाग गयी थी। पिण्डारियोंने आ कर समूचे जिलेको लूट लिया था। वृटिश-शासन सुप्रतिष्ठित होनेके बाद इस जिलेमें शान्ति विराजने लगी। १८६० ई०की संधि शर्त्तके अनुसार होसङ्गाबाद वृटिश साम्राज्यमें मिलाया गया। १८५७ के गदरमें यहां किसी प्रकारकी अराजकता नहीं दिखाई दी थी।

इस जिलेमें ६ शहर और १३३४ ग्राम लगते हैं जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। अधिवासियोमें गोंड़की संख्या ज्यादा है। जौ इस जिलेकी प्रधान उपज है। यहां रुई भी कम नहीं उपजती। जिले भरमें २ हाई स्कूल, ५ मिडिल इङ्गलिश और ७ मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल, १२६ प्राइमरी स्कूल और ६-१० बालिका स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २२° ४६′ उ० तथा देशा० ७७° ४४′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। कहते हैं, कि मालवके घोरी-राजवंशीय होसङ्गशाहने इस शहरको बसाया था। उनका देहान्त यहीं हुआ और यहीं पर उनको लाश भी दफनाई गई। परंतु अन्तमें उनकी हड्डी माण्डूमें लाई गई थी। यहां की बांसकी बनी टहलनेकी छडी बड़ी अच्छी होती है। शहरमें एक हाई स्कूल तथा और भी अन्यान्य स्कूल हैं।

होसदुर्ग—१ महिसूर राज्यके चित्तलदुर्ग जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° ३५′से १४° ५′ उ० तथा देशा० ७६° ६′से ७६° ३४′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसमें होसदुर्ग नामक एक शहर और २५२ ग्राम लगते हैं। वेदवती नदी तालुकके बीचसे हो कर बह गई है। यहां लोहे और तांबेका काम होता है।

२ चित्तलदुर्ग जिलेके अंतर्गत होसदुर्गका सदर। यह अक्षा० १३° ४८′ १०″ उ० तथा देशा० ७६° २०′ पू०के मध्य विस्तृत है। १६७५ ई०में यहां एक दुर्ग बनाया गया था। उसी दुर्गके नामानुसार इस शहरका नामकरण हुआ है।

होसपेट—१ मंद्राजके बेल्लरी जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५° ०′ से १५° २६′ उ० तथा देशा० ७६° १७′ से ७६° ४८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४० वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें होसपेट और कम्पली नामक दो शहर तथा १२१ ग्राम लगते हैं। ईख और धान यहांकी प्रधान उपज है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १५° १६′ उ० तथा देशा ७६° २४′ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या २० हजारके करीब है। कहते हैं, कि नागल देवीके सम्मानार्थ विजयनगरके राजा कृष्णदेवने १५०९-से १५२० ई०के अन्दर इस शहरको बसाया। शहरमें फौजदारी अदालत, स्कूल, डाकघर और दो सुन्दर मन्दिर है।

होसिटकभट्ट—कर्णावतंसकाव्यके प्रणेता।

होसूर—१ मन्द्राजके सलेम जिलेका उत्तरी तालुक। यह अक्षा० १२° ६′से १२° ५४′ उ० तथा देशा० ७७° २६′से ७८° १६′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२१७ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः २ लाख है। तालुकका अधिक भाग जंगलसे ढका है। इसमें होसूर नामक १ शहर और १५० ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका शहर। यह अक्षा० १२° ४४′ उ० देशा० ७७° ५०′ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ७ हजारके लगभग है। शहरमें स्कूल, पुलिसष्टेशन, तहसीलदार और मुन्शफी कचहरी तथा सब-कलकृरका सदर है। इसके ४ मील दक्षिण मत्तगेरी नामक स्थानमें ही मन्द्राजकी घुड़सवार और गोलन्दाज सेना शिक्षित हो कर तमाम भेजी जाती है।

होहो (सं० अव्य) हुति, सम्बोधन, आह्वान।

हौंस (अ० स्त्री०) हौस देखो।

हौं (सं० अव्य०) १ सम्बोधन। २ आह्वान।

हौआ (हिं० पु०) लड़कोंको डरानेके लिये एक कल्पित भयानक वस्तुका नाम, हाऊ, भकाऊं।

हौका (हिं० पु०) १ सरभुखापन, खानेका गहरा लालच। २ तृष्णा, प्रबल लोभ।

हौज (अ० पु०) १ पानी जमा रहनेका चहबच्चा, कुंड। २ कटोरेके आकारका मिट्टीका बहुत बड़ा बरतन, नाद।

हौतभुज (सं० त्रि०) हुतभुज-अण्। १ नक्षत्रवर्ग। वृहत्संहितामें लिखा है—पुष्या, आग्नेय, विशाखा, भरणी पित्र्य, अज और भाग्यसंज्ञक नक्षत्रमें हौतभुज वर्ग होता है।

अग्नि इनके अधिष्ठात्री देवता हैं, इसीसे इनको हौतभुज कहते हैं। २ अग्निसम्बन्धीय।

हौताशन (सं० त्रि०) हुताशन सम्बन्धीय।

हौतृक (सं० त्रि०) होतुरागतं (ऋतष्ठञ्। पा ४।३।७८ इति ठञ्। होतृसम्बन्धीय।

हौत्र (सं० पु०) यजमान।

हौत्र (सं० पु०) होताका भाव या कर्म।

हौत्रिक (सं० त्रि०) होताका उच्चारण सम्बंधीय।

हौद (अ० पु०) १ कुंड, बंधा हुआ बहुत छोटा जलाशय। २ कटोरेके आकारका मिट्टीका बहुत बड़ा बरतन। इसमें चौपाए खाते पीते हैं तथा रंगरेज, धोबी आदि कपड़े डुबाते हैं।

हौदा (फा० पु०) १ हाथीकी पीठ पर कसा जानेवाला आसन। इसके चारों ओर रोक रहती है और पीठ टिकानेके लिये गद्दी रहती है। २ कटोरेके आकारका मिट्टी पत्थर आदिका बहुत बड़ा बरतन। इसमें चौपाओंको चारा दिया जाता है।

हौम्य (सं० क्ली०) १ घृत, घी। (त्रि०) २ होमीय द्रव्ययुक्त, होमद्रव्य सम्बन्धीय।

हौम्यधान्य (सं० क्ली०) होमधान्य, तिल। इससे होम किया जाता है, इसीसे इसको होमधान्य कहते हैं।

हौरा (हिं० पु०) शोर, गुल।

हौल (अ० पु०) भय, डर।

हौलदिल (फा० स्त्री०) १ कलेजा धड़कना, दिलकी धड़कन। २ दिल धड़कनेका रोग। (वि०) ३ जिसका दिल धड़कता हो। ४ दहशतमें पड़ा हुआ, डरा हुआ। ५ व्याकुल, घबराया हुआ।

हौलदिला (फा० वि०) डरपोक, बुजदिल।

हौलनाक (फा० वि०) भयानक, डरावना।

हौली (हिं० स्त्री०) वह स्थान जहां मद्य उतारता और बिकता है, आबकारी।

हौले (हिं० क्रि० वि०) १ मन्दगतिसे, धीरे। २ हलके हाथसे, जोरसे नहीं।

हौवा (अ० स्त्री०) पैगम्बरी मतोंके अनुसार सबसे पहली स्त्री जो पृथ्वी पर आदमके साथ उत्पन्न की गई और जो मनुष्य 'जातिकी आदिमाता मानी जाती है।

हौवीरपति—सिन्धुनदप्रवाहित पंजावको एक सुप्रसिद्ध राजा। पाश्चात्य ऐतिहासिक दिओदोरसके मतसे रानी सेमिरामिस ई०सन्‌के पहले १२३५से १२२५के मध्य बहुत सी सेना ले कर सिन्धुनद पार कर गई और हौवीरपति पर चढ़ाई कर दी। सरस्वती और गङ्गा प्रवाहित देश पर्य्यन्त इन्हीं राजाके अधिकारभुक्त था। इन्हें हम लोग भागवतवर्णित सिन्धुसौवीरके पतिपति या उसी वंशके कोई अधिपति मानते हैं।

हौस (अ० स्त्री०) १ प्रबल इच्छा, चाह। २ हर्षोत्कण्ठा उमंग। ३ साहसपूर्ण, इच्छा, उत्साह।

हौसला (अ० पु०) १ किसी कामको करनेकी आनन्द पूर्ण इच्छा, उत्कंठा। २ आनन्दपूर्ण साहस, उत्साह। ३ प्रफुल्लता, उमंग।

हौसलामंद (फा० वि०) १ लालसा रखनेवाला। २ उमंगवाला, वढ़ी हुई तवीयतका। ३ उत्साही, साहसी।

ह्यस (सं० अव्य०) गतदिन, कल।

ह्यस्तन (सं० त्रि०) ह्योभवं ह्यस् (एषामोह्यश्वसोऽन्यतरस्यां। पा ४।२।१०५) इति पक्षे ट्युट्युलौ। गतदिवसीय, कलका।

ह्यस्त्य (सं० त्रि०) ह्यस्तन, परदिवसीय।

ह्युएनसियं—हुएनसियं देखो।

ह्योगोदोह (सं० पु०) गोदोहन करनेका पूर्वदिन।

ह्रणिया (सं० स्त्री०) हिणीया, लज्जा।

ह्रद (सं० पु०) १ वड़ा ताल, झील। जो जलभाग चारों ओर जमीनसे घिरा हो उसे ह्रद कहते हैं। ह्रदकी उत्पत्ति स्वभावतः होती है, कृत्रिम उपायसे ह्रद नहीं वनाया जाता। अंगरेजीमें इसे लेक कहते हैं। यह एक स्वाभाविक जलधाराके सिवा और कुछ भी नहीं है, परन्तु जमीन पर जहां तहां जो जलकुंड दिखाई देता है, उसको ह्रद नहीं कहेंगे।

साधारणतः नदीसे ही ह्रदकी उत्पत्ति होती है। नदीका स्रोत पर्वत-पृष्ठ परसे नीचे उतर कर जमीन पर जहां गहरा गड्ढा रहता है वहीं जमा हो जाता है और उस गडहेको भर देता है। पीछे वह जल एक दूसरे रास्तेसे निकल कर समुद्रकी ओर दौड़ता है। इस प्रकार जलके निकास होने पर भी यदि वह गडहा हमेशा भरा रहे तथा प्राकृतिक नियमसे वह वाष्पीभूत होनेके साथ ही साथ यदि पहाड़ी सोतोंके जलसे पूर्ण हो कर जलपृष्ठकी समता सम्पादन करनेमें समर्थ हो, तो उस जलखण्डको ह्रद कहेंगे।

ह्रदकी इस प्रकार परिणति देखनेसे मालूम होता है, कि किसी एक नदीकी आकस्मिक जल विस्तृति अथवा नदी नालाकी समष्टि या संयोगस्थल वहुत विस्तृत हो कर ह्रदाकारमें परिणत हो गया है और पीछे उससे फिर नदीकी भी उत्पत्ति हुई है।

लेक विक्टोरिया नयेञ्जा और अलवर्ट नयेञ्जासे नील नद, लेक टंगानिकासे कङ्गोनदी और नायेसा ह्रदसे जाम्वेजी नदीकी एक शाखा निकली है। फिर येनेसी नदीके जलसे मीठे जलसे भरे हुए वैकाल ह्रदकी उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार वलगा और अक्षु नदीके जलविस्तारसे लवणजलमय कास्पीय और अर्लसागर उत्पन्न हुआ है।

ज्वालामुखी देशोंमें भी वहुतसे ह्रद देखे जाते हैं। कई जगह वुझे हुए आग्नेयगिरिके विस्तृत मुख विवरमें जलराशिके संचित होनेसे ह्रदकी सृष्टि हुई है। फिर कहीं कहीं जमीनमेंसे आग निकलनेके वाद एक वहुत लंवाचौड़ा गड्ढा वन जाता है और पीछे यही ह्रदमें परिणत होता है। इटली, अजोरस और जर्मनीमें इस श्रेणीके अनेक ह्रद देखनेमें आते हैं।

समुद्रके किनारे वालूसे ढके हुए निम्न प्रदेशमें भी छोटे छोटे ह्रद देख पड़ते हैं। इन्हें अंगरेजीमें *Lagoons* कहते हैं। समुद्रके किनारे तेज हवा चलनेसे वालूका कहीं तो ढेर लग जाता और कहीं गड्ढा वन जाता है। उस गड़हेमें जुआर (*Tide*) का जल संचित होता है और पीछे वह धीरे धीरे छोटा ह्रद वन जाता है। वाल्टिक समुद्रके किनारे, वाल्टिक नदी और गारोन नदीके मुहाने पर ऐसी अनेक ह्रदमाला दिखाई देती है। कभी कभी समुद्रगर्भका कुछ अंश वालूचर या स्थलभागसे धीरे धीरे संक्रान्त हो तथा पीछे उसको पूर्णरूपसे ग्रास कर ह्रद वना देता है। वङ्गोपसागरका चिल्का-ह्रद इसका एक उदाहरण है।

१८६६ ई०के प्रवल भूकम्पसे वङ्गालका पूर्वतन शिलं नगर जमीनमें धंस गया था जिससे वहां एक छोटा ह्रद वन गया है। आसमानसे वातें करनेवाला पहाड़ भी इसी प्रकार भूकम्पसे गिर पड़ता और वहां गडहा वन जाता है। पीछे जलराशिके सञ्चित हो जानेसे ह्रदकी उत्पत्ति हुआ करती है। मानसरोवर, रावण ह्रद आदि ह्रद हिमालय पहाड़की सवसे ऊंची चोटी पर अवस्थित है। कोकनूर ह्रदकी ऊंचाई समुद्रकी तहसे १०५०० फुट है। दक्षिण अमेरिकाका टिटिकाका लेक समुद्रपृष्ठसे १२५०० फुट ऊंचेमें अवस्थित है।

परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है, कि वैकाल ह्रदका

गहराई ४०८० फुट और कास्पीय सागरकी ३६०० फुट है। ऐसा गहरा ह्रद कहीं भी नहीं देख पडता। वैकालकी जलराशि समुद्रपृष्ठसे १३६० फुट ऊंची है तथा उसका तलदेश समुद्रसे २७२० फुट नीचा है।

डेडसी या मृतसागरकी गहराई १३०० फुट है। यह गहराई देख कर कोई कोई पण्डित डेडसीको लोहितसागरगर्भका एक भाग मानते हैं। उनके मतसे मध्यवर्ती देशभाग पूर्ण हो कर उसे अलग करता है। पास्केल आदिके मनीषिगण इस मतके पक्षपाती नहीं हैं।

वैद्यकशास्त्रके मतसे ह्रदके जलका गुण अग्निकर, मधुर, कफ और कफनाशक है।

२ किरण। ३ मेढा। ४ ध्वनि, आवाज। ५ सरोवर, तालाव।

ह्रदक (सं० त्रि०) ह्रद आकर्णनादित्वात् कन्। (पा ५।२।६४) ह्रदमें कुशल।

ह्रदग्रह (सं० पु०) ह्रदस्य ग्रहः। कुम्भीर, नाक नामक जन्तु।

ह्रदिन् (सं० त्रि०) ह्रदयुक्त, जलीय।

ह्रदिनी (सं० स्त्री०) १ नदी। २ विद्युत्, विजली।

ह्रदोदर (सं० पु०) दैत्यभेद।

ह्रद्य (सं० त्रि०) ह्रद-यत्। ह्रदभव, जो ह्रद या तालावमें होता है।

ह्रसित (सं० त्रि०) छोटा किया हुआ, घटा हुआ।

ह्रसिमन् (सं० पु०) ह्रस्वस्य भावः (पृथ्वादिभ्य इमनिज वा। पा ५।१।१२२) इति इमनिच् (स्थूलदूरयुवह्रस्वेति। पा ६।४।१५६) इति ह्रसादेश। ह्रस्वता, लघुता, क्षुद्रता।

ह्रसिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय ह्रस्व, बहुत छोटा।

ह्रस्व (सं० क्ली०) (सर्वनिघृष्वरिष्वेति। उण् १।१५) इत्यत्र ह्रसशब्दे वाहुलकात् वन्। १ परिमाणविशेष। २ गौरसुवर्ण शाक। ३ पुष्पकसीस, हीराकसीस। (पु० स्त्री०) ४ वामन, बौना। ५ दीर्घकी अपेक्षा कम खींच कर बोला जानेवाला स्वर। जैसे,— अ, इ, क, कि, कु ह्रस्व वर्ण हैं और आ, ई, ऊ, का, की, कू दीर्घ। ६ ज्योतिषके मतानुसार मेष, वृष, कुम्भ और मीन इन चार राशियोंको ह्रस्वराशि कहते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व) (त्रि०) ७ छोटा, जो बड़ा न हो। ८ नाटा, छोटे कदका। ९ कम, थोड़ा। १० नीचा। ११ तुच्छ, नाचीज।

ह्रस्वक (सं० पु०) १ ह्रस्व। २ पूग वृक्ष, सुपारीका पेड।

ह्रस्वकन्द (सं० पु०) तैलसारु नामक प्रसिद्ध कन्दविशेष।

ह्रस्वकर्कन्धु (सं० स्त्री०) वनवदर, जंगली वेर।

ह्रस्वकर्ण (सं० पु०) १ राक्षस। (रामा० ५।१२।१३) (त्रि०) २ ह्रस्वकर्णविशिष्ट, छोटे कानवाला। वृहत्संहितामें लिखा है, कि जिसके छोटे कान होते हैं, वह कृपण होता है।

ह्रस्वकुश (सं० पु०) श्वेतकुश, सफेद दाभ।

ह्रस्वगर्भ (सं० पु०) कुश।

ह्रस्वगवेधुका (सं० स्त्री०) गाङ्गेरुकी, गोरख इमली।

ह्रस्वजम्बु (सं० पु०) क्षुद्र जम्बु, छोटा जामुन।

ह्रस्वजातरोग (सं० पु०) ह्रस्वजात्य देखो।

ह्रस्वजात्य (सं० पु०) आंखका एक रोग। इस रोगमें दिनके समय बडी वस्तु भी छोटी दिखाई देती है तथा रातके समय वस्तुका प्रकृत प्रमाण देखनेमें आता है। इसे ह्रस्वदृष्टि भी कहते हैं। यह रोग होने पर बडी सावधानीसे सुविज्ञ चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करानी चाहिये। नेत्ररोग शब्द देखो।

ह्रस्वतण्डुल (सं० पु०) राजान्न, राजभोग धान।

ह्रस्वता (सं० स्त्री०) अल्पता, लघुता, छोटाई, छोटापन।

ह्रस्वत्रिफला (सं० त्रि०) वैद्यकोक्त गम्भारी फल, खजूर और फालसा।

ह्रस्वदर्भ (सं० पु०) श्वेत कुश।

ह्रस्वदा (सं० स्त्री०) शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड।

ह्रस्वपञ्चमूल (सं० क्ली०) वैद्यकोक्त वृहती; वृहती, कण्टकारी, पृश्निपर्णि, शालपर्णि, ये सब द्रव्य। इसका गुण— लघु, वलकर, स्वादु, पित्त और वायुनाशक, नात्युष्ण, वृंहण, ग्राहक, ज्वर, श्वास और अश्मरीरोगनाशक।

ह्रस्वपत्रक (सं० पु०) गिरिजमधुकवृक्ष, पहाडी महुआ।

ह्रस्वपत्रिका (सं० स्त्री०) अश्वत्थिका, पिपली।

ह्रस्वपर्ण (सं० पु०) ह्रस्वपत्र वृक्ष, पाकरका पेड।

ह्रस्वपर्वान् (सं० पु०) कृष्ण इक्षु, काला गन्ना। यह ईख बहुत लंबी होती है।

ह्रस्वपुष्प (सं० पु०) जलमधुक, जलमहुआ।

ह्रस्वप्लक्ष (सं० पु०) क्षुद्र प्लक्ष वृक्ष, पाकरका पेड । गुण—कटु, कषाय, शिशिर, त्रिदोषनाशक, विशेषतः मूर्च्छा, भ्रम और प्रलापनाशक । (राजनि०)

ह्रस्वफल (सं० पु०) १ मधुर नारिकेल, खजूर या छुहारा । २ छोटा फल । (त्रि०) ३ क्षुद्र फलयुक्त, जिसमें छोटे छोटे फल लगते हैं ।

ह्रस्वफला (सं० स्त्री०) भूमिजम्बू, छोटी जातिकी जामुन जो नदियोंके किनारे होती है ।

ह्रस्वबाहु (सं० त्रि०) क्षुद्रबाहु, छोटा हाथ ।

ह्रस्वमूल (सं० पु०) १ कृष्ण इक्षु, काला गन्ना । २ रक्त इक्षु, लाल गन्ना ।

ह्रस्वमूला (सं० स्त्री०) उष्ट्रकाण्डी क्षुप, ऊंटकटरा ।

ह्रस्वरोमन् (सं० पु०) विदेहराजभेद, स्वर्णरोमके पुत्र ।

ह्रस्ववृक्ष (सं० पु०) १ कुश । २ क्षुद्र वृक्ष, छोटा पेड़ ।

ह्रस्वशाखाशिफ (सं० पु०) क्षुप, झाडी ।

ह्रस्वशिग्रुक (सं० पु०) छोटा सहिंजनका पेड ।

ह्रस्वा (सं० स्त्री०) ह्रस्व टाप् । १ मुद्गपर्णी, वनमूंग । २ नागबला, गुलसकरी । ३ श्वेत अपराजिता । ४ भूमिजम्बु, छोटी जातिकी जामुन जो नदियोंके किनारे होती है । ५ चित्रक वृक्ष, चिता ।

ह्रस्वाग्नि (सं० पु०) अर्कवृक्ष, आकका पौधा ।

ह्रस्वाङ्ग (सं० पु०) १ जीवकौषध, जीवक नामका पौधा । २ ऋषभक, लहसुनकी तरहकी एक ओषधि । (त्रि०) ३ नाटा, ठेंगना ।

ह्राद (सं० पु०) ह्रद-घञ् । १ शब्द, ध्वनि । २ अव्यक्त ध्वनि । ३ वाद्यादिका शब्द, बाजे आदिका शब्द । ४ हिरण्यकशिपुके एक पुत्रका नाम, प्रह्लादका भाई । हिरण्यकशिपु देखो । ५ एक नागका नाम । ६ मेघगर्जन, बादलकी गरज । (त्रि०) ७ शब्दकारक, गर्जन करनेवाला ।

ह्रादक (स० त्रि०) ह्रादे कुशलः (आकर्षादिभ्यः कन् । पा ५।२।६४) इति कन् । शब्दविषयमें कुशल ।

ह्रादिन् (सं० त्रि०) १ आह्लादयुक्त, प्रसन्न । २ अव्यक्त ध्वनिविशिष्ट ।

ह्रादिनी (सं० स्त्री०) ह्राद-णिनि-ङीप् । १ विद्युत्, बिजली । २ नदी । ३ शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड ।

ह्रादुनि (सं० स्त्री०) विद्युत, बिजली ।

ह्रादुनीवृत् सं० त्रि०) अशनि या विद्युत्प्रवर्त्तक ।

ह्रास (सं० पु०) ह्रस घञ् । १ शब्द, आवाज । २ क्षीणता, कमी, घटती । ३ शक्ति, वैभव गुण आदिकी कमी ।

ह्रासन (सं० क्ली०) ह्रास-ल्युट् । १ शब्द, आवाज । २ ह्रास, घटाना ।

ह्रास्व (सं० क्ली०) ह्रस्वस्य भावः (पृथ्वादिभ्योण् वा । पा ५।१।१२२ वृत्ति) इति अण् । ह्रस्वका भाव, ह्रस्वता, कमती, घटती ।

ह्रिणीया (सं० स्त्री०) ह्रिणी-यक् भावे अ टाप् । लज्जा, शरम ।

ह्रिति (सं० स्त्री०) हृति, हरण ।

ह्री (सं० स्त्री०) १ लज्जा, शरम । २ दक्ष प्रजापतिकी कन्या जो धर्मकी पत्नी मानी जाती है ।

ह्रीक (सं० पु०) नेवला ।

ह्रीका (सं० स्त्री०) ह्री (ह्रियो रश्च । उण् १।४८) इति कन् टाप् । १ त्रास, डर । २ लज्जा, हया ।

ह्रीकु (सं० त्रि०) ह्री (ह्रियः कुक् रश्च । उण् ३।८५) इति कुक् । १ लज्जित, लजीला । (पु०) २ विड़ाल, बिल्ली । ३ लाह, लाख । ४ वङ्ग, रागा ।

ह्रीजित (स० त्रि०) लज्जाशील, लजीला ।

ह्रीण (सं० त्रि०) लज्जित, शरमिंदा ।

ह्रीत (सं० त्रि०) लज्जित, लजाया हुआ ।

ह्रीतमुख (सं० त्रि०) लज्जितमुखविशिष्ट, लजीला मुंहवाला ।

ह्रीतमुखिन् (सं० त्रि०) सलज्जामुखयुक्त, शरमिंदा मुंहवाला ।

ह्रीति (सं० स्त्री०) ह्री क्तिन् । लज्जा, शरम ।

ह्रीम् (सं० अव्य०) तन्त्रोक्त बीजमन्त्रविशेष, दुर्गादेवीका बीजमन्त्र । दुर्गापूजामें इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है ।

ह्रीमत् (सं० त्रि०) लज्जायुक्त, हयादार ।

ह्रीमत्त्व (सं० क्ली०) ह्रीमान्का भाव या धर्म, लज्जा ।

ह्रीमान् (हिं० वि०) १ लज्जाशील, शर्मदार । (पु०) २ विश्वेदेवामेंसे एक ।

ह्रीमूढ़ (सं० त्रि०) लज्जासे घबराया हुआ, लाजसे दबा हुआ ।

ह्रीवेर (सं० क्ली०) सुगन्ध द्रव्यविशेष, (*Pavonia odorata*)

सुगंधवाला। इसे महाराष्ट्रमें सुगन्धवालाऔर कलिङ्गमें करवाल कहते हैं। गुण—छर्दि, ह्रल्लास, तृष्णा और अतिसाररोगनाशक।

ह्रीवेरादिपाचन (सं० क्ली०) ज्वरातीसारोक्त पाचनभेद। (भैषज्यरत्ना०)

ह्रीवेराद्यतैल (सं० क्ली०) रक्तपित्तरोगाधिकारोक्त तैलौषधविशेष। बनानेका तरीका—तिलतैल ४ सेर, लाहका काढ़ा १६ सेर, दूध १सेर। कल्कार्थ सुगंधवाला, खसकी जड़, लोध, पद्मकेशर, तेजपत्र, नागेश्वर, बेल सोंठ, नागरमोथा, कचूर, लाल चन्दन, आकनादि, इन्द्रयव, कूटजकी छाल, त्रिफला, सोंठ, बहेड़ेकी छाल, आमकी गुठली और लाल कमलका मूल प्रत्येक २ तोला। इन सब कल्क द्वारा तैलपाकके विधानानुसार यह तैल पाक करे। इस तेलकी मालिश करनेसे रक्तपित्त, खांसी और उरःक्षतरोगकी शान्ति तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

ह्रीवेल (सं० पु०) ह्रीवेर पृषोदरादित्वात् रस्य लः, पश्चे स्वार्थे कन्। ह्रीवेर देखो।

ह्रीवेलक (सं० पु०) ह्रीवेल देखो।

ह्रुत् (सं० स्त्री०) हिंसक, हिंसाकारी। (ऋक् ८।४।५)

ह्रुम् (सं० अव्य०) तन्त्रोक्त बीजमन्त्रविशेष। ह्राम, ह्रोम ह्रुम, इत्यादि बीजमन्त्रसे षडङ्गन्यास करना होता है।

ह्रेषा (सं० स्त्री०) अश्वध्वनि, घोड़ेकी हिनहिनाहट।

ह्रेषाण (सं० क्ली०) गमन, गति।

ह्रेषिन् (सं० त्रि०) ह्रेषारवयुक्त,

ह्रौम (सं० अव्य०) तन्त्रोक्त बीजमन्त्रविशेष।

ह्लाद (सं० पु०) ह्लद-घञ्। १ आनन्द, खुशी। २ हिरण्यकशिपुके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु० १।५। अ०)

ह्लादक (सं० त्रि०) ह्लाद-ण्वुल्। १ आह्लादक, खुश करनेवाला। ह्लादे कुशल कन् (पा ५।२।६४) २ आह्लाद विषयमें कुशल।

ह्लादन (सं० क्ली०) ह्लाद-ल्युट्। १ आह्लाद, खुशी। (पु०) २ शिव, महादेव।

ह्लादिका (सं० स्त्री०) आह्लादयित्री, प्रसन्न करनेवाली।

ह्लादिकावत् (सं० त्रि०) आह्लादजनक वस्तुविशिष्ट, प्रसन्न करनेवाली वस्तुसे युक्त। (ऋक् १०।१५।१४)

ह्लादिन् (सं० त्रि०) ह्लदि-णिनि। आह्लादविशिष्ट, आनन्दयुक्त।

ह्लादिनी (सं० स्त्री०) ह्लादिन्-ङीप्। १ ईश्वरकी एक शक्ति। शक्ति देखो। २ एक नदीका नाम। भार्य देखो। ३ बिजली. वज्र। ४ धूपका पौधा।

ह्लादुक (सं० त्रि०) आह्लादयुक्त, प्रसन्न, खुश।

ह्लादुकावत् (सं० त्रि०) ह्लादिकावत्, आह्लाजनक, आनंदित करनेवाला।

ह्लादुनि (सं० स्त्री०) ह्रादुनि, बिजली।

ह्लीक (सं० स्त्री०) ह्रीक। ह्रीक देखो।

ह्लीका (सं० स्त्री०) ह्री लज्जाया (ह्रियोरश्च लो वा। उण् ३।४८) इति कन्, रस्य लः। लज्जा, शरम।

ह्लीकु (सं० स्त्री०) १ जतु, लाह। २ त्रपु, रांगा, सीसा। (त्रि०) ३ लज्जित, शर्ममें पड़ा हुआ।

ह्लेषा (सं० स्त्री०) ह्रेषा, घोड़ोंकी हिनहिनाहट।

ह्वलन (सं० पु०) इधर उधर झुकना या गिरना पड़ना, थहराना।

ह्वातव्य (सं० त्रि०) ह्वा तव्य। आह्वानयोग्य, बुलानेलायक।

ह्वातृ (सं० त्रि०) ह्वे-तृच्। आह्वानकारक, बुलानेवाला।

ह्वान (सं० क्ली०) ह्वे-ल्युट्। आह्वान, बुलावा।

ह्वार (सं० पु०) कुटिल। "वातचोदितो ह्वारो न" (ऋक १।१४१।७) 'ह्वारः' कुटिलः' (सायण)

ह्वार्य (सं० त्रि०) ह्वा ण्यत्। कुटिलगामी, वक्रगामी। "पुत्रो न ह्वार्य्याणां" (ऋक् ५।९।४)

ह्विप (अं० पु०) १ पार्लमेण्ट या व्यवस्थापिका सभाका एक सदस्य। यह अपनी पार्टी या दलके सदस्योंको किसी महत्त्वके प्रश्न पर वोट या मत लिये जानेके समय सभामें अधिकाधिक संख्यामें उपस्थित कराता है। २ चाबुक। ३ कोचवान।

ह्विस्की (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी अंगरेजी शराब।

ह्वेल (अं० पु०) एक बहुत बड़ा समुद्री जन्तु तिमि शब्द देखो।

* * *

समाप्त

हिन्दी-संसारमें सर्वश्रेष्ठ और वृहत् ग्रन्थ

हिन्दी

विश्वकोष

ENCYCLOPÆDIA INDICA

IN HINDI

२५ भागोंमें सम्पूर्ण हुआ। प्रत्येक सजिल्द भाग (विटेनिकाके आकारके ७६८ पृष्ठों)-का मूल्य १३) और अजिल्दका १२) है, अलावा डाक व्यय। पचीसवें भाग या अन्तिम खण्डका मूल्य, आकारमें छोटा होनेके कारण सिर्फ ५) रु०, अजिल्दका ४) रु० रखा गया है। इस हिसावसे पूरे एक सेट सजिल्द हिन्दी-विश्वकोषका मूल्य ३१७) और अजिल्दका २९२)रु० होता है।

'हिन्दी-विश्वकोष' हिन्दीका ब्रिटेनिका है, चित्र और मानचित्रोंसे सुशोभित होता है। इसकी तुलना करनेवाला वडा ग्रन्थ भारतीय किसी भी भाषामें नहीं है। हिन्दी संसारमें यही एक ऐसा महाकोष है जो हिन्दीभाषाको सजीव और राष्ट्रीयताके गुणोंसे परिशोभित कर सकता है। हिन्दी विश्वकोषमें विशेषता—ब्रिटेनिकामें संसारके सभी ज्ञातव्य विषय लिपिवद्ध होने पर भी भारत सम्बन्धी वहुतसे विषय, वैदिक युगसे आधुनिक युग तकके विषय—उसमें विशेषतासे नहीं लिखे हैं। इसलिये यह भारतके लिये उतना उपयोगी नहीं हो सकता जितना कि विलायतके लिये हैं। परन्तु इस हिन्दी-विश्वकोषमें भारतवर्षके सभी जानने योग्य विषयोंका विशद रीतिसे वर्णन किया गया है। प्रत्येक विषय अनुसंधान पूर्वक प्रमाण सहित लिखा गया है।

'हिन्दी-विश्वकोष' में समस्त हिन्दी और आवश्यकीय वैदिक तथा समस्त संस्कृत शब्दोंके अर्थ और व्युत्पत्ति; हिन्दी भाषामें प्रचलित अरवी, (पारसी), उर्दू आदि वैदेशिक शब्द और उनका अर्थ। जगत्की विभिन्न जाति, समाज, विभिन्न देशवासियोंकी रीतिनीति, उनके आचार व्यवहारका परिचय; वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, राजा, महाराज, वादशाह, योद्धा, हिन्दुस्तानमें फैली हुई प्रत्येक जातिके सामाजिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक साहित्यिक, राजनीतिक, धर्मप्रचारक, धर्मप्रवर्त्तक, परिव्राजक और सव जातियोंके अन्यान्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध मनुष्योंकी जीवनी और उनका पूरा विवरण, वेद, वेदाङ्ग, वेदान्त, स्मृति, पुराण, तन्त्र इत्यादिका परिचय और उनका पूरा पूरा विवरण, उद्भिद, रसायन, पदार्थविद्या, भूतत्त्व, खनिजतत्त्व, पूर्त्तविद्या (Engineering), प्राणितत्त्व, कृषितत्त्व, देहतत्त्व, स्वास्थ्यतत्त्व इत्यादि समस्त वैज्ञानिक विषय रहते हैं।

Expert-Opinion

Mahatma Gandhi & **Pt. Madanmohan Malaviya,** the two famous Indian of political world during their respective visit to Visvakosh Kutir on 2. 1. 29 & 3. 1. 29 respectively said —

'**Hindi visvakosha.**' the greatest Encyclopaedia of our Hindi language, is the chief element of Lingua franca of India and we would heartily help the publication of the same."

Sir Gooroo Das Banerjee, Kt

M. A., D. L., Ph D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,

Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, and Vice-Chancellor *of the Calcutta University*, writes :—

'I have had occasion many a time to consult the Bengali Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."

(9 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,

M. A. LL. B

The Justice of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

Sir George A Grierson, K. C. I. E., writes from England, August 6, 1914 :—

"In the first place allow me to congratulate you on the successful completion of the original Bengali edition May I express the hope that your Hindi edition will reach an equally successful conclusion, * * *

I am specially pleased to see that you make the proper distinction between 'Anunásika and 'Anusvára' This distinction is most important, but it is hardly ever observed by Hindi writers and when they do try to distinguish they are often wrong, So far as I have seen, in the Hindi Visvakosha, the distinction is always correctly made."

The Leader. *Allahabad, August, 18, 1915*

"It augurs well for the future of Hindi literature that works of real value and genuine merit have begun to be undertaken in that language The *latest* and we believe the *greatest work* of that kind is the 'Hindi Visvakosh' or the 'Encyclopaedia Indica' edited with the help of Hindi experts by Mr Nagendra Nath Vasu, Prachyavidyamaharnava, Siddhanta Varidhi, Compiler of the Bengali Encyclopaedia and author of several renowned Bengali works. * * * The quality and quantity of information contained in these pages do the greatest credit to their authors. * * * * An Anglo-Indian contemporary reviewing his work rightly remarked that 'it is an undertaking of which any advanced nation might be proud, and the ability shown in its execution would do honour to the literature of any country, ** * It is also to be hoped that lover of Hindi will do all they can to help the learned editor in his stupendous task "

"......इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिकाकी टक्करका हिन्दीमें यह ज्ञानकोष है। * * * *

"हिन्दीका यह महत् ज्ञानाभिधान अपूर्व ग्रन्थ होगा।"

पाटलिपुत्र, बांकीपुर—पौष कृष्ण १० शनिवार १९१४।

"...इस विश्वकोषसे सैकड़ों नई नई बातें मालूम हो सकती है अतएव यह सर्वथा संग्रहणीय है।"

सरस्वती—अक्टोबर, १९१०

THE HINDI VISHVAKOSHA

(ENCYCLOPÆDIA INDICA)

(Mahatma Gandhi's appreciation of the work and its author)

'Reference has already been made to Srijut Vasu's Hindi Cyclopædia in my notice of Hindi Prachar Conference I knew of this great work two years ago I knew too that the author was ailing and bed ridden, I was so struck with Srijut Vasu's labours that I had a mind to see the author personally and know all about his work I had therefore, promised myself this pilgrimage during my visit to Calcutta for the Congress It was only on my way to the Khadi Pratishthan at Sodepur that I was able to carry out my promise I was amply rewarded, I took the author by surprise for I had made no appointment I found him seated on his bed in a practically unfurnished and quite unpretentious room There were no chairs, There was just by his beside a cupboard full of books and behind a small desk He offered me a seat on his bed and I sat instead on a stool near it He is a martyr to Asthma of which he showed ample signs during my brief stay with him "I feel better when I talk to visitors and forget my disease for the moment When you leave me, I shall suffer more" said Srijut Vasu, This is a summary description he gave me of his enterprise 'I was 19 when I began my Bengali Cyclopædia I finished the last volume when I was 45 It was a great success There was a demand for a Hindi edition The late Justice Sarada Charan Mitra suggested that I should myself publish it I began my labours when I was 47, and am now 63 It will take three years more to finish this work, If I do not get more subscribers or other help, I stand to lose Rs 25,000 at the present moment But I do not mind I have faith that when I come to the end of my resources God will send me help These labours of mine are my Sādhanā I worship God through them I live for my work" There was no despondency about Srijut Vasu, but a robust faith in his mission I was thankful for this pilgrimage, which I should never have missed As I was talking to him I could not but recall Doctor Murray's labours on his great work I am not sure who is the greater of the two I do not know enough of either But why any comparison between giants ? Enough for us to know that nations are made from such giants". The address of the printing works behind which the author lives is 9, Vishvakosha Lane, Bagh-bazar Calcutta'

M K GANDHI

("Young India", dated 10th January, 1929)

সচিত্র

বিশ্বকোষ

মানচিত্রসহ

২২ ভাগে সম্পূর্ণ, নানা চিত্র ও মানচিত্র সংবলিত, এই সুবৃহৎ বৃটেনিকার আকারে মুদ্রিত অভিধানের মূল্য এক্ষণে কাপড়ের বাঁধাই ৩০৮৲ টাকা রাখা হইয়াছে। ২ সেট্ মাত্র মজুত আছে। ইহার পরিচয় বাঙ্গালী মাত্রেই বিদিত আছেন।

(প্রাচ্যবিদ্যামহার্ণব নগেন্দ্রনাথ বসু-বিরচিত)

বঙ্গের জাতীয় ইতিহাস

১। **ব্রাহ্মণকাণ্ড—১মাংশ** (রাঢ়ীয়) (২য় সংস্করণ) বহুতর কুলগ্রন্থ, ইতিহাস, শিলালিপি ও তাম্রশাসনসাহায্যে লিখিত হইয়াছে, যাহা ইতিপূর্ব্বে কোন গ্রন্থে প্রকাশিত হয় নাই। রাঢ়ীয় ব্রাহ্মণসমাজের বিস্তৃত বংশপরিচয়মূলক গ্রন্থ। মূল্য দুই টাকা মাত্র।

২। **ব্রাহ্মণকাণ্ড—২য় অংশ,** প্রথমাংশের ন্যায় প্রাচীন শিলালিপি, ইতিহাস, কুলগ্রন্থ প্রভৃতির সাহায্যে বারেন্দ্র ব্রাহ্মণ সমাজের বিস্তৃত ইতিহাস লিপিবদ্ধ হইয়াছে। মূল্য ২॥০, কাপড়ে বাঁধাই ৩৲।

৩। **ব্রাহ্মণকাণ্ড—৩য় হইতে ৫ম অংশ,** এই খণ্ডের ৩য় অংশে পাশ্চাত্য বৈদিক, ও দাক্ষিণাত্য বৈদিক সমাজের বিস্তৃত ইতিহাস, ৪র্থ অংশে শাকদ্বীপী বা আচার্য্যব্রাহ্মণগণের বিস্তৃত সামাজিক ও ঐতিহাসিক বিবরণ এবং ৫ম অংশে বঙ্গের জিঝোতিয়া ব্রাহ্মণ সমাজের ইতিবৃত্ত সবিস্তার বর্ণিত হইয়াছে। মূল্য ২॥০ টাকা। নিঃশেষ হইয়াছে।

৪। **ব্রাহ্মণকাণ্ড—ষষ্ঠ অংশ** (পীরালি ব্রাহ্মণ বিবরণ) এই অংশে রাঢ়ীয় ব্রাহ্মণসমাজের বিবরণ, বিশেষতঃ পীরালি ব্রাহ্মণ-সমাজের বিস্তৃত ইতিহাস বিবৃত হইয়াছে। মূল্য ২॥০ টাকা।

৫। **রাজন্যকাণ্ড** বা **কায়স্থকাণ্ডের প্রথমাংশ,** এই অংশে গৌড়ীয় রাজন্যবর্গের তথা কায়স্থ-সমাজের ২০০০ বর্ষের প্রাচীন ধারাবাহিক ইতিহাস প্রমাণ প্রয়োগসহ বিবৃত হইয়াছে। মূল্য ২॥০ টাকা, কাপড়ে বাঁধাই ৩৲।

৬। **কায়স্থকাণ্ডের দ্বিতীয়াংশ** এই অংশে বারেন্দ্র কায়স্থসমাজের দেড় হাজার বর্ষের ইতিহাস লিপিবদ্ধ হইয়াছে। মূল্য ২॥০ টাকা। কাপড়ে বাঁধাই ৩৲।

৭-৯। **কায়স্থকাণ্ডের ৩য়, ৪র্থ ও ৫ম অংশ**—উত্তররাঢ়ীয় কায়স্থ সমাজের হাজার বর্ষের ইতিহাস—প্রাচীন কুলগ্রন্থ ও ইতিহাস সাহায্যে লিখিত হইয়াছে। প্রতি অংশ ২॥০, কাপড়ে বাঁধাই ৩৲।

১০। **বৈশ্যকাণ্ড, ১মাংশ,**—ভারতীয় বৈশ্য বণিক্‌সমাজের ৫হাজার বর্ষের ইতিহাস। বৈদিক, পৌরাণিক ও সামাজিক ইতিবৃত্ত ও বণিক্‌সমাজের পুরাবৃত্ত। ৩য় সংস্করণ, ১ম সংস্করণ অপেক্ষা আকারে অনেক বড়, মূল্য পূর্ব্ববৎ। কাগজের মলাট ২৲ টাকা।

১১। **কায়স্থের বর্ণনির্ণয়, ৪র্থ সংস্করণ**—এই গ্রন্থে ভারতের যাবতীয় কায়স্থ সমাজের বিভিন্নশাখা ও শ্রেণীর উৎপত্তি, বিস্তৃতি, সামাজিক ও রাজনীতিক ইতিহাস এবং বর্ণনির্ণয়, বেদাদি প্রাচীন সংস্কৃত শাস্ত্র, শিলালিপি, তাম্রশাসন, ইতিহাস ও কুলগ্রন্থ সাহায্যে লিপিবদ্ধ হইয়াছে। মূল্য ১॥০।

১২। মিশ্রবংশ—ধ্রুবানন্দ মিশ্র প্রণীত রাঢ়ীয় ব্রাহ্মণসমাজের সর্ব্বপ্রধান ও প্রাচীন কুলগ্রন্থ, শ্রীনগেন্দ্রনাথ বসু সম্পাদিত। মূল্য ১৲।

☞ প্রাপ্তিস্থান—৮ ও ৯ নং বিশ্বকোষ লেন, বাগবাজার, কলিকাতা।

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF
MAYURABHANJA.

Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson Dr. Sylvain Levi M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr Thomas of India Office Dr. L. D. Burnett of the British Museum, Dr. E Hultzch and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it

Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100
large plates of inscriptions, grants, ancient temples ruins
and figures of Hindu, Buddhist and Jaina gods
and goddesses with their identification
from the authoritative
scriptures of various
sects

Price Rs. 15|-, for students half price

CONTENTS

Introduction (with history of different sects) :— 1. General Remarks, 2 Saura or the early Scythic Influence, 3. Saiva Influence, 4. Serpent-worship, 5 Early Vaishnava Influence, 6 Jaina Influence, 7. Influence of Early Buddhism, 8. Sakta cult, 9. Hindu-Sakta Influence, 10 Mahayana or Buddhist Tantrika Influence, 12. Later Vaishnava Influence, 13. Modern Buddhism and its followers in Orissa (traced from the 1st century down to the 19th Century A. D.) with full page illustrations of the Gods, Goddesses and Saints of the different sects.

The **Report** embodies the antiquity and Archaeological history of 45 different places, with views of beautiful temples, ruins and relics

Readings and notices of 6 Bhanja plates, 2 Tunga plates and 1 Saulkika plate with their original facsimile is given

ABSTRACT OF LETTERS FROM SAVANTS.

1 *From* Sir, G. A, Grierson K. C I. E, Author of Linguistic Survey. 3. 10 11

Very many thanks for the copy of the Archaeological Report of Mayurabhanja, which safely reached me a day or two ago * * * * Your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India.

2. *From* Vincent A. Smith I. C S (retired) (6. 10. 11)

I am in receipt of your handsome and valuable Vol. I of the Mayurabhanja Archæological Survey.

I am also carrying through the Clarendon Press, Oxford, my big book A history of Fine Arts in India and Ceylon. If I had had your book earlier, I should have made it in text. Now I can only cite it in a *Addendum* and will do so.

I see through it of fine valuable material for the history of the Orissian Schools of sculpture and painting (See Taranath and my book).

Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit and Oriya works gives it special authority.

In time I hope to write some articles in the Indian Antiquary based on it

3. *From* Dr. E Hultzsch, Late Epigraphist to the Govt of India (13. 12. 11)

Your discoveries are indeed very instructing to the epigraphist and archæologist, and the way in which you have made them generally accessible by lucid description, systematic arrangement and a hundred photographic plates deserves the highest praise What attracts me most, are the copper-plate inscription, and the Jain and Buddhist remains I shall often consult your volume in connection with my special works

4 *From* Dr. J. F. Fleet, C I. E (5. 3 12.)

I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India I congratulate you on having made so good a start and feel sure that you will give us hereafter still other excellent materials in the same line, if you carry out your resolve to always do your level best, that is a determaintion which is calculated to lead on to success in any line whatsoever

5 *From* Dr. L. D. Burnett of British Museum

14 1,12.

Having now read through your Archæological Survey of Mayurabhanja I write to thank you for much pleasure and valuable information I was particularly impressed by the masterly survey of the history of Buddhism in your district. I had never before realised how strong was the under-current of Mahayana in the earlier Vaisnava poets of Bengal and I was much struck by your exposition, which should necessitate a considerable modification in our histories of Indian literature

6. *From* Dr F. W. Thomas of india Office.

(*Oct 6 1911*)

Pray accept my cordial thanks for your kindness in sending me a copy of your Archæological Report on *Mayurabhanja* The remains of Buddhism will attract the attention of many scholars I am myself also much interested by your remarks concerning the Magas or Bhojas, though your chronological suggestions seem to require a further consideration I should also like to express my appreciat on of the use which you make of the *Silpa Sastras* in identifying figures and scenes

7. *From* Dr. M. A Stein, (*27th Oct 1911.*)

Let me thank you very heartily for your letter of the 14th sept and for a copy of your valuable "Archæological Report of Mayurabhanja". It is an example deserving of every praise, I am very glad that the Chief's enlightened interest has been rewarded by such painstaking scholarly work as you have been able to bestow on the remains of Mayurabhanja

8. *From* Dr. Sten Konow, *Skoen, (near) Kristiania*

28 10 11

Many thanks for kindly sending me your beautiful volume on Mayurabhanja Archæology which does much honour to yourself and to the enlightened head of the State Be sure I shall follow your work with the greatest interest

9. *From* Mon. Sylvain Levi

I have only received your beautiful Report of Mayurabhanja * * After Easter, I begin to be at ease a little more and further to review the books I take interest in You may be sure that your report I shall be one of the first to retain my attentions it looks so full of new and useful informations * * * assure you, that you will read an account of it in our Journal Asiatique about end of this year.

10. *Form* Rai V. Venkayya Bahadur, Epigraphist to the Govt. of India.

(*11th October, 1911.*)

The book seems to be full of interesting matters I expect your Chapter I will be very useful to me, as I have to deal incidentally with Hindu iconography in one of the volumes of South Indian Inscriptions which I am now editing

11. *From* Rai Sarat Chandra Das Bahadur

C I E. (*10 10 1911.*)

Accept my best thanks for your kind letter and the present of your new work the Archæological Survey of Mayurabhanja In my lecture 'The origin of castes' I accounted myself of the opportunity of acknowledging your excellent work before the learned public

Extract from his Speech —

"This book has supplied me with materials for verifying many obscure points of Buddhist Tantrikism which I had noticed during my travels in Tibet and particularly when I lay in the famous monastery of Samding on lake Palti * * The reputed incarnation of the goddess Vajra Varahi, the chief of the Buddhist Vajra Yoginis adored in Tibet The image of this goddess as occur in Tibetan Tantrika ritual finds a place in this book together with its description in Sanskrit" 7 10 11

12 *From* Hon. Justice J. Woodroffe.

(*Sept, 7, 1911*)

I Write to thank you for your kind gift of the first volume of your work on the Mayurabhanja Archæological Survey *** As you very rightly say it is necessary to study the Iconography of each of the sects, *** Orissa is a mine of research and I hope you will continue with yours

Thanking you again for the book which I shall greatly value

13. *From* Mr. Sarada Charan Mitra M A B. L Ex-Judge, High Court,

(*The 22nd October 1911*)

Your Archæolgical Survey of Mayurabhanja, Vol. I is a splendid production, it is a survey of the whole of India, especially Bengal and Orissa, and your historical researches as to Buddhism are original.

14. From Dr, H Kern

Utrecht, Jan 15th 1911

As I have promised you, I shall not fail to give a review of Vol I of your Archæological Survey of Mayurabhanja Your work deserves more than a short notice in a daily paper or any journal for common readers, Hence my review will appear in a more scientific journal,—*viz* —the by'dragen of the royal Institute for the philology and ethnology of Netherlandes India, which regularly appears four times a year I hope that my review will be published next summer

15. *From* The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland *March 23, 1912,*

"Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the chapter on Buddhism

Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe, on whose ethnology he gives some valuable data. He then quotes from the poems of the six great Vaishnava Dasas of Orissa, Achyutananda, Balarama, Ananta, Jagannatha, Yasovanta, and Chaitanya, as well other writers, which all abound in echoes of the Buddhist *Sunya-vada*, and after various cognate investigations concludes with a full account of Bhima Bhoi's modern Mahima dharma, in which Buddha figures as an avatar of the Absolute, Alekha, and is identified with Jagannatha.

In concluding this brief notice of this veritable ratnakara of learning, we may add that it is illustrated by numerous plates. Most of these are from photographs; a few, however, are from sketches, which are not all that could be desired

L D BURNETT

THE
Modern Buddhism
and its FOLLOWERS IN ORISSA

BY **Nagendra Nath Vasu** M R A S

with an introduction by

Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M A., C I E

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. Price—Rs. 3|-

Dr L Burnett of the British Museum writes —

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room "

Dr. H. Kern, the great Buddhist-scholar writes —

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

THE SOCIAL HISTORY OF
KAMARUPA.

Vol 1 & 2. The price Rs. 5|- for each Vol. For students half price.

By **Nagendra Nath Vasu**, Prachyavidyamaharnava etc etc

Vol 1. CONTENTS—1 Kámarupas claims to historical recognition, 2 The Phoenicians in Eastern India, 3 The Vedic Aryan Influence, 4 Lohitic and the Mongolian Influence, 5 Dravidian Influence, 6 Kimmerian Influence, 7 Assyrian influence, 8 History of Mlechcha dynasty (from 3000. B C to 1075 A. D. 9 Rise of Káyasthas in Kamarup, 10 Kayastha Nága, Dása, Ghosh and Deva dynasties in Assam 11 Bhâskara dynasty and 12, The Adi-Bhuiyas in upper Assam

Vol 2 CONTENTS—1 The Baro-Bhuiyas in Assam, 2 Down fall of the Baro Bhuiyas and Rise of the Mech power, 3 Mech Rule and Social Reform in Kamrup 4 Rise of Vaishnavism in Assam, 5 Life and teachings of Sankaradeva, the great religious reformer, 6 Spread of Vaishnavism or Sankara-cult in Assam, 7 the Damodaria Sect, 8, the Bamunia Sect 9 the Moamariá or Mataka Sect 10 Brief History of Gauripur Raj, 11. up-to date genealogial tables of Baro Bhuiyas, 12 complete genealogical tables of the Gauripur Raj-family and prominent members of the Mahapurushiya Sect

1. From **Dr. F Ph Vogel**, Leiden, Holland (19-6-24)

"It is no doubt a valuable contribution to our knowledge of the history of Assam, especially as regards the later part of your work "

2 From **A H Sayce**, the great British Orientalist, Queen's College Oxford (12-6-24)

"As you may suppose the parts of it relating to the early connections of India with Babylonia have a special interest for me, We now know that the Sumerians, like the early Egyptians, traded with the south of Arabia and consequently must have had sea-going ships , hence there is no reason why they or the ancestors of the Phoenicians should not have made their way to the Indian coast"

3 From E I Rapson, 8 Mortimer Road, Cambridge (14-4-24)

"The work will be valuable, in my opinion, as placing record in a convenient form many interesting facts about the history and enthology of Assam,"

4 From Mr Hem Chandra Goswami, Extra Assistant Commissioner, Jorhat, Assam, (18-3 23),

"As you know, I have devoted my whole life in the Research work in Assam and I say without the least exaggeration that the spirit of Research shown by you in this book simply amazes me—I can assert without any fear of contradiction that no writers in the past have brought to light so much matter about the ancient History of this ancient country of "Hallowed memory" as you say I am sincerely of opinion that by writing this book you have added a new feather to the crown of glory, which already adorns your head "

नहीं है। हिन्दीकी आधुनिक रहस्यवादकी कवितामें थोडी वहुत सांप्रदायिकता अवश्य घुस आई है। इस आधुनिक रहस्यवादके उत्पादनमें हिन्दी कवियोंको श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी रचनाओंसे वहुत प्रेरणा मिली है। छायावादकी कवितामें सवसे खटकनेवाली वात उसके भावोंकी अप्रासादकता है। इस संसारके उस पार जो जीवन है उसका रहस्य जान लेना सवके लिये सुगम नहीं है। दार्शनिक सिद्धांतोंकी अनुभूति भी सवका काम नहीं है। यह मान लेना कि जो सुगमतासे दूसरोंकी समझमें न आ सकें अथवा जिसमें विभिन्न या विपरीत भावोंके द्योतक शब्दोंका साहचर्य स्थापित किया जाय ऐसी कविता ही प्रतिभाकी एकमात्र द्योतक है, कहाँ तक अनुचित या असंभव है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इस समय वहुत सी ऐसी रचनायें हो रही है जो इन दोषोंसे मुक्त नहीं कही जा सकतीं। छायावादके सम्वन्धमें एक वात और भी है जिससे पुरानी शैलीवाले आशंकित हो उठे हैं। वह यह है, कि कई छायावादियोंने छन्दों और भाषा दोनों ही के साथ वहुत अधिक स्वतन्त्रता लेना प्रारम्भ किया है। पर इन सव वातोंसे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो एक प्रकारके प्रयोग हो रहे हैं। इसमें जो कुछ सत्य है और नित्य होगा वह स्थायी रूप ग्रहण कर लेगा, शेष अन्य सव वातें अपने आप ही नष्ट हो जायंगी। समयके प्रभाव और विद्याके प्रसारसे जव यह प्रवाह संयत प्रणालियोंमें चलने लगेगा तव हिन्दी कविताका नया विकास वडा ही मनोरम होगा।

छायावादके कवि—यहां पर यह कह देना भी वहुत आवश्यक जान पडता है, कि हिंदीके रहस्यवादी कवियोंमें जिनकी गणना होती है, वे सवके सव रहस्यवादी नहीं हैं। उनमेंसे कुछने तो रहस्यवादकी एक भी कविता नहीं लिखी। अंगरेजी लीरिक कविताके ढंग पर रचना करनेवाले कितने ही नवीन कवि रहस्यवादी कहलाने लगे हैं। वावू जयशंकर प्रसाद कुछ पहलेसे ही रहस्यवादकी रचनाएं करने लगे थे। उनकी कवितामें सूफी कवियोंका ढंग अधिकतर पाया जाता है, यद्यपि अंगरेजी कविताकी पालिश भी उनमें कम नहीं है। प्रसादजीने संस्कृत साहित्यका भी अच्छा अध्ययन किया है और इनकी कविताकी भाषा संस्कृतप्रधान होती है। भारतीय अद्वैतवादको लेकर काव्यक्षेत्रमें आनेवाले कवियोंमें पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी मुख्य हैं। उन्होंने तथा पंडित सुमित्रानंदन पंतने पश्चिमीय शैलीका अधिक प्रश्रय लिया है और रवींद्रनाथकी भांति वैष्णव कविताकी भी सहायता ली है। सामूहिक दृष्टिसे देखते हुए छायावादियोंमें श्री सुमित्रानन्दन पन्तकी रचनायें सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके भावोंकी उडान वहुत ऊंची है। उनकी भाषा संस्कृतवहुल होती है, परन्तु यह निश्चय रूपसे कहा जा सकता है, कि उनकी रचनाओंमें खडी वोली वहुत कुछ कोमल हो कर आई है। इनके अतिरिक्त श्रीरामकुमार 'कुमार' और पंडित मोहनलाल महतोकी रचनाओंमें भी रहस्यवादकी छाप है। रवींद्रनाथको काव्यगुरु स्वीकार करनेवाले ये ही हैं, यद्यपि रवींद्रकी कविताकी थोडी वहुत नकल सवने की है।

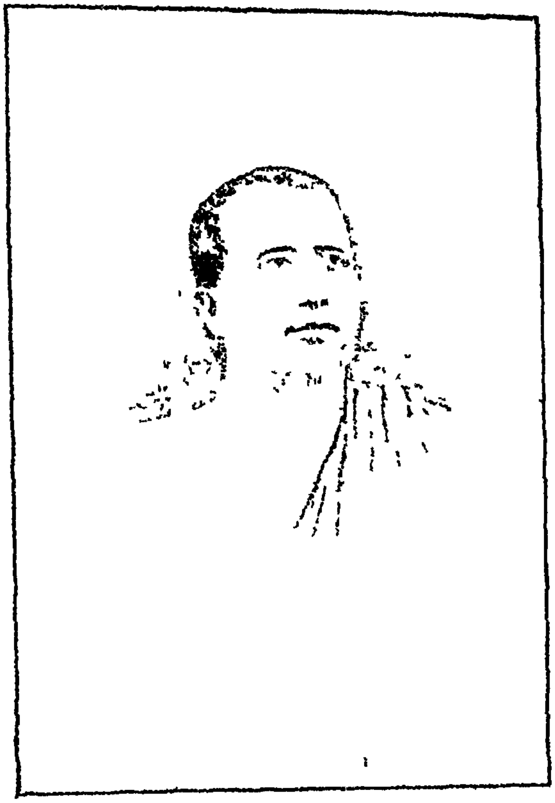

जयशंकर प्रसाद।

हिंदी कविताका भविष्य—अब तककी कविताका ऊपर जो विवरण दिया गया है, उससे यह तो प्रकट होता है, कि कविताकी अनेकमुखी प्रगति इस युगमें हो रही है, पर साथ ही यह भी प्रकट होता है कि विशेष अंतर्दृष्टिसंपन्न महाकवियोंका अभ्युदय अब तक नहीं हुआ है। यह युग हिंदीके सर्वतोमुख विकासका है। पश्चिमीय शैलियोंका ग्रहण इस युगकी प्रधान विशेषता है। साहित्यके प्रत्येक क्षेत्रमें प्रगति हो रही है। फिर भी अब तक परिवर्तनका ही युग चल रहा है। परिवर्तनके युगमें जीवनकी महान् और चिरकालीन भावनाओंको ले कर काव्यरचना करना प्रायः असंभव होता है। साहित्यकारोंका लक्ष्य जब तक परिवर्तनकी ओरसे हट कर जीवनकी ओर नहीं जाता, तब तक उत्कृष्ट साहित्यकी सृष्टि नहीं हो सकती। परन्तु इस समय देशकी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति भी अच्छी नहीं है। प्रतिभाशाली अनेक व्यक्ति साहित्यक्षेत्रसे अलग काम करते हैं। अब तक साहित्य जीवनकी गहनताके बाहरका दिखलाऊ नंदन निकुंज बना हुआ है। इसलिये सच्चे कर्मनिष्ठ उस ओरसे विरक्त रहते हैं। साहित्यके लिये यह दुर्भाग्यकी बात है। रूस और फ्रांसके उत्कृष्ट साहित्यकार प्रबल क्रांतियोंके भीतरसे उत्पन्न हुए थे, तमाशा देखनेवालोंके अंदरसे नहीं। भारतमें भी क्रांतिका वैसा-ही युग आया हुआ है। आशा की जाती है कि निकट भविष्यमें ही इस सर्वतोव्याप्त हलचलके बीचमें किसी दिव्यात्माका उदय होगा जिससे हिंदी कविताकी कल्याणसाधना होगी और जिससे अखिल भारतीय जनसमाजको श्रेयमार्ग मिलेगा।

गद्य-प्रवाह

आधुनिक युगकी सबसे बड़ी विशेषता है खड़ी बोलीमें गद्यका विकास। इस भाषाका इतिहास बड़ा ही रोचक है। यह भाषा मेरठके चारों ओरके प्रदेशमें बोली जाती है और पहले वहीं तक इसके प्रचारकी सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। पर जब मुसलमान इस देशमें बस गये और उन्होंने यहां अपना राज्य स्थापित कर लिया, तब दिल्लीमें मुसलमानी शासनका केंद्र होनेके कारण विशेष रूपसे उन्होंने उसी प्रदेशकी भाषा खड़ी बोलीको अपनाया। यह कार्य एक दिनमें नहीं हुआ। अरब, पारस और तुर्किस्तानसे आए हुए सिपाहियोंको यहां वालोंसे बातचीत करनेमें पहले बड़ी कठिनता होती थी। न वे उनकी अरबी पारसी समझते थे और न वे इनकी हिंदवी। पर बिना वाग्व्यवहारके काम चलना असंभव था, अतः दोनोंने दोनोंके कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान प्रदानका मार्ग निकाला। यों मुसलमानोंकी उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी जिसमें दाल चावल सब खड़ी बोलीके थे, सिर्फ नमक आगंतुकोंने मिलाया। आरंभमें तो वह निरी बाजारू बोली थी, पर धीरे धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानोंको यहांकी भाषाके ढांचेका ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ स्थिर हो चला। जहां पहले शुद्ध अशुद्ध बोलनेवालोंसे सही गलत बोलवानेके लिये शाहजहांको "शुद्धौ सहीह इत्युक्तौ ह्यशुद्धो गलतः स्मृतः" का प्रचार करना पड़ा था, वहां अब इसकी कृपासे लोगोंके मुंहसे शुद्ध अशुद्ध न निकल कर सही गलत निकला करता है। आजकल जैसे अङ्गरेजी पढ़े लिखे भी अपने नौकरसे एक ग्लास पानी न मांग कर एक गिलास ही मांगते हैं, वैसे उस समय मुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध-सौकर्यके अनुरोधसे वे लोग अपने औजबेकका उजबक, कुतका का कोतका कर लेने देते और स्वयं करते थे, पर ये लोग बेरहमन सुन कर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिन्दी, बुंदेलखंडी हिंदी, पंडिताऊ हिंदी और बाबू इंगलिशकी तरह यह उस समय उर्दू हिंदी कहलाती थी, पर पीछे भेदक उर्दू शब्द स्वयं भेद्य बन कर उसी प्रकार उस भाषाके लिये प्रयुक्त होने लगा जिस तरह संस्कृत वाक्‌के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानोंने अपनी संस्कृतिके प्रचारका सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषाको खूब उन्नत किया और जहां जहां फैलते गए, वे इसे अपने साथ लेते गए। उन्होंने इसमें केवल पारसिक तथा अरबीके शब्दोंकी ही उनके शुद्धरूपमें अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी पारसी अरबी व्याकरणका रंग चढ़ाया। इस अवस्थामें इसके दो रूप हो गए, एक तो हिन्दी कहलाता

रहा और दूसरा उर्दू नामसे प्रसिद्ध हुआ। दोनोंके प्रचलित शब्दोंको ग्रहण करके पर व्याकरणका संघटन हिन्दीके ही अनुसार रख कर, अंगरेज़ोंने इसका एक तीसरा रूप हिन्दुस्तानी बनाया। अतएव इस समय खड़ी बोलीके तीन रूप वर्त्तमान हैं—(१) शुद्ध हिन्दी जो हिन्दुओंकी साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिन्दुओंमें है, (२) उर्दू जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानोंमें है और जो उनके साहित्यकी और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिन्दुओंकी घरके बाहरकी बोलचालकी भाषा है और (३) हिन्दुस्तानी जिसमें साधारणतः हिन्दी उर्दू दोनोंके शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका बहुतसे लोग बोलचालमें व्यवहार करते हैं। इसमें अभी साहित्यकी रचना बहुत कम हुई है। इस तीसरे रूपके मूलमें राजनीतिक कारण हैं।

भ्रमवश हिन्दीमें खड़ी बोली गद्यके जन्मदाता लल्लूजी लाल माने जाते हैं। यह भ्रम उन अंगरेजोंके कारण फैला है जो अपने आनेके पहले गद्यका अस्तित्व हिन्दीमें स्वीकार ही नहीं करते। परन्तु यह बात असत्य है। अकबर बादशाहके यहां संवत् १६२० के लगभग गंग भाट था। "उसने चंद छंद बरननकी महिमा" खड़ी बोलीके गद्यमें लिखी है। उसके पहलेका कोई प्रामाणिक गद्य लेख न मिलनेके कारण उसे खड़ी बोलीका प्रथम गद्यलेखक मानना चाहिए। इसी प्रकार १६८० में जटमलने "गोरा बादलकी कथा" भी इसी भाषाके तत्कालीन गद्यमें लिखी है। लल्लूजी लाल हिन्दीगद्यको आधुनिक रूप देनेवाले भी नहीं हैं। उनके और पहलेका मुंशी सदासुखका किया हुआ भागवतका हिन्दी अनुवाद 'सुखसागर' वर्त्तमान है। इसके अनंतर इंशाउल्ला खाँ, लल्लूजी लाल तथा सदल मिश्रका समय आता है। इंशाउल्ला खाँकी रचनामें शुद्ध तद्भव शब्दोंका प्रयोग है। उनकी भाषा सरल और सुन्दर है पर वाक्योंकी रचना उर्दू ढंगकी है। इसीलिये कुछ लोग उसे हिन्दीका नमूना न मान कर उर्दूका पुराना नमूना मानते हैं। लल्लूजी लालके 'प्रेमसागर'से सदल मिश्रके 'नासिकेतोपाख्यान'की भाषा अधिक पुष्ट और सुन्दर है। 'प्रेमसागर'में भिन्न-भिन्न प्रयोगोंके रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। करि, करिकै, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय करिके, बुलाय कर, आदि अनेक रूप अधिकतासे मिलते हैं। सदल मिश्रमें यह बात नहीं है। सारांश यह है, कि यद्यपि फोर्टविलियम कालेजके अधिकारियों, विशेषकर डाक्टर गिलक्रिस्टकी कृपासे हिन्दी गद्यका प्रचार बढ़ा और उसका भावी मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यवस्थित हो गया, पर लल्लूजी लाल उसके जन्मदाता नहीं थे। जिस प्रकार मुसलमानोंकी कृपासे हिंदीका प्रचार और प्रसार बढ़ा, उसी प्रकार अंगरेजोंकी कृपासे हिन्दी गद्यका रूप परिमार्जित और स्थिर हो कर हिन्दी साहित्यमें एक नया युग उपस्थित करनेका मूल आधार अथवा प्रधान कारण हुआ।

उपर्युक्त चार लेखकों ने हिंदीकी पहले पहल प्रतिष्ठा की और उसमें ग्रंथरचनाकी चेष्टा की। इनमें मुंशी सदासुख और सदलमिश्रकी भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमें सदासुखको अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले भी हुए और इन्होंने कुछ अधिक साधु भाषाका व्यवहार भी किया। इनके उपरान्त विदेशोंसे आई हुई क्रिश्चियन मतका प्रचार करनेवाली धर्मसंस्थाओं अथवा मिशनोंने हिंदीमें अपने कुछ धर्मग्रंथों, विशेषकर बाइबिलका अनुवाद किया। बाइबिलका अनुवाद भाषाकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह देशके विस्तृत भू-भागमें फैली हुई खड़ी बोलीकी सामान्यतः साधु भाषामें किया गया है। शासक अंगरेजोंने मुसलमानोंकी उर्दूको कचहरियोंमें जगह दी थी, पर धर्मप्रचारक मिशनरी यह भलीभाँति जानते थे, कि उर्दू यहांके जनसमाजकी भाषा कदापि नहीं; इसीलिये बाइबिलका अनुवाद शुद्ध हिन्दीमें हुआ था। उर्दूपन उससे बहुत दूर रखा गया। उसकी भाषाका रूप सदासुख और लल्लूजी लालकी ही भाँति है, पर विदेशीय रचनाशैलीके कारण थोड़ा बहुत अंतर अवश्य देख पड़ता है। लल्लूजी लालकी भाषामें ब्रजकी बोली मिली हुई है, पर उपर्युक्त अनुवाद ग्रंथोंमें उसका बहिष्कार कर मानो खड़ी बोलीके आगामी प्रसारकी पूर्ण सूचना सी दी गई है। जब ईसाइयोंकी धर्म-पुस्तकें निकल रही थीं तब छापनेकी कल इस देशमें आ चुकी

थी, जिससे पुस्तकोंके प्रचारमें बड़ी सहायता मिली।

छापेखानोंके फैल जाने पर हिन्दीकी पुस्तकें शीघ्रतासे बढ़ चलीं। इसी समय सरकारी अंगरेजी स्कूल भी खुले और उनमें हिंदी उर्दूका झगड़ा खड़ा किया गया। मुसलमानोंकी ओरसे सरकारको यह समझाया गया कि उर्दूको छोड़ कर दूसरी भाषा संयुक्त प्रांतमें है ही नहीं। कचहरियोंमें उर्दूका प्रयोग होता है, मदरसोंमें भी होना चाहिए। परंतु सत्यका तिरस्कार बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता। देवनागरी लिपिकी सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अंगरेजोंकी दृष्टिमें आ चुका था। लिपिके विचारसे उर्दूकी क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखोंके सामने आती जा रही थी। परंतु नीतिके लिये सब कुछ किया जा सकता है। अंगरेज समझ कर भी नहीं समझना चाहते थे। इसी समय युक्त प्रांतमें स्कूलोंके इंस्पेक्टर हिन्दीके पक्षपाती काशीके राजा शिवप्रसाद नियुक्त किए गये। राजा साहबके प्रयत्नसे देवनागरीलिपि स्वीकार की गई और स्कूलोंमें हिन्दीको स्थान मिला। राजा साहबने अपने अनेक परिचित मित्रोंसे पुस्तकें लिखवाईं और स्वयं भी लिखीं। उनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकोंमें अच्छी हिन्दी मिलती है, पर अधिकांशमें उर्दूप्रधान भाषा ही उन्होंने लिखी। ऐसा उन्होंने समय और नीतिको देखते हुए अच्छा ही किया।

राजा शिवप्रसाद

इनकी रची हुई पुस्तकोंकी नामावली यह है—वर्णमाला, बालबोध, विद्यांकुर, वामामनरंजन हिन्दी व्याकरण, भूगोल हस्तामलक, छोटा हस्तामलक भूगोल, इतिहास-तिमिर-नाशक, गुटका, मानवधर्मसार, सैंडफोर्ड ऐंड मारटिंस स्टोरी, सिखोंका उदय और अस्त, स्वयंबोध उर्दू, अंगरेजी अक्षरोंके सीखनेका उपाय, राजा भोजका सपना और वीरसिंहका वृत्तान्त। इन ग्रन्थोंमेंसे कई संग्रहमात्र हैं और अधिकतर राजा साहबके ही बनाये हैं। राजा साहबकी भाषा वर्त्तमान भाषासे बहुत मिलती है, केवल वह साधारण बोलचालकी ओर अधिक झुकती है और उसमें उर्दू शब्दोंका भी कुछ आधिक्य है। इन्होंने कुछ छन्द भी बनाये हैं, पर विशेषतया गद्य ही लिखा है। ये जैनधर्मावलम्बी थे। इनका जन्म संवत् १८८० में और स्वर्गवास १९५२में हुआ।

इसी समयके लगभग हिन्दीमें संस्कृतके शकुंतला नाटक आदिका अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मणसिंह हुए।

ये आगराके रहनेवाले थे। इनका कविताकाल संवत् १९१६के इधर उधर है। ये संवत् १९१३में डेपुटी कलेक्टर नियत हुए और १९४६में इन्हें पेंशन मिली। संवत् १९२७में सरकारसे इन्हें राजाकी पदवी राजभक्तिके कारण मिली। इनका जन्म संवत् १८८३में हुआ और १९५३ में इनका स्वर्गवास हुआ। राजा साहबने पहले पहल खड़ी बोलीमें कालिदास कृत 'शकुन्तलानाटक' का अनुवाद गद्यमें करके संवत् १९१९में प्रकाशित किया। इस पुस्तकका हिन्दी रसिकोंमें बहुत बड़ा सम्मान हुआ। संवत् १९३२ में विलायतके प्रसिद्ध हिंदीप्रेमी फ्रेडरिक पिनकाट महाशयने इसे इंगलिस्तानमें छपवाया। इस पुस्तकको इँगलेंडमें यहां तक आदर मिला कि यह इण्डियन सिविलसर्विसकी परीक्षापुस्तकोंमें सम्मिलित की गई। संवत् १९३४में राजा साहबने रघुवंशका

अनुवाद गद्यमें मूल श्लोकोंके साथ प्रकाशित किया। यह एक बहुत बड़ी पुस्तक है। संवत् १९३८ में इन महाशयने प्रसिद्ध मेघदूतके पूर्वार्द्ध का पद्यानुवाद छपवाया और संवत् १९४० में उसके उत्तरार्द्ध का भी अनुवाद प्रकाशित करके ग्रन्थ पूर्ण कर दिया।

राजा लक्ष्मणसिंह

यह ग्रन्थ चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी, सवैया, छप्पै, कुण्डलिया और घनाक्षरी छन्दोंमें बनाया गया है, जिनमें भी सवैया और घनाक्षरी अधिक हैं। इन्होंने दोहे, सोरठा और चौपाइयोंमें तुलसीदासकी भाषा रक्खी है और शेष छन्दोंमें ब्रजभाषा। इनके गद्यमें भी दो चार स्थानों पर ब्रज भाषा मिल गई है, परंतु उसकी मात्रा बहुत ही कम है। इनकी भाषा मधुर एवं निर्दोष है, वर्त्तमान हिन्दी भाषाका प्रचार जब तक भारतवर्षमें रहेगा तब तक विद्वन्मण्डलीमें राजा साहबका नाम बड़े आदरके साथ लिया जायेगा।

गद्यके क्षेत्रमें भारतेंदु और उनके समकालीन—भारतेंदु हरिश्चंद्रके कार्यक्षेत्रमें आते ही हिंदीमें समुन्नति-का युग आया। अब तक तो खड़ी बोली गद्यका विकास होता रहा और पाठशालाओंके उपयुक्त छोटी छोटी पुस्तकें लिखी जाती रहीं, पर अब साहित्यके अनेक

पण्डित बालकृष्ण भट्ट

अंगों पर ध्यान दिया गया और उनमें पुस्तकरचनाका प्रयत्न किया गया। भारतेंदुने अपने बंगाल-भ्रमणके उपरांत बंगलाके नाटकोंका अनुवाद किया और मौलिक नाटकोंकी रचना की। कवितामें देशप्रेमके भावोंका प्रादुर्भाव हुआ। पत्र-पत्रिकाएं निकलीं। 'हरिश्चंद्र-मैग-जीन' और हरिचंद्र-पत्रिका' भारतेंदुजीके पत्र थे। छोटे छोटे निबंध भी लिखे जाने लगे। उनके लिखने वालोंमें हरिश्चंद्रके अतिरिक्त पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि थे।

भट्टजीका जन्म संवत् १९०१ में प्रयागमें हुआ था।

थे संस्कृतके अच्छे विद्वान् और भाषाके एक परम प्राचीन लेखक हैं। संवत् १९३४ में प्रयागसे हिन्दी-प्रदीप नामक एक सुन्दर मासिक पत्र प्रायः ३२ वर्ष तक निकलता रहा। भट्टजी उसके सदैव सम्पादक रहे। इनकी गद्यलेखन-पटुता एवं गम्भीरता सर्वतोभावेन सराहनीय है। कलिराजकी सभा, रेलका विकट खेल, बालविवाह नाटक, सौ अजानका एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी, आदि लेख इनके चमत्कारिक है। पद्मावती, शर्मिष्ठा और चन्द्रसेन नामक उत्तम नाटक ग्रन्थ भी भट्टजीने रचे हैं। नाटककारोंमें श्रीनिवासदास और राधाकृष्णदासका नाम उल्लेखयोग्य है। 'परीक्षागुरु' नामक एक अच्छा उपन्यास भी उस समय लिखा गया। आर्यसमाजके कार्यकर्ताओंमें स्वामी दयानंदके उपरान्त सबसे प्रसिद्ध पंडित भीमसेन शर्मा हुए जिन्होंने आर्यसमाजका अच्छा साहित्य तैयार किया। पंडित अंबिकादत्त व्यास भी उस कालके मौलिक लेखकोंमेंसे थे। अखबार नवीसों मे बाबू बालमुकुंद गुप्त सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए।

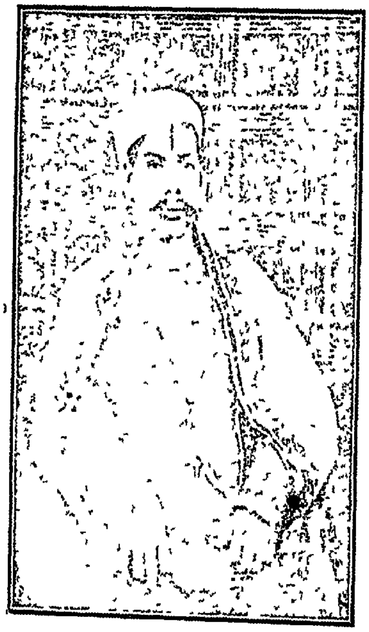

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास।

गुप्तजीका जन्म संवत् १९२२में रोहतक जिलेमें हुआ था। इनको हिन्दी लेखनसे सदैव बड़ी रुचि थी और इन्होने पत्रोंके सम्पादनसे ही अपनी जीविका भी चलाई। आपने सात वर्ष बङ्गवासीका सम्पादन किया और फिर भारतमित्रके आप जीवन पर्यन्त, सम्पादक रहे। आपने रत्नावली नाटिका, हरिदास, शिवशम्भुका चिट्ठा, स्फुट कविता, खेलौना आदि पुस्तकें भी रचीं। इनकी गद्य और पद्य रचनाओंमें मजाककी मात्रा खूब रहती थी और वे बड़ी मनोरंजक होती थी। होलीके संबंधमें ये टेसू आदि खूब मार्केके बनाते थे। इनका शिवशम्भुका चिट्ठा एक बड़ा ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। इनका स्वर्गवास संवत् १९६४ में हुआ।

बालमुकुन्द गुप्त

इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्यके विभिन्न अंगोंको ले कर बड़े ही उत्साहपूर्वक उनमें मौलिक रचनाएं करनेवाले हिंदीके ये उन्नायक बड़े ही शुभ अवसर पर उदय हुए थे। इनकी वाणीमें हिंदीके बाल्यकालकी झलक है, पर यौवनागमकी सूचना भी मिलती है। देशप्रेम और जातिप्रेमकी भावनाओंको

ले कर साहित्यक्षेत्रमें आनेके कारण इन सबकी रचनाएं हिंदीमें अपने ढंगकी अनोखी हुई हैं।

भारतेंदुकी नाटक-रचना शैलीमें भारतीय शैली और पाश्चात्य शैलीका सम्मिश्रण हुआ है। भारतीय शैलीके अंकों और गर्भांकों तथा विष्कंभक आदिको बदल कर बंगलाके ढंग पर अंक और दृश्यकी परिपाटी चली, पर संस्कृतके सूत्रधार नटी प्रस्तावना आदि ज्यों के त्यों बने रहे। चरित्रोंका चित्रण करनेमें भारतेंदुने संस्कृतके वर्गीकरणोंका अनुसरण किया, पात्रोंकी वैयक्तिक विशेषताओंकी ओर ध्यान नहीं दिया। यद्यपि उनके अनेक नाटक अनुवादित नाटक ही हैं और उनके मौलिक अधिकांश नाटकोंमें भी कथानकका निर्माण उन्हें नहीं करना पड़ा है, पर कुछ नाटकोंमें उन्होंने अपनी कथानक निर्माणकी शक्तिका अच्छा परिचय दिया है। 'सत्य हरिश्चंद्र'में सत्यका उच्च आदर्श दिखाया गया है। अन्य नाटकोंमें प्रेमकी पवित्र धारा बही है। भारतदुर्दशामें स्वदेशानुराग चमक उठा है। भारतेंदुकी परिमार्जित गद्य शैलीका व्यवहार उनके सभी नाटकोंमें देख पड़ता है, हाँ विषय और प्रसंगके अनुसार भाषा सरल अथवा जटिल हो गई है। लाला श्रीनिवासदासके 'रणधीर प्रेममोहिनी' 'संयोगिता स्वयंवर' आदि नाटक तथा बाबू राधाकृष्ण दासका 'महाराणा प्रताप नाटक' साहित्यिक दृष्टिसे अच्छे हैं, यद्यपि रंगशालाके उपयुक्त नहीं। प्रेमघनजीका 'भारतसौभाग्य' नाटक भी अच्छा है, पर बहुत बड़ा हो गया है। राय देवीप्रसाद पूर्णका 'चंद्रकला भानु कुमार' नाटक गद्य काव्यकी शैलीमें लिखी गई सुंदर कृति है।

नागरी प्रचारिणी सभा और सरस्वती—हिंदी साहित्यका यह विकास बड़ा ही आशाप्रद और उत्साहवर्द्धक था। थोड़े समयकी यह साहित्यिक प्रगति उस कालके मनोयोग और कृतिशीलताकी परिचायक हुई है। इस कालके उपरांत साहित्यके सभी अंगोंकी बड़ी सुंदर उन्नति हो चली और प्रत्येक क्षेत्रमें अच्छे अच्छे लेखकोंका अभ्युदय हुआ।

१९वीं शताब्दिके अंतिम दशाब्दमें साहित्यके सौभाग्यसे दो ऐसी बातें हुईं जिनसे हिंदी-साहित्य की अभिवृद्धिमें बड़ी सहायता पहुंची। इनमेंसे प्रथम है काशीकी 'नागरी-प्रचारिणी-सभा'की स्थापना और द्वितीय है प्रयागसे 'सरस्वती' मासिक पत्रिका प्रकाशन।

संवत् १९५० में काशीके कुछ उत्साही साहित्यिकोंने जिनमें राय साहब श्याम सुन्दर दास प्रमुख हैं, नागरी-प्रचारिणी-सभाको जन्म दिया। सभाका उद्देश्य नागरी लिपि तथा हिन्दी भाषाका प्रचार, प्रसार तथा उन्नति करना था। सभा अपने सदुद्देशमें पूर्ण सफल हुई और उसने हिन्दी भाषा और साहित्यकी जो सेवा की उस पर किसी भी संस्थाको गौरव हो सकता है। सभाने संयुक्त प्रान्तके न्यायालयोंमें हिन्दीको स्थान दिलाया, हिन्दीके प्राचीन ग्रंथोंका अनुसन्धान करके उन्हें प्रकाशित कराया, पारितोषिक दे कर उच्चकोटिके साहित्य-प्रकाशको प्रोत्साहन प्रदान किया; हिंदीमें विज्ञान सम्बन्धी शब्दोंकी रचना करके 'हिंदी वैज्ञानिक

राय साहब बाबू श्यामसुन्दर दास

कोश" निर्माण कराया और "हिंदी शब्द-सागर"के सदृश वृहत् और महत्त्वपूर्ण शब्दकोश बनवा कर प्रकाशित किया। इस प्रकार हिंदी-साहित्य-क्षेत्रके निर्माणका बहुत कुछ प्रारम्भिक कार्य इसी सभाके द्वारा हुआ है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभाके प्राण राय साहब श्यामसुन्दर दास हैं। उनमें संगठन करने और संस्थाका सुचारुरूपसे संचालन करनेकी अपूर्व क्षमता है। वे लोगोंसे काम लेना खूब जानते हैं। अतः नागरी प्रचारिणी सभाकी सफलताका अधिकांश श्रेय बाबू साहब हीको प्राप्त है। इस हेतु हिंदी-जगत् बाबू साहबका चिर ऋणी और कृतज्ञ रहेगा। बाबू श्यामसुन्दर दासकी कई रचनायें भी हैं। उनकी 'साहित्या लोचन' नामक पुस्तकमें प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यकी तुलनात्मक आलोचना की गई है। 'भाषा-विज्ञान'में उन्होंने भाषाओंकी उत्पत्ति तथा हिन्दी और उसकी उपभाषाओंकी विश्लेणात्मक विवेचना की है। 'हिन्दी भाषा और साहित्य'में बाबू साहबने हिंदीका इतिहास उपस्थित किया है। 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपने यहां 'भारत-कला भवन' खोल कर भारतके दृश्य काव्यकी रक्षाका भी स्तुत्य प्रयत्न किया है, जिसका श्रेय राय कृष्णदासको है। सभा 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' नामकी एक पुरातन खोज विषयक त्रैमासिक पत्रिका भी निकालती है, जिसका विद्वन्मंडलीमें समुचित सम्मान है।

जिस समय प्रयागकी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का जन्म हुआ उस समय हिन्दीमें उच्च कोटि की विशुद्ध साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंका प्रायः सर्वथा अभाव था। सम्पादकप्रवर पण्डित महावीरप्रसाद्‌जी द्विवेदीके सम्पादकत्वमें 'सरस्वती'ने हिन्दी साहित्यकी प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। उस समय खड़ी बोली हिन्दी गद्यकी सर्वमान्य रूपसे और गद्यकी आंशिक रूपसे भाषा बन चुकी थी, परंतु अभी तक उसके संस्कारका प्रयत्न नहीं प्रारम्भ हुआ था। द्विवेदीजीके समान व्याकरणविद् और प्रामाणिक विद्वान्‌के हाथोंमें आ कर 'सरस्वती'ने भाषा संस्कारका महान् कार्य सम्पादन किया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि श्री द्विवेदीजीने खड़ी बोलीको हिन्दी-गद्यमें प्रतिष्ठित करनेमें कितना अधिक कार्य किया है। परन्तु हिन्दी गद्यकी भाषाको भी परिमार्जित करनेका गौरवमय श्रेय भी श्री द्विवेदीजीको ही है। उन्होंने भाषाकी काट छांट कर सुसंस्कृत बनाया, व्याकरणके नियमोंकी प्रतिष्ठा की, सैकड़ों नवीन लेखकोंको प्रोत्साहन दिया और पाश्चात्य-सभ्यताके प्रेमी सैकडों नवयुवकोंको अङ्गरेजोकी ओरसे हटा कर हिन्दीकी ओर आकर्षित किया। हिन्दी साहित्यके अनेको वर्तमान सुप्रसिद्ध लेखक और कवि 'सरस्वती'की ही गोदमें पल कर बड़े हुए, उन्होंने द्विवेदीजीसे ही साहित्यकी प्रथम दीक्षा ग्रहण की थी। द्विवेदीजीकी लेखन शैली मध्य श्रेणीकी है। उसमें न तो संस्कृत शब्दोंका बाहुल्य होता है और न उर्दू शब्दों की प्रचुरता। उनकी भाषा संस्कृतमिश्रित होती है परन्तु उसमें आवश्यकतानुसार उर्दू शब्दोंका भी यथोचित समावेश होता है।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

इस प्रकार काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना और 'सरस्वती' पत्रिकाके प्रकाशनसे हिंदी गद्यकी उन्नतिको पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। भाषामें प्रौढ़ता आई, वह सामर्थ्यवान् हुई और उसमें अनेक सुंदर शैलियोंका आविर्भाव हुआ। जिस प्रकार उर्दूमें लखनऊ और देहलीके दो केंद्रोंकी विभिन्न शैलियां हैं, उस प्रकार हिंदीमें स्थानभेदके अनुसार शैली भेद तो नहीं हुआ, पर कितनी ही व्यक्तिगत शैलियां उत्पन्न हुईं, जो

आगे चल कर वर्गबद्ध शैलियां बन गईं और इधर उधर घूम फिर कर कुछ स्थानों पर जा अटकीं, जिनसे स्थानभेदका उपक्रम प्रारम्भ हो गया। इस समय स्थूल रूपसे तीन भिन्न स्थानोंमें तीन भिन्न शैलियोंके रूप स्पष्टतः दीखते हैं। काशीके अधिकांश लेखक तथा कलकत्तेके पंडित गोविन्दनारायण मिश्रके प्रभावसे प्रभावान्वित लेखकगण संस्कृतबहुल भाषाका प्रयोग करते हैं। देहलीकी ओरके लेखकगण अपनी भाषामें उर्दू पारसीके साधारण शब्द स्वतंत्रता पूर्वक व्यवहार करते हैं। लखनऊ और कानपुरके साहित्यिकों पर महावीरप्रसादजी द्विवेदीका पर्याप्त प्रभाव पड़ा, अतः उन्होंने मध्य मार्गका अवलम्बन किया। उनकी भाषामें संस्कृत शब्द होते हैं परन्तु उर्दू शब्दोंका भी यथोचित समावेश होता है। यह शैली अन्य शैलियोंकी अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुई है। इसके अतिरिक्त हास्य-विनोद, बहस-मुलाहसा, व्यंग्य, व्याख्यान, दर्शन, उपन्यास, कहानी आदि विभिन्न विषयोंके उपयुक्त कितनी ही शैलियोंका प्रादुर्भाव हुआ है और हो रहा है। बहुत-सी न्यूनताओंके रहते हुए भी इन शैलियोंसे यह प्रत्यक्ष हो जाता है, कि विभिन्न विषयोंको यथोचित रूपसे प्रकट करनेकी क्षमता भाषामें उपस्थित है। देशमें उच्च शिक्षाका माध्यम अङ्गरेजी है। आज कल अनेकों अङ्गरेजीकी उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान् हिंदीकी ओर झुक रहे हैं, जिसके कारण भाषा पर अङ्गरेजी रचना प्रणालीका विशेष प्रभाव कदाचित् आवश्यकतासे अधिक पड़ रहा है। न केवल अङ्गरेजीके सहस्रों शब्द अनुदित हो कर हिन्दीके शब्द-भंडारमें प्रवेश कर रहे हैं, वरन् अङ्गरेजी पदविन्यास तककी छाया हिन्दीमें दृष्टिगोचर होने लगी है। इस प्रकार हिन्दीमें कितनी ही शैलियोंका विकाश हुआ और हो रहा है। मासिक पत्रिकाओंके निकलनेसे सामयिक साहित्यकी अच्छी श्रीवृद्धि हुई। राजनीतिके आंदोलनके फलस्वरूप हिंदीको राष्ट्रभाषा बनानेका उद्योग किया जा रहा है। राजनीतिक आंदोलन और शिक्षाकी उन्नतिके साथ ही पत्र-पत्रिकाएं बढ़ती जा रही हैं। साहित्यके सब अंग भर रहे हैं। विश्वविद्यालयोंमें हिंदी उच्चतम कक्षाओंमें पढ़ाई जाने लगी है। विविध विषयोंकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं।

गत बीस वर्षोंमें हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है हिन्दी साहित्यसम्मेलनकी स्थापना। आज हिन्दीको केवल उत्तरीय भारत और आर्यावर्तकी भाषाका ही पद प्राप्त नहीं है, वरन् उसे सम्पूर्ण भारतवर्षकी राष्ट्र भाषा होनेका भी गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ है। भारतके प्रधान प्रधान पुराविदोंके कथनानुसार भारतीय सभ्यताका उत्पत्तिस्थान और केन्द्र सदासे आर्यावर्त्त ही—गंगा यमुनाके तीरका प्रदेश रहा है। अतः भारतके हृदय देशकी भाषा होनेके कारण, सिद्धान्त रूपसे, हिन्दीका भारतकी राष्ट्र भाषा होना स्वतः सिद्ध है। परन्तु हिन्दीको व्यवहारिक रूपसे राष्ट्र-भाषाके सिंहासन पर बैठनेका श्रेय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको ही है।

पंडित मदनमोहन मालवीय

संवत् १९६७ वि०में काशीमें महामना पंडित मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ था। इस सम्मेलनकी स्थापनामें काशीके कुछ संभ्रान्त सज्जनों और नागरी प्रचारिणी सभाके कतिपय सदस्योंका हाथ था। परन्तु शीघ्र ही सम्मेलन एक पृथक् संगठनके रूपमें विकसित हो कर एक महत्त्वपूर्ण प्रभावशाली संस्था बन गया।

नागरी-प्रचारिणी-सभा कतिपय विशिष्ट व्यक्तियोंके हाथमें ही रही और वह आर्थिक सहायताके लिए सदा सरकारके आश्रित भी रही। इसके विपरीत हिन्दी साहित्य सम्मेलनका विकास देशकी राष्ट्रीय भावनाओंके अनुकूलपूर्ण जनसत्तात्मक प्रणाली पर हुआ। इस समय देशमें राष्ट्रीय कांग्रेसके पश्चात् सबसे बड़ा अखिल भारतीय जनसत्तात्मक संगठन कदाचित् हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ही है। सम्मेलनका प्रभाव और कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। उसने हिमालयके तुषारमण्डित पार्श्वों पर बसे हुए दुर्गम ग्रामोंसे ले कर सुदूर मद्रासके सागर-धौत समुद्र-तट तक हिन्दीका सन्देश पहुंचानेका अमूल्य प्रयत्न किया है, जिसमें उसे प्रेरणोत्पादक सफलता भी प्राप्त हुई है। सम्मेलनके इस वृहत् कार्य, इस महान् सेवा और इस आशातीत सफलताका अधिकांश श्रेय सम्मेलनके प्राण श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तम दासजी टंडनको है। टंडनजी प्रयागके रहनेवाले हैं। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० एल० एल० बी०की परीक्षायें योग्यता पूर्वक पास कीं। उनका जीवन बड़ा ही सात्विक रहा है। वे प्रयाग म्युनीसिपल बोर्डके चेयरमैन रह चुके है। देशके सार्वजनिक जीवनमें उन्होंने बड़ा भाग लिया है। स्व० लाला लाजपतराय उन्हें अपने जीवनमें ही अपनी पीपुल्सपार्टीका उत्तराधिकारी चुन गये थे। सम्मेलनके लिए उन्होंने जो किया वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

यह पहले कहा जा चुका है, कि देशमें उच्च शिक्षाका माध्यम अंगरेजी है और कुछ समय पूर्व तक भारतके किसी भी विश्वविद्यालयमें हिन्दीका प्रवेश नहीं था। फलतः हिन्दी-साहित्यके गम्भीर अध्ययनको न तो कोई प्रोत्साहन ही मिलता था और न कहीं उसके पठन-पाठनका प्रबंध ही था। सम्मेलनने हिंदी साहित्यकी कई परीक्षायें प्रचलित की और उनके लिए देशके नाना स्थानोंमें सैकड़ों परीक्षा-केन्द्र स्थापित किये। इन परीक्षाओंकी स्थापनासे हिन्दी-साहित्यके अध्ययन और प्रसारमें बड़ी वृद्धि हुई। इनके द्वारा सर्वसाधारण श्रेणीके नवयुवकोंको, जिन्हें स्कूल और कालेजोंकी शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर नहीं मिला—अपने ग्रामके एक एकान्त कोनेमें बैठे बैठे ही ज्ञान-वर्द्धन और अध्ययनका स्वर्ण सुयोग अनायास ही प्राप्त हो गया। सम्मेलनकी ये परीक्षायें अत्यन्त लोकप्रिय हुईं और उनके द्वारा अनेकों नवयुवक लेखक उत्पन्न हो गये।

सम्मेलनने अनेकों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कराईं, सत्साहित्यका प्रचार किया, जनताकी रुचि साहित्यकी ओर फेरनेका प्रयत्न किया, सब प्रकारके साहित्योत्पादनको प्रोत्साहन प्रदान किया और सभा-समितियों, अदालतों और विश्वविद्यालयों आदिमें हिन्दीको स्थान दिलानेकी चेष्टा की। हिन्दी-साहित्यकी उच्च कोटिकी शिक्षा देनेके उद्देशसे सम्मेलनने प्रयागमें "हिन्दी-विद्यापीठ"की स्थापना की जो गत वर्षसे एक ट्रस्टके अन्तर्गत एक स्वतन्त्र संस्थाके रूपमें कार्य कर रहा है।

सम्मेलनका अधिवेशन प्रति वर्ष देशके विभिन्न नगरोंमें हुआ करता है। सम्मेलनके सभापतिके पद पर आसीन होना, हिन्दीके किसी भी विद्वानके लिये गौरवकी बात है। सम्मेलनका एक मुख्य उद्देश हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनाना है। अतः सम्मेलनके मन्दिरमें राष्ट्रभाषाके प्रत्येक पुजारीके लिए स्थान है, वहां किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है। सम्मेलनको इस बातका गौरव है, कि उसके सभापतिके आसनको राष्ट्र भाषाप्रेमी बंगाली, गुजराती और महाराष्ट्र विद्वान् भी सुशोभित कर चुके हैं।

अब तक हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतिके आसन पर निम्नलिखित विद्वान् बैठ चुके हैं—

१—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय—काशी
२ स्व० पं० गोविन्दनारायण मिश्र—प्रयाग
३—स्व० पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—कलकत्ता
४—स्व० महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) भागलपुर
५—स्व० पंडित श्रीधर पाठक—लखनऊ
६—रायसाहब श्यामसुन्दर दास—प्रयाग
७—स्व० साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा—जबलपुर
८—महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी—इन्दोर
९—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय—बम्बई।

१०—स्व० विष्णुदत्त शुक्ल—पटना
११—डाक्टर भगवानदास—कलकत्ता
१२—पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी—लाहौर
१३—बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन—कानपूर
१४—पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय—दिल्ली
१५—स्व० पंडित माधवराव सप्रे—देहरादून
१६—पंडित अमृतलाल चक्रवर्त्ती—वृन्दावन
१७—रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द
ओझा—भरतपुर
१८ पंडित पद्म सिंह शर्म्मा—मुजफ्फरपूर
१९—स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी—गोरखपुर
२०—बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर—कलकत्ता ।

अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ढंग पर देशके कई प्रान्तोंमें प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनोंका भी संगठन हुआ है, जिनसे हिन्दीके प्रसार और उन्नतिमें बड़ी सहायता पहुंची है। इन साहित्य सम्मेलनोंके प्रोत्साहनसे अनेकों स्थानोंमें हिन्दीके विद्यालय भी स्थापित हो गये हैं।

संवत् १९७५में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अष्टम अधिवेशन होलकर राज्यकी राजधानी इन्दौरमें हुआ था। सम्मेलनके इतिहासमें यह अधिवेशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इस अधिवेशनमें सभापतिके आसनको सुशोभित करनेवाले साबरमतीके ऋषि महात्मा गांधी थे। उस समय तक सम्मेलनवाले हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेकी बात केवल मुखसे ही कहा करते थे। उसे किसीने व्यवहारिक रूप नहीं दिया था। महात्मा गांधी स्वयं गुजराती हैं। परंतु इस दूरदर्शी महापुरुषने देखा कि देश और राष्ट्रके कल्याणके लिए देशमें एक राष्ट्र-भाषाका होना अत्यन्त आवश्यक है और यह कार्य्य केवल हिंदी भाषाके द्वारा ही हो सकता है। सत्याग्रहका जन्मदाता इस कालका सबसे महान कर्मठ व्यक्ति हैं। वह प्रत्येक बातमें केवल दूसरोंको उपदेश दे कर ही चुप नहीं रह जाता, वह जो कुछ कहता है उसे सबसे पहले स्वयं ही कर दिखाता है। महात्माजीने हिंदीको राष्ट्र भाषा स्वीकार किया और मदरास प्रांतमें उसके प्रचारके लिए स्वयं अपने पुत्रोंको भेजा। महात्माजीकी देखरेखमें सम्मेलन मदरासमें हिंदी-प्रचारका अच्छा कार्य्य कर रहा है। भारतके हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तोंके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंमें हिंदीका जो प्रचार हो रहा है उसमें महात्माजीका अनन्य प्रभाव है। यह उन्हींके प्रभावका फल है, कि आज कल भारतवर्षकी सर्वाग्रणी राष्ट्रीय संस्था इंडियन नेशनल कांग्रेसमें अधिकांश वक्तृतायें हिंदी हीमें होती है। आज कल प्रत्येक राष्ट्रीय नेताके लिए—चाहे वह किसी भी प्रान्तका हो—हिंदी जानना अनिवार्य्य हो रहा है। अपने इस आ-भारत-व्यापी प्रसारके लिए हिन्दी मोहनदास कर्मचन्द गांधीकी चिर ऋणी रहेगी।

महात्मा गांधी

साहित्य-सम्मेलनका अन्य महत्त्वपूर्ण अधिवेशन सम्वत् १९७७में कलकत्तेमें हुआ था। इस अधिवेशनकी मुख्य विशेषता 'श्री मंगलाप्रसाद पारितोषिक'की स्थापना है। जिस प्रकार प्रति वर्ष संसारको सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक रचनाके लिए नोबुल पुरस्कार दिया जाता है, उसी प्रकार हिंदीकी सर्वोत्तम रचनाके लिए 'श्री मंगलाप्रसाद पारितोषिक'का विधान किया गया।

कलकत्ते और बनारसमें शीतलप्रसाद खड्गप्रसादकी प्राचीन प्रतिष्ठित व्यापारी कोठिया हैं। इस कोठीके वर्तमान स्वत्वाधारियोंमें बाबू गोकुलचन्दजी तीन भाई थे—(१) आनरेबल राजा सर मोतीचंद के० टी०, सी० आई० ई०, (२) बाबू गोकुल चंद जी (३) स्वर्गीय बाबू मंगला प्रसाद एम० ए०। बाबू मंगला प्रसाद

१ साहित्य—इसके अन्तर्गत काव्य, उपन्यास, नाटक, समालोचना, रीति ग्रन्थ आदि आते हैं।

२ समाज शास्त्र—इसके अन्तर्गत पुरातत्त्व, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र आदि विषय हैं।

३ दर्शन—इसके अंतर्गत धर्म, नीति, तर्क, अध्यात्म और मनोविज्ञान आदिकी गणना होती है।

४ विज्ञान—जिसमें गणित, रसायन, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक और कृषि विज्ञान आदि विषय विवेचित होते हैं।

मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रति वर्ष क्रमानुसार इन्हीं विषयों में एक विषयकी सर्वश्रेष्ठ रचनाके कर्त्ताको प्रदान किया जाता है। जिस वर्ष जिस विषयकी बारी आती है उस विषयके विद्वानोंकी एक निर्णायक समिति बनाई जाती है, जो परीक्षार्थ आये हुए समस्त ग्रन्थोंको पढ़ कर यह निर्णय करती है कि कौन सा ग्रंथ सर्वोत्तम और पुरस्कारके योग्य है। अब तक यह पुरस्कार निम्नलिखित सात व्यक्तियोंको मिल चुका है—

पण्डित पद्मसिंह शर्मा

१ श्री पद्मसिंह शर्माको सर्व प्रथम साहित्यविषयक पुरस्कार उनकी विहारी-सतसईकी टीका पर मिला था। श्री पद्मसिंह जीका ग्रंथ समालोचना-ग्रंथ है। उन्होंने समालोचनाकी एक नवीन शैली प्रचलित की जो अब तक हिंदीमें अज्ञात थी। यह शैली तुलनात्मक आलोचना शैली है। उन्होंने विहारीके दोहोंको ले कर संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, पारसी और हिंदीके अनेक कवियोंकी सादृश्य भाव-वाली कविताओंसे तुलना करके विहारीकी उत्कृष्टता प्रकट की है। शर्माजीकी भाषा बड़ी सजीव और ओजपूर्ण होती है। वे मुजफ्फरपूर साहित्य सम्मेलनके सभापति भी हो चुके हैं।

२—इतिहास-विषयक दूसरा पुरस्कार राजपूतानेके सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझाको मिला। उनकी "प्राचीन भारतीय लिपिमाला" नामक पुरातत्त्व-विषयक ग्रंथ उस वर्ष सर्वोत्तम ग्रन्थ माना गया। श्री ओझाजीने इस ग्रन्थमें बड़ी खोजपूर्वक यह दिखलाया है, कि भारतवर्षकी सम्पूर्ण लिपियों—देवनागरी, बंगला, गुजराती, तामिल, तैलगू, मलयालम आदिका विकास किस प्रकार हुआ। ओझाजीकी

पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा

यह पुस्तक ऐसी है जिस पर किसी भी भाषाको गौरव हो सकता है।

३—तीसरे वर्ष दर्शन विषयक पुरस्कार श्री सुधाकर द्विवेदीको 'मनोविज्ञान' नामक ग्रंथ पर मिला।

४—चौथे वर्ष विज्ञानका पुरस्कार डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्माको "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पर प्रदान हुआ।

५—पांचवें वर्ष पुनः साहित्यकी बारी आई और श्रीयुत वियोगी हरिको "वीरसतसई" नामक काव्य ग्रंथ पर पुरस्कार मिला।

६—छठे वर्ष समाजशास्त्रविषयक द्वितीय पारितोषिक श्री सत्यकेतु विद्यालंकारको "मौर्यराज्यका इतिहास" नामक इतिहास ग्रंथ पर दिया गया।

७—इस वर्ष दर्शनविषयक पुरस्कार श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० को उनकी "आस्तिकवाद" नामक रचनाके लिए मिला है।

पिछले तीन वर्षसे संयुक्त प्रान्तीय सरकारकी सहायतासे 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' नामक एक संस्था स्थापित हुई है। इस संस्थाका उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्यकी उन्नति करना है। एकेडेमीने उत्तम साहित्यकी सृष्टिके लिए लेखकोंको प्रोत्साहन और सहायता देना प्रदान किया है और आशा है, कि उससे हिंदीको समुचित लाभ होगा।

कुछ दिनोंसे हिंदीमें कुरुचिपूर्ण अश्लील साहित्यका कुछ अधिक उत्पादन हो रहा था। परन्तु "विशाल भारत"ने इस गंदे साहित्यकी प्रगति रोकनेके लिए एक जोरदार आंदोलन उठाया, जिसके फल स्वरूप इस दूषित साहित्यकी बाढ रुक गई तथा जनताकी सुरुचिवृद्धिको प्रोत्साहन मिला।

पहले हम हिंदी कविताकी अब तककी प्रगतिका संक्षिप्त विवरण दे चुके हैं, गद्यके विविध अंगोंका आधुनिक कालमें जो विकास हुआ है अब उसका दिग्दर्शन कराते हैं—

समालोचना—भारतेंदु हरिश्चंद्रके समयसे ही साहित्यिक समालोचना होने लगी थी, पर पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीके समयसे उसका स्वरूप निश्चित हुआ। द्विवेदीजीकी समालोचनाएं अधिकांश निर्णयात्मक होती थीं। सरस्वतीमें पुस्तकोंकी भी और संस्कृत तथा हिंदीके कुछ कवियोंकी भी द्विवेदीजीने समालोचनाएं लिखीं। द्विवेदीजीकी चलाई हुई पुस्तकसमीक्षाकी संक्षिप्त प्रणालीका अनुसरण अब तक मासिक पत्रिकाओंमें हो रहा है। द्विवेदीजीकी समालोचनाएं भाषाकी गड़बड़ीको दूर करनेमें बहुत सहायक हुई, साथ ही आलोचनामें संयत हो कर लिखनेका ढंग भी प्रतिष्ठित हुआ। द्विवेदीजीके समकालीन समालोचकोंमें मिश्रबंधुओंका स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनका हिन्दी साहित्यका इतिहास ग्रंथ अपने ढंगकी पहली रचना होनेके कारण बड़ी मूल्यवान् वस्तु हुई। "हिन्दी नवरत्न"में कवियोंकी समालोचनाका सूत्रपात हुआ। उनकी आलोचनाओंके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद हो सकता है और है भी, पर समालोचनाका कार्य आरंभ करने कारण मिश्रबंधुओंका हिंदी साहित्य पर ऋण है और उसे स्वीकार न करना कृतघ्नता माना जायगा। इस बातका बिना ध्यान रखे कि सब बातोंमें क्रमिक विकास होता है, पूर्व कृतियोंको तुच्छ मानना जहाँ अनुचित है वहां इस बातका भी ध्यान रहना चाहिये कि हमारे ज्ञान तथा अनुभवकी वृद्धि निरंतर होती रहती है, इसलिये साहित्यके विद्यार्थियों, समालोचकों तथा निर्माताओंका अपने अपने मतोंको वेदवाक्य मान बैठना, नवाविष्कृत तथ्योंकी अवहेलना करना तथा भिन्न मत रखनेवालेको हेय समझना साहित्यके भावी विकास और उन्नतिके लिये हितकर न सिद्ध होगा।

हिंदीके कवियों पर आलोचनात्मक लेख और पुस्तकें लिखनेवालोंमें पंडित पद्मसिंह शर्मा और पंडित कृष्णबिहारी मिश्रके नाम उल्लेखयोग्य हैं। हिन्दीमें तुलनात्मक आलोचना-शैलीका आविष्कार पंडित पद्मसिंह शर्माने किया था। वह वस्तुतः एक नई चीज थी। पंडित कृष्णबिहारी मिश्रने इस विषयको आगे बढ़ाया है। शर्माजीकी शैलीका अनुसरण अन्य लोगोंने न किया हो यह दूसरी बात है परन्तु यह शैली दृढ़ हो रही है। शर्माजीकी भाषा उर्दू मिश्रित और चोटीली होती है। मिश्रजीकी भाषा सरल और गम्भीर है।

अंगरेजी ढंगकी गंभीर आलोचनाएं लिखनेवालोंमें राय साहब श्यामसुन्दरदास और पंडित रामचन्द्र शुक्ल प्रमुख हैं। जायसी, तुलसी, सूर आदि कवियों पर उनके निबंध सुंदर विश्लेषणात्मक आलोचनाके रूपमें लिखे गए हैं, जिनसे कवियोंके मानसिक और कलात्मक विकास पर अच्छा प्रकाश पडता है। विश्वविद्यालयोंकी उच्च श्रेणियोंमें पढाई जाने योग्य समालोचनाओंमें शुक्लजीकी समालोचनाएं सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हुई हैं। बाबू पदुमलाल बख्शीने भी दो एक समालोचनात्मक पुस्तकें लिख कर हिन्दीके विकासक्रमको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है। मासिक पत्रिकाओंमें समालोचनाएं लिखनेका ढंग अधिक उपयुक्त और प्रशंसनीय होता जा रहा है। पहलेकी अपेक्षा व्यक्तिगत आक्षेपोंकी बहुत कुछ कमी हो गई है। कदाचित् यह कह देना अनुचित न होगा कि समालोचनाका काम बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसे सफलतापूर्वक करना सबका काम नहीं है।

नाटक—अन्य सभी साहित्योंमें नाटकोंका विवेचन रंगशालाके नियमों प्रतिबंधों आदिको ले कर होता है। अंगरेजीके अनेक विद्वान् समालोचक तो रंगशालाके अनुपयुक्त नाटकोंको नाटक कहते ही नहीं। उन देशोंमें रंगशालाएं बहुत अधिक विकसित हो चुकी हैं और प्रत्येक नाटककार उनके नवीनतम विकाससे परिचित होना आवश्यक समझता है। नवीन विकासके कारण जो पुरानी नाटकीय रचनाएं आधुनिक रंगमंचके अनुपयुक्त हो गई हैं, अथवा पिछडी हुई देख पडने लगी हैं, उनको निम्न स्थान दिया जाता है। स्वयं शेक्सपियरके नाटक भी रंगमंचकी दृष्टिसे पुराने हो गए हैं अतः कम खेले जाते हैं, अथवा सुधार कर खेले जाते हैं। हिंदीके लिये यह बड़ी लज्जाकी बात है, कि अब तक वह पारसी रंगमंचके ही हाथोंमें पडी है, उसकी अपनी रंगशालाएं या तो हैं ही नहीं, अथवा मृतक-सी हैं। व्यवसायिक रंगमंच तो हिन्दीमें कदाचित् एक भी नहीं। हम लोग अब तक नाटक खेलनेको तुच्छ नटोंका काम समझते हैं। अनेक आधुनिक नाटककार घर पर कल्पनाके द्वारा नाटकीय प्रतिबंधों पर विचार करते हैं, रंगशालाओंमें जा कर नाटक देख कर या खेल कर अपने अनुभवकी वृद्धि नहीं कर पाते। पारसी रङ्गमंच अपने पुराने अवगुणोंको लिये हुए चला जा रहा है। वही अलंकरणाधिक्य, अस्वाभाविक भाषा और वही अस्वाभाविक भाषण! हिन्दीकी जो दो एक नाटकमण्डलियां हैं, वे तिथि त्योहारों पर कुछ खेल खेला कर ही सन्तोष कर लेती हैं। यह स्थिति बडी ही शोचनीय है। बङ्गला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंके रङ्गमंच विशेष उन्नत हैं और प्रतिदिन उन्नति करते जाते हैं। ऐसी अवस्थामें राष्ट्रभाषा हिन्दी पर गर्व करनेवालोंका मस्तक अवश्य नीचा होता है। हिन्दीभाषी रईसोंको चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र नाट्यमण्डलियोंको सहायता दें और हिन्दीभाषी विद्वानोंको चाहिये कि वे यथासंभव शीघ्र अभिनय-कार्यको अपने हाथमें लें, उसे नटोंका काम ही न समझे रहें। साथ ही हिंदीभाषी जनताको चाहिये कि वह हिन्दी नाट्यमंडलियोंके नाटक देख कर उन्हें प्रोत्साहन दे।

आधुनिक नाटककारोंमें बाबू जयसंकर प्रसाद, पंडित बदरीनाथ भट्ट, पंडित गोविन्दवल्लभ पंत आदि प्रसिद्ध हैं। बाबू प्रेमचन्द्रजीने 'संग्राम' और "कर्बला' नामके दो नाटक लिखे हैं जिनमें उन्हें सफलता नहीं हुई। पंडित गोविन्दवल्लभ पंतको रङ्गमंचका अच्छा अनुभव है और उनकी 'वरमाला' हिन्दी नाटकोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पौराणिक आधार पर लिखी गई प्रेमकी यह कथा पंतजीकी कवित्वशक्तिसे चमक उठी है और नाटकके उपयुक्त हो गई है। पंडित बदरीनाथ भट्टके नाटक व्यंग्य और विनोदकी दृष्टिसे हिंदीमें अपने ढंगके अच्छे हैं, पर जहां व्यंग्य और विनोद नहीं है वहांका कथोपकथन शिथिल और उखडा हुआ जान पडता है और कहीं कहीं हास्य और विनोद भी निम्न श्रेणीका हो गया है। श्रीवास्तवजीके प्रहसनोंकी बडी धूम है, पर हमारी दृष्टिमें वे कुरुचि उत्पन्न करनेवाले हैं, उनका विनोद बहुत निम्नकोटिका है और उनका प्रभाव नवयुवकों पर अच्छा नहीं पडता। बाबू जयशंकर प्रसादने अब तक आठ दस नाटक लिखे हैं। उनमेंसे अधिकांश ऐतिहासिक हैं। प्रसादजीने प्राचीन इतिहासका

अच्छा अध्ययन किया है और प्राचीन भारतीय समाज के भूले हुए चित्रोंको दिखलानेमें उनकी क्षमता प्रशंसनीय है। देश और कालके उपयुक्त वस्तु निर्माण करना प्रसादजीकी विशेषता है। मानसिक वृत्तियोंको पात्रोंका स्वरूप दे कर लिखा हुआ उनका "कामना" नाटक हिन्दीमें अपने ढंगका अद्वितीय है। हमारी सम्मतिमें चित्तवृत्तियाँ इतनी जटिल और एक दूसरीसे ऐसी अविच्छिन्न भावसे मिली हुई होती हैं, कि उन्हें अलग करके दिखानेमें कृत्रिमता आ ही जाती है। उनका 'एक घूंट' नामका एकाङ्की नाटक सिद्धान्तप्रतिपादनकी दृष्टिसे चाहे जो हो, पर नाटकीय दृष्टिसे कुछ नहीं है। सिद्धान्तोंको अग्रस्थान मिल गया है, कथोपकथनमें नाटकीय प्रभाव लुप्त हो गया है। फिर भी इतना तो निःसंदेह कहा जा सकता है, कि नाटकोंके क्षेत्रमें प्रसादजीकी रचनाएं बड़े महत्त्वकी हैं और अब तकके नाटककारोंमें वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। परन्तु उनके नाटकोंमें रंगमंच पर खेले जानेकी अनुपयुक्तताका बहुत बड़ा दोष है। दूसरे रहस्यमय उक्तियोंका अनावश्यक प्रयोग किया गया है जो कहीं कहीं भावोंको निरर्थक बना देता है।

उपन्यास—'परीक्षागुरु'के उपरान्त हिन्दीके उपन्यासोंमें 'चन्द्रकांता संतति'का नाम आता है। बाबू देवकीनंदन खत्रीकी इस रचनाका उस समय इतना अधिक स्वागत किया गया कि अब हमारे लिये वह आश्चर्यकी बात हो गई है; लाखों निरक्षरों और उर्दूदां लोगोंने 'चन्द्रकांता संतति' पढनेके लिये हिंदी सीखी। चन्द्रकांताके अनुसरणमें हिंदीमें अनेक उपन्यास लिखे गए। इनके अनन्तर गहमरीजीके जासूसी उपन्यासोंका युग आया। इनके अनेक उपन्यास अनुवादित हैं, कुछ मौलिक भी हैं। घटनाओंकी ओर आकर्षण रहता है, चरित्रके विकासका कहीं पता नहीं रहता, भाषा भी प्रायः देहाती रहती है। इसी समयके लगभग बंगलाके कुछ अच्छे उपन्यासोंका हिंदीमें अनुवाद हुआ जिससे साहित्यिक उपन्यासोंकी मौलिक रचनाएं भी होने लगी। पंडित किशोरीलाल गोस्वामीने इस ओर पहले पहल प्रयत्न किया। उनकी रचनाएं साहित्यिक हैं, पर भाषाकी दृष्टिसे सफल नहीं हुई हैं। गोस्वामीजीने अब तक पचासों उपन्यास लिखे होंगे और उनका थोड़ा बहुत प्रचार भी है। उनके उपन्यास अधिकांश घटनाविशिष्ट हैं, पात्रोंके चरित्र-विकासकी ओर कम ध्यान दिया गया है। कहीं कहीं कालदोष भी खटकता है। अंगरेजीकी आधुनिक उपन्यास समीक्षाके अनुसार गोस्वामीजीके उपन्यासोंका बहुत कम साहित्यिक मूल्य है। उनका विनोद और हंसी कहीं कहीं अश्लीलताकी सीमा तक पहुंच जाती है।

हिंदी उपन्यास क्षेत्रमें प्रेमचन्दजीकी रचनाओंने युगांतर उपस्थित कर दिया। हिंदीवालोंने उनके पहले मौलिक उपन्यास 'सेवासदन'का उतावलीके साथ स्वागत किया और 'प्रेमाश्रम'के निकलते ही वे हिंदीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहलाने लगे। सामाजिक भावोंका प्रतिबिंब इनकी सफलताका मूल कारण है। 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'प्रतिज्ञा', 'गबन' आदि उनके कितने ही छोटे बड़े उपन्यास निकल चुके और निकलते जाते हैं। प्रेमचन्दजीने देहाती समाजका बड़ा

प्रेमचन्दजी

अच्छा अनुभव प्राप्त किया है और उनके सुख-दुःखोंको वे समझते हैं। सामाजिक कुरीतियोंको दूर करनेके उद्देशसे उन्होंने व्यंग्य शैली स्वीकृत नहीं की, मीठी चुटकियोंका प्रयोग किया है। मानसिक वृत्तियोंके उत्थान पतनका सुंदर चित्र अंकित करनेमें प्रेमचन्दजीकी प्रसिद्धि है। वर्णनकी अपूर्व शक्ति प्रेमचन्दजीको मिली है, इस कार्यमें वे संसारके बड़े बड़े उपन्यासकारोंके समकक्ष हैं। प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंमें आदर्शवादकी ओर अधिक ध्यान दिया गया, तथ्यवादका उतना विचार नहीं रखा गया। दोनोंका उपयुक्त सम्मिश्रण कदाचित् उनके उपन्यासोंके महत्त्वको और भी बढ़ा देता। कहीं कहीं विशेष कर 'रंगभूमि'में आवश्यकतासे अधिक विस्तार किया गया है। यह उपन्यास दो भागोंमें न होकर एक ही भागमें समाप्त हो जाता तो अधिक रुचिकर होता। पं० विश्वम्भर शर्मा कौशिकके 'मा' उपन्यासमें चरित्र-चित्रणका बड़ा ही मनोहर रूप देख पड़ता है और भविष्यमें हिंदी उपन्यास जगत् उनसे अच्छी आशाएं रखता है।

हम नहीं कह सकते कि उपन्यास लिखनेके कार्यमें जयशंकर प्रसादजीको कहाँ तक सफलता प्राप्त होगी। 'कंकाल' नामक उपन्यासका निर्माण उसके नामके अनुकूल हुआ है। समस्त उपन्यासके पढ़ जाने पर हमें समाजके नंगे चित्रका उद्घाटन रुचिकर नहीं हुआ। नवयुवक लेखकोंमें भी श्रीजैनेन्द्रकुमारकी 'परख' अच्छी दृष्टिसे देखी जाती है।

आख्यायिका—आधुनिक हिन्दीकी आख्यायिकाएं संस्कृतके हितोपदेश अथवा राजतरंगिणीके ढंग पर नहीं लिखी गईं, अङ्गरेजीकी छोटी कहानियोंकी शैली पर लिखी गई हैं। घटनाओंकी सहायतासे पात्रोंकी व्यक्तिगत विशेषताओंको चित्रित करना आजकलकी कहानियोंका मुख्य लक्ष्य हो रहा है। समाजकी कुरीतियोंके प्रदर्शनार्थ भी कहानियां लिखी जाती हैं, ऐतिहासिक तत्त्वों पर प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे भी कहानियां लिखी जाती हैं और दार्शनिक कहानियां भी लिखी जाती हैं। कहानियोंमें न तो घटनाओंका क्रम अधिक जटिल होता है और न जीवनके बड़े बड़े चित्र दिखाए जाते हैं। हिंदीमें आख्यायिकाओंका आरंभ करनेवाले गिरिजाकुमार घोष नामक सज्जन थे। उनके उपरान्त श्रीज्वालादत्त, बाबू जयशंकर प्रसाद, श्रीप्रेमचंदजी, कौशिकजी, सुदर्शनजी, हृदयेशजी आदि कहानी लेखक हुए। प्रसादजीकी आख्यायिकाएं कवित्वपूर्ण होती हैं। उनकी कुछ कहानियोंमें प्राचीन इतिहासकी खोई हुई बातोंकी खोज की गई है, कुछमें मनस्तत्त्वकी सूक्ष्म समस्याएं समझाई गई हैं और कुछमें व्यक्तिका व्यक्तित्व स्पष्ट किया गया है। प्रसादजीकी भाषा कहानियोंके बिलकुल उपयुक्त नहीं है और भावोंकी झंकारमें कहीं कहीं कृत्रिमता आ जाती है। प्रेमचंदजीकी कहानियोंमें सामाजिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनकी भाषाशैली कहानियोंके बहुत उपयुक्त हुई है और उनके विचार भी सब पढ़े लिखे लोगोंके विचारोंमें मिलते जुलते हैं। यही कारण है, कि प्रेमचन्दजीकी कहानियां सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। प्रेमचन्दजी और जयशंकर प्रसादजीकी आख्यायिकाओंमें बड़ा भारी अंतर यह है, कि एकमें घटनाओंकी प्रधानता रहती है और दूसरीमें कोरे भावोंकी। कौशिकजीकी कहानियोंमें पारिवारिक जीवनके बड़े ही मार्मिक और सच्चे चित्र हैं। उनका क्षेत्र सीमित है, पर अपनी सीमाके भीतर वे अद्वितीय हैं। ऐसा जान पड़ता है, कि सुदर्शनजीने पाश्चात्य कथा साहित्यका अच्छा अध्ययन किया है। भारतीय आदर्शोंकी रक्षा करनेकी उनकी चेष्टा प्रशंसनीय है। उनकी कहानियां सरल और रोचक होती हैं। हृदयेशजीकी कहानियोंमें कवित्व है पर उनकी भाषा अत्यधिक अलंकृत तथा उनके भाव कहीं कहीं नितांत कल्पित हो गए हैं। अन्य कहानी-लेखकोंमें 'अंतस्तल'के लेखक श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री राय कृष्णदास आदि हैं। उग्रजीकी वे कहानियां अच्छी हैं जिनमें उन्होंने अश्लीलता नहीं आने दी है। उनकी भाषा बड़ी सुंदर होती है। हिंदीकी छोटी कहानियों या गल्पोंका भविष्य बड़ा उज्ज्वल जान पड़ता है, थोड़े ही समयमें इस क्षेत्रमें बड़ी उन्नति हुई है।

निबन्ध—हिन्दीमें अब तक निबन्धोंका युग नहीं आया है। समालोचनात्मक निबंधोंके अतिरिक्त हिंदी-

के अन्य सभी निबंध साधारण कोटिके हैं। पंडित बालकृष्ण भट्ट और पंडित प्रतापनारायण मिश्रके निबंध हिंदीकी बाल्यावस्थाके हैं। उनमें विनोद आदि चाहे जो कुछ हो, वे साहित्यकी स्थायी संपत्ति नहीं हो सकते। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके निबंधोंमें विचारोंकी योजना कहीं कहीं विश्रृंखल हो गई है। द्विवेदीजीको संपादनकार्यमें इतना व्यस्त रहना पडता था कि उनके स्वतंत्र निबंधोंको देख कर हमें आश्चर्य ही होता है। भावात्मक निबंध लिखनेवालोंमें स्व० सरदार पूर्णसिंहका स्थान सबसे अधिक महत्त्वका है, पर थोडे ही दिन बाद सरदारजी हिंदीको छोड कर अंगरेजीकी ओर झुक गए थे। श्रीयुत गुलाबराय और श्रीयुत कन्नोमलके दार्शनिक निबंध भी साधारणतः अच्छे हुए हैं। निबंधोंके क्षेत्रमें पंडित रामचन्द्र शुक्लका सबसे अलग स्थान है। मानसिक विश्लेषणके आधार पर उन्होंने करुणा, क्रोध आदि मनोवेगों पर अनेक अच्छे निबंध लिखे हैं। विवरणात्मक निबंध-लेखकोंने यात्रा, भ्रमण आदि पर जो कुछ लिखा है, वह सब मध्यम श्रेणीका है। सारांश यह कि निबंधोंकी ओर अभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। हिंदी-साहित्यके इस अंगकी पुष्टिकी ओर सुलेखकोंका ध्यान जाना चाहिए।

अन्यान्य विषय—हिन्दीमें इतिहास-विषयक पुस्तकें भी कुछ निकली हैं। मुगल समयके इतिहास पर स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादने अच्छा प्रकाश डाला था। राजपूतानेके इतिहासके सम्बन्धमें महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा बडे मूल्यवान् ग्रंथ निकाल रहे हैं। बृटिश कालीन इतिहास पर श्री सुन्दरलालजीने 'भारतमें ब्रिटिश राज्य' नामक एक बडा और उत्तम ग्रंथ लिखा था। हिन्दीमें विज्ञानविषयक पुस्तकोंका बडा अभाव है। उसका बडा भारी कारण है पारिभाषिक शब्दोंकी कमी। नागरीप्रचारिणी सभाने एक वैज्ञानिक कोश प्रकाशित किया था, जो समयके फेरसे बिल्कुल अधूरा हो गया है। दर्शनशास्त्र पर कुछ पुस्तकें निकली हैं, परन्तु इस बातकी आवश्यकता है, कि प्रोफेसर राधाकृष्णकी पुस्तकोंके समान पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हो। देशके राजनैतिक आन्दोलनोंके परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र और राजनीतिशास्त्र पर भी कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। राजनैतिक नेताओंके कुछ जीवनचरित भी प्रकाशित हुए हैं, परन्तु साहित्यिकोंके जीवनचरितोंका एकदम अभाव है। हालमें केवल पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी-लिखित सत्यनारायण कविरत्नकी जीवनीको छोड कर अन्य किसी साहित्य-सेवीकी कोई अच्छी जीवनी प्रकाशित नहीं हुई। अन्यान्य विषयोंमें हिंदीका भंडार बहुत अपूर्ण है।

पत्र पत्रिकायें—हिंदीका सबसे पहला समाचार पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' संवत् १८८७में कलकत्तेसे युगलकिशोर शुक्लके सम्पादकत्वमें निकला था। दूसरा पत्र भी इन्हीं युगलकिशोरजीने कलकत्तेसे ही निकाला था। तीसरा समाचारपत्र राजा शिवप्रसादका 'बनारस अखबार' था। पण्डित छोटूलाल मिश्रने 'भारतमित्र' निकाला और दुर्गाप्रसाद मिश्रने 'सारसुधानिधि' और 'उचितवक्ता' को जन्म दिया। बाबू हरिश्चन्द्रके पत्रोंका उल्लेख ऊपर हो चुका है। पण्डित बदरीनारायण चौधरी, बाबू लालमुकुन्द गुप्त, श्री रुद्रदत्त शर्मा, श्री अमृतलाल चक्रवर्ती आदिके प्रशंसनीय उद्योगसे लोगोंकी रुचि समाचारपत्रोंकी ओर बढने लगी थी। पण्डित बालकृष्ण भट्टके 'हिंदीप्रदीप' और पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके 'ब्राह्मण'ने साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रमें अच्छा काम किया था। राजा रामपालसिंहके 'हिन्दोस्तान'के द्वारा मालवीयजी और बालमुकुन्द गुप्तने हिंदी-संसारमें प्रवेश किया था। इस समय हिंदीमें अनेकों दैनिक, अर्द्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकामें निकल रही हैं। उनमें कानपुरके 'प्रताप' और उसके यशस्वी शहीद सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीकी सेवायें विशेष उल्लेखयोग्य हैं।

गणेशजीका जन्म ग्वालियर राज्यमें कायस्थ जातिमें हुआ था। उन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा पाई थी। पत्रकार और लेखनकलाकी दीक्षा उन्हें पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीसे मिली थी। गणेशजीने एक-दो मित्रोंकी सहायतासे 'प्रताप' नामक साप्ताहिक पत्रको जन्म दिया। 'प्रताप' देशके लिए स्वराज्य-प्राप्तिके ध्येयको ले कर जन्मा था।

विद्यार्थीजीकी ओजस्वी लेखनी, अविचल सत्यनिष्ठा और निर्भीक शैलीने शीघ्र ही 'प्रताप'का नाम युक्त-प्रदेशके कोने-कोनेमें पहुंचा दिया। प्रताप दीनोंका त्राता, किसानोंकी वाणी, मजदूरोंका सलाहकार और स्वतन्त्रता संग्रामका सैनिक बन गया। गणेशजीकी भाषा-शैली अपने गुरुके समान मध्य मार्गी थी। राजनैतिक झंझटोंमें अत्यन्त व्यस्त रहनेके कारण विद्यार्थीजी हिंदीके भंडारमें अपनी पूरी भेंट नहीं प्रदान कर सके। यद्यपि वे स्थायी साहित्य नहीं उत्पन्न कर सके, परन्तु उन्होंने पचीसों नये साहित्यिक और पत्रकार उत्पन्न कर दिये। इस बातमें वे अपने गुरु द्विवेदीजीसे किसी भी प्रकार कम नहीं थे। आज कलके अनेकों लेखक, पत्रकार और साहित्यिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे विद्यार्थीजीके बनाये हुए हैं। सन् १९३१के कानपूरके हिंदूमुस्लिम दंगेमें 'प्रताप'का यह यशस्वी सम्पादक दंगा रोकनेके प्रयत्नमें सच्चे सत्याग्रही वीरकी भांति मुसलमानों द्वारा मार डाला गया।

गणेशशङ्कर विद्यार्थी

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदांतशास्त्री—सम्वत् १९५१को आश्विन शुक्ल द्वितीयाको कुसी (जिला गाजीपुर) गांवमें आपने जन्म ग्रहण किया। आप सरयूपारीण ब्राह्मण जातिके एक उत्कृष्ट रत्न हैं। आपकी शिक्षा दीक्षा पहले तो कलकत्तेमें, पीछे काशी जा कर पूरी हुई। आप स्वभावके सीधे सादे और मिलनसार हैं।

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदांतशास्त्री

आपका संस्कृत-साहित्य विषयक ज्ञान दुर्दमनीय है। खास कर दर्शन पर आपका अधिकार है। काशीकी 'वेदान्तशास्त्री' तथा 'महोपदेशक'की परीक्षामें आप ही सर्वप्रथम हुए थे। बंगला, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओंमें भी आपका ज्ञान प्रौढ़ है। संस्कृत भाषामें भी आप उत्कृष्ट लेखक और प्रकृष्ट व्याख्यानदाता हैं। काशीके महामण्डलसे हिंदी मासिक 'आर्य महिला' को निकाल कर तीन वर्ष तक आपने बड़ी खूबीसे उसका सम्पादन किया था। उन्हीं दिनों व्याख्यान देते हुए कई बार सम्पूर्ण भारतमें आप चक्कर लगा आये

थे। पीछे महामण्डलका ही डेपुटेशन ले कर आप बर्मा गये। वहा भी आपने हिन्दू सभ्यताका खूब प्रचार किया। और तो क्या, चीनकी सीमा लासा तकमें आपके अथक परिश्रमसे कई सभायें स्थापित हो चुकी हैं। रंगूनमें आ कर 'विश्वदूत' नामक हिन्दी मासिक पत्र निकाल कर कई वर्षों तक आप उसका सम्पादन कलकत्तेसे ही करते रहे। अनन्तर आपने राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र 'सेनापति'को निकाला जो अपनी शानका एक ही था।

उसी समय आपने 'दर्शन-परिचय' नामक एक दर्शन-ग्रन्थ लिख कर हिन्दी-संसारमें हलचल पैदा कर दी। इसमें संसार भरके दर्शनोंका संक्षिप्त परिचय है। इसके बाद १८ पुराणोंके समालोचनात्मक ढंगसे 'हिन्दी विष्णुपुराण' नामका ग्रन्थ लिखा, जिसमें वैज्ञानिक रीतिसे विरोधियोंके खण्डनका उत्तर और हिन्दू धर्मका मण्डन है। इसकी सजावट बड़ी ही सुन्दर है और इसका आकार-प्रकार भी बहुत विशाल है।

आपकी लिखी दूसरी पुस्तकें 'महासती मदालसा' और 'राजर्षि प्रह्लाद' है। 'राजर्षि प्रह्लाद'के समान प्रह्लादके विषयमें सर्वांग पूर्ण ग्रन्थ आज तक कहींसे नहीं निकला। 'रत्नावली' नाटिका तथा 'भक्त ध्रुव' नामक दो संस्कृत ग्रन्थोंको भी आपने हिन्दीमें अपनी शैलीमें लिखा है।

आप इन दिनों एक कोष निकाल रहे हैं, जिसमें लगभग हिन्दीके २५००० प्राप्य-अप्राप्य, प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थोंका परिचय रहेगा। इसमें अभी तक हजारों रुपयोंका व्यय हो चुका है।

१९२८ ई०के दिसम्बरमें संसारभ्रमणके लिये आपने प्रस्थान किया था। बर्मा, लंका, मोरिशस, री-यूनियन, दक्षिण अफ्रीका, पोर्तुगीज अफ्रीका, टंगानिका, जंजीबार, केनिया आदिकी आपने यात्रा की। मोरिशसमें आपने ३८ गीता-प्रचारक मण्डल स्थापित किये, जिसका प्रधान कार्यालय वहींकी राजधानी पोर्ट लुईसमें है। यह संस्था उस द्वीपकी सर्वश्रेष्ठ संस्था है। अखिल दक्षिण अफ्रीका सनातनधर्म महामण्डलको भी आपने स्थापना की, जिसके आजीवन सभापति आप ही हैं। विदेशोंमें आपने 'हिन्दी, हिन्दू, हिंद'की ही सेवामें समय बिताया। आप ही सर्व-प्रथम सनातनी महोपदेशक थे, जो इन विदेशोंमें भी सनातन धर्मका बिगुल बजा आये।

विदेशसे लौटने पर आप इन दिनों सुलतानगंज (भागलपुर) से हिन्दीकी उत्कृष्ट पत्रिका "गंगा" का सम्पादन कर रहे हैं। हिन्दी माताकी इतनी सेवा कर लेने पर भी अभी आपको सन्तोष नहीं हुआ है। आप लगे हाथ चारों वेदोंका सुन्दर अनुवाद हिन्दीमें करके उस हिन्दी माताके फहराते आँचलको भी भर देना चाहते हैं।

आपको देशाटनका भी पूरा व्यसन है। यह कभी छूटनेको नहीं। आपने अमेरिका और यूरोपका पासपोर्ट बना रखा है और शीघ्र यात्रा करनेकी धुनमें लगे हुए हैं।

बाबू शिवपूजनसहाय—आप गद्य लेखक अच्छे हैं। आपकी गवेषणायें बड़ी ही महत्त्वपूर्ण होती है। हिन्दीके लिये जितना श्रम आपने किया है उतना बहुतोंने नहीं किया। आप बड़े ही होनहार और प्रशंसायोग्य लेखक हैं। आपकी रचित, अनुवादित और सम्पादित बहुतसी पुस्तकें हैं।

पं० जगदीश झा 'विमल'—आप बिहारके उन युवक सुलेखकों और कवियोंमें हैं जिसके लिये प्रान्तको गौरव हो सकता है। आप मैथिल ब्राह्मण हैं। आपका जन्म बिहार प्रांतके भागलपुर जिलेके अन्तर्गत कुमैठा नामक ग्राममें संवत् १९४६ भाद्र कृष्णाष्टमीमें हुआ था। शिक्षाकाल समाप्त कर १९११ ई०से आप शिक्षा विभागमें कार्य कर रहे हैं। आपकी हिंदी-सेवाका समय १९१४ ई०से आरम्भ हुआ। इतने समयमें 'विमलजी'ने हिंदी भाषाकी कितनी सेवा की यह किसी प्रेमीसे छिपी नहीं है। आपकी सुन्दर कहानी, भावपूर्ण कविता, हिन्दीकी सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंमें छपती रही। आपकी लिखी हुई प्रकाशित पुस्तकोंकी संख्या अस्सीके लगभग है। आपकी कई पुस्तकें मैट्रिक, एफ० ए०के छात्रोंके लिये पाठ्य पुस्तकें स्वीकृत हैं। कुछ पद्य और गद्यकी पुस्तकोंके नाम नीचे दिये गये हैं—

खरासोना, जीवनज्योति, लीलावती, आशा पर पानी, निर्धनकी कन्या, कालचक्र, आंच, कुसुमकुंज, वेणी, रत्नहार, पुष्करिणी, वीणाझंकार, छाया, पद्मप्रसून, सुषमा, रचनाकौमुदी, निबन्धनिधि, तरंगिणी, उच्छ्वास, सती सीता, सती गान्धारी, सती सीमंतिनी, सती मनसा, महासती अनुसूया, आदर्श दम्पति, सती पंचरत्न, वीरबालपंचरत्न, सती सुकन्या, अरुन्धती, द्रौपदी, सुनीति, महावीर, सती वृन्दा, आदर्श-सम्राट्, लक्ष्मीचरित्र, रमणी कर्त्तव्य और मनोमतीत्व।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि विमलजी एकनिष्ठ हिन्दीभक्त हैं। समाजके प्रति उनमें दर्द है बन्धुत्व की उनमें तड़पन है। रहन-सहन उनकी बहुत सरल तथा सादी है।

अङ्गरेज़ी राज्यकी राजधानी और व्यापारका बड़ा केन्द्र होनेके कारण कलकत्ता धीरे धीरे भारतवर्षका प्रधान केन्द्र भी बन गया। कलकत्ता-वासियोंकी भाषा बंगला है। अतः कलकत्तेका बंगला भाषाका साहित्यिक केन्द्र होना स्वाभाविक ही है, परन्तु हिंदी सदासे भारतकी प्रमुख भाषा रही है। अत कलकत्ता हिन्दी-साहित्यका भी केंद्र बन गया। लल्लूलाल और सदलमिश्रने यहीं खड़ी बोलीमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठा की, पहला समाचारपत्र भी यहीं निकला और आजकल भी हिंदीके सबसे अधिक दैनिक पत्र भी यहींसे निकलते हैं। इस समय कलकत्तेके पुराने साहित्यसेवियोंमें भारतमित्रके प्रथम सम्पादक पण्डित छोटूलाल मिश्र सबसे अधिक वयोवृद्ध हैं।

पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी—आपने पुराने 'भारतमित्र'को चमकानेमें काफी प्रयत्न किया था। वर्तमान पत्रोंमें 'भारतमित्र' सबसे प्राचीन पत्र है। वर्तमान हिंदी दैनिकोंमें वही सबसे पहले दैनिक रूपमें निकला था। उसे दैनिक बनानेका सारा श्रेय अम्बिकाप्रसादजीको ही है। वाजपेयीजीके विचार बहुत परिष्कृत हैं, इसीलिए उनके लेख बहुत सुलझे हुए होते हैं। बहुत वर्षों तक 'भारतमित्र'का सम्पादन करनेके बाद वाजपेयीजीने 'स्वतन्त्र'का जन्म दिया, जिसका वे अब तक सम्पादन करते रहे। वाजपेयीजीका हिन्दी व्याकरणका बहुत अच्छा ज्ञान है। उन्होंने इस विषय पर एक पुस्तक भी लिखी है।

पण्डित अम्बिका प्रसादजी वाजपेयी

पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे—कलकत्तेके अन्य पत्रकारोंमें पं० लक्ष्मण-नारायण गर्देका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। गर्देजी काशी प्रवासी महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। उनका जन्म सम्वत् १९४६में काशीमें हुआ था। बंग भाषाके सुप्रसिद्ध लेखक स्व० गणेश सखाराम देउस्करके गर्देजी जामाता हैं। वे पहले 'नवनीत' नामक मासिकपत्रमें कार्य करते

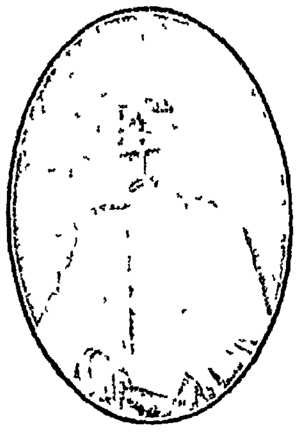
पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे

रह थे, फिर 'भारतमित्र'के सम्पादकीय विभागमें आये। पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीके 'भारतमित्र' छोडने पर गर्देजी 'भारतमित्र'के प्रधान सम्पादक हुए। 'भारतमित्र' छोडनेके बाद वे 'श्रीकृष्णसन्देश'के सम्पादक हुए। 'श्रीकृष्णसन्देश' अपने जीवनकालमें हिंदीका सर्वोत्तम साप्ताहिक समझा जाता था। आजकल गर्देजी 'विजय' नामक साप्ताहिक-पत्रका सम्पादन करते हैं। हिन्दी लेखकोंमें गीताका जितना गम्भीर अध्ययन गर्देजीने किया है उतना बहुत कम लोगोंने किया होगा। उनकी रचनाओंमें 'सरल गीता', 'महाराष्ट्ररहस्य', 'एशिया का जागरण' और 'श्रीकृष्णचरित्र' हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने कई पुस्तकों का अनुवाद भी किया।

पं० सकलनारायण शर्मा—आप भी कलकत्तेके प्रसिद्ध साहित्यिकोंमें हैं। वे आरासे निकलनेवाली 'शिक्षा' नामक पत्रिकाके सम्पादक और संस्थापक हैं। शर्माजी संस्कृतके धुरंधर विद्वान् है और कलकत्ता विश्व-विद्यालयमें संस्कृत अध्ययनका कार्य करते हैं। उनका जन्म

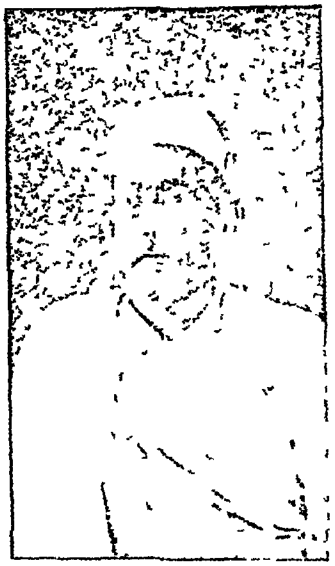

पण्डित सकलनारायण शर्मा काव्यव्याकरणतीर्थ

सम्वत् १९२८में आरामें हुआ था। शर्माजीके ही प्रयत्नसे आराके समान छोटे शहरमें नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुई थी, जो अब तक हिन्दी प्रचारका अनवरत उद्योग करती जाती है। शर्माजीने हिन्दी और संस्कृतमें अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। बीसवें हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष पण्डित सकलनारायणजी ही थे। विहारके हिन्दी लेखकोंमें पांडेयजीका स्थान ऊंचा है। संस्कृतके और पण्डितोंके विपरीत इन्हें मातृभाषा हिन्दीसे बहुत प्रेम है और ये उसके अच्छे उन्नायकोंमेंसे हैं। साथ ही ये आचारवान्, सरल स्वभावके और बहुत मिलनसार हैं।

उपसंहार।

साराश यह है, कि क्या कला पक्ष और क्या भाव पक्ष दोनोंमें अभी पूर्ण परिपक्वता नहीं आई है, पर हिन्दी दोनोंकी ओर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो रही है। सच बात तो यह है, कि हिन्दी भाषा और साहित्यका वर्त्तमान रूप बडा चमत्कारपूर्ण है। इसमें भावी उन्नतिके बीज वर्त्तमान हैं जो समय पा कर अवश्य पल्लवित और पुष्पित होंगे। परिवर्तन कालमें जिन गुणोंका सब बातोंमें होना स्वाभाविक है वे सब हिंदी भाषा और साहित्यके विकासमें स्पष्ट देख पडते हैं और कालका धर्म भी पूर्णतया प्रतिबिंबित हो रहा है। इस अवस्थामें जीवन है, प्राण है, उत्साह है, उमंग है और सबसे बढ़ कर बात यह है, कि भविष्योन्नतिके मार्ग पर दृढतापूर्वक अग्रसर होनेकी शक्ति और कामना है। जिनमें ये गुण हैं वे अवश्य उन्नति करते हैं। हिंदीमें ये गुण वर्त्तमान है और उसकी उन्नति अवश्यंभावी है। हिंदी और उसके साहित्यका भविष्य बडा ही उज्ज्वल और सुन्दर देख पडता है आदर तथा सम्मानके पात्र वे महानुभाव है जो अपनी कृतियोंसे इसके मार्गके कंटकों और झाड झंखाडोंको दूर कर उसे सुगम्य प्रशस्त और सुरम्य बना रहे हैं।

हिन्दुस्तान—भारतवर्ष देखो।

हिन्दू (सं० पु०) आर्यावर्त्तवासी वर्णाश्रमधर्मी। मेरु तन्त्रके २३वें पटलमें कुछ श्लोकोंमें हिंदु शब्दका उल्लेख है। ये सब श्लोक उतने प्राचीन नहीं समझे जाते। इन श्लोकोंमें यह भी लिखा है, कि अंगरेज जाति, लण्डन नगर और शाह लोग हिन्दुधर्मको विलोप करनेवाले हैं। यथा—

"पश्चिमाम्नायमन्त्रास्तु प्रोक्ताः पारस्यभाषया ।
अष्टोत्तरशताशीतिर्येषां संसाधनात् कलौ ॥
पञ्च खानाः सप्त मीरा नव साहा महाबलाः ।
हिन्दूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्त्तिनः ॥
हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये ।
पूर्वाम्नाये नवशता षडशीतिः प्रकीर्त्तिताः ॥
फिरिङ्गभाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनात् कलौ ।
अधिपा मण्डलानाञ्च संग्रामेष्वपराजिताः ॥
इंरेजा नवषट्पञ्च लण्डजश्चापि भाविनः ।"

(मेरुतंत्र २३ प०)

मुसलमान तथा दूसरी विदेशी और अनार्यजातियों को छोड़ भारतवासी मात्र ही हिन्दू कहलाते हैं। वेदमें सप्तसिंधुका उल्लेख है। पारसिक सुप्राचीन धर्मशास्त्र अवस्तामें यह शब्द उच्चारणभेदसे 'हप्त हिन्दु' नामसे व्यवहृत हुआ है। पञ्चनद प्रदेशको ही वेदमें 'सप्त सिंधु' और अवस्तामें 'हप्त हेन्दु' कहा है। सुप्राचीन पारसिकगण पञ्चनद प्रदेशका विषय जानते थे, उन्हें भारतके आभ्यन्तर जनपदका उतना हाल मालूम नहीं था। स्वभावतः वे लोग 'स' के स्थानमें 'ह'का उच्चारण करते थे। इसीसे वे लोग केवल सिंधुवासीको ही हिंदू कहते हैं। पीछे मुसलमानी-जगत्में भारतवासीमात्र ही हिंदू कहलाने लगे। उसीका अपभ्रंश हिन्द है। भारतमें आये हुए मुसलमान लोग समस्त भारतको 'हिंद' और इसके अधिवासीको 'हिंदू' और 'हिंद' इन दोनों नामसे सम्बोधन करते थे। अनन्तर मुसलमानी अधिकार जब सर्वत्र फैल गया, तब उसके साथ साथ मुसलमानोंको छोड़ भारतवासी आर्यसन्तानमात्र ही 'हिन्दू' कहलाने लगे। मुसलमानी अमलके पहले कोई भी भारतवासी 'हिंदू' कह कर अपना परिचय नहीं देता था, इसीसे किसी भी प्राचीन संस्कृत या प्राकृत ग्रंथमें 'हिन्दू' शब्दका उल्लेख नहीं है। मुसलमानी अधिकार स्थायी होनेके बाद जब तमाम पारसी भाषाका व्यवहार होने लगा, उस समय राजकर्मचारी भारतवासीमात्र ही 'हिन्दू' कह कर अपना परिचय देने लगे। इसी समय शायद मेरुतंत्रमें सर्वप्रथम 'हिन्दू' शब्दका व्यवहार हुआ और आगे चल कर अनार्य जातिको छोड़ भारतवासी आर्यसंतानमात्र ही 'हिंदू' कह कर अपना परिचय देने लगे। वर्त्तमान कालमें भारतवासी आर्य-सन्तान जैन और बौद्धगण यद्यपि अपनेको हिन्दू नहीं बतलाते, फिर भी मुसलमानी अमलमें वे लोग हिन्दू कह कर ही अपना परिचय देते थे। इसीसे मुसलमान ग्रंथमें इन दो सम्प्रदायोंका स्वतंत्र उल्लेख नहीं है। मुसलमानी अमलमें चीनदेशमें जो सब बौद्ध ग्रन्थ रचे गये, उनमें भारतीय बौद्धोंको 'हिन्दू बौद्ध' नाम दिया गया है। अभी आर्य शब्दकी तरह हिन्दू शब्द भी पारिभाषिक हो रहा है। जो वेद अथवा वेदोदित धर्मग्रन्थ और परलोक पर विश्वास करते हैं तथा गो-मांस छूते तक भी नहीं, वे ही आज कल कट्टर 'हिन्दू' कहलाते हैं, यह हिन्दू सभ्यता एक समय सारे सभ्य जगत्में फैली हुई थी। यहां तक कि तीन हजार वर्ष पहले हिन्दूओंने सुदूर एशिया माइनर आदि स्थानोंमें भी वैदिक धर्मका प्रचार किया था, इसके कितने ही प्रमाण मिलते हैं। हिताइत, आर्य, उपनिवेश, यवद्वीप, कम्बोज आदि शब्दोंमें प्रतीच्य हिन्दू सभ्यताका परिचय देखो।

हिन्दूकुश—एशियाकी एक विस्तृत पर्वतमाला। यह पामीर मालभूमिसे ले कर अफगानिस्तानके उत्तर-पूर्व तक फैली तथा मध्य एशियाके अक्षा० ७३' ३७' ३०से निकल कर अफगानिस्तानके भारतसीमान्त पर समाप्त हुई है। हिन्दूकुशके उत्पत्तिस्थानसे चार बड़ी बड़ी नदियां निकली हैं, आक्सस, पारन्द दरिया, कुनार और गिलगिट नदी। यह पर्वतमाला हिमालयकी ही प्रसार है, केवल बिचला हिस्सा सिंधुनद द्वारा पृथक् हुआ है। जहां एक खण्ड पर्वतने घोरबंद उपत्यकासे हेलमण्डको अलग किया है, वहां तक पश्चिममें हिंदूकुशका विस्तार है। इसके बादसे पश्चिमकी ओर इस पर्वतमालाका नाम बदल गया है। इस सीमामें शाखाप्रशाखा ले कर हिंदूकुशका प्रसार २०० मील है। हिंदूकुश पर्वतमालाकी चार प्रधान शाखाएं हैं। इन सब पर्वतशाखासे नदियां निकल कर मध्यएशियाके सभी प्रदेशोंमें बहती हैं।

मध्य एशियाके भिन्न भिन्न स्थानमें जिस प्रकार भिन्न भिन्न जातियोंका वास है, हिन्दूकुश पर भी उसी

प्रकार विभिन्न धर्मावलम्बी और विभिन्न भाषी जातियां रहती हैं। इसकी उपत्यकाएं साधारणतः उर्वर हैं। इस पर्वत परकी गिरिगुहामें भी भिन्न भिन्न जातिके लोग रहते हैं। उपत्यकामें २००से ४००० मनुष्य एकत्र भावमें जीवन यापन करते हैं। इनमेंसे कोई कोई भारतवर्षकी तरह नाना जाति और समाजमें विभक्त हैं। कोई कोई सम्प्रदाय फिर प्रजातान्त्रिक शासनके अधीन रह कर अन्य सम्प्रदायके साथ मिल जुल कर बड़ी शान्तिसे वास करते हैं। इन लोगोंमें दो प्रधान जाति है, एक दारद और दूसरी सिन। शायद सिन लोगोंने ही पहले पहल इस देशको जीता था। जो सब ब्राह्मण या बौद्ध पहलेसे इस देशमें आ कर बस गये थे, वे लोग भी, अभी सिन कहलाते हैं। अभी वे सबके सब मुसलमान हो गये हैं, परन्तु कहीं कहीं उन लोगोंके प्राचीन धर्मकी प्रथा प्रचलित देखी जाती है। बालान-देशीयगण अग्निपूजा करते हैं तथा और भी कितने चिह्न देखनेसे मालूम पड़ता है, कि वे लोग पहले अग्निके उपासक जरथुस्त्र-धर्मावलम्बी थे। प्रत्येक ग्राममें किसी न किसी प्रकारसे मूर्त्तिपूजा होती ही है। इनमें सिया और सुन्नी दोनों ही सम्प्रदाय हैं तथा आपसमें आदान-प्रदान चलता है। यह दृष्टान्त दूसरे देशके सिया सुन्नीमें बहुत कम देखनेमें आता है। इसके अलावा मुग्ली नामका एक और संप्रदाय है जो सिया और सुन्नी दोनों ही धर्मावलंबीसे घृणा करता है। कुरानके बदले ये लोग कलमी पीर नामक एक पुस्तककी पूजा करते हैं।

यहांकी विवाह-प्रथा बड़ी ही अनोखी है। स्त्रियां स्वेच्छानुसार अनेक पति ग्रहण कर सकती हैं।

हिन्दूकुशकी सबसे ऊंची चोटी समुद्रपृष्ठसे प्रायः २० हजार फुट ऊंची है। हिन्दूकुशके पर्वतगात्र अनुर्वर हैं। वहां कोई भी फसल नहीं लगती। हिमालयकी अपेक्षा हिन्दूकुशकी उपत्यकाएं विस्तृत हैं।

हिन्दूपुर—१ मन्द्राजके अनन्तपुर जिलेका एक तालुक यह अक्षा० १३° ४१′ से १४° ८′ उ० तथा देशा० ७७° २४′ से ७७° ५५′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। इसमें हिन्दूपुर नामक एक शहर और ७४ ग्राम लगते हैं। यहां कनाड़ी भाषा प्रचलित है। धान, मक्का और रेंड़ी यहांकी प्रधान उपज है। तालुकमें एक फौजदारी और पांच थाने हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३° ४९′ उ० तथा देशा० ७७° २९′ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या २० हजारके करीब है। जिले भरमें यह सबसे बड़ा शहर और वाणिज्य व्यवसायका क्षेत्र है। कहते हैं, कि मुरारि रावने इस शहरको बसाया। पीछे उनके पिता हिन्दू राव पर इसका नामकरण हुआ। यहां गुड़, अनाज, कपड़े और कम्बलका जोरों कारबार चलता है।

हिन्दूर—पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन एक छोटा पहाड़ी राज्य। यह अक्षा० ३०° ५४′ ३०″ से ३१° १४′ १५″ उ० तथा देशा० ७६° ३९′ से ७६° ५६′ ५४″ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २५२ वर्गमील है। १८१५ ई०में गुर्खा लोगोंने यह राज्य अधिकार किया था। पीछे अङ्गरेजोंने उन्हें भगा कर इसे दखल किया और हिन्दूरके राजाको अधिपति बनाया। यहांके राजा राजपूत-वंशीय हैं।

हिन्दू ष्टुआर्ट—बङ्गीय सेनाविभागके एक अङ्गरेज सेनापति। Major General Charles Stuart नामसे सैनिक-विभागमें इनकी प्रसिद्धि थी, फिर भी क्या देशीय या यूरोपीय सभी समाजमें ये 'हिन्दू-ष्टुआर्ट' ही कहलाते थे। १७५८ ई०को इङ्गलैण्डमें इनका जन्म हुआ। निष्ठावान् ईसाईसमाजमें लालित-पालित होने पर इनकी प्रवृत्ति बचपनसे ही स्वाधीन धर्मकी ओर झुकी थी। वीरता और कार्यकुशलताके कारण इन्होंने सामान्य सैनिक-पदसे ऊंचा सेनापतिका पद पाया था। भारतमें आ कर ये बहुत-सी लड़ाइयोंमें अपनी वीरताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं। जिस समय बङ्गदेशमें एक ओर ईसाई मिशनरी हिन्दूधर्मकी असारताको साबित करने और जनसाधारणको ईसा धर्ममें दीक्षित करनेके लिये तुले हुए थे, दूसरी ओर जिस समय महात्मा राममोहन राय हिन्दू धर्मकी मूर्त्तिपूजाको अवैदिक और उसको अशास्त्रीयता साबित कर अनेक ग्रंथ प्रकाश कर रहे थे, आश्चर्यका विषय है, कि उसी समय कुछ अंगरेजोंने

हिन्दूधर्मकी मूर्त्तिपूजाके अनुकूल लेखनी पकड़ी और वे ईसाई मिशनरी तथा राजा राममोहनके विरुद्ध खड़े हो गये। उनमेंसे हिन्दूष्टुआर्ट ही अग्रणी थे।* इन्होंने ईसाधर्मका परित्याग कर हिन्दूधर्म ग्रहण किया। ये प्रति दिन अर्घ्य आदि ले कर गंगास्नान करने जाते थे और फूल चन्दनसे हिंदू देवदेवीकी पूजा करते थे। कलकत्तेके उडष्ट्रीटमें उनका मकान था। उस मकानमें कितनी ही हिंदूदेवदेवियोंकी मूर्त्ति शोभा पाती थीं। १८०८ ई०में इन्होंने 'The Bengal officer's Pamphlet' प्रकाशित किया। उसमें हिंदूके देवतत्त्वके सम्बन्धमें इन्होंने इस प्रकार लिखा है, 'पौराणिक देवसमाजके विस्तृत राज्यके जिस ओर नजर दौड़ाता हूं उसी ओर धर्मतत्त्व रूपकाच्छादनसे आवृत्त दिखाई देता है। पौराणिक प्रत्येक गल्पमें विमल धर्मोपदेश झलक रहा है। मेरे सूक्ष्म विचारसे आज तक इस संसारमें ऐसी धर्मतात्त्विक रूपक की सम्पूर्ण तथा प्रकृष्ट पद्धति और कहीं भी नहीं निकली है।'†

१८२८ ई०की ३१वीं मार्चको इनका देहान्त हुआ। मृत्युकालमें इन्होंने कहा था, कि हिन्दुओंकी तरह इनका शव संस्कार होना चाहिये। परंतु वृटिश सेनाविभागके ऊंचे पद पर रहनेके कारण वृटिशसरकार इनकी अन्तिम वासना पूरी न कर सकी। कलकत्तेके South Park Street Cemetry नामक यूरोपीय कब्रिस्तानमें इनकी लाश दफनाई गई। सरकारने इनके मकबरेमें चारों ओर इनकी प्रतिपाद्य हिंदू देवदेवियोंकी मूर्त्ति रखनेकी अनुमति दे दी थी। आज भी यह अपूर्व स्मृतिस्तम्भ विद्यमान है।¶

हिन्दोल (सं० पु०) १ एक उत्सव जिसमें श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदिकी मूर्त्तियोंको झूले पर बैठा कर झुलाते और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं। यह साधारणतः वर्षाऋतुमें और विशेषतः श्रावण शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा तक, दूसरेके मतानुसार त्रयोदशीसे पूर्णिमा तक होता है। हिंदोल वैष्णवोंका एक प्रधान उत्सव है। हरिभक्तिविलास आदि ग्रंथोंमें इसका कोई उल्लेख या विधान देखनेमें नहीं आता। पुरीके नीलाद्रिमहोदयमें इस उत्सवकी बात आई है। वैष्णवोंके प्रत्येक घरमें यह उत्सव होता है।

२ रागविशेष, छः प्रकारके रागोंमेंसे एक राग। ब्रह्माके शरीरको हिलाने डुलानेसे इस रागकी उत्पत्ति हुई है। यह औडव जातिका है अर्थात् ष, ग, म, प और नि, ये पांच स्वर मिले हैं। इस रागका ग्रह षड्जस्वर है। इसकी ऋतु वसंत और वार मङ्गल है। गानेका समय रातको २१ या २६ दंडसे ले कर २९ दंड तक है। ऐसा प्रसिद्ध है, कि यह राग यदि शुद्ध गाया जाय, तो हिंडोला आपसे आप चलने लगता है। रागमालाके मतसे इसका रूप—अल्पवयः, सुन्दर, पीतवर्ण, उत्तम अङ्गसम्पन्न, स्वर्णमय हिंदोलारूढ़ और गीतकारिणी सुंदरी स्त्रियोंके साथ बड़े आनंदसे हास्यकौतुककारी।

इस रागकी पांच रागिणियां हैं, यथा—रामकिरी, देशाखी, ललिता, विलावली और पटमञ्जरी। ८ पुत्र हैं, चन्द्रबिम्ब, मङ्गल, शुभ, आनन्द, विनोद, प्रघन, गौर और विभास। भरतके मतसे रागिणी रामकली, मालावती, आशावरी, देवारी और गुणकली। पुत्र—वसन्त, मालव, मारु, कुशल, वावारचन्द, लङ्कादहन, नागधून, धवल। इनकी पत्नी यथाक्रम लीलावती, भैरवी, जयती, पूरवी, पारावती, तिरवणी, देवगिरि और सुरसती हैं। (सङ्गीतशास्त्र)

हिन्दोल—उड़ीसाका एक देशी राज्य। यह अक्षा० २०° ४९' से २०° ४९' ३०" तथा देशा० ८५° ६' से ८५° ३०' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३१२ वर्गमील और जनसंख्या ५० हजारके लगभग है। इसके उत्तर और पूरबमें ढेनकानल राज्य, दक्षिणमें बड़म्बा और नरसिंहपुर तथा पश्चिममें अङ्गुल जिला है। यहां हिन्दूकी संख्या ही ज्यादा है, मुसलमान बहुत कम हैं। अब हिन्दू और

---

* Dinesh Chandra Sen's History of Bengali Language and Literature, 1911, p. 903

† History of Serampore Mission, by I. C Marshman, Vol, I, pp. 364-66.

¶ E. I. Wenger's The Story of the Lalbazar Baptist Church, p. 503.

आदिम जातियोंमें यहाँ ताला, कंद, पान आदि जातियों-का वास है। इस राज्यके दक्षिणपूर्वांशसे कटकसम्बलपुर का रास्ता गया है। यहांका राजस्व ७० हजार रुपया है जिनमेंसे वृटिश सरकारको ५५१) रु० देने पडते हैं। इसमें हिंदोल नामकी राजधानी और २३४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २०° ३६´ २०´´ ३० तथा देशा० ८५° १४´ २६´´ पू०के मध्य, राज्यके दक्षिण पश्चिमांशमें अवस्थित है। इसके सिवा यहा करिन्दा, दिदारकोट, कञ्जगोला और नयापटना, ये सब प्रधान ग्राम हैं। राज्यके दक्षिण कनकाचल नामक शैलमाला है जिसकी ऊंचाई दो हजार फुटसे कम नहीं होगी। यहांके राजवंश क्षत्रिय हैं। पहले यह स्थान तीन या चार छोटे छोटे सामन्त राज्योंमें विभक्त और जङ्गलमय था। किमेदि राजवंशीय वर्त्तमान राजाके पूर्वपुरुषने यहा आ कर सामन्तोंको परास्त किया और सभी भूभाग दखल कर लिये। वर्त्तमान राजाका नाम है राजा नवकिशोर चन्द्र महाराज जगद्देव। इस राज्यमें २ मिडिल इङ्गलिश स्कूल, ५ अपर प्राइमरी और ६० लोअर प्राइमरी स्कूल तथा एक दातव्य चिकित्सालय हैं।

हिन्दोलक (सं० पु०) यानविशेष, डोली, पालकी, आदि।

हिन्दोलन (सं० क्ली०) भेषज द्वारा गर्भपतन।

हिन्दोला (सं० स्त्री) दोलिका, हिंडोला।

हिन्व (सं० पु०) प्रीणनकारी।

हिपोक्रेटिस (Hippocrates)—एक सुप्रसिद्ध ग्रीक चिकित्सक। ये इजियन समुद्रके मध्यवर्त्ती कोशद्वीपमें असक्लेपिदय शमें ४६० ई०के पहले उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम हेराक्लिद और माताका नाम केनारती था। इन्होंने ग्रोस, स्किदिया, कोलचिस, एशिया माइनर, इजिप्त और एशियाके अनेक देशोंमें घूम कर बहुदर्शिता लाभ की थी। इनके मानवप्रकृति सम्बन्धीय ग्रंथोंका पाश्चात्य पूर्वतन चिकित्सक बडा आदर करते थे। गैलनके मतसे इन्होंने ही सबसे पहले मानव-शरीरके क्षिति, जल, तेज और मरुत इन चार भूतोंके स्थिति सम्बंधमें मत प्रकाश किया था। इनके मतसे सभी चिकित्सकोंको ज्योतिःशास्त्र पढ़ना कर्त्तव्य है।

हिप्पालस (Hippalus)—अलेकजन्द्रियावासी एक विख्यात नाविक। १ली सदीमें सम्राट् क्लडियसके समय इन्होंने एक बडे वाणिज्यपोतके अध्यक्ष हो कर अरवसमुद्रका पर्यटन किया। इस समय मौसुम वायुके सहारे ये गोआतेलीचेरिके मध्य मुसिरिस या बराक बन्दर पहुंचे। इनके नामानुसार दक्षिण पश्चिम मौसुम वायुका नाम रखा गया। इसके पहले ये सिंहलके हिप्पोरस नामक बन्दरमें आये थे। यहांके राजाने इनका अच्छा स्वागत किया था। लौटते समय सिंहलपतिने इनके साथ रोमकसम्राट्के पास चार राजदूत भेजे थे। इनमेंसे एक सिंहल राजकुमार उसी बडे अर्णवपोतके पोताध्यक्ष हो गये थे। सिंहलके उत्तर पश्चिम उपकूलमें कुदरोमलय नामक जो एक बडा पहाड है, कोई कोई उसी स्थानको 'हिप्पारस' कहते हैं।

हिफाजत (अ० स्त्री०) १ किसी वस्तुको इस प्रकार रखना, कि वह नष्ट होने या बिगडने न पावे, रक्षा।

हिबुक (सं० क्ली०) ज्योतिषमतानुसार लग्नसे चतुर्थ स्थान। पर्याय—पाताल, सुहृद्, अंभ और चतुर्थ। पापयुक्त भार्गवसे हिबुकमें अर्थात् चतुर्थ स्थानमें पापग्रह रहनेसे मातृरिष्ट होता है।

हिब्बा (अ० पु०) १ दाना। २ दो जौको एक तौल। ३ दान।

हिब्बानामा (अ० पु०) दानपत्र।

हिब्रु—एशियामाइनरवासी एक जातिका नाम। भाषातत्त्वविदोंके मतसे 'हिब्रु' शब्द अरमाइक भाषाके 'एब्रा' शब्दकी अनुलिपि है। बाइबिलके अंतर्गत Old Testamentमें हम जो इब्राहिम शब्द पाते हैं, शायद उस शब्दसे इस 'एब्रा' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। इस 'एब्रा'से इस्रायेल वासियोंका बोध होता था। प्राचीन समितिक भाषामें 'एवार' नामका एक शब्द मिलता है वह किसी एक विशेष जाति या स्थान विशेषके उद्देशसे व्यवहृत होता था। इसी 'एवार'से अपभ्रंशमें 'हिब्रु' का होना सम्भव है। हिब्रु जातिकी भाषा भी 'हिब्रु' कहलाती है। हिब्रु भाषा उसी प्राचीन समितिक भाषाके अन्तर्गत है। इससे अरबी, आसिरीय आदि भाषाओंके अनेक शब्दोंकी उत्पत्ति हुई है। केननदेशमें

इस्रायेल जातिके द्वारा जो हिब्रु भाषा बोली जाती थी, उनके निकटवर्त्ती जातियोंकी भाषाके साथ उसका बहुत कम प्रभेद दिखाई देता है। इङ्गलैण्डको बोलचालकी भाषाके साथ प्रादेशिक भाषाका जैसा प्रभेद है, यह भी बहुत कुछ वैसा ही था। उनमेंसे एक दलका कहना है, कि मूसा-स्थापित प्रस्तरलिपि देख कर मोआबी भाषाके सम्बन्धमें भी वैसी ही धारणा होती है। व्यक्तिगत नामकी सूचना देखने तथा इस्रायल जातिके साथ उन सब जातियोंका क्या सम्बन्ध है, उसका विचार करनेसे मालूम होता है, कि जिस प्रकार आमन और आदम इन दोनों नामोंका शब्दगत प्रभेद एक जातिके शब्दका सामान्य तारतम्य मात्र है यह भी उसी प्रकार है। इससे बढ़ कर एक और प्रमाण यह है, कि फिनिकीय और केननजाति जिनके साथ इस्रायल-लोग कोई भी सम्पर्क स्वीकार नहीं करते थे, उनकी बोलचालकी भाषा और बाइबलकी हिब्रु भाषामें उतना प्रभेद नहीं मालूम होता। इन सब प्रमाणों द्वारा ही हम अच्छी तरह समझ सकते हैं, कि हिब्रु जाति सबसे पहले अरमाइक भाषाका ही व्यवहार करते थे। पीछे उस देशमें रहते समय उनकी भाषामें कुछ हेरफेर हो गया। अन्यान्य पण्डितोंका मत यह है, कि फिनिकीयोंकी प्रस्तरलिपिकी सूक्ष्म परीक्षा द्वारा उक्त भाषाके साथ हिब्रु भाषाका पार्थक्य, प्रादेशिक शब्दोच्चारणका तारतम्य और अन्यान्य लक्षण देख कर यह अनुमान किया जाता है, कि इब्राहम या इब्राहिमकी संतान अपनी भाषामें शब्दप्रयोगकी पद्धति हारोणसे लाई है तथा Old Testmentमें पुरानी इस्रायल जातिका अरमाइक जातिके पूर्ववर्त्ती कह कर उल्लेख रहनेसे इब्राहिमवंशका मूल जो अनेक प्रकारसे हिब्रु जातिके साथ ही संश्लिष्ट था, यह सहजमें अनुमान किया जाता है। सामाजिक अवस्थाकी गतिविधि अज्ञात रहनेके कारण हिब्रु जातिके मूलतत्त्वके सम्बन्धमें जिस प्रकार कुछ भी नहीं जाना जाता उसी प्रकार केननवासियोंके भाषापरिवर्त्तनके विषय भी उन सब कारणोंसे ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है। Old Testamentमें हम प्रादेशिक भाषाके तारतम्यके विषयमें जो कुछ लिखा है, उसके द्वारा किसी स्थिर सिद्धांत पर पहुंचना एक प्रकार असम्भव सा है। हिब्रु-भाषाके परिवर्त्तनका प्रधान कारण जहां तक परीक्षा द्वारा मालूम हुआ है, उससे केवल यही सिद्धांत किया जा सकता है, कि यह अरमाइक भाषाके प्रवाहसे ही हुआ था। हिब्रु भाषा अभी मातृभाषा सी हो रही है।

हिम (सं० त्रि०) हन् मक् हिच। १ ठंढा। पर्याय—सुषीम, शिशिर, जड, तुषार, शीत, शीतल। (क्ली०) २ पाला, वर्फ। गुण—कफ और वायुवर्द्धक। ३ जाड़ा, ठंढ। ४ जाड़ेकी ऋतु। ५ चन्द्रमा। ६ चन्दन। ७ पद्मकाष्ठ। ८ रंग, रांगा। ९ मौक्तिक, मोती। १० नवनीत, मक्खन। ११ चन्दनवृक्ष। १२ कर्पूर, कपूर। १३ हेमन्तऋतु, अगहन और पूसका महीना। १४ हिमालय पर्वत। १५ पद्म, कमल। १६ उशीर, खस। १७ पृथ्वीके विभागों या वर्षोंमेंसे एक। १८ वह दवा जो रात भर ठंढे पानीमें भिगो कर सवेरे मल कर छान ली जाय, ठंढा कषाय या काढ़ा।

हिमउपल (सं० पु०) ओला, पत्थर।

हिमऋतु (सं० स्त्री०) हेमन्तऋतु, जाड़ेका मौसिम।

हिमक (सं० पु०) १ विकङ्कत वृक्ष। २ हिम।

हिमकण (सं० पु०) वर्फ या पालेके महीन टुकड़े।

हिमकणिन् (सं० त्रि०) हिमकणायुक्त, हिमकणविशिष्ट।

हिमकर (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ कपूर।

हिमकरतनय (सं० पु०) चन्द्रमाके पुत्र, बुध।

हिमकिरण (सं० पु०) चन्द्रमा।

हिमकषाय (सं० पु०) शीतकषाय, वह वस्तु जो शीतल और कषाय रसकी हो।

हिमकूट (सं० पु०) १ शिशिर ऋतु। (पु० क्ली०) २ हिमालयशृङ्ग।

हिमक्ष्माधर (सं० पु०) हिमालय पर्वत। (वृहत्सं० ६२ १)

हिमखण्ड (सं० पु०) हिमालय पहाड़।

हिमगिरि (सं० पु०) हिमालय पर्वत।

हिमगु (सं० पु०) चन्द्रमा।

हिमगृह (सं० पु०) वह घर या कोठरी जो बहुत ठंढी हो और जिसमें ठंढकके सामान इकट्ठे हों।

हिमज (सं० पु०) हिमालयके पुत्र मैनाक। (त्रि०)

२ बर्फमें होनेवाला। ३ हिमालयमें होनेवाला। ४ हिमालयसे उत्पन्न।

हिमजा (सं० स्त्री०) १ हिमालयकी कन्या, पार्वती। २ क्षीरिणी, खिरनीका पेड। ३ शटी, कचूर। ४ यवनालसे निकली हुई चीनी।

हिमज्योतिस् (सं० त्रि०) १ चन्द्रमा। २ हिमकिरण।

हिमज्झटि (सं० पु०) कुज्झटि, कुहासा।

हिमतैल (सं० क्ली०) कर्पूरतैल, कपूर दे कर बनाया हुआ तेल।

हिमत्विष् (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ हिमकिरण।

हिमदीधिति (सं० पु०) चन्द्रमा।

हिमदुग्धा (सं० स्त्री०) क्षीरिणी, खिरनी।

हिमदुर्दिन (सं० क्ली०) हिमपात द्वारा दुःखदायक दिन।

हिमद्युति (सं० पु०) चन्द्रमा।

हिमद्रुम (सं० पु०) महानिम्ब, बकायनका पेड।

हिमधर (सं० पु०) हिमालय पर्वत।

हिमधातु (सं० पु०) हिमालय पर्वत।

हिमपात (सं० पु०) तुषारपात, बर्फका पडना।

हिमप्रस्थ (सं० पु०) हिमालयपर्वत।

हिमभानु (सं० पु०) चंद्रमा।

हिमभूभृत् (सं० पु०) हिमालय।

हिममयूख (सं० पु०) हिमकिरण, चन्द्रमा।

हिमयुक्त (सं० पु०) एक प्रकारका कपूर।

हिमरश्मि (सं० पु०) चंद्रमा।

हिमरुचि (सं० पु०) चंद्रमा।

हिमर्तु (सं० पु०) हेमन्तऋतु, जाडेका मौसिम।

हिमवत् (सं० पु०) १ हिमालय पर्वत। (त्रि०) २ हिमयुक्त, बर्फवाला। स्त्रियां ङीप्। ३ हिमवती, गङ्गा।

हिमवत्खण्ड (सं० पु०) स्कन्दपुराणके एक खण्ड या विभागका नाम।

हिमवत्पुर (सं० क्ली०) हिमालय पर्वत।

हिमवत्सुता (सं० स्त्री०) १ गङ्गा। २ उमा।

हिमवल (सं० पु०) मोती।

हिमवान् (हिं० पु०) हिमवत् देखो।

हिमवारि (सं० क्ली०) शीतल जल, ठण्डा पानी।

हिमवालुक (सं० पु०) कर्पूर, कपूर।

हिमविधि (सं० पु०) वैद्यकोक्त एक विधि। गुण—शीतकषाय। इसकी सेवनमात्रा दो पल है।

हिमवृष्टि (सं० स्त्री०) हिमवर्षण, बर्फका गिरना।

हिमशर्करा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी चीनी जो यवनालसे निकाली जाती है।

हिमशैल (सं० पु०) हिमालय पर्वत।

हिमशैलज (सं० त्रि०) हिमालयोद्भव, हिमालय पहाड पर होनेवाला।

हिमशैलजा (सं० स्त्री०) पार्वती।

हिमशैलसुता (सं० स्त्री०) पार्वती।

हिमसंहति (सं० स्त्री०) हिमसमूह, बर्फ।

हिमसागरतैल (सं० क्ली०) वात और पैत्तिक रोगकी एक उत्कृष्ट तैलौषध। (भैषज्यरत्ना०)

हिमसुत (सं० पु०) चन्द्रमा।

हिमहासक (सं० पु०) हिन्ताल वृक्ष, एक प्रकारका खजूर।

हिमा (सं० स्त्री०) १ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। २ रेणुका, रेत। ३ भद्रमुस्ता, नागरमोथा। ४ पृक्का, असबरग। ५ चाणिका, मूली।

हिमांशु (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ रौप्य, चांदी।

हिमांशुमालिन् (सं० पु०) चन्द्रमा।

हिमांश्वभिख्य (सं० क्ली०) रौप्य, चांदी।

हिमाकत (अ० स्त्री०) मूर्खता, बेवकूफी।

हिमाग (सं० पु०) हिमालय पर्वत।

हिमागम (सं० पु०) हेमन्तकाल।

हिमाचल (सं० पु०) हिमालय पर्वत।

हिमात्यय (सं० पु०) हिमऋतुका अवसान।

हिमाद्रि (सं० पु०) हिमालयपर्वत।

हिमाद्रिजा (सं० स्त्री०) १ क्षीरिणी, खिरनी। २ पार्वती।

हिमाद्रितनया (सं० स्त्री०) दुर्गा।

हिमाद्रितनयापति (सं० पु०) शिव।

हिमानद्ध (सं० त्रि०) शीतलीकृत, ठंढा किया हुआ।

हिमानी (सं० स्त्री०) महद्धिमम् इति (हिमारण्ययो र्महत्त्वे। पा ४।१।४९) इत्यनेन वार्त्तिकोक्त्या ङीप्

आनुक्, च । १ हिमसंहति, बर्फका ढेर । २ यावनालशर्करा, यावनालसे निकाली हुई एक प्रकारकी चीनी ।

हिमान्त (सं० पु०) हिमावसान ।

हिमाब्ज (सं० क्ली०) उत्पल, नील कमल ।

हिमाभ्र (सं० पु०) कर्पूर, कपूर ।

हिमामदस्ता (फा० पु०) खरल और बट्टा ।

हिमाम्भस (सं० क्ली०) शीतल जल, ठंढा पानी ।

हिमायत (अ० स्त्री०) १ रक्षा, अभिभावकता । २ पक्षपात । २ समर्थन, मण्डन ।

हिमायती (फा० वि०) १ पक्ष करनेवाला, पक्ष लेनेवाला । २ मददगार, तरफदार ।

हिमाराति (सं० पु०) १ अग्नि । २ सूर्य्य । ३ चित्रक वृक्ष, चीता । ४ अर्क, मदार ।

हिमाल (सं० पु०) हिमालयपर्वत ।

हिमालय (सं० पु०) हिमानामालयः । १ स्वनामख्यात पर्वत । पर्याय—नगपति, मेनाधव, उमागुरु, हिमाद्रि, नगाधिप, उदगद्रि, अद्रिराज, मेनकाप्राणेश, हिमवत्, हिमप्रस्थ, भवानीगुरु । यह पर्वत भारतवर्षका सीमा पर्वत है । पुराणके मतानुसार इस पर्वतकी लम्बाई दश हजार योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है ।

जो अत्यन्त ऊंचा तुषारमण्डित पर्वत भारतवर्षके उत्तरमें सर उठाये खड़ा है उसीका नाम हिमालय है । जिस गह्वरसे सिंधु, सानपो और ब्रह्मपुत्र नद उत्पन्न हुए हैं, पूर्वकी ओर उस स्थानसे ले कर पश्चिममें सिंधुनद जहां अपने सबसे उत्तरी अक्षांशमें पहुंचा है, उस स्थान तक यह बड़ा पहाड़ फैला हुआ है । पूर्वकी ओर इसकी शाखा प्रशाखा ब्रह्मदेशकी दक्षिणाभिमुखी गिरिमालामें लीन हो गई है । पश्चिमकी ओर यह फिर कुछ टेढ़ा हो कर अफगानिस्तानमें काबुल नदीकी ढालवीं भूमिमें मिली है ।

कुयनलुयन और हिमालय एशियामहादेशके दो सर्वश्रेष्ठ पर्वत हैं । ये दोनों ही पर्वत पश्चिमकी ओर जा कर पामीर मालभूमिमें मिल गये हैं । यहांसे पामीर हिन्दूकुश और तियानसन ये दो शाखा निकली हैं । उत्तरमें कुयनलुयन और दक्षिणमें हिमालय तिब्बतकी विस्तृत मालभूमिको घेरे हुए हैं । भारत-उपसागरसे जब वाष्प जम कर तुषार बनता है तब वह हिमालय पर जम जाता है । उस तुषारके गलनेसे बहुतसी नद-नदियां भारतवर्षकी समतल भूमि पर गिरती हैं । परंतु कुयनलुयन किसी भी समुद्रके पास नहीं है, इस कारण उससे कोई नदी नहीं निकली है ।

जिन तीन समरेखिक उत्तर, मध्य और दक्षिण पर्वतमालामें हिमालय विभक्त है उनमेंसे एक एकका विवरण नीचे दिया गया है ।

उत्तरमाला—इस उत्तरमालाको फिर पूर्व और पश्चिम भागमें बांट सकते हैं । पश्चिम भाग कराकोरम या मुसताघ कहलाता है । हिमालयके इस भागकी चोटियोंकी साधारण ऊंचाई २५००० फुट है । इनमेंसे जो सबसे बड़ी है, उसकी ऊंचाई २८२६५ फुट है । यह ऊंची पर्वतकी चोटी पृथिवीके मध्य केवल हिमालयकी दूसरी चोटी गौरीशङ्करसे छोटी है । यह K2 रूपमें चिह्नित है ।

हिमालयके इस विभागके दक्षिणांशका हाल उतना मालूम नहीं है । कैलाश पर्वत और चङ्गचेनमो पार्वत्यपथके मध्यवर्ती स्थानके विषयमें कोई भी वैदेशिक कुछ लिख नहीं गये हैं । इस स्थानकी दक्षिणी ढालवी भूमिसे शतद्रु और सिन्धुनद निकल कर हिमालयकी मध्यमाला और दक्षिणमालाको चीरते हुए भारतके समतल क्षेत्रकी ओर बह गये हैं । मानससरोवरके पूरब एक खण्डाचलने उत्तरमाला और मध्यमालाके साथ संयोग कर रखा है । इसके पूरबमें ब्रह्मपुत्र और सानपो नदी निकली है । किसी किसी भौगोलिकका कहना है कि हिमालयका यह पूर्वांश सचमुच हिमालयका अंश नहीं है, चीनके दक्षिण जो पर्वतमाला है यह पर्वत यथार्थमें उसीका एक अंश है । इसका नाम ताङ्गला है ।

उत्तरमाला और मध्यमालाके बीचमें कैलासपर्वत है । उस कैलासपर्वतसे ले कर सिन्धुनद और श्योकनदीके संस्थान तक फैला हुआ एक पर्वतशृङ्ग है । कनिंहम साहबने इसका कैलास अथवा गङ्गरी शैलमाला नाम रखा है । इसकी जितनी चोटियां हैं उनकी साधारण ऊंचाई १६०००से २०००० फुट है । यहां बहुतसी घाटियोंके

बीच हो कर सिन्धुनदकी उपत्यकासे शयोकनदीकी उपत्यकामें जाया जाता है।

मध्यमाला—यह बड़ी शैलमाला नङ्गपर्वतसे आरंभ हुई है। नङ्गकी ऊंची चोटीकी ऊंचाई २६६२६ फुट है। सिन्धुनदीकी उपत्यकासे यह पर्वत मस्तक उठाये हुए है। यह काश्मीरके सीमान्तके पास खड़ा है। इसके पाससे सिन्धुनद एक स्वाधीन राज्यके भीतरसे होता हुआ दरबन्दके नजदीक वृटिश गवर्मेण्ट-शासित राज्यमें आ पहुंचा है। वहांसे ५०।६० मील पूर्व तक यह शैलमाला उतनी ऊंची नहीं है। कृष्णगङ्गा और आस्तर इन दो नदियोंके बीच जो लोगोंके आने जानेका रास्ता है, वह १३००० फुट ऊंचा है। वह पार्वत्यपथ इस उपत्यकामें चला गया है। इसगिरिपथ हो कर काश्मीरसे लादक मालभूमिमें प्रवेश किया जाता है। इस पर्वतमालाकी एक शाखा दक्षिणमें सिन्धुनद और झेलम नदीकी उपत्यकासे उत्तरमें कृष्णगङ्गाकी उपत्यकाको पृथक् करती है। इस पार्वत्यपथके पाससे एक दूसरी शाखा काश्मीरकी उपत्यकाको चारों ओरसे घेरे हुए है। इस शाखासे और भी कितनी प्रशाखाएं निकली हैं जिन्होंने चारों ओर काश्मीरको घेर रखा है।

इस गिरिसङ्कटके पास मध्यमालाके शृङ्ग अभ्रभेदी और चिरतुषारावृत है। नुन और कुनशृङ्ग, दोनोंकी ऊंचाई २३००० फुट है। इसके उत्तरपूर्व ढालूभूमिसे जल गिर कर सिन्धुनदमें जमा होता है। मध्यमालाकी प्रधान दो नदियोंके नाम सुरु और जनस्कर हैं। जनस्कर नदी एक अभेद्य प्रदेशके बीचसे बह गई है। कुछ दूर दक्षिण-पूर्वमें शतद्रु नदी एक भयानक और बहुत ऊंचे गह्वरको चीरती फाड़ती हुई भारतकी ओर चली गई है। यह नदी मानससरोवरके पाससे निकल कर इस ऊंचे पर्वतको पार कर गई है। जहां स्पिति नदीके साथ शतद्रु मिली है, वहां लिओपोरगुल नामक शृङ्ग अवस्थित है। इसकी ऊंचाई २२१८३ फुट है और भी दक्षिणपूर्व वृटिश भारतसे मध्यमालाके दूसरी ओर जाने आनेके लिये अनेक गिरिपथ हैं। इनमेंसे नीतिपथ उल्लेखयोग्य है।

मध्यमालाका दूसरा अंश नेपाल, सिकिम और भूटानराज्यके अन्तर्गत है। हिमालयका यह स्थान तुषारखण्ड द्वारा हमेशा ढका रहता है। इसके उत्तरसे सानपो नदी निकली है। दक्षिण ओरसे बहुतसी छोटी छोटी नदियां निकल कर दक्षिण मालाको चीरती हुई गङ्गा और ब्रह्मपुत्रके कलेवरको बढ़ाती है। हद या झोलोंमें पलड़ी और कमतोदङ्ग ही प्रसिद्ध हैं।

दक्षिणमाला—प्रसिद्ध भारतभौगोलिकोंने उच्च, मध्य और निम्न पर्वतमें इसको विभक्त किया है। हिमालयका यह भाग दक्षिणमें शायद पीरपंजालसे आरम्भ हुआ है। यहीं पर इसके भीतरसे हो कर चीनानदी बह गई है। इसकी चोटियां १३००० फुटसे २०००० फुट तक ऊंची हैं। इस पर्वतश्रेणीसे भागीरथी अलकनन्दा निकली है। इस दक्षिणमालासे जो सब छोटी छोटी नदियाँ निकली हैं वह या तो गंगा या ब्रह्मपुत्रमें मिली हैं।

हिमालयकी दक्षिणमाला पर जो चोटी हैं, वे भारतवर्षमें सबसे बड़ी हैं। इनमेंसे बहुतोंकी ऊंचाई २५००० फुट है। गौरीशङ्करकी चोटी ही इनमें सबसे ऊंची है।

प्रत्येक पर्वतश्रेणीके मध्यवर्त्ती अंश स्फटिकमय शैल द्वारा संगठित हैं। हिमालयकी दक्षिणमालाको तीन भागोंमें विभक्त किया जाता है। इनका प्राकृतिक अवस्थान पृथिवीके ग्रीष्ममण्डल, सममण्डल और तुषारमण्डल इन तीन मण्डलके अन्तर्गत है। औसतसे इनकी चौड़ाई ६० मील है। दक्षिणसे उत्तरकी ओर इसकी शृङ्गमाला ऊंची होती गई है, इसीसे प्रत्येक हजार फुटकी ऊंचाई पर तीन या साढ़े तीन डिग्री करके उत्ताप कम हो जाता है। पञ्जाबमें समतलभूमिसे हिमालयके बाहर, शैलमालाके बीचमें बहुत-सी छोटी बड़ी घाटियां और जगह जगह जङ्गलसे घिरी हुई कृष्णसार मृगके घूमने फिरनेकी भूमि देख पड़ती है। पूरबकी ओर विस्तृत तराई है। यह ऊसर और गीली है। इसकी आब-हवा बहुत खराब है। यह स्थान तथा हिमालयके 'भाभर'का मध्यवर्त्ती भूभाग नेपाली भाषामें 'मारो' और भूटानी भाषामें 'द्वार' कहलाता है।

इस स्थानके प्रधान वृक्ष शाल, शीशम, खैर, आबनूस और कपास हैं। हिमालयके पूर्वमें हाथी, गैंड़े,

जङ्गली भैंस, हरिण, नाना प्रकारके पक्षी, कीटपतंग और नाना प्रकारके सरीसृप देखे जाते हैं। पश्चिमांशमें पाइन, अर्जुन, सेगुन और देवदारु वृक्षकी भरमार है। हिमालयके शाल, सेगुन और देवदारु वृक्ष साधारणतः बहुत ऊंचे होते हैं। एक एककी ऊंचाई २०० फुट तक देखी जाती है। हिमालयके सबसे ऊंचे अंशमें चमरी गाय, कस्तूरिका मृग, जंगली बकरे और भेड़, भालू तथा तरह तरहके शिकारी पक्षी पाये जाते हैं।

भूतत्त्वविद् लोग अनुमान करते हैं, कि हिमालय और आल्पस पर्वतका अवस्थान पहले समुद्रके निम्नदेशमें था। जब पृथ्वी उपग्रह सूर्यसे अलग नहीं हुई, तब इसका उत्ताप सूर्यसे ज्यादा था। जब सूर्यसे पृथ्वी अलग हो गई है, तबसे इसका उत्ताप क्रमशः घटता आ रहा है और पृथ्वी सिकुड़ती जा रही है। परन्तु पृथ्वीका बहिरावरण समान भावमें नहीं सिकुड़ा है। कहीं तो यह समतल क्षेत्र बन गया है और कहीं भूगर्भसे उन्नत पर्वतमाला जाग उठी है, इसीसे समुद्रके लुप्त जाने पर इन सब बड़े बड़े पर्वतस्तूपों पर सामुद्रिक पदार्थ दिखाई देते हैं।

हिमालय पर नाना प्रकारके खनिज पदार्थ मिलते हैं—लोहा और जस्ता शतद्रु और काली नदीके मध्यस्थ पर्वत पर बहुतायतमें दिखाई देता है। कुमायूं जिलेकी नदियोंके जलमें स्वर्णरेणु मिली हुई है। तिब्बतमें सोनेकी खान है। खानसे सोना शुद्ध अवस्थामें पाया जाता है। लोहा और तांबा कुमायूं जिलेकी खानसे निकाला जाता है।

हिमालय पर इरान और तुरान, इन दो आदि जातियोंका मिलनक्षेत्र है। तिब्बतकी सीमा तक हिमालयके अधिवासी अधिकांश हिन्दू हैं। यद्यपि आर्यगण तुरानोंके साथ मिल गये हैं, तथापि आर्य और तुरान इन दोनों श्रेणीके लोग देखने हीसे पहचानमें आ जाते हैं। नेपाल, भूटान और हिमालयके अन्यान्य देशोंमें कमसे कम १० जातिके लोग देखनेमें आते हैं। हिमालयकी सबसे ऊंची चोटियोंके नाम, अवस्थान और ऊंचाई नीचे दी गई है—

नाम	अक्षांश	देशा	ऊंचाई (फुट)
अकु	२८° ३३′ २०″	५५° १० १२″	२४३१३
एवरेष्ट (गौरीशङ्कर)	२७° ५९′ १२″	८६° ५८′ ६″	२९००२
कर (K2)			२८२६८
कबरू	२७ ३६′ ५६″	८८° ६′ १५′	२४०१५
कमेत (इबिगमिन)	३° ५५′ १३″	७९° ३८ ४′	२५३७३
कृष्णशैल गुआरिस	२७° ३४′ ६′	८८° ४८′ ३९′	१७५७२
कान्चनजङ्घा	२७ ४२ ५	८८ ११ २६	२८१५६
केदारनाथ	३० ४७ ५३	७९ ६ ३४	२२७९०
चमलारी	२७ ४९ ३७	८९ १९ ४४	२३९४४
चामल पूर्व	२७ ४६ २७	८७ ३ २१	२४०२०
" पश्चिम	२७ ४५ १६	८६ ५१ ५६	२२२१५
चुमुड्डो या चेल्हा	२२ २७ २८	८८ ४९ ३८	१७३२५
चौबीसो	७८ ४९ ३३	८२ ३९ ३३	१९४१५
जह	२७ ४० ५२	८८ ५ १२	२५३०४
जांवली	३० ५१ १८	७८ ५३ ५३	२१६७२
जिवलिधिया	२८ २१ ३	८५ ४९ २१	२६३०५
त्रिशूल, पूर्व	३० ३० ५६	७९ ५४ ३९	२३०९२
" पश्चिम	३० १८ ४३	७९ ४९ ७	२३३८२
दरलसगर	३० ५१ ४०	७९ २ १४	२२५८२
दयाबंग	२८ १५ १७	८५ ३१ ३५	२३७८२
धवलागिरि	२८ ४१ ४३	८३ ३२ ९	२६८२६
नन्दकूट	३० १६ ४१	८० ६ ३९	२२५३६
नन्दादेवी या लाट्टू	३० २२ ३१	८० ० ५०	२५६६१
नन्दाकना	३० ४१ ६	७९ ४१ ५३	२२०९३
नरसिंह	२७ ३० ३६	८८ १९ २८	१९१४६
नारायणी	२७ ४४ ३९	८३ २५ ४२	२४४४६
नीलकंठ	३० ४३ ५२	७० २६ ५६	२१६६१
पञ्चचुली	३० १२ ५१	८० २८ ९	२२६६३
पावहुनरी या डंकिया	२७ ५६ ५२	८८ ५३ ५	२३१८६
पानदिम	२७ २४ ३४	८८ १५ ३५	२२०१७
बदरीनाथ	३० ४४ १६	७९ १९ २०	२३२१०
बन्दरपुंछ	३१ ० १२	७८ ३५ ४५	२०७५८
वरथोर	२८ ३२ ०	८४ ९ ३	२६०६०
वुस या श्रीकण्ठ	३० ५७ २५	७८ ५० ५०	२०१४९
मुशियादो	२८ ३५ ३०	८३ ५१ ४६	२६५२२

नाम	अक्षाश	देशां	ऊंचाई (फुट)
यमुनोत्तरी	३१° ६′ २५″	७८° ३४′ ६″	२००३८
मोसस	२८ ३२ ५५	८४ ३६ ९	२६६८०
सिहखुर	२७ ५३ १८	८७ ७ ५४	२७७′९९
स्वर्गारोपन	३१ ६ ८	७८ ३२ ३२	२०४०५
स्वर्णकोशी	२७ ५८ १३	८६ २८ ३२	२३५७०

हिमालयकी सर्वोच्च शृङ्गमालासे वहुत उत्तरमें हिमालयकी अववाहिका है। इसके पास वहुतसी छोटी छोटी संकीर्ण गिरिगुहा और उपत्यका दिखाई देती हैं। भारतवर्षमें जो सब नदियां वहती हैं, उनकी उत्पत्ति इन सब सपवाहु गिरिमालासे हुई है। उत्तर भारतवर्षको जिन सब विख्यात नदियोंने शस्यसम्पदशाली वना दिया है, वे हिमालयके पश्चिम और पूर्वसे निकली हैं। इन सब नद-नदियोंके नाम ये हैं—झेलम, चनाव, रावी, व्यासा, सतलज, यमुना, गंगा, घघरा, गण्डक, कोशी, तिस्ता (मानस और सुवर्णगिरि), ब्रह्मपुत्रनद और दिहङ्ग।

देहरादून और यमुनाकी पूरवी समतल भूमिको शिवालिक पर्वतमाला अलग करती है। लेफ्टेनेण्ट फटली-ने १९वीं सदीके प्रथम भागमें शिवालिकसे प्रस्तरीभूत अस्थि-विन्यासका सवसे पहले आविष्कार किया। फटली साहव तथा डाकृर फलकनर साहवने इससे जो सव प्रस्तरीभूत अस्थि संग्रह कीं उसका विवरण Palæ ntological Memoirs नामक ग्रन्थमें प्रकाशित हुआ है। उन लोगोने वड़े परिश्रमसे मिट्टीके भीतर जिन सव स्तन्यपायी पशुओंका देहावशेप आविष्कार किया, उनके साथ दूसरे किसी 'फसिल' या प्रस्तरीभूत अस्थिकी तुलना नहीं हो सकती। वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा इन सव अस्थियोंके प्राणितत्त्वसम्वन्धमें नाना प्रकारके तथ्य आविष्कृत हुए हैं।

आर्य्य लोगोंके अधिकाश प्रधान प्रधान पुण्यक्षेत्र या तीर्थ इसी हिमालयके ऊपर हैं। स्कन्दपुराणके हिमवत् खण्डमें उन सव तीर्थोंका माहात्म्य विशद रूपमें वर्णित है। गवर्मेण्टसे प्रकाशित हिमालयान् गजेटियरमे यहांके भूतत्त्व, प्राणितत्त्व, भौगोलिक विवरण और इतिहास सविस्तार लिखा है।

तिव्वत शब्दमें अन्यान्य विवरण देखो।

२ सफेद खैरका पेड़।

हिमालयसुता (सं० स्त्री०) पार्वती, उमा।

हिमालया (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भुईआँवला।

हिमावती (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, स्वनामख्यात औषध-विशेष। गुण—तिक्त, प्लीहा और गुल्मोदरनाशक, कृमि, कुष्ठ और कण्डुतिनाशक। (भावप्र०)

हिमाश्रया (सं० स्त्री०) स्वर्णजीवन्ती।

हिमाह्व (सं० पु०) १ कर्पूर, कपूर। २ जम्बूद्वीपके एक वर्ष या खंडका नाम।

हिमाह्वय (सं० पु०)) हिमाह्व देखो।

हिमिका (सं० स्त्री०) १ तृणोपरि पतित हिम, घास पर गिरा हुआ वर्फ। २ शिशिरविन्दु ३ हिमसङ्घात।

हिमेलु (सं० त्रि०) हिमार्त्त।

हिमोत्तरा (सं० स्त्री०) कपिलद्राक्षा, एक प्रकारकी दाख।

हिमोत्पन्ना (सं० स्त्री०) यावनाल।

हिमोदक (सं० क्ली०) शीतल जल, ठंढा पानी।

हिमोद्भवा (सं० स्त्री०) १ शटी, कचूर। २ क्षीरिणी, खिरनी।

हिमोपम (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

हिम्मत (अ० स्त्री०) १ कोई कठिन या कष्टसाध्य कार्य करनेकी मानसिक दृढ़ता या वल, साहस। २ वहादुरी, पराक्रम।

हिम्मतगढ—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ३′ ३० तथा देशा० ७८° ५″ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके निकटवर्त्ती पन्नियार शहरमें मराठा और ग्रे-के अधीनस्थ अंगरेजी सेनाओंमें एक युद्ध हुआ था।

हिम्मत वहादुर—वुन्देलखण्डके अन्तर्गत छत्रपुरके एक अधिपति। ये 'गोसाईं नवाव हिम्मत वहादुर' नामसे प्रसिद्ध थे। वुन्देला लोगोंने इनका राज्य अधिकार किया। इन्होंने ठाकुर कविके कौशलसे उस वार रक्षा पाई थी, इसीसे वे ठाकुर कविका वड़ा सम्मान करते थे। इन्होंने वहुत सी गोसाईं सेना ले कर सिंधियाकी ओरसे युद्ध किया था। वुंदेलोंका दमन करनेके लिये इन्होंने पहले अली वहादुरको वुंदेलखण्ड जीतनेकी सलाह दी। मराठा-युद्धकालमें ये अंगरेजोंकी ओरसे लड़े थे। आप

अनेक कवियोंके उत्साहदाता थे और स्वयं भी कितनी हिंदी कविता रच गये हैं।

हिम्मताबाद—दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह दिनाजपुर शहरसे ३० मील पश्चिम कुलिक नदीके ऊपर अक्षा० २५° ४०´ उ० तथा देशा० ८८° १५´ ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है।

हिम्मती (फा० वि०) १ साहसी, हिम्मतवाला। २ पराक्रमी, बहादुर।

हिम्य (सं० त्रि०) हिमोत्पन्न, बर्फमें होनेवाला।

हियंसियं (हिउयनसियं, युयनचुयङ)—सुप्रसिद्ध चीन-परिव्राजक और बौद्धयति। किंवदन्ती और चीन ग्रंथमें इनकी वंश-आख्यायिकाका जो विवरण आया है उससे जाना जाता है, कि चीनराज्यके सुप्राचीन सानराजकुलमें इनका जन्म हुआ। ऐतिहासिक प्रमाणसे हमें मालूम होता है, कि इन्होंने च'एन नामक एक राजकुलमें जन्मग्रहण किया था।

इनके पिता च'एन हुइ सुविज्ञ और बुद्धिमान् थे। राज्यमें अराजकता स्रोतको बहते देख वे च'एन-पत्तकु ग्राममें चले गये और वहीं एकान्तमें बैठ कर धर्मचर्चामें दिन बिताने लगे। यहीं पर ६०० ई०में परिव्राजक युयनचुअङ्गका जन्म हुआ था।

च'एन हुइके चार पुत्रोंमें यु यन चु अङ्ग सबसे छोटे थे। चारों भाइयोंने उपयुक्त पिता और दूसरे दूसरे गुरुओंसे अनेक शास्त्रोंमें अभिज्ञता प्राप्त कर ली थी। परंतु बालक युयन चुअङ्ग कुछ अधिक चतुर और ज्ञानी थे। दूसरे दूसरे भाइयोंकी तरह वे खेल कूद या ठाट बाटको पसंद नहीं करते थे। निर्जनमें बैठ कर ज्ञानार्जन करनेकी ओर ही इनकी विशेष प्रवृत्ति थी। प्रथम जीवनमें वे पिताके चलाये धर्मके पक्षपाती थे तथा तदनुयायी इन्होंने कनफुचीमतपोषक सभी शास्त्र और नीतिग्रंथ अध्ययन कर डाले थे।

इनके दूसरे भाई जब बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए, तब इस नवीन धर्मके प्रति इनका भी ध्यान दौड़ा। पीछे इन्होंने भाईका पदाङ्क अनुसरण कर बौद्धोंके अनेक सङ्घारामोंमें परिभ्रमण करने और वहीं अपना समय बितानेका विचार किया। 'इसके बाद बौद्धयति होनेकी वासना उनके हृदयमें प्रबल हो उठी। तदनुसार वे नवीन श्रामणकी तरह बड़े आग्रहसे बौद्धधर्म ग्रंथोंकी आलोचनामें प्रवृत्त हुए। इस प्रकार बीस वर्षकी उमरमें ये श्रमणधर्ममें दीक्षित हुए। इस समय संघारामके बौद्ध पण्डितोंके साथ रह कर बौद्धधर्म-सम्बंधीय प्रधान प्रधान और प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकी आलोचना करनेका इन्हें काफी समय मिला। इस युवक श्रमणकी ज्ञानज्योति शीघ्र ही चीनजगत्में फैल गई। परन्तु ये अधिक दिन चीनराज्यमें चुप चाप बैठ कर समय बिताना नहीं चाहते थे। जिस बुद्धकी वाक्यावलीने इनके हृदयमें अभिनव धर्मभाव जगा दिया था, उस बुद्धधर्मलीलाके पवित्र क्षेत्र भारतके बौद्धतीर्थों और बुद्धोपदेशावलीके प्रत्यक्ष निदर्शनोंको अपनी आंखोंसे देखनेकी इनकी उत्कट इच्छा हुई। क्योंकि, बौद्धग्रंथोंकी चीनभाषाका अनुवाद पढ़ कर धर्मतत्त्व विषयमें उन्हें प्रकृत रसास्वादन नहीं मिलता तथा उसे पा कर तृप्ति नहीं होती, ऐसी एक दुर्भावना उन्हें सताने लगी। अनंतर इन्होंने मूलग्रंथ संग्रह करनेका संकल्प किया। बौद्धमतानुसार दृढ़विश्वासी भारतीय पण्डितवर्ग धर्मतत्त्वका जो निगूढ मर्मोद्घाटन करते हैं, वही जानना उनकी हार्दिक इच्छा थी।

६२९ ई०के सितम्बर मासमें परिव्राजकश्रेष्ठ बिना किसीको कहे सुने च'अङ्ग अन् (वर्त्तमान हसि-अन फु) राजधानीका परित्याग कर भारतयात्राको निकले। इन्होंने ६३० ई०के सितम्बर मासके शेष भागमें अथवा अक्तूबरके प्रारम्भमें भारत पदार्पण किया। इसके बाद उत्तर और दक्षिण भारतके सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध हिंदू और बौद्ध तीर्थोंके दर्शन कर वे ६४४ ई०के जुलाई मासमें स्वदेश लौटनेकी तैयारी करने लगे। भारतमें आ कर वे जिन सब तीर्थोंमें गये थे तथा उस समयके जिन सब राजाओंके साथ मिले थे, उन्हें वे अपनी जीवनी (त त' अङ्ग त-त्सु एन सु-सन-त्सङ्ग-फ-शिह चुअन्) और भ्रमण-विवरणी (त त, अङ्ग ह-सि यूकि) ग्रंथमें लिपिबद्ध कर गये हैं।

स्वदेश छोड़नेके १६ वर्ष पीछे अर्थात् ६४५ ई०में युयन-चुवंग च'अङ्ग-अन् राजधानीमें लौटे। उस समय